भारत का आर्थिक विकास

कक्षा 11 के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

लेखक

पी.के. चौबे

संपादक

जी.एस. कुशवाहा

हिंदी रूपांतरण

ओ.पी. बोहरा

नीरजा रश्मि

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
सितंबर 2002
भाद्रपद 1924
PD 40T DRH

ISBN 81-7450-093-6

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस श्री अरविंद मार्ग **नई दिल्ली 110 016**	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज **बैंगलूर 560 085**	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन **अहमदाबाद 380 014**	सी.डब्लू.सी. कैम्पस 32, बी.टी. रोड, सुखचर **24 परगना 743 179**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : दयाराम हरितश
उत्पादन : प्रमोद रावत
राजेन्द्र चौहान

आवरण
प्रमोद रावत

रु. 35.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नाथ ग्राफिक, 1/21, सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली 110 016 से लेजर टाइपसेट होकर कौशिक ऑफसैट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी-34, सैक्टर 58, नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक **भारत का आर्थिक विकास** (कक्षा XI, द्वितीय सत्र) उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए तैयार की गई अर्थशास्त्र की चार पाठ्यपुस्तकों की शृंखला में दूसरी है। यह *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000* के अनुरूप तैयार किए गए अर्थशास्त्र के नए पाठ्यक्रम पर आधारित है।

माध्यमिक स्तर तक अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की समेकित पाठ्यचर्या के एक अंग के रूप में पढ़ाया जाता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पहली बार स्वतंत्र विषय के रूप में अर्थशास्त्र से विद्यार्थियों का परिचय होता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के दो वर्षों की अवधि छः माह के चार सत्रों में विभाजित होती है। इन चार सत्रों के लिए अर्थशास्त्र में चार पाठ्यपुस्तकें हैं, जिनमें से दो ग्यारहवीं कक्षा के लिए हैं तथा दो बारहवीं कक्षा के लिए।

ग्यारहवीं कक्षा के द्वितीय सत्र के लिए तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य विकास की कुछ मानक संकल्पनाओं और सूचकों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वतंत्रता के बाद से हुए संरचनात्मक परिवर्तनों की विस्तृत ज़ानकारी देना है। सामाजिक-आर्थिक आधारिक संरचनाओं की अवस्थिति तथा विकास का विवरण देकर, 1991 के पहले के विकास की व्यूहरचनाओं तथा 1991 के बाद से हुए आर्थिक-सुधारों से विद्यार्थियों का परिचय कराया गया है। पुस्तक में देश के योजनाबद्ध विकास के क्रम में हमारी उपलब्धियों/विफलताओं का एक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। कुछ उभरते हुए प्रश्नों पर भी विचार किया गया है, जो अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियों की भाँति हैं। सामयिक विषयों जैसे पर्यावरण, लिंग, प्रवसन आदि का भी संक्षिप्त उल्लेख है।

इस पाठ्यपुस्तक को तैयार करने में परिषद् को कई स्थानों से सहायता मिली है। मैं लेखक महोदय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने पुस्तक को बोधगम्य रूप में लिखने का कठिन कार्य कुशलता से संपन्न किया। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के उन शिक्षकों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विषय-विशेषज्ञों के रूप में पुस्तक की पांडुलिपि के पुनरीक्षण हेतु आयोजित कार्यशालाओं में भाग लेकर पुस्तक को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में सक्रिय योगदान दिया।

आशा है कि यह पाठ्यपुस्तक उन विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी, जिन्होंने एक स्वतंत्र विषय के रूप में अर्थशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया है। पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया है, अतः भविष्य में पाठकों के विचारों और सुझावों का परिषद् स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

जून 2002
नई दिल्ली

पाठ्यपुस्तक पुनरीक्षण समिति

1. पी.के. चौबे
   आचार्य (अर्थशास्त्र)
   भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
   नई दिल्ली

2. जी.एस. कुशवाहा
   आचार्य (अवकाश प्राप्त)
   अर्थशास्त्र विभाग
   बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
   वाराणसी

3. कान्ता जोशी
   स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
   राजकीय कन्या उ.मा.विद्‌यालय
   न. 2, किदवई नगर, नई दिल्ली

4. ए.एस. गर्ग
   स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
   राजकीय प्रतिभा विकास विद्‌यालय
   सूरजमल विहार
   नई दिल्ली

5. वीणा गुप्ता
   स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
   राजकीय कन्या उ. मा. विद्‌यालय
   न. 1, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली

6. ओ.पी. बोहरा
   अर्थशास्त्री
   राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान
   नई दिल्ली

नीरजा रश्मि ***(समन्वयक)***
प्रवाचक (अर्थशास्त्र)
सा.वि.मा.शि.वि.,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

पुस्तक परिचय

इस पुस्तक का मूल आशय विद्यार्थियों को भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणों तथा 1950-51 से लेकर आज तक हुए विकास से अवगत कराना है। ऐसी आशा है कि आपको अर्थव्यवस्था के मूलभूत बिंदुओं का ज्ञान है अतः इनको आँकड़ों की सहायता से समझाया जाएगा। आपको इन आँकड़ों का ध्यान मोटे तौर पर रखना होगा न कि दो दशमलव तक याद रखने की जरुरत है। इसका तात्पर्य यह है कि आपको पूर्णरूप से सही अथवा गलत भी नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत की जनसंख्या 2001 में 100 करोड़, 20वीं शताब्दी के अंत तक खाद्यान्न उत्पादन 200 मिलियन (20 लाख करोड़) या चालू वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद प्रचलित भावों में 20 करोड़ रुपये हो जाएगा। ये आँकड़े मोटे तौर पर हमें अर्थव्यवस्था के बारे में बताते हैं जो साधारणतः काफी हैं।

सारणियों का प्रयोग इनके स्पष्टीकरण के लिए किया गया है। यें आँकड़े सही हैं, क्योंकि इन्हें किसी स्रोत-पुस्तक से लिया गया है। इन आँकड़ों को हजारों, लाखों, दस लाखों (मिलियन टन) तथा करोड़ों में बताया गया है। हमारा उद्देश्य विभिन्न समयों के बीच तथा विभिन्न इकाइयों के बीच तुलना करना है। इसीलिए इन आँकड़ों को लेकर 5 या 0 के पूर्ण अंकों में अथवा सुविधानुसार 1/3 या 2/5 के अनुपात लेकर अपने आँकड़े पूर्ण करके अपनी बात रख सकते हैं। आँकड़ों के 33.2 प्रतिशत या 33.7 प्रतिशत को लेकर विवाद में न पड़ना चाहिए, क्योंकि ये आँकड़े आपके उत्तर का स्तर नहीं बदलेंगे।

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्रणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

विषय-सूची

इकाई I

आर्थिक संवृद्धि एवं विकास

यद्यपि यह पाठ्यक्रम भारत में आर्थिक विकास (विशेषतौर से भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास) से संबंधित है। यहाँ आप कुछ संकल्पनाओं (concepts) को, जो समाचार पत्रों में भी प्रयोग की जाती हैं, भली-भाँति समझ लें। हम इनको जहाँ तक हो सके सरल भाषा में समझाएंगे जिससे आप विस्तृत जानकारी विकसित कर सकें। हम इस अध्याय में अर्थशास्त्र में प्रयोग की जाने वाली चार मूलभूत पदों की चर्चा करेंगे ताकि आप इसकी एक समझ विकसित करें जिससे आप आगे चलकर हमारी अर्थव्यवस्था के बारे में चर्चा, वाद-विवाद, संवाद तथा शेष विश्व के बारे में समझ सकें।

हालांकि, विभिन्न संकल्पनाओं तथा इनके प्रयोग के बारे में कोई एक निश्चित मत नहीं है फिर भी इन संकल्पनाओं तथा शब्दों की लगभग स्वीकृति है। चार मूल संकल्पनाएँ जिस पर अध्याय 1 में चर्चा होगी, वे हैं:

(i) आर्थिक संवृद्धि (Economic growth);

(ii) आर्थिक विकास (Economic development);

(iii) सतत् विकास (Sustainable development); और

(iv) जीवन की गुणवत्ता (Quality of life)

इन संकल्पनाओं का क्रमिक विकास हुआ है। हम इस क्रमिक विकास को समझने की कोशिश करेंगे। यदि कुछ महत्त्वपूर्ण विषयांतर हुए हैं, तो इनको बाक्स में दर्शाएंगे। हम आपके लिए कुछ क्रियाएँ भी रखेंगे, जिनसे आपको इन संकल्पनाओं को समझने में आसानी हो।

दूसरे अध्याय में हम विशेष वर्ष में उपलब्ध विकास के स्तर को मापने के वैकल्पिक संकेतकों के बारे में चर्चा करेंगे। हम विशेषतौर पर प्रतिव्यक्ति आय, PQLI तथा HDI के बारे में व्याख्या करेंगे।

अध्याय 1

विकास की संकल्पनाएँ

परिचय

अर्थव्यवस्थाएँ वृद्धि एवं विकास करती हैं, उनका विस्तार होता है, वे अग्रसर होती हैं, उनकी उन्नति एवं संवृद्धि होती है। ऐसा समय भी आता है जब इनका पतन (अवनति) होता है। कुछ अर्थव्यवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनका लगातार पतन होता है। यदि हम मानव इतिहास के एक लंबे भाग को देखें तो पता चलता है कि कुछ अर्थव्यवस्थाएँ (सभ्यताएँ) बिलकुल समाप्त हो गई हैं। हम ऐसी समयावधि की चर्चा नहीं करेंगे और न ही बहुत पुराने समय की बात करेंगे। हम उनको इतिहासकारों एवं आर्थिक इतिहासकारों के लिए छोड़ देंगे।

हम एक साधारण दृष्टिकोण लेंगे। हम अर्थव्यवस्था का पतन एक अस्थायी तथ्य के रूप में स्वीकृत करेंगे। इसलिए हम सकारात्मक शब्दों को ही प्रयोग में लाएंगे। परिवर्तन को वर्णित तथा निर्धारित करने वाले सकारात्मक शब्दों के अंतर्गत दो शब्द प्रचलित हैं : **वृद्धि** (Growth) एवं **विकास** (Development)। हम राष्ट्रों एवं देशों को मूलतः अर्थव्यवस्थाओं के रूप में देखेंगे इसलिए 'आर्थिक वृद्धि' एवं 'आर्थिक विकास' शब्दों का प्रयोग करेंगे। हम आर्थिक एवं गैर-आर्थिक में अंतर करने की कोशिश करेंगे, यद्यपि कुछ स्थितियों में यह अंतर करना कठिन है।

स्तर में गिरावट को दिखाने के लिए हम 'नकारात्मक वृद्धि' तथा विकृत प्रवृत्तियों का वर्णन करने के लिए हम 'अ-विकास' या 'कुविकास' वाक्यांशों का प्रयोग करेंगे। यद्यपि हमें इनके प्रयोग का अवसर शायद न मिले।

कई बार वैज्ञानिक शोधों एवं संवादों में **वृद्धि** एवं **विकास** शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग किया जाता है। आर्थिक साहित्य में इन दोनों शब्दों में भेद किया जाता है। आगे आने वाले अनुच्छेदों में इस भेद को बनाए रखा गया है।

आपने देखा होगा कि 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग आकार या ऊँचाई में बढ़ोत्तरी को दर्शाने के लिए होता है। वृद्धि शब्द का प्रयोग एकल-आयामी परिवर्तन, जैसे कि बच्चे का कद, में वृद्धि या किसी बहु-आयामी परिवर्तन, जैसे गुब्बारे के आकार में वृद्धि, का वर्णन करने के लिए होता है। जब हम बच्चे के विकास के बारे में बताते हैं, तो हमारा तात्पर्य इसके व्यक्तित्व के सभी आयामों से होता है।

जब हम आयाम के बारे में बात नहीं करते तो, हम 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्कूल तथा संस्थाएं, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय, होटल तथा अस्पताल भी वृद्धि करते हैं परंतु कुछ विशेषताएँ हैं जो वृद्धि शब्द में सम्मिलित नहीं हैं। शायद ही ऐसा होता है कि वृद्धि बिना विकास अथवा विकास बिना वृद्धि के संभव हो। अधिकतर

स्थितियों में ये एक-दूसरे के साथ होते हैं। कभी एक अधिक प्रभावी होता है तो दूसरा अप्रभावी।

आर्थिक संवृद्धि (Economic growth)

हम अर्थव्यवस्था का एक व्यापक दृष्टिकोण लें, जिसमें सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित हों तथा इसे आर्थिक संवृद्धि कहें।

> **संवृद्धि (Growth)**
>
> हम श्रम शक्ति की वृद्धि, निर्यात वृद्धि, कृषि वृद्धि अथवा उद्योग वृद्धि के बारे में बात कर सकते हैं। हम उपभोग-व्यय (consumption expenditure) या निवेश-व्यय (investment expenditure) की वृद्धि के बारे में भी चर्चा कर सकते हैं। हम बैंकिंग, बीमा अथवा सूचना-प्रौद्योगिकी की वृद्धि के बारे में बात कर सकते हैं। हम यहाँ पर वृद्धि को पूरी अर्थव्यवस्था की वृद्धि तक ही सीमित रखेंगे।

हम 'वृद्धि' को उत्पादन की दृष्टि से देखते हैं। किसी एक अर्थव्यवस्था में किसी एक वर्ष में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को 'सकल घरेलू/देशीय उत्पाद' के रूप में (मापते) हैं। सकल देशीय उत्पाद का मापन हम कारक-लागत (facter cost) पर करते हैं और इसको संक्षेप में GDP_{FC} लिखते हैं। वर्ष 2000-01 में GDP_{FC} लगभग 17,00,000 करोड़ रुपये था। वर्ष 2000-01 में 'वस्तुओं एवं सेवाओं' के उत्पादन के प्रवाह को मूल्य के रूप में मापा गया है। हम यह जानने में भी इच्छुक होंगे कि इस वर्ष का प्रवाह पिछले वर्ष के प्रवाह से अधिक है या कम? इसके लिए हमें पिछले वर्ष के प्रवाह को भी मापना आवश्यक है। प्रवाह में वास्तविक (real) परिवर्तन जानने के लिए हमें दोनों वर्षों के प्रवाह के परिमाण की गणना समान कीमतों के आधार पर करनी चाहिए। ये कीमतें वर्ष 2000-01 अथवा 1999-2000 या 1993-94 की हो सकती हैं। मुख्य बात यह है कि कीमतें किसी एक समान वर्ष (common year) की होनी चाहिए जिससे हम निर्गत के प्रवाह के परिवर्तन को माप सकें न कि निर्गत तथा कीमतों के परिवर्तन के मिश्रण को। ऐसे सकल देशीय उत्पाद के ऐसे माप को स्थायी मूल्यों (constant prices) पर GDPs कहा जाता है।

यदि आप राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (National Accounts Statistics), जो कि केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organization) से प्रकाशित होती हैं, की नवीन प्रति को देखें तो मालूम होगा कि 1993-94 मूल्यों पर GDP_{FC} वर्ष 1999-2000 तथा 2000-01 के लिए क्रमशः 10,00,000 करोड़ रुपये एवं 10,60,000 करोड़ रुपये था। प्रवाह में वृद्धि को निरपेक्ष रूप से GDP_{FC} कहते हैं, जो 60,000 करोड़ रुपये है। तुलनात्मक रूप में यह वृद्धि 6 प्रतिशत है। इसे वृद्धि दर कहेंगे। यदि हम पूरी शृंखला (series) 10, 20, या 50 वर्षों के लिए तैयार करते तो हम संवृद्धि दर में 'प्रतिवर्ष' शब्द जोड़ते हैं। 'संवृद्धि-दर' को बहुधा प्रतिशत प्रतिवर्ष रूप में दर्शाया जाता है। यह सकारात्मक या नकारात्मक परिवर्तन हो सकता है।

यदि हम 20 वर्ष की अवधि के लिए वस्तुओं के उत्पादन के प्रवाह के वार्षिक आँकड़ों को देखें, जो GDP_{FC} स्थायी कीमतों पर मापे गए हैं, तो 'वृद्धि दर', जिसकी गणना वार्षिक आधार पर की गयी है, प्रतिवर्ष भिन्न होगी। क्या हमें 19 वर्षों के आँकड़ों का प्रयोग प्रतिवर्ष 'वृद्धि दर' निकालने के लिए करना चाहिए अथवा प्रारंभिक तथा अंतिम वर्ष के आँकड़ों की तुलना करनी चाहिए? यदि हम पहला तरीका अपनाते हैं, तो प्रश्न है कि 19

वर्षों के आँकड़ों का सारांश कैसे करें? यदि हम दूसरा तरीका अपनाते है तो इसमें यह संभावना है कि इन आँकडों में से कोई एक संख्या (अगली अथवा पिछली) 'असाधारण' हो सकती क्योंकि यह सामान्य प्रवृत्ति से अलग हटकर है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम साधारण प्रवृत्ति की बात करें और इसके आस-पास के असाधारण उतार-चढाव पर ध्यान न दें? इसीलिए 'आर्थिक वृद्धि' लंबी अवधि की प्रवृत्ति को कहते हैं, जिसमें अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह में बढ़ोत्तरी को दर्शाया जाता है।

यद्यपि साधारण प्रवृत्ति वृद्धि की ही होती है किंतु कभी-कभी पतन की घटना भी होती है। उन वर्षों में नकारात्मक संवृद्धि होती है। क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन की संभावना लगातार बढ़ रही है परंतु कभी-कभी उत्पादन संभावनाएँ साकार नहीं हो पातीं। अनियमित पतन के कई कारण हो सकते हैं। यदि अर्थव्यवस्था जरूरत से ज्यादा विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है, तो दूसरे देशों की स्थिति भी इसे प्रभावित कर सकती है। यदि मानसून बुरी तरह असफल हो जाता है तो अर्थव्यवस्था कुछ समय के लिए पटरी से नीचे उतर जाती है। कई अन्य कारणों से आंतरिक माँग क्षमता का पूर्णरूपेण प्रयोग करने में असफल रहती है। कई अर्थशास्त्री आपूर्ति-क्षमता पर ज्यादा जोर देते हैं और मांग की स्थिति की उपेक्षा करते हैं। ये 'आर्थिक संवृद्धि को लंबी समयावधि में अर्थव्यवस्था में उत्पादन संभाव्यता में बढोत्तरी' के रूप में परिभाषित करते हैं।

कुछ अर्थशास्त्री ऐसा महसूस करते हैं कि प्रति व्यक्ति GDP_{FC} में वृद्धि ही संवृद्धि है न कि GDP_{FC} में वृद्धि तथा इसी आधार पर एक

'संवृद्धि दर' 't' समयावधि के लिए नीचे दिए गए तरीके से परिभाषित कर सकते हैं :

$$g_t \frac{Q_t - Q_{-t}}{Qt-1} = \frac{Q_t}{Q_{t-1}} - 1 ....(1)$$

जहाँ —

g_t = GDP वृद्धि दर (तुलनात्मक) 't' समयावधि के लिए।

Q_t = t समयावधि के लिए GDP_{FC}

$Q_{t-1} = t_{-1}$ समयावधि के लिए GDP_{FC}

माना कि GDP_{FC} वर्ष 1990-00 में 1993-94 की कीमतों पर 11,52,000 करोड़ रुपये है तथा GDP_{FC} 1998-99 वर्ष में 1993-94 की कीमतों पर 10,83,000 करोड़ रुपये है। हम संवृद्धि-दर इस प्रकार मालूम कर सकते हैं :

$$g_t \frac{\text{Rs } 1{,}15{,}000 - \text{Rs } 10{,}83{,}000}{10{,}83{,}000} = 1.0637 - 1 = 0.0637$$

इसलिए वृद्धि दर 0.0637 होगी। हालाँकि, वृद्धि दर को प्रतिशत रूप में दर्शाते हैं, अतः वृद्धि दर को 6.37 प्रतिशत लिखेंगे।

कभी-कभी लोग ऐसी वृद्धि दरों का निश्चित समयावधि (दशक या पंचाब्द) के औसत (average) लेकर इसे औसत वार्षिक वृद्धि दर भी कहते हैं (AAGR)।

अर्थव्यवस्था की संवृद्धि को मापते है। किंतु यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'आर्थिक संवृद्धि' एक लंबी समयावधि का दृश्य (घटना) है जो एक अर्थव्यवस्था में होने वाली आर्थिक गतिविधियों के परिवर्तनों को दर्शाता है।

आर्थिक विकास (Economic Development)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास और आर्थिक संवृद्धि में ज्यादा अंतर नहीं है। उनके लिए दोनों लंबी समयावधि में प्रतिव्यक्ति आय में बढ़ोतरी की प्रक्रियाएँ हैं। कुछ दूसरे अर्थशास्त्री ऐसा विश्वास रखते हैं कि 'विकास' निश्चित रूप से 'संवृद्धि' से एक भिन्न प्रक्रिया है, तथा यहाँ वृद्धि के अतिरिक्त परिवर्तन के दूसरे पहलू (आयाम) भी सम्मिलित करता है। फिर भी दूसरे ऐसा मानते हैं कि विकास कुछ नहीं यह केवल किसी विशेष वर्ष में प्रतिव्यक्ति आय के स्तर को दर्शाता है।

पूरे मानव इतिहास को, सकारात्मक दिशा में होने वाले परिवर्तन या विकास का एक अनुक्रमण माना जा सकता है। दूर से देखने पर मालूम होता है कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना में परिवर्तन हुआ है– शिकार-संग्रहण से स्थायी कृषि, कृषि से विनिर्माण, विनिर्माण से स्वचालित उत्पादन, वस्तुओं के उत्पादन से सेवाओं का उत्पादन। इसका आशय यह नहीं है कि 1000 वर्षों पहले सेवाओं का उत्पादन नहीं होता था। इसका आशय केवल यह है कि इनके तुलनात्मक महत्त्व में परिवर्तन हुआ है तथा ऐसा व्यापक रूप से सभी क्रिया-कलापों में बढ़ोत्तरी के कारण संभव हुआ है। पिछली दो शताब्दियों से हम अर्थशास्त्र के ज्यादातर संकेत पश्चिम के अर्थशास्त्र के इतिहास से लेते हैं। इस समयावधि के दौरान यूरोप में कई प्रकार के प्रभावशाली परिवर्तन हुए जिन्हें हम व्यापक रूप से तकनीकी और संस्थागत श्रेणी में वर्गीकृत कर सकते हैं। पहले के अर्थशास्त्री जो '**विकास अर्थशास्त्र**' (Development Economics) के क्षेत्र में कार्यरत थे, उन्होंने उत्पादन के संघटन तथा श्रम के नियोजन में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान दिया। उन्होंने इसे संरचनात्मक-परिवर्तन कहा। संरचनात्मक परिवर्तन का आशय गैर-कृषि/गैर-प्राथमिक उत्पाद में परिवर्तन के अनुपात के साथ-साथ गैर-कृषि क्षेत्र (पूंजी और भूमि के बंटवारे में भी) में तथा श्रम नियोजन के अनुपात में होने वाला परिवर्तन है। तथापि इस संरचनात्मक परिवर्तन को सभी वस्तुओं के उत्पाद में वृद्धि के साथ जोड़ा जाता है, न कि ह्रास के साथ। उन्होंने आर्थिक विकास को गैर-कृषि क्षेत्र के पक्ष में संरचनात्मक परिवर्तन के साथ आर्थिक संवृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने सकल देशीय उत्पाद के संयोजन एवं श्रम के औद्योगिक वितरण को ही संरचनात्मक परिवर्तन माना है। यह एक तरफ वस्तुओं एवं सेवाओं की बदलती हुई मांग तथा दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन-तकनीक में श्रम की बदलती हुई मांग का द्योतक है।

मुख्यधारा से जुड़े हुए अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मानना है कि पश्चिम की सभी अर्थव्यवस्थाएँ एक ही रास्ते पर चल रही हैं और उन्हें विश्वास है कि अन्य सभी अर्थव्यवस्थाएँ भी उसी रास्ते पर चलेंगी। जब उन्होंने देखा कि ऐसा नहीं हो रहा है तो उन्होंने संस्थागत परिवर्तन को समान रूप से महत्त्वपूर्ण बताया। संस्थागत परिवर्तन का तात्पर्य पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार के साथ-साथ शासन में नयी संस्थाओं का उभरना है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने लोगों की प्रवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता की चर्चा की, जिसका तात्पर्य परंपरागत मान्यता

पद्धति से आधुनिक मान्यता पद्धति की ओर झुकाव से था। इस विचार के साथ आर्थिक विकास को **आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक संवृद्धि से भी कुछ अधिक** के रूप में परिभाषित करते हैं। विकास के तकनीकी आयाम पर भी बल डालने का प्रयास किया गया। इस ओर ध्यान दिया गया कि 'आर्थिक संवृद्धि' के साथ उत्पादकता में बढोत्तरी को भी लिया जाए। अतः **आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता में बढोत्तरी को आर्थिक विकास कहा जा सकता है ।**

आर्थिक इतिहास के वर्णन से विकास का कोई सरोकार नहीं है। यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास लोगों को कम समय में गरीबी एवं निष्क्रियता से मुक्ति दिलाने की सुविचारित प्रक्रिया है। पचास तथा साठ के दशकों में इन दोनों क्षेत्रों के परिदृश्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इससे कई अर्थशास्त्रिओं का मोहभंग हुआ और उन्होंने अपना रोष दिखाना आरंभ किया। ऐसे ही पश्चिमी देश के एक अर्थशास्त्री, जो कि विकास की समस्याओं से संबंध रखते थे, दिल्ली में एक विश्व-सम्मेलन में कहा कि किसी देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं– गरीबी के विषय में क्या हुआ? बेरोजगारी के विषय में क्या हुआ? असमानता के विषय में क्या हुआ? यदि किसी देश में इन तीनों समस्याओं का स्तर ऊपर से नीचे हुआ है तो यह निश्चित ही उस देश के विकास का समय है। यदि इनमें से एक या दो मुख्य समस्याएँ अथवा तीनों बदतर हो रही हैं, तो इसे विकास कहना विचित्र होगा, यदि प्रतिव्यक्ति आय दुगनी भी हो गयी हो तो भी।

यहाँ एक ऐसा संदर्भ है जिसमें एक रण-नीति के तहत अर्थव्यवस्था को विकसित करने का प्रयास किया गया है। यदि इस युक्ति से उत्पादन-क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन में वृद्धि होती है तो वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के संयोजन या श्रम-शक्ति के नियोजन की दृष्टि से अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन, विभिन्न बैंकों के रूप में नई संस्थाओं का प्रादुर्भाव, प्रौद्योगिकी के द्वारा मानव व पशु की जगह विद्युत शक्ति के प्रयोग आदि के द्वारा भी यदि कोई अर्धविकसित देश अपनी मूल समस्याओं का समाधान नहीं कर सके तो इन प्रयासों और नीतियों का कोई अर्थ नहीं है।

अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाएं (Underdeveloped Economies)

विकास-अर्थशास्त्र के साहित्य में गरीब देशों का वर्णन कई प्रकार से किया गया है, जैसे पिछड़े देश, अर्धविकसित देश, विकासशील देश, निम्न-आय वाले देश तथा तीसरे विश्व के देश। इन भिन्न-भिन्न शब्दों की उत्पत्ति ही किसी अन्य शब्द पर आपत्ति के कारण हुई। यदि कोई हमारी अर्थव्यवस्था को पिछड़ी अर्थव्यवस्था कहे तो यह हमें अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था शब्द का प्रयोग प्रायः किसी राष्ट्र या देश के स्थान पर ही किया जाता है, क्योंकि हम एक ही प्राचीन सभ्यता के अंग हैं।

भारत के एक प्रमुख अर्थशास्त्री जगदीश भगवती ने कहा था कि शब्दों का चुनाव ज्यादातर श्रोताओं की अति-संवेदनशीलता तथा विश्लेषक की समझदारी पर निर्भर करता है।

तीसरे विश्व में वे देश शामिल हैं जो न तो पूंजीवादी समूह में हैं, न समाजवादी समूह में और न ही निर्गुट-आंदोलन के सदस्य हैं। कुछ ने इन न्यूनतम विकसित देशों को, गैस-तेल निर्यातक विकासशील देशों, पेट्रोलियम-धनी ओपेक देशों आदि के रूप में वर्गीकृत किया है। ओपेक (OPEC) का अर्थ है– पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन।

चौथे विश्व शब्द का प्रयोग गरीब अर्धविकसित देश तथा न्यूनतम विकसित देशों के लिए किया जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि विकास लोगों के कल्याण से संबंधित है। बहुत पहले यह सुझाव दिया गया था कि लोगों का कल्याण कुल उपलब्धता (size of cake) तथा इसके वितरण पर निर्भर करता है। यदि कोई नौकरी करता है तो उसे मजदूरी पाने का अधिकार है। यदि कोई नियोजित है तो उसे पर्याप्त मजदूरी मिलनी चाहिए अथवा यदि कोई स्व-नियोजित (self-employed) है तो अपने उत्पादन करने की पूरी कीमत मिलनी चाहिए। सामूहिक गरीबी एक विशेष समस्या है जिसे हमने औपनिवेशिक शासन से जोड़ा था तथा इसके निवारण के लिए स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। यदि वही समस्या बड़े पैमाने पर बनी रहे तो यह हमारे लिए चिंता का विषय है। संक्षेप में, यह सुझाव है कि आय का पुनर्वितरण तुलनात्मक रूप से गरीबों के पक्ष में हो। इसे ध्यान में रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को इस प्रकार परिभाषित किया — आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ संसाधनों का वितरण उनके पक्ष में हो जो अपेक्षाकृत गरीब हैं। इस संकल्पना में ऐसा विश्वास किया जाता है कि असमानता में कमी से गरीबी में कमी आएगी तथा बेरोजगारी में भी कमी होगी।

सतत विकास (Sustainable Development)

पिछले कुछ वर्षों में एक महत्त्वपूर्ण विषय उठाया गया। विषय यह था क्या विकास का स्तर, किसी विकासशील देश में भी जहाँ यह पहले ही काफी नीचे होता है, सतत (sustainable) है? विकसित देशों में विकास की सततता (sustainability of development) के संबंध में मुख्य चिंता का कारण उनकी खर्चीली उपभोग पद्धति है तथा कई विकासशील देशों में इस प्रकार की चिंता का कारण अधिक और बढ़ती हुई जनसंख्या है।

इस संदर्भ में दो तथ्य हैं जिन पर विचार किया गया। एक तो उत्पादन तकनीक है जिसमें अ-नवीनीकरण योग्य (Non-renewable) प्राकृतिक संसाधनों जैसे जीवाश्म् ईंधन (fossil fuel), कोयला, गैस व पेट्रोलियम तथा कुछ नवीनीकरण योग्य (renewable) प्राकृतिक संसाधनों (जैसे जंगल, पशु एवं पानी) का इस सीमा तक प्रयोग किया जाता है कि इनका पुनरुत्पादन कठिन है।

दूसरा, वर्तमान उत्पादन तकनीक (अपशिष्टों का निपटान करने की प्रथा सहित) जो कचरे, कूड़े, धुएँ तथा अन्य जहरीली गैसों से वातावरण तथा जल-स्रोतों (नदी, तालाब आदि) को प्रदूषित करती है। जितनी अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है उतना ही अधिक प्रदूषण होता है तथा उतने ही अ-नवीनीकरण योग्य प्राकृतिक संसाधन प्रयुक्त होते हैं। प्रकृति की कुछ स्वांगीकारी क्षमताएँ होती हैं। यदि प्रदूषण का स्तर अत्यधिक ऊंचा है तो प्रकृति इसे स्वांगीकार नहीं कर पाएगी। आपको स्वच्छ हवा एवं स्वच्छ पानी सुलभ नहीं होगा। हमारे आस-पास पर्याप्त पेड़-पौधे नहीं होंगे, जो वातावरण को स्वच्छ रख सकें। परिणाम वर्तमान पीढ़ी को भुगतना पड़ेगा।

यदि अ-नवीनीकरण योग्य प्राकृतिक संसाधान तेजी से प्रयुक्त होते हैं तो भावी पीढ़ी के प्रयोग के लिए पर्याप्त स्टॉक नहीं बच पाएगा। तात्पर्य है कि यदि हम अपनी अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि इसी प्रकार करते रहे, जिस प्रकार कर रहे हैं, तो एक ऐसी स्थिति आएगी जहाँ विकास के स्तर को और बढ़ाना असंभव हो जाएगा। सतत विकास के लिए संसाधनों के स्टॉक (पर्यावरण संसाधन तथा समाप्त हो जाने वाले प्राकृतिक संसाधन सहित) को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। वर्ष 1972 में एक अध्ययन

में ऐसा बताया गया था कि यदि वर्तमान वृद्धि की प्रवृत्ति जिसमें विश्व जनसंख्या, औद्योगीकरण, प्रदूषण, खाद्यान्न उत्पादन, संसाधनों की खपत आदि में वृद्धि की वर्तमान प्रक्रिया चलती रहे, तो इस भूमंडल पर अगले 100 वर्षों में वृद्धि अपनी सीमा पर पहुँच जाएगी।

यहाँ प्रौद्योगिकी के विकास पर कम विश्वास रखा गया है जो भविष्य में कुशलता के माध्यम से उत्पादकता बढ़ा सकता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जब कोई उत्खनन नहीं होगा तो कोई उद्योग भी नहीं होगा। अतः सावधान रहना ही बुद्धिमानी है। इससे यह संदेश मिलता है कि कुछ अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि के तरीके में परिवर्तन आवश्यक है और कुछ अर्थव्यवस्थाओं में प्राप्त किए गए स्तर को बनाए रखना, न कि इसे और अधिक बढ़ाना।

कुछ विश्लेषक पर्यावरण को अलग से नहीं देखते क्योंकि उनके अनुसार यह राष्ट्रीय सीमाओं से परे है। कुछ स्थानों पर ग्रीन-हाऊस (green house) गैस की उत्पत्ति के बावजूद, विश्व में तापमान बढ़ता ही जाएगा। यदि ओजोन परत खत्म होगी तो इसका प्रभाव पूरी मानवता को भुगतना पड़ेगा। पर्यावरण के अवक्रमण को ध्यान में रखकर एक विश्व आयोग की स्थापना हुई जिसने 1987 में **हमारा समान भविष्य** (Our Common Future) नामक शीर्षक से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपार्ट में सतत विकास की इस प्रकार परिभाषा दी गई– सतत विकास वह स्तर है जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं के साथ समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यताओं को ध्यान में रखे (उन्हें पूरा करे) । हम साधारणतया विकास को एक प्रक्रिया मानते हैं, न कि स्तर। अतः सतत विकास की परिभाषा को संशोधित कर इसे वर्तमान पीढ़ी द्वारा अपनाया गया विकास का वह पथ मान सकते हैं जिसमें भावी पीढ़ी के लिए उपलब्ध अवसरों से कोई समझौता नहीं करना पड़े। यह तय करना बहुत कठिन होगा कि कोई पथ सतत है या अनोखा यह हमारे उपभोग के तरीके, प्रौद्योगिकी एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने की दिशा में सावधान करता है।

जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life)

पिछले अनुच्छेद 'सतत विकास' में जीवन की गुणवत्ता के बारे में थोड़ी चर्चा हो चुकी है। यदि स्वच्छ हवा, पानी तथा वातावरण न मिले, तो जीवन की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होगी। यदि आपके आसपास वातावरण गंदा हो, वायु प्रदूषित हो, पानी पीने योग्य तथा स्वच्छ न हो, तो आप एक अच्छा जीवन नहीं जी रहे हैं, चाहे आप बाजार से अपनी इच्छानुसार कितनी ही वस्तुएँ खरीद लें। जीवन की गुणवत्ता की परिभाषा में स्वच्छ पानी, स्वच्छ वायु तथा स्वच्छ वातावरण के साथ-साथ, खाद्यान्नों, वस्त्र, आवास, शिक्षा की सुविधाएँ, स्वास्थ्य-सुविधाएँ, कानूनी सहायता तथा सुरक्षा की उपलब्धता को भी सम्मिलित कर सकते हैं।

इसके अलावा एक और विचारधारा है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस विचारधारा वाले बताते हैं कि उपर्युक्त संकेत हमारी अच्छी स्थिति के निर्धारक हैं। हम जीवन की गुणवत्ता पर विचार इसके संघटकों के माध्यम से भी कर सकते हैं। ऊपर बताई गयी बातें जैसे **अच्छे स्वास्थ्य, कल्याण, चुनाव की स्वतंत्रता तथा मूलभूत आजादी** जो सभी कल्याण के संकेतक हैं।

लिंग, जाति, वर्ग या क्षेत्रीयता के आधार पर कल्याण का वितरण किया जा सकता है। बहुत

विश्लेषक यह मानते हैं कि किसी समाज में पूर्णतया साक्षरता भले ही कम हो परंतु पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता-दरों में समानता उस स्थिति से अच्छी है जहाँ पर पूर्णतया साक्षरता तो हो, परंतु पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता-दरों में बहुत अधिक असमानता हो।

कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि किसी समाज में कुछ अधिकार दिए गए हैं जो दूसरे समाज में नहीं दिए गए हैं। हालाँकि ये अधिकार आर्थिक वर्ग में नहीं आते फिर भी इन्हें कल्याणकारी संकेतकों की सूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह तर्क सत्य है क्योंकि हम जीवन को आर्थिक एवं गैर-आर्थिक दृष्टि से विभाजित नहीं कर सकते हैं। हम सभी लोग लंबी अवधि तक जेल में रहना पसंद नहीं करेंगे, चाहे वहाँ पर उपलब्ध भोजन, वस्त्र, आश्रय, स्वास्थ्य-सुविधाएँ बाहर मिलने वाली सुविधाओं से कितनी भी अच्छी क्यों न हों। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि **राजनीतिक अधिकार तथा नागरिक अधिकार या इन अधिकारों को दर्शाने वाले अन्य सूचकों को जीवन की गुणवत्ता में सम्मिलित किया जाना चाहिए।**

मानवाधिकार की बढ़ती हुई चर्चा को ध्यान में रखते हुए इन कल्याणकारी संकेतों को सम्मिलित करना अच्छा रहेगा। समाज के विकास का उद्देश्य इनके सदस्यों की खुशहाली तथा कल्याण के स्तर को प्रयास पूर्वक ऊपर उठाना है। 'जीवन की गुणवत्ता' 'जीवन के स्तर' की अवधारणा को परिपुष्ट बनाती है, जिसे सामान्यतः कीमती कपड़ों, आरामदायक गाड़ियों तथा आलीशान महलों आदि सभी जो अधिक आय से प्राप्त हो सकते हैं, के रूप में जाना जाता है। किंतु जीवन की गुणवत्ता का आदर्श कुछ ऐसे आयामों को भी जोड़ता है जो मौद्रिक मूल्य द्वारा निर्धारित नहीं हो सकते।

अभ्यास

1. आर्थिक संवृद्धि के आशय को समझाइए। क्या यह लघु काल में कुछ वर्षों से संबंध रखती है?
2. आप आर्थिक संवृद्धि की दो विचारधाराओं के भेद को कैसे समझाएँगे? आप वास्तविक संवृद्धि तथा संभावित संवृद्धि में कैसे अंतर करेंगे?
3. हम साधारण तथा आर्थिक संवृद्धि को इनमें से किसके द्वारा मापते हैं — जनसंख्या में वृद्धि द्वारा या साधारण कीमतों पर सकल देशीय उत्पाद द्वारा या उपभोग व्यय द्वारा या देश के निर्यात (लघुकाल या दीर्घकाल में) द्वारा ।
4. आर्थिक विकास की विभिन्न परिभाषाओं के मूलभूत विचारों के बारे में लिखिए। क्या विकास के लिए वृद्धि होना एक आवश्यक शर्त है?
5. जहाँ आर्थिक विकास की अवधारणा 'संरचनात्मक परिवर्तन के साथ वृद्धि' वर्णनात्मक है, वहीं 'पुनर्वितरण के साथ वृद्धि' है। क्या आप इससे सहमत हैं? समझाइए?
6. आप विकास में संस्थागत तथा प्रौद्योगिक कारकों को कितना महत्त्व देते हैं?

7. सतत विकास से आपका क्या तात्पर्य है? क्या यह वर्तमान पीढ़ी को प्रभावित करने वाली प्रदूषण की समस्या है अथवा भावी पीढ़ी को प्रभावित करने वाली संसाधनों की समाप्ति की?
8. जीवन की गुणवत्ता के आवश्यक संघटक क्या हैं? यदि जीवन के स्तर को वस्तुओं के उपभोग से मापा जाए, तो आप जीवन की गुणवत्ता में वस्तुओं के उपभोग से कैसे अंतर करेंगे?
9. निम्नलिखित का संयोग करें —

अ. आर्थिक विकास	क. सकल देशीय उत्पाद
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. स्वास्थ्य
स. सतत विकास	ग. पर्यावरण
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. संरचनात्मक परिवर्तन

10. निम्नलिखित का संयोग कीजिए —

अ. आर्थिक विकास	क. दीर्घकाल
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. पुनर्वितरण
स. सतत विकास	ग. भावी पीढ़ी
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. संरचनात्मक परिवर्तन

11. निम्नलिखित का संयोग कीजिए —

अ. आर्थिक विकास	क. उत्पादकता
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. सकल देशीय उत्पाद में वृद्धि
स. सतत विकास	ग. मूलभूत स्वतंत्रता
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. अ-नवीनीकरण योग्य संसाधन

12. इस अध्याय में दर्शाई गयी चारों अवधारणाओं के विकास का वर्णन कीजिए।

गतिविधि 1

एक सारणी बनाकर प्रचलित मूल्यों तथा स्थायी मूल्यों पर कारक लागत पर सकल देशीय उत्पाद (GDP_{FC}) की एक शृंखला बनाएँ। वार्षिक वृद्धि दर का गणन करें तथा प्रति दशक औसत वृद्धि दर का भी परिकलन करें।

गतिविधि 2

उन वस्तुओं, स्थानों, क्रिया-कलापों तथा संस्थाओं का वर्णन करें जो आर्थिक नहीं हों।

अध्याय 2

विकास के संकेतक

परिचय

आपको याद होगा कि हमने आर्थिक विकास को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित तो किया था लेकिन इसे स्तर के रूप में भी बताया था। इस उप-इकाई में हम अपना ध्यान किसी एक वर्ष में निश्चित समय-बिंदु पर अर्जित विकास के स्तर पर केंद्रित करेंगे। वस्तुतः इस संकल्पना के अनुसार, विकास के दो स्तरों या दो समय-बिंदुओं पर विकास के स्तरों में मात्रात्मक परिवर्तन ही संवृद्धि है। वृद्धि मूलतः अंतःकालिक तुलना है। दो अर्थव्यवस्थाओं में तुलना करने के लिए, जैसा हमें अक्सर करना पड़ता है, ऐसे शब्द नहीं है। फिर भी तुलना प्रायः की जाती है।

अधिकतर लोग इस बात से सहमत होंगे कि विकास एक प्रक्रिया है, जो बहु-आयामी है। जब किसी प्रक्रिया को बहु-आयामी के रूप में संकल्पित करते हैं तो इसकी विशेषताओं को किसी सूचकांक के द्वारा दर्शाना बहुत कठिन हो जाता है। फिर भी स्तर को मापने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। हम विकास के स्तर को मापने के लिए चार विकल्पों की चर्चा करेंगे – प्रतिव्यक्ति आय, जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचकांक, मानव-विकास सूचकांक तथा जीवन की गुणवत्ता का सूचकांक।

प्रतिव्यक्ति आय

सकल घरेलू उत्पाद का मापन एक लेखा वर्ष में अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित उत्पाद के स्तर के द्वारा किया जाता है। किंतु वस्तुओं पर लोगों का नियंत्रण सकल घरेलू उत्पाद से थोड़ा भिन्न है। हमारे देश के कुछ नागरिक दूसरे देशों में कार्यरत हैं। हमारी संपत्ति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के बाहर भी हो सकती है। इस कारण हम देश के बाहर भी मजदूरी आय अथवा संपत्ति आय अर्जित करते हैं। इसी प्रकार विदेशी लोग हमारे देश में संपत्ति रखते हैं तथा यहाँ कार्य करते हैं। इन आयों को समायोजन करके हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद की जानकारी करते हैं। बड़े देशों तथा ऐसे देश जो दूसरे देशों के उत्पादन के कारकों से संबंध रखते हैं, उनकी सकल घरेलू उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद नगण्य नहीं हैं। किंतु कुछ अर्थव्यवस्थाएँ ऐसी हैं जहाँ सकल घरेलू उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में बहुत भिन्नता है। हमारी स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद से सकल राष्ट्रीय उत्पाद थोड़ा कम है। यह ध्यान देने योग्य है कि देश के लोगों का (व्यक्तिगत तथा सामूहिक) अधिकार सकल राष्ट्रीय उत्पाद बेहतर ढ़ंग से प्रस्तुत करती हैं, जबकि सकल घरेलू उत्पाद वास्तव में देश की आर्थिक सीमाओं के अंतर्गत क्रिया-कलापों द्वारा किए गए उत्पादन को दर्शाती है।

हमें उत्पादन की प्रक्रिया में स्थायी पूँजी के उपभोग का लेखा भी रखना चाहिए। हम यह निश्चय कर लें कि वर्षभर में स्थायी पूँजी अक्षुण्ण रखी गई है अन्यथा एक दिन हम पूरी स्थायी पूँजी को समाप्त कर देंगे इसलिए हमें उत्पादन की प्रक्रिया में से पूँजी का उतना हिस्सा घटा देना चाहिए जितने का उपभोग (हमारे अनुसार) किया गया। तब हमें निवल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होगा। निवल राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय भी कहा जाता है। हम निवल राष्ट्रीय उत्पाद के विशेष रूप का प्रयोग करेंगे, जिसे हम कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) कहेंगे।

अब यदि हम दो समय बिंदुओं अथवा दो अर्थव्यवस्थाओं में लोगों के कल्याण की तुलना करना चाहते हैं तो हमें जनसंख्या का आकार मालूम करना आवश्यक होगा। लोगों के, जिनके लिए विकास करना है, कल्याण की दृष्टि से ऐसा सुझाया गया है कि कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) को जनसंख्या के आकार से भाग देना चाहिए। कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या से भाग देने पर जो प्राप्त होता है, उसे प्रतिव्यक्ति आय कहते हैं।

विकास के स्तर, वर्ष 2001 में जब देश की जनसंख्या 100 करोड़ थी..तथा वर्ष 1961 में जब केवल 43 करोड़ थी, तुलना करने में सहायक है। अंतरराष्ट्रीय राष्ट्रीय आय की तुलना करना अर्थपूर्ण होगा यदि उन देशों की राष्ट्रीय आय को उनकी जनसंख्या से भाग दें। यदि ऐसा न करें तो कनाडा जैसा धनी देश भारत से भी गरीब होगा, क्योंकि भारत की जनसंख्या कनाडा से तीस गुनी ज्यादा है। ऐसा विभाजन प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए भी जरूरी है। उदाहरण के लिए, पिछले 50 वर्षों में कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) में वृद्धि आठ गुने से कुछ ज्यादा हुई किंतु उसी समयावधि में जनसंख्या की वृद्धि लगभग तीन गुनी हुई। इसलिए प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि तीन गुने से कम हुई। हमारे रहन-सहन के स्तर के आठ घटक की तुलना में तीन घटक ज्यादा अच्छी होने की आशा है।

प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि

आप प्रायः पढ़ते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि (a-b) प्रतिशत से हुई है, जबकि आय (अंश) में a प्रतिशत से वृद्धि होती है तथा जनसंख्या (हर) में b प्रतिशत से । यह केवल तब सही है जब a तथा b छोटे हों।

हम देख सकते हैं कि $(1 + 0.05)/(1 + 0.03) = 0.05 - 0.03 = 0.02$ किंतु $(1 + 0.5)/(1 + 0.3) \neq 0.2$, परंतु 0.154 केवल तथा $(1 + 5)/(1 + 3) = 1.5$ न कि 2 इसका कारण यह है कि $(1+a)/(1+b) \simeq (a-b)$, केवल तभी जब a तथा b छोटे अंक हों।

इस दृष्टि के अनुसार प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। संक्षेप में, इससे हम भारत के विकास की तुलना किसी दिए गए वर्ष के लिए अमेरिका अथवा पाकिस्तान अथवा अपने स्वयं के विकास से कर सकते हैं। यह भी जानना चाहिए कि केवल यही एक संकेतक है जिससे हम विकसित/अर्धविकसित देशों या उच्च/मध्यम/निम्न आय के देशों को वर्गीकृत कर सकते हैं। अंतराष्ट्रीय तुलना के लिए विभिन्न देशों की प्रति-व्यक्ति आय को समान मुद्रा (common currency) में बदलना होगा।

फिर भी बहुधा यह देखा गया है कि इसका क्षेत्र बहुत सीमित है। ज्यादा सीमितताएँ अंश (numerator) के कारण होती हैं चाहे यह GDP या GNP अथवा NNP हो। ये संकल्पनाएँ घरेलू

आर्थिक गतिविधियों पर लागू नहीं होती, क्योंकि ये बाजार से संबंधित नहीं हैं। महिलाओं के घरेलू कामों की उपेक्षा की जाती है जबकि लोगों के कल्याण की दृष्टि से यह समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं बल्कि घर से बाहर की हुई क्रियाओं का भी पूर्णरूप से लेखा नहीं किया जाता है। चूँकि, उत्पादों का मूल्यांकन बाजार कीमतों पर किया जाता है, अतः उन गतिविधियों जिनके लिए बाजार ही उपलब्ध नहीं है, उनका पूरी तरह लेखा नहीं हो सकता है। यह भी कहा गया कि आर्थिक कल्याण भी, जिसका माप यह कर सकता है, ऐसा पूर्ण आर्थिक-कल्याण नहीं है जिसकी कामना लोग करते हैं।

प्रतिव्यक्ति आय की माप की कमियों को दूर करने के लिए निम्नलिखित तीन सुझाव दिए गए हैं :

1. राष्ट्रीय आय को प्रत्येक व्यक्ति पर वितरण करना एक महत्त्वपूर्ण आयाम है जिसकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय तथा इसका वितरण, दोनों पर एक साथ विचार करना चाहिए। ऐसा तर्क दिया गया है कि समाज का कल्याण इस बात पर निर्भर करता है कि कोष (केक) का आकार कितना है तथा इसका किस प्रकार वितरण होता है। हाल में, दोनों आयामों को सम्मिलित कर एक संयुक्त सूचक का भी निर्माण किया गया है।
2. समय के साथ लोग अधिक आराम का आनंद लेने लगे हैं। कई लोगों का मानना है कि सभी गतिविधियों का यही अंतिम उद्देश्य है। इसीलिए यह तर्क दिया गया कि कल्याण को अच्छी तरह मापने के लिए इसे राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाना चाहिए।
3. एक सुझाव यह भी दिया गया था कि आर्थिक क्रिया-कलापों के कारण कई प्रकार के प्रदूषण होते हैं जिनके हानिकारक प्रभाव होते है, अतः सामाजिक लागतों को भी इसमें से घटाया जाए।

कल्याण का माप : असमानता-समायोजित प्रति-व्यक्ति आय

अमर्त्य सेन एक भारतीय अर्थशास्त्री है जिन्होंने 1998 में अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार अर्जित किया। उन्होंने कल्याण के माप बनाने के लिए आय के वितरण तथा स्तर के आयामों को संयुक्त किया। गणितीय विधि से,

$$W = \mu(I - G)$$

जहाँ W कल्याण है, μ प्रतिव्यक्ति आय, तथा G असमानता का नाप है। W बढ़ेगा जब μ बढ़ेगा तथा G घटेगा। आपको विदित होगा कि μ जनसंख्या से विभाजित NNP है, तो यह स्पष्ट है कि NNP में जनसंख्या की तुलना में ऊँची दर से वृद्धि होनी चाहिए। जितना ज्यादा अंतराल (gap) जनसंख्या की तुलना में NNP की वृद्धि दर में होगा, उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

वैकल्पिक मापों का विकास

ये संशोधन कई लोगों को संतुष्ट नहीं कर पाए और राष्ट्रीय आय या प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग, कल्याण के संकेतकों के रूप में, लंबे समय से हो रहा है, परंतु कुछ सीमितताओं सहित।

फिर भी पिछले कुछ दशकों में आर्थिक कल्याण और सामाजिक विकास के वैकल्पिक संकेतकों को विकसित करने के कुछ प्रयास किए गए हैं। सामाजिक विकास के अच्छे संकेतकों की खोज जारी है।

हम प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि श्रीलंका में लंबी जीवन प्रत्याशा, निम्न मृत्युदर तथा साक्षरता का उच्च स्तर है। श्रीलंका का स्तर विकसित देशों

से तुलना योग्य है। हमारे अपने केरल राज्य ने साक्षरता तथा जनांकिकी के विषयों में चमत्कार किया है। तमिलनाडु भी इस दिशा में प्रगति कर रहा है । इसलिए शोधकर्त्ताओं के लिए यह स्वाभाविक है कि ऐसे सूचकांकों को विकसित करें जो इन सामाजिक आयामों का अभिग्रहण कर सके।

संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.) की एक संस्था है जिसको यूनाइटेड नेशनस् रिसर्च इन्स्टीट्यूट फॉर सोशल डवलपमेंट (UNRISD) कहते हैं। इस संस्था में लोगों ने सामाजिक, राजनीतिक, तथा आर्थिक सूचकांको को लेकर, जो औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण को प्रभावित करते हैं, विकास के संघटकों को विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने उन सभी सूचकांकों को लिया, जिसमें उनके अनुसार, विकास के किसी भी आयाम का आभास होता है। एक स्थिति में उन्होंने लगभग 73 सूचकांकों की सूची बनाई परंतु अंत में केवल 16 सूचकांकों का चयन किया क्योंकि ऐसा पाया गया था कि बहुत सारे सूचकांकों का आभास दूसरे सूचकांकों में मिलता है।

✓यू.एन.आर.आई.एस.डी. (UNRISD) के सामाजिक आर्थिक विकास के मूलभूत संकेतक
(Core indicators of socio-economic development)

1. जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा
2. 20,000 व इससे ऊपर जनसंख्या वाले इलाकों में जनसंख्या का प्रतिशत
3. प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन पशुओं के प्रोटीन का उपभोग
4. प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर संयुक्त नामांकन
5. व्यावसायिक (vocational) नामांकन का अनुपात
6. एक कमरे में औसतन लोगों की संख्या
7. प्रति 1000 जनसंख्या पर समाचार-पत्रों का वितरण
8. बिजली, गैस तथा पानी के संदर्भ में आर्थिक सक्रिय जनसंख्या का प्रतिशत
9. प्रति कृषि मजदूर द्वारा कृषि उत्पादन का प्रतिशत
10. कृषि में पुरुष कृषि मजदूर का प्रतिशत
11. प्रतिव्यक्ति विद्युत/बिजली की खपत (KWH)
12. प्रतिव्यक्ति इस्पात का उपभोग
13. ऊर्जा-उपभोग, प्रतिव्यक्ति एक किलो कोयले के समरूप
14. विनिर्माण से उत्पादित सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत
15. प्रतिव्यक्ति विदेश व्यापार 1960 US डॉलर
16. आर्थिक सक्रिय जनसंख्या में वेतन व मजदूरी पाने वालों का प्रतिशत।

यह जानना उपयोगी होगा कि ऐसे प्रयासों में किन चरों का समावेश हुआ है, यह जानना आवश्यक नहीं कि सूचकांकों के विकसित करने की बारीकियों को समझें। प्रतिव्यक्ति आय, अस्पताल में बिस्तरों की संख्या अथवा एक लाख जनसंख्या पर डाक्टरों की संख्या जैसे चर (variables) सम्मिलित किए गए हैं। नामांकन दर, प्रतिव्यक्ति विद्युत उपभोग या इस्पात उपभोग को भी संकलित किया है। पक्की सड़कों की लंबाई, विद्युतीकृत गांवों की संख्या तथा डाकघरों की सुविधा को भी इनमें स्थान मिला है। इस प्रकार कृषि संगठनों को भी इसमें जगह दी गयी है। ये महत्त्वपूर्ण संकेतक हैं तथा बहुत लोगों ने इन्हें आखिरी संकेतक माना है।

एक प्रश्न उठाया गया कि क्या आगतों (inputs) को विकास का संकेतक माना जा सकता है। जबकि नामांकन दर एक आगत है, साक्षरता दर निर्गत दर्शाती है। इसी प्रकार अस्पताल की सुविधाएँ आगतें हैं तथा जीवन-प्रत्याशा (life expectancy) एक निर्गत है। यदि आपके पास अच्छी सफाई की सुविधा है, तथा स्वास्थ्य भी अच्छा है तो अस्पताल की सुविधा की जरूरत कम होगी। एक प्रकार से आय भी आगत है।

राष्ट्रीय आय के स्थान पर कल्याण के ऐसे मापों से शोधकर्त्ता तथा नीति बनाने वाले खुश नहीं थे क्योंकि सामाजिक संकेतक बनाने का यह तरीका उन्हें उपयुक्त नहीं लगा। तब विकास के संयुक्त सूचक विकसित करने के प्रयास किए गए, जो विकास के उद्देश्यों व लक्ष्यों पर निर्भर हों न कि उन्हें प्राप्त करने के तरीकों पर।

जीवन की गुणवत्ता के सूचक (Quality of Life Indices)

आपको याद होगा कि हमने पिछले अध्याय में जीवन की गुणवत्ता के संघटकों के बारे में बताया था। साधारणतया ये संघटक स्वास्थ्य, स्वतंत्रता, शिक्षा, पर्यावरण इत्यादि, जिनका आप सीधी तरह आनंद लेते हैं, की ओर संकेत करते हैं। इन प्राचलों के अतिरिक्त पिछले कुछ समय में ऐसे सूचकों के निर्माण के प्रयास किए गए, जिन्हें जीवन की गुणवत्ता के सूचकांक कहा जा सकता है। लंबी आयु तथा साक्षरता को बिना वाद-विवाद के परिमापों/प्राचलों के प्रयोग के लिए स्वीकृत किया गया। हम आगे दो लोकप्रिय सूचकों, जैसे, जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचक (PQLI) तथा मानव विकास सूचक (Human Development Index-HDI) के बारे में पढ़ेंगे, जिनका प्रयोग लंबी आयु तथा साक्षरता के मूलभूत संघटकों के रूप में होता है। वास्तव में यह जीवन की गुणवत्ता मापने का प्रयास है तथा हम इसके बारे में अंत में चर्चा करेंगे।

यहाँ यह याद दिलाना महत्त्वपूर्ण होगा कि ये सूचक अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में विकसित किए गए हैं तथा इनका प्रयोग कर उपलब्धि के संख्यात्मक मूल्य के अवरोही क्रम के आधार पर विभिन्न देशों को कोटिबद्ध किया गया है। ये संघटक समाज/समूह के लिए सरल अंकगणितीय औसत हैं।

जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचक (Physical Quality of Life Index)

पिछली शताब्दी के 70 के दशक के अंत में मोरिस डी. मोरिस नाम के अर्थशास्त्री ने बहुत सी यू.एन.समितियों तथा यू.एन.आर.आई.एस.ई.डी. (UNRISED) तथा ओ.ई.सी.डी. (OECD) के विकास-अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनाए गए संकेतकों को स्वीकार किया। उसने देखा कि ज्यादातर संकेतक विकास प्रक्रिया के आगत हैं न कि विकास प्रक्रिया के परिणाम। ये संकेतक ऐसा प्रतिबिंबित करते हैं कि विकास का केवल एक ही पथ है। इससे यह परिलक्षित होता है कि आर्थिक दृष्टि से कम विकसित देश औद्योगिकृत देशों का अविकसित रूपांतर है। यह विचार पूर्वग्राही है तथा यूरोप के पक्ष में है। इसमें अर्धविकसित देशों के बीच विभिन्नताओं तथा विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के सामाजिक संगठनों के अंतर को अनदेखा किया गया। ऐसे प्रयास विकास को एक क्रिया के रूप में मापते हैं न कि प्राप्त लक्ष्य की दृष्टि से। उसने इसीलिए विकास का संयुक्त सूचकांक विकसित करने के लिए मापदण्डों के एक समुच्चय का प्रस्ताव दिया है। इन चयनित संकेतकों द्वारा परिणामों तथा सामाजिक वितरणों के परिणाम प्रतिबिंबित होने चाहिए न कि किसी विशेष समाज (यूरोप-अमेरिका) की मान्यताओं को प्रतिबिंबित करें। संयुक्त सूचक ऐसे होने चाहिए कि उनका निर्माण सरल हो तथा उन्हें समझना आसान हो और वे अंतरराष्ट्रीय तुलना करने में सहायक हों।

संकेतकों का चयन (Choice of Indicators)

डेविड मोरिस ने इसीलिए उन संकेतकों को देखने की कोशिश की जो विकास के प्रयासों का परिणाम हों, न कि किसी विशेष समाज की मान्यताएँ हो क्योंकि इनको विकसित करने के तरीके गैर-बाजार (non-market), गैर-शहरीकरण (non-urban), गैर-औद्योगीकरण (non-industrial) या गैर योजना (non-plan) आधारित हो सकते हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय तुलना में कोई समस्या न हो। सैकड़ों संकेतकों में से केवल तीन संकेतक ऐसे मिले जो उन मापदण्डों को पूरा करते हों तथा अपने आप में सर्वव्यापक हो। ये संकेतक हैं :

1. जीवन-प्रत्याशा (Life Expectancy, LE)
2. शिशु मृत्युदर (Infant Mortality, IM), तथा
3. मौलिक साक्षरता (Basic Literacy, BL)

इन तीनों संकेतकों को विभिन्न तरीकों से संशोधित कर सकते हैं। कोई देश जीवन की ऊँची जीवन-प्रत्याशा की उपलब्धि अच्छी चिकित्सा-सुविधाओं, द्वारा अथवा अच्छी सफाई व्यवस्था द्वारा अथवा अच्छे पोषण द्वारा प्राप्त करे यह वास्तव में महत्त्वपूर्ण नहीं है। कोई देश उच्च साक्षरता औपचारिक तरीकों से या अनौपचारिक तरीकों से प्राप्त करता है यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। किंतु कोई देश साक्षरता के उच्च्व स्तर प्राप्त करने की कोशिश करे यह महत्त्वपूर्ण है। इसको व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, परंतु जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु शिशु-अवस्था में नहीं होनी चाहिए। इस बात को साधारणतया स्वीकारा गया है।

अब एक तकनीकी मुद्दा है। साधारणतया जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा सूचक का प्रयोग हुआ है। शिशु मृत्यु दर का संदर्भ एक वर्ष से पहले मृत्यु होना है। इसीलिए मोरिस ने सुझाव दिया कि जीवन की प्रत्याशा एक वर्ष की आयु पर होनी चाहिए न कि जन्म के समय की हो। यदि एक वर्ष पर जीवन की प्रत्याशा के आंकड़े उपलब्ध न हो तो, इसको एक सूत्र का प्रयोग करके निकाला जा सकता है जो कि जन्म पर जीवन की प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर तथा बच्चों के अनुपात से संबंधित है।

सूचकों का सामान्यीकरण (Normalisation of Indicators)

हम जानते हैं कि जीवन की प्रत्याशा वर्षों में मापी जाती है। शिशु मृत्यु दर प्रति हजार में तथा मौलिक साक्षरता प्रतिशत के रूप में मापी जाती है। इनका प्रायः योग नहीं किया जा सकता। मौलिक साक्षरता प्राकृतिक तौर से न्यूनतम 0 (शून्य) तथा उच्चतम 100 हो सकती है जबकि दूसरे संकेतकों के लिए प्राकृतिक न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य (value) नहीं होते। तुलना करने के उद्देश्य से प्रत्येक स्तर का सामान्यीकरण जरूरी है। मोरिस ने तीन उदाहरणों में से प्रत्येक के लिए सबसे उत्तम (best) तथा बदतर (worst) स्तर चुना। यदि संकेतक (जीवन-प्रत्याशा तथा मौलिक साक्षरता) सकारात्मक हैं तो सबसे अच्छे को उच्चतम तथा बदतर को न्यूनतम से दर्शाया गया। किंतु नकारात्मक संकेतकों (जैसे शिशु मृत्यु दर) के लिए सबसे अच्छे को न्यूनतम तथा बदतर को उच्चतम से दर्शाते हैं। सकारात्मक चर के वास्तविक स्तर को सामान्यीकृत संकेतकों में परिवर्तित (convert) करने के लिए वास्तविक मूल्यों में से उनके न्यूनतम मूल्यों को घटाया जाता है तथा शेष को विस्तार (range) (उच्चतम तथा न्यूनतम के बीच) से विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, सकारात्मक संकेतकों के लिए–

$$\text{उपलब्धि स्तर} = \frac{\text{वास्तविक मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}$$

नकारात्मक संकेतक (शिशु मृत्यु दर) के लिए पहले उच्चतम मूल्य में से वास्तविक मूल्य को घटाया जाता है और फिर शेष को विस्तार से विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दों में–

$$\text{उपलब्धि स्तर} = \frac{\text{उच्चतम मूल्य - वास्तविक मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}$$

सूचकांक निर्माण (Index Construction)

ये अब ऐसे तीन संकेतक हैं, जिन्हें हम (i) जीवन-प्रत्याशा संकेतक (LEI), (ii) शिशु मृत्यु दर संकेतक (IMI), तथा (iii) मूलभूत साक्षरता संकेतक (BLI) कह सकते हैं।

इन तीनों संकेतकों का औसत लेकर हम जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचक (PQLF) निकाल सकते हैं :

$$PQLI = (1/3)\ (LEI+IMI+BLI)$$

न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्यों का चयन (Choice of Minimum and Maximum Value)

जीवन की प्रत्याशा तथा शिशु मृत्यु दर संकेतकों में कोई प्राकृतिक न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य नहीं होते हैं, बल्कि तर्कसंगत (reasonable) मूल्यों का चयन करना पड़ता है। बहुत सोच विचार करने पर मोरिस ने निम्नलिखित मूल्यों के समुच्चय का चयन किया। सारणी 2.1 देखें। देशों के हाल ही के अनुभवों के आधार पर इनमें संशोधन की जरूरत हो सकती है। उदाहरण के लिए अधिकतम जीवन-प्रत्याशा अब बढ़ाकर 85 वर्ष की जा सकती है।

सारणी 2.1

संघटक संकेतकों के उच्चतम तथा न्यूनतम मूल्य

आयाम	*उच्चतम*	*न्यूनतम*	*विस्तार*
मौलिक साक्षरता दर (BLR)	100	0	100
शिशु मृत्यु दर (IMR)	229	9	220
जीवन-प्रत्याशा, एक वर्ष पर (LEI)	77	38	39

मूल्यों के सूचकांकों में परिवर्तन रेखीय (linear) है। देश के वास्तविक आँकड़ों को नीचे दिए गए सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर घटक सूचकांक तथा जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचकांक प्राप्त किए जा सकते हैं। सूत्र (व्यंजक) नीचे दिए गए हैं :

$$LEI = \frac{\text{वास्तविक जीवन-प्रत्याशा, 1 वर्ष पर - 38}}{39}$$

$$IMI = \frac{\text{229 - वास्तविक मृत्यु दर}}{220}$$

$$BLI = \frac{\text{वास्तविक साक्षरता दर - 0}}{100}$$

मान लें कि भारत की एक वर्ष पर जीवन-प्रत्याशा 70 वर्ष है, शिशु मृत्यु दर प्रति एक हजार जीवित जन्म पर 70 है तथा कुल वयस्क जनसंख्या में 55 प्रतिशत वयस्क साक्षर हैं। प्रत्येक चरण की गणना करने पर आप पाएंगे कि LEI = 0.82, IMI = 0.72 तथा BLI = 0.55 हैं। इसीलिए PQLI लगभग 0.70 होगा।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

PQLI के विकसित होने के 10 वर्षों में एक-

दूसरा सूचकांक सामने आया। 1990 से लगातार संयुक्त राष्ट्र की एक संस्था (यू.एन.डी.पी.) प्रतिवर्ष एक मानव विकास रिपोर्ट प्रकाशित कर रही है। इस रिपोर्ट में मानव विकास के विभिन्न आयामों पर चर्चा के अलावा अतिरिक्त विभिन्न देशों को उनके मानव विकास सूचकांक के स्तर के अनुसार कोटिबद्ध किया है।

मानव विकास सूचक का विवरण करने से पहले यह अच्छा होगा कि हम सकल घरेलू उत्पाद/सकल राष्ट्रीय उत्पाद को एक नवीन दृष्टिकोण से देखें। ऐसा बताया गया है कि ये माप क्रियाओं के माप हैं, अतः वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन पर केंद्रित हैं। ऐसा सुझाव दिया गया है कि हमें लोगों की क्षमताओं तथा क्षमताओं के मापों के सुधार पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करना चाहिए। दीर्घ आयु तथा स्वस्थ जीवन क्षमताएँ हैं और इसी प्रकार पढ़ने लिखने की योग्यता भी क्षमता है। बढ़ती हुई योग्यता के साथ विकल्प का विस्तार होता है और विकल्पों का विस्तार ही विकास है। इसका एक और आयाम है कि इन योग्यताओं का संचय नहीं हो सकता है। एक प्रकार से यह PQLI के नजदीक है, अंतर केवल इतना है कि अब सैद्धांतिक पक्ष बहुत मजबूत है। किंतु इसी समय एक भौतिक अस्तित्व का प्रवेश सूचकांक निर्माण में होगा तथा अंतरराष्ट्रीय तुलना में बाधा उत्पन्न करेगा।

सूचकांक (The Index)

मानव विकास सूचकांक मोटेतौर पर लंबी आयु, ज्ञान तथा संसाधनों की प्राप्ति, इन सामाजिक समूहों का औसत है। ठोस रूप में इसको निम्नलिखित का सम-भारित (equi-weighted) औसत कहेंगें– (i) जीवन प्रत्याशा का सूचकांक (LEI), (ii) शिक्षा प्राप्ति का सूचकांक (EAI), तथा (iii) जीवन स्तर का सूचकांक (SLI)।

जहाँ पर उप-सूचकों की गणना PQLI वाली पुरानी विधि से भी करते हैं। दूसरे शब्दों में–

HDI=(1/3)(LRI+EAI+SLI)

संघटक (Components)

यहाँ पर जन्म पर जीवन-प्रत्याशा को ही जीवन-प्रत्याशा माना गया है न कि एक वर्ष की आयु पर, क्योंकि शिशु मृत्यु दर का उस सूचक में एक अलग संकेतक के रूप में प्रवेश नहीं हुआ है। शिक्षा उपलब्धि साक्षरता से अधिक (plus) है। शुरू में यह केवल प्रौढ़ शिक्षा थी। बाद में यह प्रौढ़ शिक्षा दर तथा विद्यालय जाने के औसत वर्षों (mean years of schooling) का मिश्रण हो गयी। उच्च विकसित देशों में प्रौढ़ साक्षरता पूर्ण हो गयी, किंतु शिक्षा का स्तर अभी भी बढ़ रहा है। इसको विद्यालय जाने के औसत वर्ष अथवा नामांकन अनुपात से दर्शा सकते हैं। अब विद्यालय जाने के औसत वर्ष को संयुक्त नामांकन अनुपात से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। प्रौढ़ साक्षरता दर (ALR) को 2/3 भार दिया गया है, जबकि संयुक्त नामांकन अनुपात (CER) को 1/3 भार। इसलिए, शिक्षा-उपलब्धि सूचक को निम्न रूप में दर्शा सकते हैं—

$$EAI = (2/3)\ ALR + (1/3)\ CER$$

जीवन स्तर को यहाँ प्रतिव्यक्ति आय के रूपांतरण से दर्शाया गया है। यह तर्क दिया गया है कि दीर्घ आयु तथा ज्ञान के अलावा अन्य कई वस्तुएँ हैं, जिन्हें प्राप्त करने की इच्छा होती है। इन सब की गणना करना मुश्किल है। अच्छा जीवन जीने के लिए संसाधनों की आवश्यकता

होती है। प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय संसाधनों का एक सीधा-साधा नाप है। क्योंकि यह अभ्यास मूलरूप से अंतरराष्ट्रीय तुलना की दृष्टि से है, इसलिए विभिन्न राष्ट्रों की प्रतिव्यक्ति आय को किसी समान हर (denominator) में लाना जरूरी है। प्रतिव्यक्ति आय का पहले परचेजिंग पावर पेरीटी डॉलर (PPP$) में बदलना जरूरी है।

दूसरा चरण इस बात से संबंध रखता है कि डालर की आय का प्रतिफल पूरी आय के विस्तार के समान नहीं है। प्रतिफल की बढ़ोत्तरी आयु के बढ़ने से गिरनी चाहिए तथा अंत में शून्य हो जानी चाहिए। इस विचार को यू.एन.डी.पी. (UNDP) ने विभिन्न तरीकों से समझाने का प्रयास किया। वर्तमान में, जीवन स्तर प्रतिव्यक्ति (PPP$) की आय को लॉग (log) के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में–

जीवन स्तर = log (PCI in PPP$)

आप अच्छी तरह जानते हैं कि 10, 100, 1000 तथा 10,000 का लघुगुणक 10 के आधार पर क्रमशः 1, 2, 3, तथा 4 होगा। अतः (जैसे-जैसे आय बढ़ेगी) आय में बढ़ोत्तरी से प्रतिफल घटेगा । इस विशेषता को कई अन्य तरीकों से निष्पादित कर सकते हैं। यू.एन.डी.पी. ने पहले कई अन्य सूत्रों को आजमाया किंतु साधारण लघुगुणक में परिवर्तन को ही सरल पाया।

सामान्यीकरण (Normalization)

चूँकि हम संकेतकों में केवल सकारात्मक संकेतकों का प्रयोग कर रहे हैं अतः हम संघटक सूचकांक (component index) का गणन करने के लिए केवल एक सूत्र का ही प्रयोग कर सकते हैं—

$$CI = \frac{\text{संघटक का वास्तविक मूल्य - संघटक का न्यूनतम मूल्य}}{\text{संघटक का उच्चतम मूल्य - संघटक का न्यूनतम मूल्य}}$$

यहाँ पर CI, LEI, ALRI, CERI तथा SLI है। यह उल्लेखनीय है कि ALRI तथा CERI को 100 द्वारा विभाजित करने पर ये क्रमशः ALR तथा CER हैं।

न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य (Minimum and Maximum Value)

कई वर्षों तक वाद-विवाद करने के बाद तथा संघटकों के कई मानक (norms) मूल्य लेने के बाद यू.एन.डी.पी. ने मानव विकास सूचकांक के संघटकों का न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया है–

सारणी 2.2
संकेतकों के संघटकों का उच्चतम तथा न्यूनतम मूल्य

संघटक	इकाई	उच्चतम	न्यूनतम
जन्म पर जीवन-प्रत्याशा (LEB)	वर्ष	85	25
प्रौढ़-साक्षरता दर (ALR)	प्रतिशत	0	100
संयुक्त-नामांकन अनुपात (CER)	प्रतिशत	0	100
जीवन स्तर (SL)	PPP$	100	40000
जीवन का स्तर (SL)	PPP$	2	4 + 2
	लघुगुणक		लघुगुणक 2

मानव विकास सूचकांक तथा भारत (HDI and India)

विभिन्न देशों के लिए यू.एन.डी.पी. मानव विकास सूचकांकों का संकलन करती है। इसके लिए विश्वसनीय आँकड़े सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं। इन सूचकांकों को (वार्षिक यू.एन.डी.पी. द्वारा प्रकाशित) मानव विकास रिपोर्ट में प्रकाशित करते हैं।

विभिन्न मानव विकास रिपोर्टों में दिए गए राष्ट्रों में भारत की स्थिति नीचे दी गयी 2.3 सारणी में आंकड़ों के आधार पर दर्शायी गयी है।

सारणी 2.3
भारत का HDI (मानव विकास सूचकांक) का मूल्य तथा विश्व में इसका स्थान

HDR वर्ष	*आंकड़ों का वर्ष*	*मूल्य*	*कोटि (Rank)*	*HDR वर्ष*	*आंकड़ों का वर्ष*	*मूल्य*	*कोटि (Rank)*
1990	1987	0.439	94(130)	1996	1993	0.436	135(174)
1991	1988	0.308	123(160)	1997	1994	0.446	138(175)
1992	1990	0.297	121(160)	1998	1995	0.451	139(175)
1993	1990	0.309	134(173)	1999	1997	0.458	132(174)
1994	1992	0.382	135(173)	2000	1998	0.456	128(174)
1995	1992	0.439	134(174)	2001	1999	0.571	115(162)

स्रोतः *मानक विकास रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1990 से 2001 तक।*

हम यह देख सकते हैं कि आंकड़ों के संकलन में समय लगता है तथा यह भी पता लगता है कि जिन देशों के लिए ये आँकड़े निकाले गए हैं, उनकी संख्या वर्ष-दर-वर्ष बदलती रहती है। सम्मिलित देशों की संख्या के कारण भी कोटि में उतार-चढ़ाव होता है। पिछले दो वर्षों में भारत का स्थान 13 अंकों से सुधर गया है जबकि देशों की संख्या 12 अंकों से कम हो गयी। यह काफी संभव है कि छोड़े गए देशों का स्थान भारत से ऊपर हो। हमें यह भी जानना चाहिए कि भारत का स्थान दो अंकों से सुधर गया है जबकि HDI का मूल्य वास्तव में कम हुआ है। यह विधि संघटकों के बदलने से भी संभव है। इन सभी कमजोरियों के बावजूद 1990 के बाद से भारत के मानव विकास सूचकांकों (HDI) के मूल्य में सुधार हुआ है, जब इसका मूल्य सबसे नीचे दर्ज किया गया था।

भाग्यवश, 2001 में मानव विकास रिपोर्ट (HDR) में विभिन्न देशों तथा विभिन्न समयों में तुलना करने की दृष्टि से एक समान आधार पर समान विधि (methodology) से एच.डी.आई. के मूल्यों की गणना की गई है। गणना 1975 से 5 वर्ष के अंतराल में की गयी है। सारणी 2.4 देखें।

हमें ध्यान देना चाहिए कि 70 के मध्य से मानव विकास सूचकांकों में सुधार हो रहा है। जीवन-प्रत्याशा (जो कुछ हद तक स्वास्थ्य को दर्शाती है), शिक्षा (साक्षरता के साथ) तथा जीवन स्तर (प्रतिव्यक्ति आय के रूप) में सभी दृष्टियों से शायद हमारा सुधार हो रहा है। एच.डी.आई. (HDI) ने इन वर्गों के आधार पर देशों का वर्गीकरण किया है– उच्च मानव विकास वाले देश, मध्यम मानव विकास वाले देश तथा निम्न मानव विकास वाले देश जो क्रमशः निम्नलिखित मूल्यों के आधार

सारणी 2.4
1975 से भारत के मानव विकास संघटक का मूल्य

वर्ष	*1975*	*1980*	*1985*	*1990*	*1995*	*1999*
HDI मूल्य	0.406	0.433	0.472	0.510	0.544	0.571
HDI मूल्य*				0.297	0.439	0.571

* *सारणी 2.3 से*

स्रोतः *मानव विकास रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001।*

पर किए गए हैं– (i) 0.8 मूल्य से ऊपर, (ii) 0.5 मूल्य तथा 0.8 मूल्य के बीच, तथा (iii) 0.5 मूल्य से नीचे। कम से कम 1990 से भारत मध्यम मानव विकास वाला देश है। सारणी 2.4 में देखने से पता चलता है कि भारत वर्ष 2000 तक निम्न मानव विकास वाला देश घोषित किया गया था।

यहाँ यह सूचित करना अनुचित नहीं होगा कि कुछ विद्वानों ने भारत के लिए अंतरराज्यीय तुलना की है। जबकि कुछ राज्य सरकारों ने मानव विकास सूचकांक का राज्य स्तर सरकारों पर अभ्यास किया है। मानव विकास सूचकांक HDI के संकलन की तुलना में इन रिपोर्टों में ज्यादा सूचना मिलती है। अब हमारे योजना आयोग ने भी राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट (मार्च 2002) निकाली (प्रकाशित) है।

जीवन सूचक की गुणवत्ता

कुछ अर्थशास्त्री अभी भी ऐसा महसूस करते हैं कि यद्यपि मानव विकास प्रस्ताव बहुत से आयामों की बात करता है परंतु मानव विकास सूचकांक उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण आयामों को ही सम्मिलित करता है। वे महसूस करते हैं कि राजनीतिक तथा नागरिक आयामों (पर्यावरण को छोड़कर) को सम्मिलित किया जाना चाहिए। जीवन क्रियाशीलता का नाम है तथा क्रियाशीलता में 'होना और करना' दोनों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

ऐसा एक योगदान जीवन की गुणवत्ता मापने में दासगुप्ता तथा वील का है, जिन्होंने छः परिमापों को लिया है तथा उन्हें जीवन-स्तर या कल्याण के संकेतक कहा है। वे परिमाप हैं–

(i) PPP$ में प्रति व्यक्ति आय, (ii) जन्म पर जीवन-प्रत्याशा, (वर्षों में), (iii) शिशु मृत्यु दर, (प्रति हजार जीवित जन्म दर), (iv) प्रौढ साक्षरता-दर, (वयस्क जनसंख्या के प्रतिशत में), (v) सात-बिंदुओं के पैमाने पर राजनीतिक अधिकारों का सूचक, तथा (vi) सात बिंदुओं के पैमाने पर नागरिक अधिकारों का सूचक। हम ध्यान दें कि नागरिक अधिकार व्यक्तिगत या राज्य के हो सकते हैं जबकि राजनीतिक अधिकार केवल नागरिकों के अधिकार हैं जो देश के शासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए हैं। शासन का तात्पर्य है — कौन शासन करेंगे तथा किन कानूनों के अंतर्गत करेगा। जब कि पहले चार को 'सामाजिक-आर्थिक' संकेतक कहा जा सकता है, अंतिम दो को 'राजनीतिक एवं नागरिक' संकेतक कह सकते हैं। इन संकेतकों का विशेष तरीके से समुच्चय (aggregate) किया जाता है। प्रथम, देशों को आरोही क्रम में, बदतर से अच्छे संकेतकों के आधार पर क्रमबद्ध करते हैं। दूसरा, देश के विभिन्न संकेतकों की कोटियों को जोड़कर प्रत्येक देश के लिए एक कोटि-अंक प्राप्त करते हैं। तीसरा, देशों को फिर से कोटियों के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है।

यद्यपि यह कार्य नब्बे के दशक में शुरू हुआ था परंतु आंकड़े 1979/1980 से संबंधित थे। परिणाम रोचक रहे। 48 देशों की सूची में मौरिशस का स्थान सर्वोत्तम तथा श्रीलंका का स्थान दूसरा सर्वोत्तम रहा। चीन व भारत ऊपर से 10वें तथा 12वें सर्वोत्तम स्थान पर, जबकि बंगलादेश तथा पाकिस्तान ऊपर से 26वें तथा 30वें स्थान पर आते हैं। दोनों जोड़ों में 'सामाजिक-आर्थिक' (socio-economic) संकेतकों के अंक 'राजनीतिक-नागरिक' (political and civil) संकेतकों से भिन्न हैं। 'सामाजिक-आर्थिक' संकेतकों में चीन ने भारत से ज्यादा और पकिस्तान ने बांगलादेश से ज्यादा अंक प्राप्त किए हैं लेकिन 'राजनीतिक और नागरिक' संकेतकों में भारत को चीन से ज्यादा अंक मिले हैं, तथा बांगलादेश को पाकिस्तान से ज्यादा। यद्यपि यह वर्णन थोड़ा पुराना है फिर भी अभी भी लागू होता है।

निष्कर्ष

विद्वान तथा नीति-निर्धारक सकल घरेलू उत्पाद अथवा प्रतिव्यक्ति आय के कल्याण या विकास के संकेतक के रूप में प्रयोग से बहुत संतुष्ट नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने वितरण के पक्षों को ध्यान में रखकर संयुक्त सूचकांक विकसित किए हैं। दूसरों ने भी उन वस्तुओं के मूल्यों को सकल घरेलू उत्पाद में जोड़कर, जिनके मूल्य सम्मिलित नहीं किए गए थे तथा कल्याण के उन मूल्यों को सकल घरेलू उत्पाद में से घटाकर, जिनका इसमें योगदान नहीं है, संशोधित करने का प्रयास किया।

कुछ अन्य विद्वानों तथा ऐजेंसियों ने सोचा कि विकास को विशेषकर सामाजिक विकास को सीधे मापें। उन्होंने उन सभी संभावित चरों जो आधुनिकीकरण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण पर अतिक्रमण करते हैं, पर विचार किया। ज्यादातर ये चर आगत-पक्ष में थे। उन्होंने आगत तथा निर्गत को मिला दिया। परिणाम अच्छे थे।

मोरिस डी. मोरिस ने जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचक (PQLI) को विकसित किया। उसने सोचा कि यह विकास के परिणाम का प्रतिनिधित्व करेगा। वे यह भी जानते थे कि अनेक मनोवैज्ञानिक पक्षों, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे, को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया था। उसने जान बूझकर इन मौद्रिक पक्षों को इसमें सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि वे अंतरराष्ट्रीय तुलना में बाधा उत्पन्न कर सकते थे।

पी.क्यू.एल.आई. में एक बड़ा तकनीकी दोष है। शिशु मृत्यु दर तथा जीवन-प्रत्याशा दोनों को समान जनसंख्या आधार के संदर्भ में लिया है। बाद में पता चला कि इस संकल्पना में दीर्घ आयु तथा ज्ञान के अन्य पक्षों व उद्देश्यों को सम्मिलित नहीं किया गया था। इस प्रकार मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) हमारे सामने प्रस्तुत हुआ जिसमें दीर्घायु तथा ज्ञान (शिक्षा उपलब्धि के रूप में परिभाषित) के साथ प्रतिव्यक्ति आय को सम्मिलित किया गया। आय को पी.क्यू.एल.आई. में सम्मिलित करने पर कई बिंदुओं पर आपत्ति की गयी। फिर भी यू.एन.डी.पी. इसको कल्याण के असम्मिलित पक्षों के प्रतिनिधित्व के रूप में मानती है।

बहुत सारे विद्वान इससे खुश नहीं हैं परंतु उनमें से शायद ही किसी ने इसके विकल्प के चयन का एक संकेत दिया है। पार्थसारथी दासगुप्ता (जाने-माने भारतीय अर्थशास्त्री) तथा मार्टिन वील ने कुछ पक्षों को जीवन की गुणवत्ता के सूचक में शामिल करने का सुझाव दिया है, जिसे जीवन की गुणवत्ता का सूचक कह सकते हैं।

अभ्यास

1. प्रतिव्यक्ति आय से आपका क्या अभिप्राय है। प्रतिव्यक्ति घरेलू आय अथवा प्रतिव्यक्ति राज्य की आय को मिलाकर क्या इसे प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय कहना उचित होगा?
2. कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) को प्राप्त करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद में से किन कारकों को घटाना चाहिए। यदि हमें एक समय पर किसी देश के विकास का स्तर मालूम करना हो तो हम कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना प्रचलित कीमतों पर करनी चाहिए अथवा स्थिर कीमतों पर?

3. यदि हम दूसरे देश से तुलना नहीं करना चाहते हैं तो हमें कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या से क्यों विभाजित करना चाहिए? व्याख्या करें।
4. एक विकास के संघटक के रूप में PQLI में क्या कमियाँ हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए तीन सुझाव दीजिए।
5. यू.एन.आई.एस.आर.डी. के प्रयासों में मुख्य क्या समस्याएं थीं?
6. जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक (PQLI) के तीन संघटकों की सूची बनाएँ।
7. ए.एल.आर., एल.ई.आई. तथा आई.एम.आर. द्वारा पी.क्यू.एल.आई. का निर्माण कैसे होता है?
8. PQLI को भौतिक सूचक क्यों कहते हैं? इसके निर्माण में मनोवैज्ञानिक कारकों तथा मौद्रिक कारकों को क्यों दूर रखा जाता है?
9. मानव विकास सूचकांक का औचित्य (rationale) क्या है।
10. एच.डी.आई. के निर्माण में जिन तीन तत्वों का प्रयोग होता है, उनकी चर्चा कीजिए।
11. जीवन की गुणवत्ता का सूचक विकास के परिणाम को सम्मिलित करने पर बल देता है। आय कल्याण का एक आगत है, इसको एच.डी.आई. में सम्मिलित करने के पक्ष में आप क्या कहेंगे?
12. संघटक सूचक का सूत्र बताइए।
13. प्रतिव्यक्ति आय को "परचेजिंग पावर पेरिटि डालर" में क्यों मापा जाता है? इसकी विवेचना कीजिए?
14. PPP$ आय को जीवन स्तर सूचक में कैसे परिवर्तित कर सकते हैं?
15. लेखकों द्वारा विचाराधीन "जीवन की गुणवत्ता मापने" के छः संघटकों की सूची (इकाई के साथ) बनाइए।
16. राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारों से आपका क्या तात्पर्य है? इनको विकास के संकेतकों के रूप में स्वीकारने के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
17. विकास के सूचकों के क्रमिक विकास की विवेचना करें।

गतिविधियाँ

मान लें कि यूरोपीय देश के लिए मानव विकास सूचकांक के विभिन्न संघटनों का मूल्य पुरुष तथा महिलाओं के लिए नीचे दिए गए अनुसार है :

संघटन	*पुरुष*	*महिलाएं*
जीवन-प्रत्याशा (वर्षों में)	60	65
प्रौढ़ साक्षरता दर (%)	66	30
संयुक्त नामांकन अनुपात (%)	70	60
प्रतिव्यक्ति आय ($PPP में)	2500	2000

सारणी 2.2 में दिए गए उच्चतम एवं निम्नतम मूल्यों का प्रयोग करते हुए आंकड़ों का अध्ययन करके पुरुष व महिला के लिए HDI की संगणना करें।

आगे मान लें कि आपके अध्यापक बताते हैं कि महिलाएं जीव विज्ञान की दृष्टि से मजबूत होती हैं तथा उनका उच्चतम तथा निम्नतम जीवन-प्रत्याशा को क्रमशः 30 तथा 90 के रूप में संशोधित कर सकते हैं। HDIP की पुनर्संगणना करके इसके प्रभाव की अपने सहपाठियों के साथ चर्चा करें।

इकाई II

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन

इस इकाई में आप स्वतंत्रता के समय से भारतीय अर्थव्यवस्था में मुख्यतः वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन का अध्ययन करेंगे। अधिकतर आँकड़े 1950-51 से उपलब्ध हैं अतः परिवर्तन का अध्ययन 1950-51 से वर्तमान तक सीमित रहेगा। एक स्थिति विशेष में निश्चित आँकड़े 1960-61 से उपलब्ध हैं। अंत में एक भाग में हम 1972-73 से आँकड़ों का प्रयोग करेंगे। शृंखला के अंतिम वर्ष में आँकड़े देकर इकाई की समाप्ति करेंगे।

वृद्धि के साथ प्रत्येक अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के योगदान से भिन्नता आती है। विभिन्न क्षेत्रों के योगदान से अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन होता है। आपको जानकारी मिलेगी कि विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में किस प्रकार श्रम-शक्ति कार्यरत है।

ऐसा देखा गया है कि यदि ऊर्जा, परिवहन तथा संचार आदि के रूप में हमारी आर्थिक आधारिक संरचना कमजोर होगी तो वृद्धि में रुकावट आती है। हम देखेंगे कि इस दृष्टि से हमारी अर्थव्यवस्था की कितनी प्रगति हो रही है। हम अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास की स्थिति से चिंतित हैं। अतः आपको इन सामाजिक क्षेत्रों की समस्याओं का बोध हो जाएगा। वर्ष 1991 से उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण के कारण हमारी नीतियों में एक बड़ा परिवर्तन आया है। अतः हम 1991 के पूर्व तथा बाद की मुख्य नीतियों पर विचार कर, नीतियों के दो समुच्चयों में भिन्नता देखेंगे।

अध्याय 3

भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन

इस अध्याय में आप 1950-51 से पिछले 50 वर्षों में, जिसके लिए अधिकतर समष्टिगत समूहों पर वार्षिक आँकड़े उपलब्ध हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन के बारे में अध्ययन करेंगे। इसमें हम कारक लागत पर सकल घरेलू उत्पाद तथा 1993-94 की कीमतों पर वृद्धि पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। हम प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय (1993-94 की कीमतों) पर भी विचार करेंगे जिसको विकास अथवा जीवन-स्तर का संकेतक माना गया है।

पिछले अध्याय में संरचनात्मक परिवर्तन तथा वृद्धि को विकास का एक संकेतक माना गया है। संरचना से हमारा क्या अभिप्राय है? बहुत लोग इससे उत्पादन की संरचना मानते हैं, जो कि अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित निर्गत का संघटन है। कुछ लोग जानना चाहेंगे कि हमारे श्रम का समावेशन कहाँ तथा कैसे होता है। भूमि तथा पूंजी जैसे अन्य करकों को समान महत्त्व नहीं दिया जाता है। कुछ लोग यह जानना चाहेंगे कि निर्गत के उत्पादन का विभाजन देश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र या अर्थव्यवस्था के सरकारी एवं गैर-सरकारी क्षेत्र या संगठित एवं गैर-संगठित क्षेत्र में कैसे होता है? हम इन सभी पर विचार करेंगे। हम स्वतंत्रता के बाद से विकास को अच्छी तरह समझ सकते हैं यदि हमें स्वतंत्रता की पूर्व संध्या के समय के दृश्य का थोड़ा संकेत मिल जाए।

स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या के समय की अर्थव्यवस्था

हमें विरासत में ऐसी अर्थव्यवस्था मिली जिसका उद्देश्य साम्यवाद के मालिकों पर निर्भर था। स्वतंत्रता के पूर्व 100 वर्षों में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि दर (जहाँ से भी सूचना मिली हो) केवल 0.5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। आगे जाकर पता चलता है कि लंबी अवधि में वास्तव में अर्थव्यवस्था में स्थिरता अथवा गिरावट आयी है।

पहले हमें महीन सूती धागे, हस्तशिल्प तथा अन्य माल पैदा करने वालों में जाना जाता था। ब्रिटिश राज के आरंभ में यानि ब्रिटेन में क्रांति के समय, हमारी अर्थव्यवस्था औद्योगिक थी (उस समय के मानदण्डों के आधार पर जब यूरोपीय अर्थव्यवस्था में आधुनिक सभ्यता की शुरुआत हुई थी)। आजादी के समय हमारी अर्थव्यवस्था कृषि-अर्थव्यवस्था बनकर रह गयी तथा हम ब्रिटिश उद्योगों के लिए मुख्य आगतें तथा कच्चा माल तथा खनिज निर्यात करते थे, यहाँ तक कि खाद्यान्नों का भी निर्यात करते थे भले ही हम भूखे रहें।

वर्ष 1950-51 में हमारी प्रतिव्यक्ति आय 3700 रुपये से अधिक नहीं थी (1993-94 कीमतों पर) । (जबकि 1999-2000 में यह 10,000 रुपये से कुछ अधिक है) । सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र (पशु-पालन, पशुधन सहित) का योगदान

प्रचलित कीमतों पर लगभग 54 प्रतिशत तथा स्थिर कीमतों (1993-94) पर 50 प्रतिशत था। यदि हम इस क्षेत्र में वानिकी, लट्ठे बनाना, मत्स्य पालन को सम्मिलित करें तो योगदान 57-58 प्रतिशत होगा। और यदि हम इसमें खनन एवं उत्खनन को मिला दें तो इसको प्राथमिक क्षेत्रक कहते हैं और प्राथमिक क्षेत्रक का योगदान करीब 60 प्रतिशत होगा।

विनिर्माण क्षेत्रक का योगदान केवल 10 प्रतिशत था। सेवा-क्षेत्रक का योगदान लगभग 30 प्रतिशत था। ज्यादातर लोग कृषि-क्षेत्रक में कार्यरत थे, खेतीहर-किसान अपने छोटे खेतों पर तथा मजदूर दूसरों के खेतों पर।

वर्ष 1950-51 से सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि

अर्थव्यवस्था में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद स्थिर कीमतों पर वृद्धि से जानी जाती है। अब हमारे पास 1950-51 से सकल घरेलू उत्पाद 1993-94 की कीमतों की पूरी श्रृंखला है, परंतु हम यहाँ पर प्रति पाँच वर्ष के अंतराल से सकल घरेलू उत्पाद की श्रृंखला देगें (सारणी 3.1)।

(1993-94 कीमतों पर GDP_{FC} की पूरी श्रृंखला परिशिष्ट में दी गयी है)।

आपको आँकड़ों के बढ़ने की साधारण प्रवृत्ति, कुछ वर्षों में कभी-कभी गिरावट तथा पिछले कुछ वर्षों में उनकी तुलना के लिए हम यहाँ पर पूरी श्रृंखला का रेखाचित्र प्रस्तुत करेंगे । इस आरेख में सकल घरेलू उत्पाद में कभी-कभी गिरावट देखेंगे, जो कि नीचे दी गयी संक्षिप्त सारणी में नहीं दिखायी देती है, यद्यपि सामान्यतः इसमें वृद्धि होती है।

पिछले पचास वर्षों के दौरान यह आठ गुना से ज्यादा बढी है। किंतु हम यह जानने के इच्छुक हैं तथा होने चाहिए, कि क्या पूरे समय में वृद्धि दर में बढ़ोतरी हुई है या नहीं।

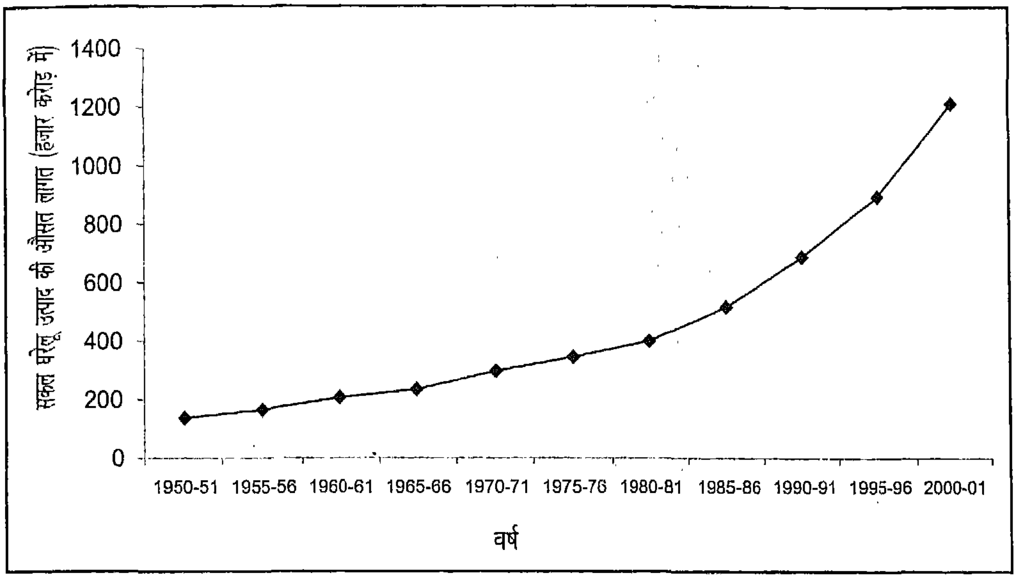
परिशिष्ट में दी गयी श्रृंखला से हम वार्षिक वृद्धि की संगणना कर सकते हैं। हम विभिन्न योजना-अवधियों अथवा विभिन्न दशकों अथवा (समयावधि) विशेष घटनाओं से संबंधित समयावधियों की वृद्धि की संगणना कर सकते हैं। विद्वानों द्वारा इन सब समयावधियों के प्रयोग किए जा चुके हैं। हम दशकों के लिए प्रतिवर्ष वृद्धि-दर की

सारणी 3.1

वर्ष 1950-51 से 2000-01 तक स्थिर कीमतों (1993-94) पर सकल घरेलू उत्पाद

राजस्व वर्ष	*सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रुपये)*	*राजस्व वर्ष*	*सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रुपये)*
1950-51	140446	1980-81	401128
1955-56	167667	1985-86	513990
1960-61	206103	1990-91	692871
1965-66	236306	1995-96	899563
1970-71	296278	2000-01	1211747
1975-76	343924		

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी : पिछली श्रृंखला 1950-51, 1993-94 तथा राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 2001, दोनों केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा प्रकाशित।



चित्र 3.1: सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि

संगणना करेंगे। हम लंबी समयावधि में वार्षिक वृद्धि दर की संगणना के लिए दो लोकप्रिय संगणना की विधियों का प्रयोग करेंगे जैसे, औसतन वार्षिक वृद्धि तथा चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि-दर (एक परिशिष्ट में जिसकी चर्चा की गयी है)।

हम आगे दी गयी सारणी में प्रत्येक दशक के लिए तथा अर्द्ध-शताब्दी के लिए सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि-दर प्रस्तुत करेंगे। सारणी 3.2 से यह मालुम होता है कि पूरी समयावधि के लिए वृद्धि-दर 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से निश्चित रूप से ज्यादा है। सत्तर के दशक में वृद्धि दर में गिरावट आयी किंतु अस्सी तथा नब्बें के दशकों में निश्चित तौर से सुधार हुआ है। इस समय यह निश्चित रूप से स्वीकार सकते हैं कि वृद्धि-दर 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष के निकट है। वृद्धि का कुछ श्रेय हम अस्सी तथा नब्बे के दशकों में अपनायी गयी नीतियों को दे सकते हैं, किंतु पचास-साठ तथा सत्तर के दशकों में बनाए गए आधार को भी कुछ श्रेय दिया जाना चाहिए, जिसने कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पादकता को तथा देश की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की विविधता को बदला है।

प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

प्रतिव्यक्ति आय, निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या (मध्यवर्गीय) के आकार से विभाजित करने पर प्राप्त होती है। निवल राष्ट्रीय उत्पाद के, सकल घरेलू उत्पाद के आदर्श को अपनाने की पूरी संभावना है, क्योंकि कुल आय की तुलना में विदेशों से निवल कारक आय बहुत कम होती है। पिछले 50 वर्षों में जनसंख्या लगातार बढ़ रही है, बहुत समय

सारणी 3.2
विभिन्न दशकों में सकल देशीय उत्पाद में वार्षिक वृद्धि दर
(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

समयावधि	*वार्षिक औसत*	*चक्रवृद्धि दर*
1950-51 से 1959-60	3.59	3.56
1960-61 से 1969-70	3.95	3.89
1970-71 से 1979-80	2.94	2.86
1980-81 से 1989-90	5.79	5.78
1990-91 से 1999-00	5.80	5.78
1950-51 से 2000-01	**4.43**	**4.11**

पश्चात् उपलब्ध जनसंख्या वृद्धि दर गिरनी शुरू हुई है। हमें याद है कि हमारे पास जनसंख्या के दसवर्षीय आँकड़े ही उपलब्ध हैं अतः हम जनसंख्या की केवल एक वृद्धि-दर की ही संगणना कर सकते हैं। इस तकनीकी का प्रयोग कर प्रत्येक मध्यवर्ष के लिए जनसंख्या के आकार का अंतर्वेशन कर सकते हैं। निवल राष्ट्रीय आय को जनसंख्या के आकार से विभाजित कर प्रतिव्यक्ति आय की संगणना कर सकते हैं। प्रत्येक पांच वर्षों के अंतराल में इसको सारणी 3.3 में प्रस्तुत किया गया है।

आप देख सकते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय तीन गुने से थोड़ी कम दर से बढ़ रही है। वर्ष 1950-51 में यह 3700 रुपये थी जो बढ़कर वर्ष 2000-01 में स्थिर कीमतों पर 10,000 रुपये हो गयी।

इन दिखाए गए वर्षों में किसी भी वर्ष में पिछले वर्ष की तुलना में इसमें गिरावट नहीं आयी है। किंतु यह भी देखते हैं कि वर्ष 1960-61 की तुलना में वर्ष 1965-66 में (5 वर्षों का अंतराल)

सारणी 3.3
प्रतिव्यक्ति आय स्थिर कीमतों पर (1993-94) 1950-51 से 2000-01

राजस्व वर्ष	*प्रतिव्यक्ति आय (रुपयों में)*	*राजस्व वर्ष*	*प्रतिव्यक्ति आय (रुपयों में)*
1950-51	3687	1980-81	5352
1955-56	4020	1985-86	6082
1960-61	4429	1990-91	7321
1965-66	4459	1995-96	8498
1970-71	5002	2000-01	10561
1975-76	5167		

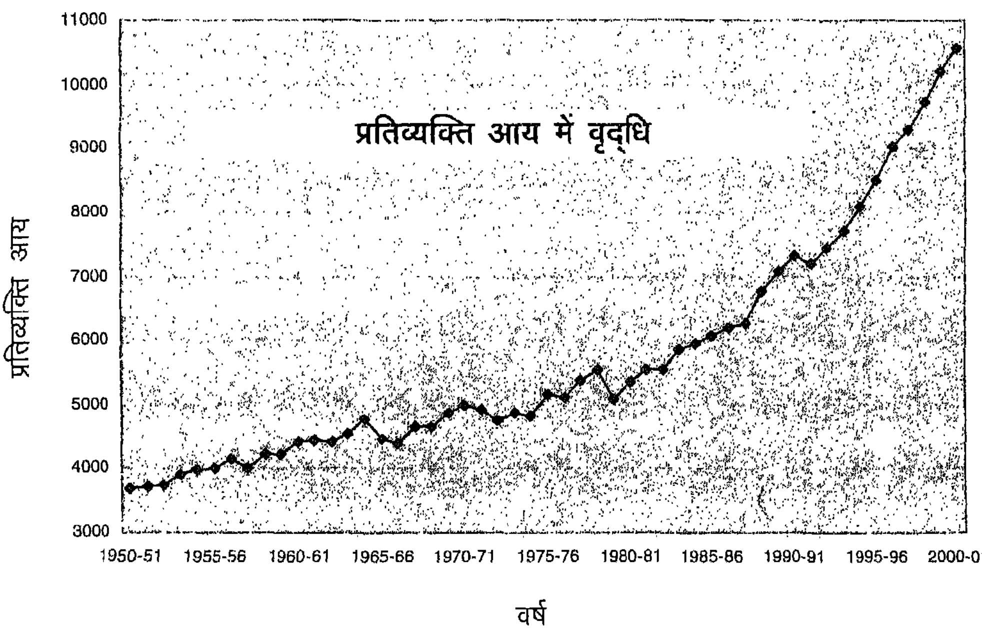
स्रोतः *सारणी 3.1 के अनुसार*

मुश्किल से कोई बढ़ोतरी हुई है। सामान्यतः इन वर्षों में कुछ वृद्धि हुई है, परंतु वर्ष 1965-66 बुरा वर्ष था। हालांकि वर्ष 1965-66 तथा 1966-67 ने हमें हरित क्रान्ति दी परंतु वास्तव में वर्ष 1965-66 तथा 1966-67 भंयकर अकाल के थे। प्रति-व्यक्ति आय के उतार-चढाव के बारे में विचार करने की दृष्टि से हम पूरी शृंखला जो कि अध्याय के परिशिष्ट में दी गयी है का रेखा चित्र यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

सारणी 3.4 में प्रतिव्यक्ति वार्षिक वृद्धि-दर, प्रत्येक दशक के लिए तथा पूरे पचास वर्षों के लिए दिखायी गयी है। इसकी संगणना दो विधियों, औसत वार्षिक वृद्धि दर तथा चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से कर सकते हैं। हम यह देख सकते हैं कि पूरे पचास वर्षों में वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत थी। सत्तर के दशक में वृद्धि-दर न्यूनतम थी। यहाँ आप इस अंतर को अनदेखा कर सकते हैं। (परिशिष्ट देखें)।

अर्थव्यवस्था की उत्पादन-संरचना में परिवर्तन

यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि हम तब क्या उत्पादन करते थे तथा अभी क्या उत्पादन करते हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है इसके उत्पादन-संरचना में भी परिवर्तन होता है। यह कृषि से विनिर्माण तथा सेवाओं की ओर अग्रसर होती है। आप देखेंगे कि अपेक्षाकृत सम्पन्न परिवार खाद्यान्नों की अपेक्षा विनिर्मित वस्तुओं पर अधिक व्यय करती हैं। आप अपने परिवार में भी देखेंगे कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है खाद्य पदार्थ की तुलना में दूसरे पदार्थों पर अनुपाततः अधिक व्यय होता



चित्र 3.2: प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

सारणी 3.4
विभिन्न दशकों में कारक लागत प्रतिव्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि-दर
(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

समयावधि (वर्ष)	*वार्षिक औसत*	*वार्षिक चक्रवृद्धि*
1950-51 से 1959-60	1.53	1.35
1960-61 से 1969-70	1.51	0.94
1970-71 से 1979-80	0.55	0.17
1980-81 से 1989-90	3.89	2.85
1990-91 से 1999-00	3.73	3.37
1950-51 से 1999-00	**2.16**	**2.05**

है। किंतु आप यह भी देखेंगे कि साधारण तथा निरपेक्ष व्यय की धनराशि मोटेतौर पर कम नहीं होती है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन संरचना कृषि से बदल रही है। अब तक जितने कृषि पदार्थ, जो सीधे परिवारों के पास पहुँचते थे, अब वितरण की दूसरी लंबी प्रक्रियाओं के बाद पहुँचते हैं। ब्रेड, नूडलस् तथा फलों के रस इसके अच्छे उदाहरण हैं। इसका तात्पर्य है कि विनिर्माण तथा व्यापार की गतिविधियाँ बढ़ेंगी। अतः हमें देखना चाहिए कि किस प्रकार उत्पादन-संरचना में परिवर्तन होता है।

हम जानते हैं कि किसी आधुनिक अर्थव्यवस्था में से सैकड़ों तथा हज़ारों गतिविधियाँ हमेशा चलती रहती हैं। बहुत सी गतिविधियाँ आरंभ तो होती हैं, परंतु उनमें से कुछ समाप्त हो जाती हैं। कुछ संशोधित रूप में पुनः आरंभ होती हैं। किंतु प्रत्येक वस्तु के बारे में विचार विमर्श करना मुश्किल है। हम उनको उत्पाद की समानता अथवा गतिविधियों की प्रकृति के आधार पर समूहबद्ध कर लेते हैं। हमारा केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन मोटेतौर पर 9 वर्गों का प्रयोग करता है, जिन्हें क्षेत्र कहा जाता है। इनमें से 6 वर्गों को 2/3/4 उपवर्गों में विभाजित किया गया है। उद्योग, क्षेत्र के रूप में, इसमें नहीं आता है। इसको खनन तथा उत्खनन, विनिर्माण व विद्युत में समायोजित किया गया है। कुल मिलाकर इसमें 18 वर्ग, क्षेत्र तथा उप-क्षेत्र हैं, जो देश की कुल आर्थिक गतिविधियों को राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी में प्रस्तुत करता है।

अर्थशास्त्री उत्पादन संरचना में परिवर्तन के लिए 2-3 स्तरीय वर्गीकरण में चर्चा करते हैं। एक कृषि विनिर्माण/उद्योग तथा सेवाओं के रूप में और दूसरा प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक के रूप में है। कृषि में साधारणतया पशुधन सम्मिलित हैं। किंतु बड़े वर्ग में कृषि, वानिकी एवं लट्ठे बनाना तथा मत्स्य पालन को सम्मिलित किया गया है। यदि हम इस क्षेत्र में खनन एवं उत्खनन को जोड़ें तो इसे 'प्राथमिक क्षेत्र' कहेंगे, क्योंकि ये गतिविधियाँ प्रकृति से जुड़ी हुई हैं।

फैक्टरी नियम के अनुसार विनिर्माण इकाई के पंजीकरण के आधार पर विनिर्माण क्षेत्र को पंजीकृत तथा गैर-पंजीकृत इकाइयों में फिर विभाजित किया गया है। उद्योग में विनिर्माण, खनन तथा उत्खनन को सम्मिलित कर सकते हैं। यदि हम विद्युत, गैस व जल आपूर्ति एवं निर्माण को विनिर्माण में सम्मिलित कर देते हैं तो इसे द्वितीयक क्षेत्र कहते हैं। तृतीयक क्षेत्र में उन

केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन (CSO) द्वारा अपनाए गए क्षेत्रीय वर्गीकरण

1. कृषि, वानिकी तथा मत्स्य पालन
   1.1 कृषि
   1.2 वानिकी एवं लट्ठे बनाना
   1.3 मत्स्य पालन
2. खनन तथा उत्खनन
3. विनिर्माण
   3.1 पंजीकृत
   3.2 गैर-पंजीकृत
4. विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति
5. निर्माण
6. व्यापार, होटल व रेस्तराँ
   6.1 व्यापार
   6.2 होटल रेस्तराँ
7. परिवहन, संग्रहण व संचार
   7.1 रेलवे
   7.2 परिवहन के अन्य साधन
   7.3 संग्रहण
   7.4 संचार
8. वित्त, बीमा, स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ
   8.1 बैंकिंग एवं बीमा
   8.2 स्थावर सम्पदा, आवासों का स्वामित्व एवं व्यावसायिक सेवाएँ
9. सामुदायिक, सामाजिक तथा निजी सेवाएँ
   9.1 लोक प्रशासन, रक्षा एवं अर्ध-सरकारी निकाय
   9.2 अन्य सेवाएँ

सभी गतिविधियों के साथ विद्युत, गैस व जल आपूर्ति एवं निर्माण सम्मिलित होते हैं। यह केवल परंपरागत है। समयावधि में वर्गीकरण में परिवर्तन हो सकते हैं। हमेशा एक जैसा वर्गीकरण नहीं रहता है। राष्ट्रीय लेखा में बड़े संशोधनों के साथ नये उत्पादों का प्रवेश होता है तथा कुछ गतिविधियों को निकाला भी जा सकता है। उदाहरण के लिए, पहले एल.पी.जी. को विद्युत गैस तथा जल आपूर्ति क्षेत्र में सम्मिलित करते थे परंतु अब यह विनिर्माण का भाग है। सारणी 3.5 में पचास वर्षों की स्थिर कीमतों (1993-94) पर सकल घरेलू उत्पाद में 11 मुख्य क्षेत्रों का योगदान 6 वार्षिक बिंदुओं में प्रस्तुत किया गया है। इस सारणी से हम दो और सारणियाँ बनाएँगें। एक सारणी सकल घरेलू उत्पाद का संघटन दर्शाएगी तथा दूसरी सारणी में प्रत्येक दशक व अर्द्ध-शताब्दी में विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि को प्रस्तुत किया जाएगा।

अब हम उत्पादन संरचना की मुख्य बातों पर प्रकाश डालेंगे अतः आप के लिए रुचिकर होगा कि आप कुछ अभ्यास कर विभिन्न क्षेत्रों के

योगदान के बारे में अपने विचार विकसित करें।

विभिन्न क्षेत्रों का निरपेक्ष योगदान

यह सरलता से देख सकते हैं कि कृषि उत्पादन लगातार बढ़ रहा है तथा अब यह चार गुना बढ़ चुका है। हमें उत्पादन में गिरावट नहीं दिखाई देती क्योंकि हमारी सारणी में सभी वर्ष नहीं हैं, कई ऐसी कालावधियाँ जब कृषि उत्पादन में वास्तव में गिरावट आयी है। जब हमें सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट दिखती है तो इसका मुख्य कारण कृषि उत्पादन में गिरावट हो सकता है क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद में इसका बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 1965-66 से 1966-67 में लगातार कृषि क्षेत्र में हानि हुई। इन्हीं वर्षों में **हरित-क्रान्ति** हुई। अब कृषि क्षेत्र में हमारी स्थिति काफी आरामदायक है। फिर भी प्रत्येक दशक के दौरान कृषि क्षेत्र में 2 या 3 वर्षों में अवश्य निराशा हाथ लगती है। हमें याद रखना चाहिए कि कृषि हमें खाद्य, दूध, मांस तथा उद्योगों को कच्चा माल तथा विशेषकर उपभोक्ता-वस्तुएं बनाने वाले उद्योगों को कच्चा माल देती हैं। कृषि की तुलना में प्राथमिक क्षेत्र में सम्मिलित दूसरे क्षेत्र बहुत छोटे हैं; प्राथमिक क्षेत्र का योगदान केवल चार गुना बढ़ा है।

विनिर्माण क्षेत्र का योगदान वर्ष 1950-51 में 12,500 करोड़ रुपये था जो बढ़कर 1999-2000 वर्ष में 2,00,000 करोड़ रुपये हो गया। इस समयावधि में यह 16 गुना बढ़ा है। वार्षिक निर्माण गतिविधि भी 10 गुना बढ़ गयी है। निर्माण के केवल आवास ही नहीं बल्कि सड़कें, रेलें, बांध, नहरें, पुल तथा उपरिगामीसेतु व झोंपड़ियाँ भी सम्मिलित हैं। आजादी के समय विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति की स्थिति आरम्भिक अवस्था में थी तथा इसका योगदान 1993-94 कीमतों पर 500 करोड़ रुपये से कम ही था। पचास वर्षों में इसका योगदान 60 गुना बढ़ा।

द्वितीयक क्षेत्र का योगदान कुल मिलाकर 15 गुना बढ़ा है। व्यापार, होटल तथा रेस्तराँ का योगदान इस समयावधि में 14 गुना बढ़ा है, जबकि परिवहन, संग्रहण तथा संचार का योगदान 18 गुना बढ़ा। वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाएँ बीमा तथा स्थावर संपदा को मिलाकर, 15 गुना बढ़ा है जबकि सरकारी प्रशासन को मिलाकर सामुदायिक,

सारणी 3.5
विभिन्न क्षेत्रों का स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद
(1993-94 की कीमतों पर) 1950-51 से 1999-2000 अवधि में योगदान

(करोड़ रुपयों में)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
कृषि	70456	97412	121356	143431	200634	266848
वानिकी एवं लट्ठा उद्योग	9456	9704	13086	11910	11751	12542
मत्स्य पालन	1249	2124	3197	3952	6943	10944
खनन एवं उत्खनन	2085	3594	5261	8477	19819	26446
प्राथमिक क्षेत्र	*83246*	*112834*	*142900*	*167770*	*239147*	*316780*
विनिर्माण	12491	22465	37389	55436	115282	196763

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	457	1217	3501	6774	16203	28225
निर्माण	5722	10558	18107	24395	38218	58728
द्वितीयक क्षेत्र	*18670*	*34240*	*58997*	*86605*	*169703*	*283716*
व्यापार, होटल व रेस्तराँ	12137	20254	32324	48883	86892	168355
परिवहन, संग्रहण व संचार	4645	8064	13759	24963	42894	84477
वित्तीय, बीमा, स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	9380	12568	17588	26156	66990	146546
सामुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	13215	18908	316600	46751	84380	152117
तृतीयक क्षेत्र	*39377*	*59794*	*95331*	*146753*	*281156*	*551495*
सकल घरेलू उत्पाद	*140466*	*206103*	*296278*	*423073*	*692871*	*1151991*

***स्रोत** : सारणी 3.1 देखें।*

सामाजिक व निजी सेवाओं का योगदान 15 गुना बढ़ा।

विभिन्न क्षेत्रों का सापेक्ष योगदान

क्षेत्र का सापेक्ष योगदान उसके अपने निष्पादन तथा अन्य क्षेत्रों के निष्पादन पर भी निर्भर करता है। परिणामतः सकारात्मक योगदान के बावजूद क्षेत्र अपनी सापेक्ष स्थिति गँवा सकते हैं। इसी प्रकार हालांकि वर्ष 1950-51 में कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 50 प्रतिशत था, परंतु शताब्दी के अंत तक चार गुना वृद्धि के बावजूद इसका योगदान 25 प्रतिशत ही रहा। इस समयावधि में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से घट कर 30 प्रतिशत से कम हो गया। इसी समयावधि में विनिर्माण का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 9 प्रतिशत से बढ़कर 17 प्रतिशत हो गया। विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति का हिस्सा जो एक प्रतिशत का एक तिहाई था बढ़कर 2.5 प्रतिशत के निकट हो गया। निर्माण गतिविधि में निरपेक्ष रूप में अच्छी बढ़ोत्तरी हुई, फिर भी पहले 20 वर्षों में इसकी मंदी की अवधि माना जाता है। इस दौरान इसका हिस्सा 4 प्रतिशत से बढ़कर 6 प्रतिशत हो गया, अंतिम 30 वर्षों में यह गिरकर 5 प्रतिशत हो गया। पूर्ण द्वितीयक क्षेत्र 14 प्रतिशत से बढ़कर 24 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद में योगदान की दृष्टि से द्वितीयक क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र का निकटतम प्रतियोगी रहा। देखें सारणी 3.6 ।

अब हम तृतीयक क्षेत्र को देखें। व्यापार, होटल तथा रेस्तराँ व्यवसाय की गतिविधियों का हिस्सा 8.6 प्रतिशत से बढ़कर 14.6 प्रतिशत हो गया जबकि परिवहन, संग्रहण तथा संचार का हिस्सा अर्द्ध शताब्दी में 3.3 प्रतिशत से बढ़कर 7.3 प्रतिशत हो गया। वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाओं का योगदान 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 12.7 प्रतिशत हो गया जबकि सामुदायिक, निजी सेवाओं का योगदान 9.4 प्रतिशत से बढ़कर 13.4 प्रतिशत हो गया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि वर्ष 1950-51 में, तृतीयक क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में से सामुदायिक तथा सामाजिक सेवाओं का योगदान काफी प्रबल रहा। इसने धीरे-धीरे व्यापार क्षेत्र के

सारणी 3.6
निर्गत का संघटन तथा सकल घरेलू उत्पाद में क्षेत्रीय निर्गत
स्थिर कीमतों (1993-94) पर

(प्रतिशत में)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
कृषि	50.16	47.26	40.96	35.76	28.96	23.16
वानिकी एवं लट्ठे बनाना	6.73	4.71	4.42	2.97	1.70	1.09
मत्स्य पालन	0.89	1.03	1.08	0.99	1.00	0.95
खनन एवं उत्खनन	1.48	1.74	1.78	2.11	2.86	2.30
प्राथमिक क्षेत्र	*59.26*	*54.75*	*48.23*	*41.82*	*34.52*	*27.50*
विनिर्माण	8.89	10.90	12.62	13.82	16.64	1708
विद्युत,गैस व जल आपूर्ति	0.33	0.59	1.18	1.69	2.34	2.45
निर्माण	4.07	5.12	6.11	6.08	5.52	5.10
द्वितीयक क्षेत्र	*13.29*	*16.61*	*19.91*	*21.59*	*24.49*	*24.63*
व्यापार, होटल व रेस्तराँ	8.64	9.83	10.91	12.19	12.54	14.61
परिवहन, संग्रहण व संचार	3.31	3.91	4.64	6.22	6.19	7.33
वित्तीय,बीमा,स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	6.68	6.10	5.94	6.52	9.67	12.72
समुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	9.41	9.17	10.69	11.65	12.18	13.20
तृतीयक क्षेत्र	*28.03*	*29.01*	*32.18*	*36.59*	*40.58*	*47.87*
सकल घरेलू उत्पाद	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*

लिए रास्ता दिया परंतु नब्बे के दशक में वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाएँ निकट प्रतियोगी के रूप में उभर कर आई। फिर भी यह ध्यान देना चाहिए कि लोक प्रशासन तथा रक्षा क्षेत्रों ने 1950-51 में 3 प्रतिशत का योगदान दिया जो अब 6 प्रतिशत हो गया। सामुदायिक व सामाजिक सेवा के व्यापक रूप में लोक प्रशासन तथा रक्षा का योगदान इस समयावधि में एक तिहाई (1/3) से बढ़कर (1/2) आधा हो गया। (सारणी 3.6 देखें)।

विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि

हम सारणी 3.5 में से एक और सारणी बना सकते हैं जो हमें विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि दर बताएगी। हमने केवल चक्रवृद्धि दर की संगणना की है। हमें इसे कठिनाई से सहन करना होगा कि यह वृद्धि दर शुरू और अंत के आँकड़ों पर निर्भर करेगी। साठ तथा सत्तर के दशकों में कृषि की स्थिति काफी खराब थी। वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से भी नीचे गिर गयी। कृषि में खाद्य पदार्थ मुख्य

है तथा हम इसके आयात का भार वहन नहीं कर सकते हैं। बड़े देश होने की वजह से, हम कृषि उत्पाद आयात करें, तो भी हमें काफी मात्रा में खाद्यान्नों का उत्पादन स्वयं करना पड़ेगा। नब्बे के दशक में खाद्यान्नों की वृद्धि में कुछ मंदी रही। भविष्य में हम कुछ कम वृद्धि दर तब तक सहन कर सकते हैं जब तक कि उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति होती रहे तथा खाद्यान्नों की आपूर्ति घरेलू माँग से कम नहीं हो। प्राथमिक क्षेत्र की वृद्धि-दर द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र से हमेशा कम होती रही, तथा इसके योगदान में कमी होते रहने का यही एक मुख्य कारण है।

विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि कृषि से दुगुनी रही है। सत्तर का दशक सभी क्षेत्रों के लिए खराब था। इसी दशक में विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति क्षेत्र केवल 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर ही उपलब्ध कर सका। यही स्थिति निर्माण क्षेत्र की थी। नब्बे के दशक की तुलना में अस्सी के दशक में द्वितीयक क्षेत्र का योगदान सराहनीय था।

नब्बे का दशक तृतीयक क्षेत्र के पक्ष में रहा, तथा इसकी वार्षिक वृद्धि पर 7.8 प्रतिशत बढ़ी। सभी सेवाओं में अस्सी के दशक की तुलना में

सारणी 3.7

दशकों के दौरान विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि-दर

(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51 से 1960-61*	*1960-61 से 1970-71*	*1970-71 से 1980-81*	*1980-81 से 1990-91*	*1990-91 से 1999-00*	*1950-51 से 1999-2000*
कृषि	3.29	2.22	1.68	3.41	3.22	2.70
वानिकी व लट्ठे बनाना	0.26	3.03	-0.94	-0.13	0.73	0.57
मत्स्य पालन	5.45	4.17	2.14	5.80	5.19	4.43
खनन एवं उत्खनन	5.59	3.88	4.89	8.86	3.26	5.21
प्राथमिक क्षेत्र	*3.09*	*2.39*	*1.62*	*3.61*	*3.17*	*2.71*
विनिर्माण	6.05	5.23	4.02	7.60	6.12	5.67
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	10.29	11.14	6.82	9.11	6.36	8.56
निर्माण	6.32	5.54	3.03	4.59	4.89	4.77
द्वितीयक क्षेत्र	*6.25*	*5.59*	*3.91*	*6.96*	*5.88*	*5.59*
व्यापार, होटल व रेस्टराँ	5.25	4.78	4.22	5.92	7.62	5.40
परिवहन, संग्रहण व संचार	5.67	5.49	6.14	5.56	7.82	5.97
वित्तीय, बीमा, स्थावर-संपदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	2.97	3.42	4.05	9.86	9.09	5.65
सामुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	3.65	5.29	3.97	6.08	6.77	5.01
तृतीयक क्षेत्र	*4.27*	*4.77*	*4.41*	*6.72*	*7.77*	*5.42*
सकल घरेलू उत्पाद	*3.91*	*3.69*	*3.07*	*5.61*	*5.81*	*4.30*
जनसंख्या	*1.91*	*2.23*	*2.30*	*2.14*	*1.87*	*2.05*

नब्बे के दशक में तेज गति से वृद्धि हुई जबकि वृद्धि की दृष्टि से सत्तर के दशक की तुलना में इसका योगदान काफी अच्छा था। इस अवलोकन में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं।

आर्थिक क्रियाओं की प्रवृत्ति प्राथमिक/ कृषि क्षेत्र से दूर द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र की ओर गतिमान प्रतीत होती है। कृषि में गिरावट को द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र ने मिलकर बाँट लिया तथा समय के साथ द्वितीयक क्षेत्र की तुलना में तृतीयक क्षेत्र में बढ़ोत्तरी काफी तेज हो रही है।

उत्पादन के पृथक्करण द्वारा परिवर्तन

विद्वानों ने उत्पादन संरचना संबंधी गतिविधियों के तीन महत्त्वपूर्ण विभाजन के बारे में ज्यादातर चर्चा की है। एक विभाजन, गतिविधियों के स्थान निर्धारण से संबंधित है, स्थान निर्धारण ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में विभाजित है। दूसरा विभाजन, उत्पादन के संस्थान के स्वामित्व के ऊपर निर्भर करता है, जो कि सरकारी तथा गैर-सरकारी में विभाजित है। तीसरा, संगठित और गैर-संगठित क्षेत्र के बारे में है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में विभाजन

एडम स्मिथ ने कहा था कि कृषि देश का उद्योग है तथा विनिर्माण शहर का विनिर्माण है। जैसे-जैसे प्रकृति-वासी अपनी आर्थिक गतिविधियों में विविधता लाते हैं, वैसे-वैसे इनकी स्थिति ग्रामीण से शहरी की निश्चित परिभाषाओं के दायरे में बदल जाती है। भारत में पिछले पचास वर्षों में शहरों की संख्या 2800 से बढ़कर 3600 हो गयी तथा इनमें रहने वालों की जनसंख्या लगभग 6 करोड़ से बढ़कर 26 करोड़ हो गयी है। शहरी क्षेत्रों में रहने वालों की जनसंख्या 25 प्रतिशत से कुछ ज्यादा है जो कि 1950-51 में 16 प्रतिशत होती थी। दूसरी तरफ गांवों की संख्या करीब 6 लाख है। प्राकृत-वास की जनसंख्या 10 लाख से ज्यादा है। ग्रामीण क्षेत्र में केवल कृषि तथा पशुओं को चराने की गतिविधियाँ नहीं होती हैं, बल्कि विनिर्माण (हस्तशिल्प), व्यापार (खुदरा), परिवहन (बैलगाड़ी तथा ट्रैक्टर) भी ग्रामीण गतिविधियों का हिस्सा है तथा ग्रामवासियों को इससे लाभ होता है। हमारे पास गतिविधियों के निर्गतों की लगातार शृंखला, ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार है। CSO ने ऐसे विभाजन में यह शृंखला केवल निवल घरेलू उत्पाद के लिए, प्रचलित कीमतों (current prices) पर, वर्ष 1970-71, 1980-81 तथा 1993-94 के लिए, उपलब्ध करायी है। इन आँकड़ों की सहायता से हमें गतिविधियों में बदलाव के बारे में कुछ जानकारी मिलती है।

इन आँकड़ों की सहायता से हम यह जान सकते हैं कि वर्ष 1970-71 में ग्रामीण क्षेत्र से 62.5 प्रतिशत निवल घरेलू उत्पाद प्राप्त हुआ, जहाँ 80 प्रतिशत से ज्यादा जनसंख्या रहती (काम करती) थी, जबकि शहरी क्षेत्र में जहाँ 20 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती थी (काम करती थी), वहाँ से 37.5 प्रतिशत निवल घरेलू उत्पाद प्राप्त हुआ था। इसलिए शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति आय ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में करीब 2.5 गुना (वास्तव में 2.45 गुना) ज्यादा थी। जब हम 1993-94 के आँकड़े देखते हैं तो हमें मालुम होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या का अनुपात 6.7 प्रतिशत प्वाइंट (points) से कम हुआ है, निवल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 8.6 प्रतिशत प्वाइंट से कम हुआ है। शहरी क्षेत्र में बिलकुल इसके विपरीत स्थिति है। किंतु 80.2 प्रतिशत प्वाइंट में 6.7 प्रतिशत प्वाइंट का नुकसान (loss), 19.8 प्वाइंट में 6.7

प्वाइंट के लाभ (gain) के समान नहीं है। अतः दोनों क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय यह बताती है कि शहरी क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति निवल घरेलू उत्पाद, ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में 2.5 गुना (वास्तव में 2.39 गुना) ज्यादा है। समयावधि में इस अनुपात में कोई गिरावट नहीं आयी है, शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी दरें कुछ ज्यादा हैं। अतः लोगों का शहरी क्षेत्रों की ओर आकर्षण कोई बड़ी बात नहीं!

सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में विभाजन

जब से देश है तब से सार्वजनिक क्षेत्र है। राज्य में सरकारी क्षेत्र है। किंतु स्वतंत्रता से पहले उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति लोक-प्रशासन तथा नियंत्रण से अधिक नहीं थी। विभिन्न कारणों से विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप हमारी नीतियों के कारण इस समयावधि में बढ़ा है। आर्थिक गतिविधियों का कोई भी ऐसा बड़ा क्षेत्र नहीं है, जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र पूरी तरह अनुपस्थित हो।

वर्ष 1960-61 से हमारे पास विभिन्न उत्पादन क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान के आँकड़े हैं। यदि हम एक सरसरी निगाह से देखें तो ऐसा मालूम होता है कि इस समयावधि में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व लगभग सभी क्षेत्रों में बढ़ा है। सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा जो वर्ष 1960-61 में केवल 9 प्रतिशत से बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया, यद्यपि बाद में बढ़ने की गति कम हो गयी।

लोक-प्रशासन एक विशुद्ध सार्वजनिक क्षेत्रीय गतिविधि है, तथा मत्स्य पालन में इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। कृषि में उसकी उपस्थिति बढ़ गयी है, किंतु यहाँ इसकी प्रबलता सिंचाई के कारण है, क्योंकि कृषि-क्षेत्र में सिंचाई ही मुख्य गतिविधि है। इसका योगदान वानिकी एवं लट्ठे बनाने के क्षेत्र में अत्यधिक कम हो रहा है। अधिकतर खनन गतिविधि सार्वजनिक क्षेत्र में है तथा इसका योगदान लगभग 80 प्रतिशत है। विनिर्माण क्षेत्र में इसका हिस्सा धीरे-धीरे बढ़ा। यह वर्ष 1960-61 में 7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1998-99 में 20 प्रतिशत हो गया। निर्माण क्षेत्र में इसका हिस्सा जो वर्ष 1960-61 में 5 प्रतिशत से कम था, 1998-99 में बढ़कर 16 प्रतिशत हो गया। व्यापार क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र वर्ष 1980-81 से पीछे हट गया तथा इसका हिस्सा 8.5 प्रतिशत ही रह गया। परिवहन क्षेत्र में इसकी भूमिका कम होने के बाद भी महत्त्वपूर्ण है। रेलवे पूरी तौर से भारत सरकार के पास है। सड़क परिवहन में राज्य निगम की एक सार्थक भूमिका है, कम से कम यात्री-परिवहन में। वित्तीय क्षेत्र में भी सरकारी क्षेत्र की उपस्थिति सार्थक रूप से बढ़ी है, जो वर्ष 1960-61 में 6.5 प्रतिशत से बढ़कर 17 प्रतिशत हो गयी। ऐसा 14 मुख्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण हुआ। वर्ष 1975-76 में राष्ट्रीयकरण की एक और खुराक की वजह से यह वर्ष 1980-81 में बढ़कर 27 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 1960-61 में इसके 6.5 प्रतिशत होने का मुख्य कारण इम्पीरियल बैंक का स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के रूप में राष्ट्रीयकृत होना था।

संगठित तथा गैर-संगठित क्षेत्र में विभाजन

संगठित क्षेत्र में सभी सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की संस्थापनाएँ किसी एक नियम जैसे कंपनी एक्ट, सोसायटी एक्ट अथवा कोऔपरेटिव एक्ट के अधीन पंजीकृत है। उनको अपने लेखों को बनाना पड़ता है। वर्ष 1960-61 में संगठित तथा गैर-संगठित का निवल घरेलू उत्पाद में अनुपात 25 : 75 था। समय के साथ संगठित क्षेत्र का अनुपात कुछ उतार-चढ़ाव के साथ बढ़ता गया

तथा वर्ष 1980-81 में यह 30 प्रतिशत के आसपास पहुँच गया। तभी से इसका हिस्सा लगातार बढ़ रहा है तथा शताब्दी के अंत तक इसके 40 प्रतिशत के आसपास पहुँचने की संभावना है। संगठित क्षेत्र में विनिर्माण का अनुपात 40 प्रतिशत है, तथा सामुदायिक व निजी सेवाओं का अनुपात 30 प्रतिशत, जबकि व्यापार तथा वित्त का अनुपात 25 प्रतिशत रहा।

रोजगार की औद्योगिक संरचना

सभी योग्य लोगों को काम करना चाहिए। बच्चों को काम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। वृद्ध, बीमार तथा कमजोर लोगों को काम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। उत्पादन का मशीनीकरण होने पर भी मशीनों को चलाने के लिए मानव की आवश्यकता होती है। लोग जो नियोजित (employed) हैं तथा जो नियोजक (employer) हैं तथा जो स्वयं नियोजित (self-employed) हैं, सभी को श्रमिक माना जाना चाहिए। उनकी संरचनात्मक शक्ति को श्रम-शक्ति कहते हैं। लोग, जो वर्तमान मजदूरी पर काम करने के इच्छुक होते हुए भी अनियोजित हैं, तो उन्हें बेरोजगार समझना चाहिए। यह बोध होते हुए भी कि बहुत सारे लोग अ-नियोजित (unemployed)

सारणी 3.8
श्रमिकों का औद्योगिक वर्गीकरण 1972-73 से 1999-2000

(प्रतिशत में)

	1972-73	*1977-78*	*1983*	*1987-88*	*1993-94*	*1999-00*
कृषि इत्यादि*	74.0	72.0	68.4	64.1	63.9	59.8
खनन व उत्खनन	0.4	0.5	0.6	0.7	0.7	0.6
प्राथमिक क्षेत्र	*74.4*	*72.5*	*69.0*	*64.8*	*64.6*	*60.4*
विनिर्माण	8.8	10.2	10.7	11.3	10.6	12.1
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	0.2	0.2	0.3	0.4	0.4	0.3
निर्माण	1.8	1.7	2.3	3.8	3.2	4.4
द्वितीयक क्षेत्र	*[illegible].8*	*12.1*	*13.3*	*15.5*	*14.2*	*16.8*
व्यापार व वाणिज्य	5.0	5.8	6.9	7.3	7.6	9.4
परिवहन संग्रहण व संचार	1.8	1.9	2.5	2.7	2.8	3.7
अन्य सेवाएँ	8.0	7.7	9.2	9.7	10.5	9.6
तृतीयक क्षेत्र	*14.8*	*14.4*	*18.6*	*19.7*	*20.9*	*22.7*
कुल नियोजन (करोड़)	*23.6*	*27.1*	*30.3*	*32.2*	*37.2*	*39.7*

** पशुधन, वानिकी, मत्स्य पालन, शिकार तथा बागान को मिलाकर।*

स्रोत : *मेन पावर प्रोफाइल इंडिया 1999, इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाईड मेन पावर रिसर्च, नई दिल्ली। 1999-2000 के लिए पूर्ण ऑकड़े जो कि टास्क फोर्स ऑन एम्लायमेंट ओपरच्यूनीटी, योजना आयोग, भारत सरकार (जून 2001) में दिए गए।*

हैं फिर भी बेरोजगार लोगों की संख्या का प्रतिशत ज्यादा नहीं है (यद्यपि बेरोजगारी के संघटन में अधिकतर लोग शिक्षितों की श्रेणी में आते हैं)। इसका कारण यह है कि गरीब लोग बेरोजगार रहने में असमर्थ हैं। वे लोग किसी दूसरे के खेत, दुकान, फैक्टरी में काम करते हैं अथवा अपने आप को स्वयं किसी भी गतिविधि में व्यस्त रखते हैं। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारी सांख्यिकी में वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जो अपनी घरेलू गतिविधियों में व्यस्त हैं अथवा उनके घर के सदस्य घरेलू गतिवधियों में कार्यरत हैं। हमारे देश की पूरी जनसंख्या के 40 प्रतिशत लोग कार्यरत हैं। इसमें पुरुष-सदस्यों तथा ग्रामीण लोगों का अनुपात अधिक है।

नियोजन के आँकड़े विभिन्न विधियों से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनका वर्गीकरण दो वर्गों में किया जा सकता है-- क्षेत्रीय (अथवा औद्योगिक) तथा व्यावसायिक। ये मुख्यतः चार श्रेणियों के लिए हैं, जैसे-- ग्रामीण-पुरुष, ग्रामीण-महिलाएँ, शहरी-पुरुष तथा शहरी महिलाएँ। नियोजन के ऑकड़े जनगणना (Census) तथा राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSS) में उपलब्ध हैं। 2001 की जनगणना में विस्तृत आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिनकी हमें इस अध्याय के लिए जरूरत है। अतः हम NSS के आँकड़ों का प्रयोग करेंगे। यद्यपि एन.एस.एस. आँकड़े वर्ष 1972-73 से पांच वर्ष के अंतराल में उपलब्ध हैं। सारणी 3.8 देखें। यह कहना आसान होगा कि सत्तर के दशक की शुरुआत से 3/4 श्रमिक प्राथमिक गतिविधियों/कृषि क्षेत्र में कार्यरत थे। शताब्दी के अंत तक उनकी संख्या घटकर 3/5 हो गयी। विनिर्माण में श्रमिकों का अनुपात धीरे-धीरे 9.00 प्रतिशत से बढ़कर 12.00 प्रतिशत से कुछ ज्यादा हो गया। निर्माण गतिविधि काफी तेजी से बढ़ी। परिणामतः विचाराधीन अवधि में 10.8 प्रतिशत में 6 प्रतिशत प्वाइंट की बढ़ोत्तरी हो गयी। व्यापार तथा वाणिज्य तथा परिवहन गतिविधियाँ भी काफी तेजी से बढ़ी, उनका योगदान (अनुपात) दुगुना हो गया।

यह याद रखना महत्त्वपूर्ण होगा कि हमारा कुल नियोजन भी बढ़ रहा है। इन दिए गए प्रतिशत में कुल नियोजन को गुणा करने पर हमें प्रत्येक क्षेत्र में लोगों के नियोजित होने की संख्या मिलती है। इस समयावधि में कुल नियोजन 16 करोड़ बढ़ गया (लगभग 70 प्रतिशत); जो पिछले 6 वर्षों में 2.5 करोड़ बढ़ा। यह जानने को मिलेगा कि वर्ष 1999-2000 में पहली बार कृषि क्षेत्र में नियोजन घटा तथा 1993-94 की तुलना में यह 50 प्रतिशत से घट गया। इन 6 वर्षों में करीब 3 करोड़ लोग गैर-कृषि क्षेत्र में विलीन हुए। व्यापार विनिर्माण तथा निर्माण क्षेत्र ही मुख्य विलीन करने वाले क्षेत्र थे।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभ के वर्षों में अर्थव्यवस्था के बारे में एक विचार करने का प्रयास किया तथा देखा कि 20वीं शताब्दी का पहला आधा भाग अर्थव्यवस्था की वृद्धि तथा विविधता की दृष्टि से काफी खराब था। फिर हमने सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि तथा प्रतिव्यक्ति आय के बारे में विचार विमर्श किया। हमने देखा कि 50 वर्षों की समयावधि में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 4 प्रतिशत से कुछ ज्यादा थी। विशेषकर 70 के दशक में वृद्धि की दर कम थी। अस्सी तथा नब्बे के दशक में हमारी वार्षिक वृद्धि दर 6 प्रतिशत थी। पूरे 50 वर्षों की समयावधि में प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर 2 प्रतिशत से कुछ ज्यादा बढ़ी।

अस्सी तथा नब्बे के दशकों में वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी। फिर हमने सकल घरेलू उत्पाद का संघटन तथा विभिन्न क्षेत्रों के योगदान में परिवर्तन जानने के लिए विभिन्न क्षेत्रों का पूर्ण योगदान तथा तुलनात्मक योगदान तथा विभिन्न क्षेत्रों के वृद्धि दर का अध्ययन किया। हमने देखा कि कृषि का योगदान सकल घरेलू उत्पाद में चार गुना बढने के बावजूद वर्ष 1950-51 में 50 प्रतिशत से घटकर 1999-2000 में 24 प्रतिशत हो गया। प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से घटकर 27.5 प्रतिशत रह गया। द्वितीयक क्षेत्र का योगदान 13 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत हो गया, जबकि उसी समयावधि के लिए तृतीयक क्षेत्र का योगदान 28 प्रतिशत से 48 प्रतिशत बढ़ गया।

हमने ग्रामीण तथा शहरी, सार्वजनिक तथा निजी, संगठित तथा असंगठित क्षेत्र के योगदान के बारे में भी चर्चा की। ग्रामीण क्षेत्र का योगदान 1970-71 में 62 प्रतिशत से घटकर 1993-94 में 54 प्रतिशत हो गया जबकि इन क्षेत्रों की जनसंख्या 80 प्रतिशत से घटकर 75 प्रतिशत हो गयी। सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान जो वर्ष 1960-61 में 10 प्रतिशत से कम था, बढ़कर 1998-99 में 25 प्रतिशत से काफी ऊपर हो गया। संगठित क्षेत्र का योगदान वर्ष 1960-61 में 25 प्रतिशत था जो बढ़कर 40 प्रतिशत होने की संभावना है।

अंत में हमने श्रमिकों के विभिन्न क्षेत्रों में विलीन होने के बारे में विचार-विमर्श किया। हमें जानकारी मिली कि कृषि में कार्यरत श्रमिकों का प्रतिशत लगातार घट रहा है, वर्ष 1972-73 में 3/4 से घटकर 1999-2000 में 3/5 हो गया। निरपेक्ष संख्या भी 1999-2000 में कम हो गई। प्राथमिक क्षेत्र की गिरावट द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों में बराबर में बंट गयी।

अभ्यास

1. स्वतंत्रता के समय अथवा कुछ बाद के समय में भारतीय अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति थी? संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. वर्ष 1950-51 से पूरे पचास वर्षों के लिए तथा प्रत्येक दशक के लिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की चर्चा कीजिए। बढ़ने-घटने का लेखा दीजिए।
3. प्रत्येक दशक में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि का आशुचित्र दीजिए। चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि-दर की विधि से सत्तर के दशक में वृद्धि दर काफी कम थी, क्यों?
4. एक अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन से आपका क्या तात्पर्य है, समझाइए।
5. साधारण तथा प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में सम्मिलित गतिविधियों की गणना कीजिए।
6. सारणियों की सहायता से बताइए कि कृषि उत्पादन (विशेषकर खाद्यान्न) में आधिक्य (surplus) तथा हरित क्रान्ति की सफलता के बावजूद कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान बहुत ज्यादा घट गया।

7. आजादी के बाद की समयावधि में द्वितीयक क्षेत्र तथा इसके उप-क्षेत्रों का कैसा व्यवहार रहा?
8. वर्ष 1950-51 से तृतीयक क्षेत्र की वृद्धि तथा सकल घरेलू उत्पाद में इसके योगदान की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
9. सकल घरेलू उत्पाद में क्षेत्रीय संघटन के बारे में चर्चा कीजिए।
10. सार्वजनिक क्षेत्र को आप कैसे परिभाषित करेंगे? वर्ष 1960-61 से इसमें कैसे वृद्धि हुई?
11. ग्रामीण क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान में गिरावट, जो कि जनसंख्या में गिरावट से ज्यादा है, के आशय पर चर्चा कीजिए।
12. संगठित क्षेत्र के योगदान के पार्श्वचित्र (profile) में कैसे बदलाव हो रहा है?
13. नियोजन के औद्योगिक तथा व्यावसायिक वितरण में अंतर कीजिए।
14. वर्ष 1972-73 में भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के औद्योगिक वितरण के बारे में चर्चा कीजिए।

अध्याय 4

आर्थिक आधारिक संरचना

परिचय

आधारिक संरचना का तात्पर्य मूलभूत ढाँचे से है जिसका मतलब नींव है। इसको सभी आर्थिक गतिविधियों का आधारभूत कहा जा सकता है, चाहे यह कृषि से संबंधित हो या उद्योग अथवा पर्यटन से। संरचना का प्रयोग किसी प्रकार के स्थायी संस्थापन की मूलभूत आगतों की आपूर्ति के लिए लंबी समयावधि में प्रयोग होता है, जैसे रेल लाइनें, सड़कें, बाँध, नहर प्रणाली, विद्युत स्टेशन, उपग्रह व पाइपलाइनों, विद्यालय, विश्वविद्यालय व संस्थान, औषधालय तथा अस्पताल, राज्यों की सेवाओं के विभिन्न अंगों, जैसे– पुलिस तथा कानून व्यवस्था के लिए भवन इत्यादि।

सभी आर्थिक गतिविधियों में आगतों को निर्गतों में परिवर्तित करने के लिए शक्ति की जरूरत होती है। शक्ति की जरूरत कुछ समय में वस्तुओं को परिरक्षित करने के लिए भी होती है। इसका प्रयोग कम समय में उत्पादनों को परिपक्व करने के लिए भी होता है। घरों में भी शक्ति ऊर्जा का प्रयोग करने की जरूरत होती है। सभी गतिविधियों के लिए परिवहन की जरूरत होती है। कच्चा माल उत्पादन स्रोतों से काफी दूर हो सकता है। उत्पादन इकाई तथा उपभोग इकाई बाजार से दूर हो सकती है। एक उत्पाद को उत्पादन तथा उपभोग दोनों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। एक उत्पादन इकाई से दूसरी उत्पादन इकाई तक माल ढुलाई की आवश्यकता हो सकती है। लोगों को भी आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की जरूरत होती है। परिवहन तथा आराम के लिए भी किसी न किसी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

आज हम संचार व्यवस्था से न जुड़े हुए होने की बात सोच भी नहीं सकते हैं। डाक व तार के अतिरिक्त लोग तथा गतिविधियाँ दूर-संचार के माध्यम से जुड़ी हुई हैं। हम दूर-संचार में क्रान्ति के दौर से गुजर रहे हैं। चाहे व्यवसाय हो अथवा मनोरंजन, सूचना तकनीकी में एक बड़ी क्रान्ति आई है। हम देख सकते हैं कि बैंकिंग, वित्त व बीमा गतिविधियों में जिसमें बचत तथा निवेश करने वाले लोग एक दूसरे से एक अथवा अन्य तरीकों से जुड़े हुए हैं। यद्यपि इन गतिविधियों में बहुत समस्याएँ हैं फिर भी इन गतिविधियों के बिना रहने की सोच भी नहीं सकते हैं।

अतः हम देखते है कि घरेलू उपकरणों में घरों में प्रकाश करने के लिए, गर्म व ठंडा करने के लिए तथा अन्य घरेलू उपकरणों के लिए और अधिक शक्ति ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वस्तुओं की ढुलाई के लिए बहुत सारे उपकरण तथा मशीनों का प्रयोग होता है। यही बात दूर-

संचार के लिए भी लागू होती है। बैंकिंग तथा वित्तीय गतिविधियों में व्यावसायिक लेन-देन की प्रबलता होती है। संपत्ति का बीमा करने का व्यवसाय, जीवन के बीमा करने की तुलना में अधिक होता है।

इन सभी संरचनाओं में विकास मानव शक्ति के विकास के बिना संभव नहीं है, जिसके आधारभूत में शिक्षा है। हम जो उत्पादन करते हैं उसका आनंद नहीं ले सकते यदि हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं हो तो। यदि हम स्वस्थ नहीं रहेंगे तो उत्पादन नहीं कर सकते हैं। एक अस्वस्थ जनसंख्या उपलब्ध तकनीकी से कम उत्पाद करती है, जबकि अधिक उपभोग की जरूरत होती है। किसी भी मानव के लिए कम से कम अच्छी छत की जरूरत होती है। घटिया किस्म के मकान के कारण काफी संघर्ष करना पड़ता है जो हमारे उत्साह को कम कर देता है।

आधारिक संरचना को हम दो वर्गों, आर्थिक व सामाजिक में विभाजित कर सकते हैं। शक्ति ऊर्जा, परिवहन तथा संचार को आर्थिक वर्ग में तथा शिक्षा, स्वास्थ्य व आवास को सामाजिक में रखते हैं। यह विभाजन संतोषजनक नहीं है, क्योंकि पहला वर्ग प्रायः प्रत्यक्ष रूप से अच्छे जीवन स्तर में योगदान देता है तथा दूसरा वर्ग उच्च उत्पादकता के लिए उत्तरदायी है। फिर भी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासों का उपभोग लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है तथा वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी होता है। अतः इनका सामाजिक आधारिक संरचना के रूप में उल्लेख करने का कुछ आधार है।

इस अध्याय में हम आर्थिक आधारिक संरचना के तीन क्षेत्रों का वर्णन करेंगे, ये क्षेत्र हैं– ऊर्जा, परिवहन तथा संचार। अगले अध्याय में सामाजिक आधारिक संरचना तीन अन्य क्षेत्रों–शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासे– के बारे में अध्ययन करेंगे।

ऊर्जा

बिना ऊर्जा के कोई भी मानव गतिविधि नहीं हो सकती है। मानव इतिहास में लंबे समय में मानव की पेशीय शक्ति को लगातार घरेलू पशुओं की शक्ति से सहायता मिलती थी। बहुत से कृषि क्रिया-कलाप तथा ढुलाई का काम जैसे कृषि-उत्पादन खाद्यान्न तथा गैर-खाद्यान्न फसलों का बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी तथा गधों की सहायता से होता था। जल-प्रवाह भी कई प्रकार से सहायक था, जैसे लकड़ी के लट्ठों से लेकर, नावों तथा जहाजों को बहाकर ले जाने में। जब भी तथा जहाँ भी संभव हुआ सूर्य के प्रकाश, हवा तथा गिरते हुए पानी का उपयोग किया जाता था।

यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि ईंधन की लकड़ी, कृषि अपशिष्ट तथा गोबर, तीन ऊर्जा स्रोत हैं। इनका उपयोग हमारे गाँवों तथा कस्बों में आज भी खाना पकाने में प्रयोग होता है। वर्तमान में हम ईंधन की लकड़ी का 50 मिलियन टन, कृषि अपशिष्ट 66 मिलियन टन प्रयोग करते हैं, जिनका प्रतियोगी रूप में प्रयोग, पशुओं के लिए दाना, घास, छत की लकड़ी, खाद के रूप में होता है। हमारे पशु लगभग 325 मिलियन टन गोबर का उत्पादन करते हैं जिसमें से 75 मिलियन टन खाद के रूप में प्रयोग होता है तथा शेष गोबर, खाना पकाने के काम आता है। इनको साधारणतया गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा स्रोत के रूप में जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि पचास के दशक के पूर्वार्ध में गैर-वाणिज्य ऊर्जा का अनुपात कुल ऊर्जा में 74 प्रतिशत था, जो कि नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में घटकर 34 प्रतिशत रह गया। ईंधन की लकड़ी

का अनुपात कुल गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा में लगभग 2/3 है। यह ध्यान देना चाहिए कि पूरी गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा का उपयोग घरेलू क्षेत्र में किया जाता है।

बाद में लोगों ने विनिर्माण क्षेत्र में भाप शक्ति का प्रयोग करना सीख लिया। ईंधन का प्रयोग पानी के वेग में भाप बनाने में होता था जिससे (भाप) से अंततः यांत्रिक शक्ति उत्पन्न करने के काम आता था। जब यूरोप में जंगलों की कमी हो गयी थी तो उन्होंने जंगलों से लकड़ी ले जाना बंद कर दिया तथा कोयले की खुदाई भी बन्द कर दी। कुछ समय तक रेलगाड़ियाँ भाप-ऊर्जा से चलती थीं। भाप के ईंजन का आविष्कार तथा पेट्रोलियम की खोज ने परिवहन में प्रयोग होने वाली शक्ति का दृश्य बदल दिया, जबकि दूसरी ओर विद्युत शक्ति ने विनिर्माण का दृश्य बदल दिया।

ऊर्जा के प्रयोग के प्रतिरूप (Pattern of Energy Use)

आधुनिक वाणिज्यिक ऊर्जा पर विस्तृत चर्चा करने से पहले यह अच्छा होगा कि हम ऊर्जा उपभोग के प्रतिरूप में परिवर्तन के बारे में जानें। यह ध्यान देना चाहिए की सभी ऊर्जा का कुल जोड़ करने के लिए हमें उनको एक समान इकाई में बदलना होगा। ऐसी एक इकाई मिलियन टन तेल के तुल्यमान (MTOE अर्थात् मिलियन टन ऑफ आइल इक्विलेंट) है। एक बार जब इनको समान इकाई में परिवर्तित कर देते हैं तो उनके प्रतिशत की संगणना कर सकते हैं। कोयला, भूरा कोयला, पेट्रोलियम तथा गैस, ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत हैं। इनका (ऊर्जा) विनिर्माण प्रक्रिया तथा विद्युत शक्ति के उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग होता है। किंतु शक्ति के उत्पादन में इनका प्रयोग वाणिज्यिक ऊर्जा के अंतिम स्रोत के रूप में होता है। हमने पहले से भी देखा है कि लकड़ी, कृषि अवशेष तथा पशु अपशिष्ट का अब गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग होता है। हमें ध्यान देना चाहिए कि सूर्य के प्रकाश, हवा, लहरें, बायोमास तथा जैविक पदार्थों पर आधारित ऊर्जा को वाणिज्यिक माना जाता है। अतः हम प्रारंभिक ऊर्जा को वाणिज्यिक तथा गैर-वाणिज्यिक में बाँटेंगे।

सारणी 4.1
ऊर्जा के उपभोग के प्रतिरूप

(मिलियन टन तेल तुल्यमान प्रतिशत में)

वर्ष	*प्राथमिक उर्जा*		*अंतिम वाणिज्यिक उर्जा*			
	वाणिज्यिक	*गैर-वाणिज्यिक*	*कोयला*	*पेट्रोलियम पदार्थ*	*प्राकृतिक गैस*	*विद्युत*
1953-54	28.4	71.6	80.1	16.7	—	03.2
1960-61	34.7	65.3	75.3	19.9	—	04.8
1970-71	40.6	59.4	56.1	34.1	0.6	09.2
1980-81	46.9	53.1	47.9	40.3	1.1	10.7
1990-91	59.3	40.7	35.9	43.6	5.5	15.0
1996-97	65.9	34.1	28.9	47.7	6.3	17.1

स्रोत : नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997-2002, भाग II, योजना आयोग, भारत सरकार।

वाणिज्यिक ऊर्जा को कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ, प्राकृतिक गैस तथा विद्युत में विभाजित करेंगे। सारणी 4.1 देखें।

सारणी मुख्यतः समयावधि में अंशतः ऊर्जा के प्रयोग में तकनीकी बदलाव तथा आधुनिकीकरण तथा वातावरण से जुड़ी जागरूकता के बारे में दर्शाती है। सापेक्ष परिवेश में वाणिज्यिक ऊर्जा के प्रयोग में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। यद्यपि पचास के दशक की शुरूआत से कोयले का उपभोग दस गुना बढ़ा है परंतु इसका अंतिम प्रत्यक्ष उपभोग अनुपात के रूप में बहुत कम हुआ। पेट्रोलियम की कमी के बावजूद इसका अंतिम वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग लगभग 50 प्रतिशत है।

इसके बाद हम वाणिज्यिक ऊर्जा के प्रत्येक रूप जिसमें कोयला तथा भूरा कोयला, पेट्रोलियम (और गैस) तथा विद्युत सम्मिलित हैं, की चर्चा करेंगे।

कोयला

कोयले का वाणिज्यिक दोहन वर्ष 1774 में दामोदर घाटी के निकट रानीगंज में शुरू हुआ था। यह देश के कई भागों मुख्यतः बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा आंध्रप्रदेश में मिलता है। वर्तमान में हमारे पास 2,00,000 मिलियन टन कोयला, जिसमें 80,000 मिलियन टन प्रमाणित तथा 80,000 मिलियन टन सांकेतिक तथा 40,000 मिलियन टन अनुमानित है।

वर्ष 1853 में रेलवे के आगमन से जिसमें भाप के इंजन का प्रयोग होता था, कोयले का प्रयोग लगातार बढ़ता गया तथा पचास वर्षों में इसका प्रयोग 1 मिलियन टन से बढ़कर 6 मिलियन टन हो गया। अगले पचास वर्षों में (1950-51 से) यह बढ़कर 32-33 मिलियन टन हो गया जबकि स्वतंत्रता के बाद के पचास वर्षों में कोयले का उपभोग (भूरे कोयले को मिलाकर) 10 गुने से ज्यादा बढ़कर 332 मिलियन टन हो गया। आजकल, कोयला भारत में वाणिज्यिक ऊर्जा का एक प्रमुख प्राथमिक स्रोत है। सारणी 4.2 देखें।

कोयला कई उद्योगों में प्रक्रिया तथा ऊर्जा दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। ऊर्जा के लिए इसका प्रयोग सीधे किया जाता है तथा, यदि यह अच्छे किस्म का होता है तो इसे कोक में परिवर्तित कर दिया जाता है। गैर-कोकिंग कोयले का प्रयोग समय के साथ बढ़ गया है, क्योंकि थर्मल पावर स्टेशन इस पर फीड स्टॉक के लिए निर्भर हैं, जैसा सत्तर के दशक में सोचा गया था। इसके लिए जहाँ सत्तर के दशक के आरंभ में कुल कोयले के एक-तिहाई भाग का प्रयोग होता था वहीं इसके लिए कुल कोयले के दसवें भाग का प्रयोग होता है। कोक (कच्चा व पक्का) का प्रयोग

सारणी 4.2
कोयले तथा भूरे कोयले का उत्पादन

(मिलियन टनों में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
कोयला	32.20	55.23	72.95	113.91	211.73	309.63
भूरा कोयला	—	—	03.39	5.11	13.77	22.95
कुल योग	**32.20**	**55.23**	**76.34**	**119.02**	**225.50**	**332.58**

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

मूलतः धातु-कर्म (metallurgical) उद्योगों जैसे लौह तथा इस्पात संयंत्र (पिग आयरन के उत्पादन के लिए) तथा गैर-धातु कर्म (non-metallurgical) प्रतिशत हिस्सा कोक की भट्टी में सख्त उत्पादन में प्रयोग होता है। हार्डकोक फिर इस्पात संयंत्र प्लान्ट में प्रयोग होता है। पचास के दशक के

सारणी 4.3
विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार कोयले का उपभोग

(मिलियन टनों में)

	पावर	इस्पात	सीमेंट	रेलवे	अन्य	कुल
1980-81	34.5	17.6	4.3	10.9	27.7	95.0
1885-86	72.9	24.5	7.9	9.1	40.7	155.1
1990-91	118.6	24.5	10.1	5.0	47.0	205.2
1995-96	184.5	26.4	11.0	0.3	48.9	271.1
2000-01						

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 2000-01, कोयला मंत्रालय, भारत सरकार।

उद्योगों में होता है। गैर-कोकिंग कोयले का प्रयोग अन्य उद्योगों में भी होता है। इसका प्रयोग खाना बनाने (घरेलू तथा व्यावसायिक) में होता है। इसके उपभोग-आँकड़ों के लिए सारणी 4.3 देखें।

लिगनाइट (भूरा कोयला) कोयले के समान होता है, जिसे भूरा कोयला कहते हैं। इसमें कोयले की तुलना में कम ऊर्जा हाती है। इसका उत्पादन लगभग 20 मिलियन टन होता है। भूरे कोयले के पिट-हेड स्टेशन के निकट वाले थर्मल पावर स्टेशन इसे फीड स्टॉक के रूप में प्रयोग करते हैं। भूरे कोयले की चूरी के गोले बनाकर इनको घरेलू ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। भूरा कोयला गुजरात तथा तमिलनाडु में मिलता है।

लगभग 66 प्रतिशत तक कोयले का उपभोग, थर्मल पावर स्टेशन पर फीड स्टॉक के रूप में होता है। सत्तर के दशक में यह सर्वसम्मति से निर्णय किया गया था कि कोयले का प्रयोग विद्युत उत्पादन, थर्मल पावर के रूप में बढ़ाया जाए, परंतु इसमें कुछ निश्चित सीमाएँ हैं। कोक का 10 शुरुआत में रेलवे इसका मुख्य उपभोक्ता था परंतु अब इसका प्रयोग नगण्य है। 5 प्रतिशत तक कोयले का प्रयोग कोयले की खानों में होता है। यह वास्तव में चिंता का विषय है कि कोयले का स्टाक समाप्त होने पर क्या होगा। उपभोग की वर्तमान दर से प्रमाणित स्टॉक शायद 250 वर्षों तक रहेगा। हमारी मांग के बढ़ने की आशा है तथा ऐसी भविष्यवाणी की जाती है कि यह स्टॉक 125 वर्षों से ज्यादा नहीं रहेगा।

पेट्रोलियम

भारत में तेल की खुदाई डिगबोई में वर्ष 1901 में हुई। इसकी मात्रा बहुत कम थी। उस समय इसकी आवश्यकता उतनी नहीं थी जितनी आज है। मोटर परिवहन उतना दिखाई नहीं देता था, जिसमें बहुत पेट्रोल/डीज़ल की जरूरत हो। घरों में प्रकाश के लिए मिट्टी के तेल का प्रयोग होता था। उस समय रेलगाड़ियाँ भाप के इंजन से चलायी जाती थीं।

मध्य पूर्व के बहुत से देश इसलिए धनी नहीं हैं क्योंकि उनकी अर्थव्यवस्था विकसित है बल्कि इसलिए कि उनके पास तेल के भंडार हैं। वर्तमान प्रौद्योगिकी ऊर्जा के लिए तेल पर निर्भर है तथा कुछ हद तक प्रक्रिया के लिए भी निर्भर है। हम बहुत से पेट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग करते हैं यह बिना जाने कि ये किन पदार्थों से बने हैं। कच्चे पेट्रोलियम से हमें पेट्रोल, डीज़ल, केरोसिन, गेसोलिन, मिट्टी का तेल, बिटूमेन, पेराफिन, मोम तथा कोलतार मिलता है। पहले यह प्रतीत होता था कि तेल का भंडार केवल असम में है। स्वतंत्रता के बाद वर्ष 1956 में हमने तेल व प्राकृतिक गैस निदेशालय की स्थापना की। बाद में 1959 में इसका परिवर्तन तेल व प्राकृतिक गैस आयोग में कर दिया गया। आयोग ने इसमें बहुत रुचि दिखाई तथा असम में और भंडारों की खोज की। 1961 अंकलेश्वर (गुजरात) में तेल निकला तथा बाद में कैम्बे बेसन (महाराष्ट्र) में। तथापि वर्ष 1960-61 तक हम 0.5 मिलियन टन से ज्यादा तेल का उत्पादन नहीं कर सके। किंतु 20 वर्ष बाद 1980-81 में हमने 20 गुना अधिक 10.5 मिलियन टन तेल का उत्पादन किया। अगले 20 वर्षों में अर्थात् शताब्दी के अंत तक हमारे कच्चे तेल का उत्पादन अभी भी 32 मिलियन टन के लगभग था। यह ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे तेल के उपभोग की गति हमारे तेल के घरेलू उत्पादन से अधिक है। जब हम 10 मिलियन टन उत्पादन करते थे तब हमारा उपभोग 25 मिलियन टन होता था। जब हम 30 मिलियन टन उत्पादन करते हैं तो 85 मिलियन टन उपभोग करते हैं। इस दबाव से हमें लगभग 45-50 मिलियन टन आयात करना पड़ता है। हमने अपना स्वयं उत्पादन स्तर भविष्य में बचत के लिए संरक्षित कर दिया है। शताब्दी के पहले वर्ष में हमारा आयात बढ़कर 74 मिलियन टन हो गया। कच्चे तेल के अलावा हम अन्य पेट्रोलियम पदार्थों का भी आयात करते हैं। इस क्षेत्र में आयात तथा उत्पादन की दृष्टि से विकास के लिए सारणी 4.4 देखें।

प्राकृतिक गैस हमारा नया संसाधन है, तथा इसके उत्पादन के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास हो गया है। सत्तर के दशक की शुरुआत में वार्षिक उत्पादन 1.5 बिलियन क्यूबिक मीटर था, अब हम लगभग 30 बिलियन क्यूबिक मीटर का उत्पादन करते हैं। इसको द्रवित (liquified) करके इसका प्रयोग घर में खाना पकाने की गैस तथा थर्मल प्लांट में ईंधन के रूप में करते हैं। पहले इसको जला दिया जाता था क्योंकि इसका

सारणी 4.4

पेट्रोलियम सांख्यिकी : उत्पादन, उपलब्धता तथा शोधन

(मिलियन टनों में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
उत्पादन	0.3	0.5	6.8	10.5	33.0	32.4
आयात		6.0	11.7	16.2	20.7	74.1
उपलब्धता		6.5	18.5	26.7	53.7	106.5
रिफाइनरी	0.3	6.6	18.4	25.8	51.8	103.4

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

उत्पादन करने के लिए हमारे पास कोई प्रौद्योगिकी नहीं थी।

कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस दोनों के भंडार के बारे में जानना चाहिए। हमारे पास पुनः प्राप्त करने योग्य कच्चे तेल 650 मिलियन टन तथा प्राकृतिक गैस 625 मिलियन क्यूबिक मीटर का भंडार शेष है। कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस के वर्तमान उत्पादन दर से हमारा स्टॉक 20-25 वर्षों में समाप्त हो जाएगा। इसीलिए हम अपना उत्पादन स्तर नहीं बढ़ा रहे हैं तथा आयात पर निर्भर हैं। तेल के नये भंडार के खोज की संभावना है, फिर भी वैकल्पिक प्रौद्योगिकी विकसित करने की तथा पेट्रोलियम बचाने की जरूरत है।

विद्युत

आज जो कस्बों, शहरों, महानगरों में रहते हैं वे विद्युत के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अधिक कोयला तथा प्राकृतिक गैस का प्रयोग विद्युत उत्पादन में हो जाता है। जल विद्युत तथा परमाणु नाभिकीय शक्ति थर्मल पावर के सहयोगी के रूप में प्रयोग होती है। यह किलोवाट आवर्स् (KWH) में उत्पादित होती है। एक 1000 वाट का बल्ब एक घंटे जलने से एक किलोवाट-आवर ऊर्जा का उपभोग करता है। एक 1000 वाट क्षमता वाला जनरेटर जब पूरी क्षमता से चलता है तो एक घंटे में एक किलोवाट ऊर्जा का उत्पादन करता है। सामान्य भाषा में इसको यूनिट कहते हैं। 1950 में हमने 6.6 बिलियन KWH विद्युत पैदा की थी। आज हम 80 गुना अधिक, 527 बिलियन KWH विद्युत पैदा करते हैं। विद्युत का कुछ हिस्सा उद्योगों द्वारा अपने उपभोग के लिए होता है। ऐसे प्लांट को केपटिव प्लांट तथा ऐसी विद्युत को गैर-उपयोगिता (non-utility) उत्पादन कहेंगे।

विद्युत उत्पादन के तीन आधारभूत स्रोत हैं- तापीय (थर्मल), जलीय (हाइड्रो) तथा नाभिकीय (न्यूक्लियर)। स्वतंत्रता के बाद हमने जलीय विद्युत उत्पादन पर अधिक बल दिया जिसे हम हाइडिल (जलीय विद्युत का संक्षिप्त रूप) कहते हैं। किंतु, सत्तर के दशक के मध्य से हमने कोयले का उपभोग कर थर्मल विद्युत उत्पादन करने का निर्यण लिया। नाभिकीय शक्ति का भी इसमें थोड़ा योगदान है। लगभग 10 प्रतिशत विद्युत का उत्पादन उद्योगों द्वारा स्वयं-उपभोग के लिए किया जाता है। सारणी 4.5 देखें।

कौन इस विद्युत का उपभोग करता है? निश्चित ही गैर-उपयोगिता के द्वारा उत्पादित विद्युत का उद्योगों द्वारा उपभोग होता है। किंतु उपयोगिता द्वारा उत्पादित विद्युत का उपभोग उद्योगों कृषि, रेलवे, वाणिज्यिक संस्थापनाओं तथा घरों के द्वारा किया जाता है। इन वर्गों में विद्युत वितरण नीचे सारणी 4.5 में प्रस्तुत किया गया है।

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे जोतों की संख्या बढ़ रही है, यद्यपि वे बहुत छोटे हैं, वैसे-वैसे विद्युत का प्रयोग कृषि के विभिन्न प्रचालनों में बढ़ रहा है। वास्तव में 50 वर्षों में विद्युत का उपयोग कृषि प्रचालनों में 500 गुना बढ़ा है। घरेलू उपभोग भी अत्यधिक बढ़ा है। विद्युत का उपभोग उद्योगों में तुलनात्मक घटा है फिर भी यह (उपभोग) सबसे अधिक है। यदि हम बिना-उपयोगिता की गणना करें, जो केवल उद्योगों के लिए है, तब उद्योगों में इसका उपभोग लगभग 37 प्रतिशत होगा तथा कृषि में 30 प्रतिशत से कुछ कम होगा। हम यह देखकर संतोष करते हैं कि 5 लाख से अधिक गांवों का विद्युतीकरण हुआ है तथा 1.27 करोड़ से अधिक पम्पसेटों को विद्युत ऊर्जा देकर चालू किया गया है, हमें यह याद रखना चाहिए

सारणी 4.5

विद्युत उत्पादन (सकल) बिलियन KWH में

वर्ष	उपयोगिता					
	थर्मल	हाइड्रो	न्यूक्लियर	कुल	गैर-उपयोगिता	कुल
1950-51	2.6	2.5	—	5.1	1.5	6.6
1960-61	9.1	7.8	—	16.9	3.2	20.1
1970-71	28.2	25.2	2.4	55.8	5.4	61.2
1980-81	61.3	46.5	3.0	110.8	8.4	119.3
1990-91	178.7	71.7	6.1	264.3	25.1	289.4
2000-01	386.8	80.6	13.3	480.7	46.0	526.7

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

सारणी 4.6

उपभोक्ता-श्रेणी अनुसार उपयोगिता में विद्युत का उपभोग

(प्रतिशत में)

वर्ष	औद्योगिक	कृषि	वाणिज्यिक	संकर्षण	घरेलू	अन्य
1950-51	62.6	3.9	7.5	7.4	12.6	6.0
1960-61	69.4	6.0	6.1	3.3	10.7	4.5
1970-71	67.6	10.2	5.9	3.2	8.8	4.3
1980-81	58.4	17.6	5.7	2.7	11.2	4.4
1990-91	44.2	26.4	5.9	2.2	16.8	4.5
2000-01	33.9	31.2	6.4	2.3	21.2	5.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

कि 60 प्रतिशत ग्रामीण परिवार तथा 20 प्रतिशत शहरी परिवार विद्युत शक्ति से जुड़े हुए नहीं हैं।

गैर-परंपरागत ऊर्जा

जीवाश्म ईंधनों से संबंधित समस्याओं, जैसे रिक्तीकरण (depletion) तथा प्रदूषण के बढ़ने के कारण गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों को विकसित करने पर बहुत बल दिया जा रहा है। इनमें से कुछ स्रोतों के परंपरागत प्रयोग की तकनीक विकसित नहीं थी। फिर भी सौर-ऊर्जा के सहित ऊर्जा के सभी रूपों को पहले विद्युत में परिवर्तित करना पड़ता है। बॉयोमास, वायु, जलीय अपशिष्ट का परिवर्तन, ज्वार/लहरें (waves) समुद्र के ऊपर तापमान के तथा भूतापीय ऊर्जा सभी इस तरह की ऊर्जा के रूप हैं। इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है कम से कम उपयोगी संपूरक के रूप में। रासायनिक स्रोत जैसे ईंधन कोशिका और हाइड्रोजन का जलना भी इसके रूप हैं। फिर भी बहुत से संदर्भ में पर्याप्त प्रौद्योगिकी को विकसित करने की जरूरत है। हवा में ऊर्जा की उत्पत्ति पहले से ही

कई जगहों पर हो रही है। लगभग 204 ऐसी जगहें हैं, जहाँ पर विद्युत ऊर्जा उत्पादन के लिए हवा का प्रयोग होता है। निम्नलिखित राज्यों में घूमते हुए हवा के टरबाइन देखे जा सकते हैं, जैसे– आंध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु तथा राजस्थान। सौर तापीय ऊर्जा का प्रयोग सौर-कूकर में होता है। फिर भी इसकी सफलता सीमित है। वर्तमान में हम ज्ञात क्षमता का केवल 3 प्रतिशत ही ऊर्जा उत्पादन करते हैं।

परिवहन

बहुधा वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग विभिन्न जगहों पर होता है। उत्पादन प्रक्रिया के लिए कच्चा माल विभिन्न स्थानों पर मिलता है। कुछ वस्तुओं का स्टॉक बिक्री के स्थान से अलग होता है। लोग रहते एक जगह तथा काम दूसरी जगह पर करते हैं। लोग एक जगह से दूसरी जगह समारोह में सम्मिलित होते हैं तथा तीर्थयात्रा पर घूमने जाते हैं। लोग लगातार किसी न किसी प्रकार के वाहन का प्रयोग करते हैं, जो बैलगाड़ी से नाव तक, रेलवे से सड़क तक, हवाई जहाज से जलयान तक हो सकता है। हमें विशेषकर दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है एक, माध्यम तथा दूसरा, वाहक। पानी के रास्तों–नदियों, नहरों, झीलों तथा समुद्र को नाव व जलयान की आवश्यकता होती है। वायु मार्गों को वायुयान तथा हेलीकाप्टर, रेलवे को गाड़ियों की, तथा आजकल सड़क को रिक्शा, तांगो के अलावा ट्रक, बस, कार की आवश्यकता होती है। पानी के पाइप लाइन की तरह अब हम कच्चे तेल, पेट्रोलियम पदार्थों तथा प्राकृतिक गैस को पाइपलाइन का परिवहन करते हैं।

रेलवे

रेलवे, माल तथा यात्रियों के परिवहन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। 150 वर्ष पहले, वर्ष 1853 में, इसकी साधारण शुरुआत हुई थी जब पहली रेलगाड़ी 16 अप्रैल को बम्बई (अब मुम्बई) तथा थाणे के बीच 20 मील चली थी। 19वीं शताब्दी में यह एक बहुत बड़े नेटवर्क के रूप में विकसित हो गयी है। भारत में वर्ष 1900 तक 25000 मील (40000 km) की रेल लाइनें हो गयी थीं, जिसमें वर्तमान पाकिस्तान, बांगलादेश तथा बर्मा सम्मिलित थे। अगले 50 वर्षों में केवल 10,000 मील (16000 kms) ही और जुड़ीं तथा वर्तमान भारत में 1950 तक 54,000 कि.मी हो गयीं।

अंग्रेजों ने रेलवे का विकास प्रशासनिक तथा वाणिज्यिक (व्यावसायिक) उद्देश्य से किया था। इससे उनको संख्या नियंत्रण में सहायता मिली तथा देश के रास्ते अंग्रेजों के लिए खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल लाने तथा अपने उत्पादनों के बिक्री के लिए खुल गए। यदि हम रेलवे के निर्माण को विस्तार से देखें तो मालूम होगा कि इसकी शुरुआत बन्दरगाह शहरों से हुई तथा अन्दर के हिस्सों में फैल गयी। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादों, विशेषकर कपास, के निर्यात को सुविधा देना था। इसका विकास विदेशी व्यापार के लिए

अंग्रेजों की रुचि का प्रमाण

यदि आप एक साधारण डिब्बे में बैठे हैं तथा आपकी गाड़ी किसी रेल पुल पर रुकती है तो आप ब्रिटिश कंपनियों के नाम पढ़ सकते हैं जिन्होंने पुल बनाने के लिए इस्पात के गर्डर की आपूर्ति की थी।

ज्यादा था न कि आंतरिक व्यापार अथवा देश में उद्योगों के विकास के लिए। रेलवे का विकास अंग्रेजों के इस्पात तथा अभियांत्रिक उद्योगों के कीमती मालों के बाजार तथा ब्रिटिश कंपनियों के लाभदायक निवेश के लिए था।

भारत सरकार ने निजी रेलवे कंपनियों को बहुत सी सुविधाएँ जैसे मुफ्त जमीन तथा पूंजी पर कम से कम प्रतिफल की गांरटी दी थी। इसका उद्देश्य अधिक-से-अधिक क्षेत्र में रेल लाइनें बिछाना था। निजी स्वामित्व तथा प्रबंधन की आलोचना के कारण भारत सरकार ने निजी कंपनियों को अपने नियंत्रण में वर्ष 1925 में ले लिया। उसी वर्ष पहले विद्युत इंजन का प्रवेश भारतीय रेलवे में हुआ। वास्तव में इसी समय रेलवे बजट मुख्य वित्त बजट से अलग हुआ। रेलवे बजट भारत सरकार के मुख्य (वित्त) बजट से कुछ दिन पहले संसद में प्रस्तुत किया जाता है। वर्ष 1950 से पूर्व सरकार द्वारा राजाओं के राज्य रेलवे अपने नियंत्रण में लेने के बाद रेलवे के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया पूरी हुई।

भारत की रेलवे प्रणाली प्रबंधन, पटरियों, स्टॉक तथा कर्मचारियों के संदर्भ में विश्व में सबसे बड़ी है। यह देश का सबसे बड़ा सार्वजनिक उपक्रम है। इसमें करीब 16 लाख कर्मचारी स्थायी तथा 2 लाख से ज्यादा अस्थायी कर्मचारी हैं। यात्री गाड़ियों के सहित यहाँ 13500 रेल गाड़ियाँ चलती हैं जो लगभग 7000 छोटे बड़े स्टेशनों को जोड़ती हैं। ये 1.2 करोड़ यात्रियों को प्रतिदिन लाती-ले जाती हैं तथा ये वास्तव में देश की जीवन रेखा कहलाती हैं। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 53,600 कि.मी. लंबा मार्ग (रेलवे रूट) था तथा चालू पटरी 59,300 कि.मी. और कुल पटरियाँ 77,600 कि.मी. लंबी थीं। वर्ष 2000-01 में हमारे पास 63,000 कि.मी. लंबा मार्ग, चलता हुआ रेल मार्ग 81,200 कि.मी. तथा कुल पटरियाँ 1,08,000 कि.मी. लंबी थीं। इस का तात्पर्य है कि पटरियों की सघनता वर्ष 1950-51 में 1.1 से बढ़कर 2000-01 में 1.7 हो गयी। जबकि मार्गों की लंबाई 20 प्रतिशत भी नहीं बढ़ीं। चालू पटरियाँ 30 प्रतिशत तथा कुल पटरियाँ 40 प्रतिशत बढ़ीं। महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारा विद्युतीकृत रेल मार्ग जो 1950-51 में 400 कि.मी. से भी कम था तथा केवल उपनगरों में ही था, अब 15,000 कि.मी. से भी अधिक हो गया है। इसमें से 90 प्रतिशत भारी सघनता माल मार्ग की है। कुछ भाग मुम्बई और चेन्नई, चेन्नई-कोलकाता को छोड़कर सभी मार्ग जो चारों महानगरों को जोड़ते हैं, (दिल्ली व मुम्बई के बीच) का विद्युतीकरण हो गया है। ज्यादातर पटरियाँ (65 प्रतिशत) बड़ी लाइन हैं। छोटी मीटर लाईन से बड़ी लाइन में परिवर्तन, विकास की सूची में, एक महत्त्वपूर्ण बात है (गेज का मतलब दो रेलपटरियों के बीच की दूरी)।

रेलवे इंजन की संख्या 1950-51 में 8,200 से बढ़कर 1970-71 में 11,000 हो गयी परंतु बाद में यह घटकर केवल 7300 (जिसमें 2800 विद्युत इंजन हैं) रह गयी।

यद्यपि पहले के इंजन भाप के होते थे तथा धीमी गति से चलते थे, अब वे डीजल तथा विद्युत के हैं तथा तेज गति से चलते हैं और ज्यादा भार खींचते हैं। इसी प्रकार डिब्बे तथा माल डिब्बे जो लगभग क्रमशः 40,000 तथा 26,400 हैं उनमें अच्छे उपकरण लगे हैं तथा वे अच्छी सेवाएँ देते हैं। इंजन डिब्बे तथा माल डिब्बे सबको मिलाकर रोलिंग स्टॉक (rolling stock) कहते हैं। प्रगति जानने के लिए सारणी 4.7 देखें।

यह सारणी रेलवे के निष्पादन के बारे में एक सोच बनाने में आपकी सहायता के उद्देश्य

सारणी 4.7
स्वतंत्रता के बाद की समयावधि में रेलवे की उन्नति

मार्ग/पटरी (कि.मी.)	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
मार्ग की लंबाई	53596	56247	59790	61240	62367	62759
मार्ग का विद्युतीकरण	388	748	3706	5345	9968	14261
रोलिंग स्टॉक						
रेल इंजन	8209	10624	11158	10908	8417	7517
डीज़ल	17	181	1169	2403	3759	4651
विद्युत	72	131	602	1036	1743	2810
सवारी डिब्बे	19628	28439	35145	38333	38511	41349
माल डिब्बे	205596	307907	383990	400946	346102	244419
थ्रो पुट (MT/MTK/M/MK)						
गुड्स ट्रैफिक आरीजिनेटिंग (MT)	93	156	196	220	341	450
गुड्स कैरीड (MK)	44117	87680	127358	158474	242699	301510
यात्री आरीजिनेटिंग (M)	1284	1594	2431	3613	3858	4411
यात्री कैरीड (MK)	66517	77665	118120	208558	295648	403088
उत्पादकता (कि.मी.)						
औसत लोड (यात्री)	51.8	48.7	48.6	57.7	76.6	91.6
औसत लोड (माल)	470	561	648	720	711	644

टिप्पणी : *M = million, MK = million-kilometres, MT = million-tonnes, MTK = million tonne-kilometres*

स्रोत : *भारतीय रेलवे ईयर बुक 1999-2000, रेलवे मंत्रालय (रेलवे बोर्ड), भारत सरकार व आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

से दी गई है। उदाहरण के लिए आप देख सकते हैं -कि माल आरीजिनेटिंग मिलियन टन तथा माल केरीड मिलियन टन-किलो मीटर क्रमशः पांच से सात गुना बढ़ गया है, जबकि यात्री डिब्बों तथा माल डिब्बों में बढ़ोतरी केवल 2 गुनी तथा 1.2 गुनी हुई है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि 60 प्रतिशत यात्री उपनगरों के यात्री होते हैं जो कि पैसेंजर किलोमीटर में 20 प्रतिशत का तथा रेलवे को 11 प्रतिशत राजस्व का योगदान करते हैं। हम देखते हैं कि यात्री डिब्बों की संख्या तेजी से नहीं बढ़ रही है। परंतु बैठने की क्षमता बढ़ गयी है क्योंकि बड़ी लाइन डिब्बे में ज्यादा यात्री बैठ सकते हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि सात बड़ी (मुख्य) वस्तुएँ जो अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र के लिए आवश्यक हैं जैसे कोयला, खाद्यान्न, उर्वरक, पेट्रोलियम पदार्थ, इस्पात, निर्मित इस्पात तथा स्टील प्लांट के लिए कच्चा माल इत्यादि माल यातायात का बड़ा हिस्सा (95 प्रतिशत) हैं। कुछ आवश्यक वस्तुएँ जैसे नमक, फल व सब्जी, गन्ना, अयस्क, पशुधन इत्यादि 3 प्रतिशत का योगदान देती हैं।

हमें याद होना चाहिए कि रेलवे का आरम्भ निजी कंपनियों ने किया था तथा इसे भारत में ब्रिटिश सरकार का सहयोग प्राप्त था। वर्ष 1925 में इसका राष्ट्रीयकरण हो गया था। अतः इसने (रेलवे ने) 75 वर्ष निजी कंपनियों के नियंत्रण में तथा 75 वर्ष सरकार के स्वामित्व में पूरे किए। किंतु रेलवे विभाग का लेखा भारत सरकार के सामान्य लेखों से अलग है। भारत सरकार ने केपिटल इक्वीटी प्रदान की थी तथा इस पर इसे लाभांश मिलना चाहिए था। सामान्यतः लाभांश लाभ पर मिलता है परंतु रेलवे को पूंजी का 6 प्रतिशत भुगतान देना पड़ रहा है जो लगभग 20,000-25,000 करोड़ रुपये है।

यह ध्यान देना चाहिए कि रेलवे विभाग की कुल आय जो कि लगभग 30,000 करोड़ रुपये है, का 2/3 हिस्सा माल यातायात से तथा 1/3 हिस्सा यात्री यातायात से मिलता है। यह अपनी आय का अधिकतर हिस्सा पदार्थों के आगत तथा कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति के रूप में खर्च करता है। रेलवे 15,000 करोड़ रुपये कर्मचारियों पर खर्च किया करता है जो कि पूरे खर्चे का 50 प्रतिशत है।

निम्नलिखित तथ्य बताते हैं कि रेलवे की प्रगति जरूरी है क्योंकि :

(i) रेलवे की ऊर्जा-कुशलता सड़क यातायात से 6 गुना अधिक है।

(ii) भूमि के प्रयोग की दृष्टि से रेलवे 4 गुना अधिक किफायती है।

(iii) तुलनात्मक यातायात स्तर की दृष्टि से रेल (रेल की पटरी) निर्माण लागत सड़क से 6 गुना कम है।

(iv) सामाजिक लागत (प्रदूषण) के नुकसान की दृष्टि से रेलवे की यह लागत सड़क से काफी कम है।

रेलवे की प्रगति निश्चित परिमापों के द्वारा

यात्री यातायात जो वर्ष 1950-51 में 1280 मिलियन था तथा 66,500 यात्री कि.मी. की दूरी तय करता था, बढ़कर 4600 मिलियन हो गया तथा 4,00,000 यात्री कि.मी. तय करने लगा। वर्ष 1950-51 में 50 कि.मी. की तुलना में अब एक औसत यात्री 90 कि.मी. की दूरी तय करता है। यद्यपि उच्च श्रेणी के यात्री लंबी दूरी अर्थात् औसतन 500 कि.मी. की यात्रा करते हैं जबकि उपनगरों के यात्री केवल 30 कि.मी. दूरी तय करते हैं, पर यात्री-जनसंख्या अनुपात 36 प्रतिशत से बढ़कर 44 प्रतिशत हो गया है। यद्यपि रेलवे की सेवाओं में गुणात्मक सुधार होने के बावजूद बहुत सी भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुल यात्रियों में 60 प्रतिशत उपनगरीय यात्री होते हैं तथा वे यात्री कि.मी. की दृष्टि से 20 प्रतिशत यात्रा में योगदान देते है तथा वे 11 प्रतिशत रेलवे राजस्व में योगदान देते हैं। एक और ध्यान देने योग्य बात है कि डिब्बों की संख्या तो नहीं बढ़ी है परंतु बैठक क्षमता बढ़ गयी है क्योंकि बडी लाइन डिब्बे अधिक यात्री समायोजित करते हैं। पिछले 50 वर्षों में माल डिब्बे 2.6 गुना बढ़े हैं तथा टन कि.मी. 6.25 गुना बढ़ा है। पटरियों का उपयोग प्रति रेल मार्ग कि.मी. (मिलियन टन कि.मी.) 1950-51 में 1.5 से बढ़कर 2000-01 में 6.5 हो गया। माल डिब्बों की संख्या तथा इसकी कुल क्षमता इसके 1980-81 के उच्चतम स्तर से घटकर कम हो गयी। डिब्बों की औसतन क्षमता 1950-51 में 23 टन से बढ़कर 1999-2000 में 46 टन हो गयी। अतः उत्पादकता भी बढ़ गयी। भारतीय रेल अपना स्वयं का रोलिंग स्टॉक उत्पन्न करती है, 2188 यात्री डिब्बे, 137 डीज़ल इंजन, 120 विद्युत इंजन तथा 2000 माल डिब्बे हैं।

(v) रेल ही वह यातायात का साधन है जो प्राथमिक ऊर्जा का कोई भी रूप प्रयोग कर सकती है।

सड़क

सड़क घरों के द्वार तक पहुँच सकती है। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर केवल सड़क से ही पहुँचा जा सकता है। हमारे यहाँ 6 लाख से ज्यादा गाँव तथा 10 लाख से अधिक अधिवास हैं, जहाँ पर केवल सड़क द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। हमारे यहाँ 7000 रेलवे स्टेशन हैं।

रेलवे स्टेशनों से शहरों तथा शहरों में दुकानों व घरों तक केवल सड़कों द्वारा ही पहुँच सकते हैं। रेलवे प्रणाली जोड़ती है वह सड़क से जोड़ने वाली छोटी दूरियाँ द्वारा ही तय की जा सकती है। कुछ बातों में रेलवे की अपनी सीमाएँ हैं।

जब ज्यादातर परिवहन बैलगाड़ियों तथा ऊँट द्वारा ले जाया जाता था तब हमें आधुनिक पक्की सड़कों की जरूरत नहीं थी। उस समय हमने एक करोड़ बैलगाड़ियों तथा दो करोड़ पशुओं व एक करोड़ लोगों को बैलगाड़ियों से माल ढोने में लगाया होगा। केवल शहरों में घोड़ागाड़ी के प्रयोग के लिए सड़कें थीं। अब हमारे पास मोटर-वाहन हैं जिसके लिए पक्की सड़कों की जरूरत है। गाँवों तथा शहरों को जोड़ने के लिए हमें पक्की सड़कों की जरूरत है, जिससे किसान अपने उत्पादि पदार्थ पास की मंडियों में ले जा सकते हैं अथ शीघ्र खराब होने वाली सब्जियों तथा दूध व दूध पदार्थों को ग्रामीण क्षेत्र से एकत्रित करके कस व शहरों में उपभोग के लिए ले जा सकते हैं।

यूरोप में पहले माल के सस्ते परिवहन के लिए नहरों को विकसित किया गया था। उसके बाद उन्होंने भाप के इंजन का विकास किया जिसके बाद ही रेलवे महत्त्वपूर्ण हुआ। उसके बा पेट्रोलियम की खोज से आंतरिक दहनशील इंज का विकास हुआ। रेलवे प्रणाली के सहयोग के लिए सड़क-प्रणाली का आगमन हुआ जो कि रेलवे की तुलना में बहुत शीघ्र, सुविधाजनक तथ लचीली थी। पेट्रोलियम पदार्थों के विकास से आधुनि सामग्रियाँ भी उपलब्ध होने लगीं। वर्ष 1929 सेंट्रल रोड फंड बनने के बाद से भारत में आधुनि सड़कों की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। इस फं का खर्च अंशतः राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण तथ रख-रखाव के लिए तथा अंशतः ग्रामीण सड़कें अंतरराज्यीय सड़कों तथा आर्थिक महत्त्व वा सड़कों के निर्माण के लिए होता है।

भारतीय सड़क प्रणाली विश्व में सबसे ब है। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 4 लाख कि.मी सड़क नेटवर्क था जिसमें 1.6 लाख कि.मी. पक

सड़क विकास के लिए नागपुर योजना

वर्ष 1943 में सभी राज्यों के मुख्य अभियंता नागपुर में मिले तथा एक सड़क योजना तैयार की जो न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित थी। विश्व युद्ध के बाद की सड़क-विकास की इस योजना को नागपुर योजना के नाम से जाना जाता है। इसमें सड़क-प्रणाली को संपूर्ण राष्ट्रीय-परिवहन व्यवस्था का हिस्सा माना गया। इसमें एक ओर विभिन्न श्रेणी की सड़कों के बीच तथा दूसरी ओर सड़कों के नेटवर्क तथा परिवहन के दूसरे संसाधनों के बीच समन्वयन करने का निश्चय किया गया। यह सड़कों को चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित करता है, राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग, बड़ी तथा छोटी जिला सड़कें तथा ग्रामीण सड़कें। यह भी सुझाव दिया गया कि कोई भी अच्छी तरह विकसित कृषि-क्षेत्र सड़क से 8 कि.मी. से अधिक दूर नहीं होना चाहिए।

सड़कें (जबकि रेलवे केवल 54,000 कि.मी.) तथा 2.4 लाख कि.मी. कच्ची सड़कें थीं। पक्की सड़कें सभी मौसम की सड़कें हैं। कच्ची सड़कें वर्षा के दौरान मरम्मत के योग्य नहीं होती हैं। वर्तमान में हमारे पास कुल 25 लाख कि.मी. सड़कें हैं जिसमें 14 लाख कि.मी. पक्की सड़कें हैं (रेलवे रूट लंबाई तुलना में केवल 63000 कि.मी. है) । निर्माण, रख रखाव तथा मरम्मत के उद्देश्य से सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग तथा अन्य सड़कों में वर्गीकृत किया गया हैं। जबकि राष्ट्रीय राजमार्ग की जिम्मेदारी केंद्रीय सरकार की है, अन्य सड़कों तथा राज्य राजमार्गों से संबंधित जिम्मेदारी प्रत्येक राज्य की है जिस राज्य में वे सड़कें हैं।

1950-51 तक राष्ट्रीय राजमार्ग 20000 कि.मी. था, जो बढ़कर जनवरी 2001 में 58000 कि.मी.(रेलवे के कुल कि.मी. रूट का लगभग 90 प्रतिशत) हो गया। भारत सरकार ने राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम 1956 के अंतर्गत कई अन्य सड़कों को अपने नियंत्रण में ले लिया, वर्ष 2000-01 में केवल 5727 कि.मी. की और बढ़ोत्तरी हुई। राज्य राजमार्ग 1970-71 में 57000 कि.मी. से बढ़कर 2001 तक 1.4 लाख कि.मी. हो गया। राज्यों ने भी अपने राज्यमार्गों के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया है। बहुधा ये सड़कें पक्की हैं। इनको चौड़ा भी किया गया है। किंतु राष्ट्रीय तथा राज्य राजमार्ग 2 लाख कि.मी. से कम है तथा अब सभी पक्की सड़कें हैं। जबकि कुल पक्की सड़कों की लंबाई लगभग 14 लाख कि.मी. है, कच्ची सडकों की लंबाई 11 लाख कि.मी. है। समयावधि में प्रगति के लिए सारणी 4.8 देखें।

अंत में हमें यह ध्यान देना चाहिए कि हमारी सड़कों का नेटवर्क 4 लाख कि.मी. से 25 लाख कि.मी. बढ़ गया जबकि वाहनों की संख्या 3 लाख से बढ़कर 4 करोड़ हो गयी है, माल यातायात 600 करोड़ टन-किलोमीटर से 45000 करोड़ टन

सारणी 4.8

विस्तृत वर्गीकरण के अनुसार सड़कें (कि.मी. में) तथा वाहन (संख्या में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
राष्ट्रीय राज मार्ग	9800	21000	23300	31500	33400	57700
पक्की सड़कें	157019	263015	39700	692171	1091043	1400000
सभी सड़कें	399942	524478	917880	1491301	2331086	2500000
सभी वाहन	306000	665000	1865000	5391000	21374000	40000000
माल वाहन	82000	168000	343000	554000	1356000	3000000
बसें	34000	57000	94000	162000	331000	600000
1000 जनसंख्या वाले सड़कों से जुड़े गांवों का प्रतिशत				29	46	75

टिप्पणी : *वर्ष 2000-01 के आंकड़े पूर्ण योग में हैं तथा कुछ हद तक अनुमानित प्रकृति के हैं तथा नब्बे के दशक के अंत में सरकारी सांख्यिकी पर आधारित हैं।*

स्रोत : *भारतीय योजना अनुभव एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार 2001 तथा आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, वित्त मंत्रालय।*

सड़क का प्रयोग

सड़कों का निर्माण प्रायः वाहनों के प्रयोग के लिए किया गया। मोटर वाहन से चलने वाले वाहन दो प्रकार के होते हैं– यात्री अथवा बस सेवाएँ तथा माल अथवा ट्रक सेवाएँ। किंतु कुछ निजी वाहन कार/जीप, टैक्सी, दुपहिया तथा ट्रैक्टर भी होते हैं। पंजीकरण सांख्यिकी के अनुसार सड़कों पर लगभग 6 लाख बसें, 25 लाख ट्रक, 50 लाख कार/जीप/टेक्सी, 2.8 करोड़ दुपहिया वाहन तथा 45 लाख अन्य वाहन जिसमें ट्रैक्टर, ट्रेलर तथा तिपहिया वाहन (यात्री व माल) हैं। कुल वाहनों की संख्या लगभग 4 करोड़ है जिसमें से कुछ बेकार हो गए होंगे।

लागत तथा समय की बचत के लिए हमें अच्छी सड़कें तथा अच्छे वाहनों की आवश्यकता होती है जो प्रदूषण रहित हों। यह विचार अधिक प्रबल हो गया है जब से बहुत से शहरों में प्रदूषण स्तर खतरे के अनुपात तक बढ़ गया है।

किलोमीटर, यात्री यातायात 2300 करोड़ यात्री किलोमीटर से 150,000 करोड़ यात्री किलोमीटर बढ गया है। किंतु यह प्रशंसनीय बात होगी कि लंबाई के बावजूद दृढता तथा चौड़ाई की दृष्टि से सड़कों की गुणवत्ता में समय के साथ-साथ सुधार हुआ है। वैसे भी हमारे राष्ट्रीय राजमार्ग कुल यातायात का 40-50 प्रतिशत वहन करते हैं।

जलमार्ग

जल यातायात के दो मुख्य प्रकार हैं, जैसे– आंतरिक जलमार्ग तथा जहाजरानी। जहाजरानी तटीय अथवा समुद्रीय हो सकता है। जलमार्ग, आंतरिक (तटीय) रेलवे तथा सड़क परिवहन के आविष्कार से पहले काफी महत्त्वपूर्ण होता था इस तथ्य के बावजूद कि गति की दृष्टि से रेलवे तथा सड़क मार्ग जलमार्ग से काफी उत्तम है। तटीय जलमार्ग बहुत कठिन भी हो जाता है क्योंकि नदियों में पानी के बहाव को सिंचाई के तथा दूसरे उपयोग के उद्देश्य से बाँधों द्वारा कम कर दिया जाता है। तटीय जहाजरानी के प्रयोग में लगातार गिरावट हो रही है, तथा अभी कुल परिवहन में इसका अनुपात नगण्य है।

तटीय जहाजरानी अब केवल ब्रह्मपुत्र नदी गंगा के निचले भाग, कृष्णा तथा गोदावरी नदी का डेल्टा तथा नहरें, केरल की नहरों आदि तक ही सीमित है। मुश्किल से 2000 कि.मी. नदियाँ ही नौकाओं (मशीन से चलने वाली) तथा 5000 कि.मी. देशीय बड़ी नावों के लिए उपयुक्त हैं हालांकि भारतीय तटीय जहाजरानी प्राधिकरण के काफी प्रयास के बावजूद इसका एक महत्त्वपूर्ण परिवहन साधन होना कठिन होगा। धीमी गति

राष्ट्रीय जलमार्ग

राष्ट्रीय जलमार्ग 1: यह इलाहाबाद तथा हल्दिया के बीच गंगा (1620 कि.मी.) में है जो पटना भागलपुर तथा फरक्का से होकर जाती है। पटना व हल्दिया के बीच वर्ष के अधिक समय में इसकी गहराई 1.5 से 2.0 मीटर तक रखी जाती है।

राष्ट्रीय जलमार्ग 2: यह ब्रह्मपुत्र नदी पर, सदिया तथा धुबरी के बीच (890 कि.मी.) में है जो गुवाहाटी (पाण्डु) से होकर जाती है। कोलकाता से जोड़ने के लिए भारत-बांगलादेश के प्रोटोकॉल मौजूद हैं।

राष्ट्रीय जलमार्ग 3: यह पश्चिमी नहर किनारे पर है जो कोटापुरम तथा कोलाम के बीच चम्पकारा तथा उद्योग मण्डल नहर (205 कि.मी.) से होकर जाती है।

माँग की दृष्टि से बहुत बड़ी कमजोरी है। आपूर्ति की दृष्टि से प्राकृतिक तथा तकनीकी अड़चनें भी बहुत हैं। फिर भी तीन राष्ट्रीय जलमार्ग हैं, जो अभी भी विकसित हो रहे हैं तथा सामान ढोने के काम आते हैं।

नौपरिवहन समुद्रीय तथा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिवहन का साधन है। भारत के पास 5500 कि.मी. लंबा समुद्रीय तट है। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय नौपरिवहन कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ काफी स्पर्धा का सामना करना पड़ा तथा तत्कालीन शासकों से इन्हें कोई सहयोग नहीं मिला।

स्वतंत्रता के बाद भारत के पास पांच बड़े मुख्य बंदरगाह थे। हमने 6 और बंदरगाह जोड़ दिए। बढ़ती हुई तथा कठिन मांग को पूरा करने के लिए समय-समय पर इन सभी बंदरगाहों का विस्तार, पुनः उपकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ। उदाहरण के लिए, सरकारी सेवा में, ड्रेजिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया है जो पोर्टों के लिए तलकर्षण सुविधा उपलब्ध करवाती है। निजी पोर्ट ट्रस्ट जो पोर्ट तथा संघीय सरकार की देखभाल करते हैं, अपने विस्तार, पुनःउपकरण तथा आधुनिकीकरण के लिए साधन स्वयं जुटाते हैं।

हमारे मुख्य बंदरगाह

देश के विभाजन के समय हमारे पास मुम्बई, कोलकाता, चैन्नई, कोचीन तथा विशाखापट्टनम्, मुख्य बंदरगाह थे। हमने 6 और बंदरगाह जोड़ दिए हैं, हल्दिया, कोलकाता के पास, न्हावा शेवा (अब जे.एल. नेहरु) मुम्बई में, गुजरात में कांडला के पास। इसके अतिरिक्त उड़ीसा में पारादीप, तमिलनाडु में टुटीकोरीन, कर्नाटक में मैंगलोर तथा गोवा में (गोवा की आजादी के बाद) मरमागाओ का आधुनिकीकरण किया गया।

हमारे बंदरगाहों ने वर्ष 2000-01 में 250 मिलियन टन से ज्यादा कारगो को संभाला जिसमें सामान का उतारना-चढ़ाना सम्मिलित है। यह 1950-51 में (20 मिलियन टन) सामान संभालने से 13 गुना ज्यादा है। इसमें POL पदार्थ, लोहा, अयस्क, कोयला, उर्वरक तथा अन्य डिब्बा बंद माल तथा कुछ कच्चा माल आदि मुख्य मदें सम्मिलित हैं। समुद्रीय (तटीय) यात्री जहाज लगभग नहीं है, यद्‌यपि पोर्टब्लेयर (अंदमान व निकोबार) के लिए कुछ सेवाएँ उपलब्ध हैं। अनेक स्थितियों में सुधारों की आवश्यकता है।

देश के भीतरी भागों में लगभग 140 छोटे बंदरगाह हैं जिनके पास सीमित सुविधाएँ उपलब्ध हैं। वे मुख्यतः तटीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। तटवर्ती क्षेत्र जहाँ रेल व सड़क की सुविधा पूरी उपलब्ध नहीं हैं वहाँ इन बंदरगाहों का प्रयोग किया जाता है। बड़े बन्दरगाहों पर भीड़ के समय ये छोटे बंदरगाह अधिक सहायक होते हैं। छोटे बंदरगाह राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होते हैं तथा उन्हें केंद्रीय सरकार से ऋण मिलता है। कार्गो को संभालने के अलावा ये छोटे पोर्ट यात्री यातायात के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं। स्वतंत्रता के समय हमारे पास 1,00,000 जी.आर.टी. से कम क्षमता वाले 42 जहाज थे। आज शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के पास 4 मिलियन जी.आर.टी. की क्षमता वाले 160 जहाजों का बेड़ा है। यह विश्व की बड़ी शिपिंग कंपनियों में से एक है तथा विश्व के महत्त्वपूर्ण समुद्रीय व्यापारिक मार्गों पर चलते हैं। 66 शिपिंग कंपनियाँ हैं, उनमें से 43 केवल ओवरसीज परिवहन के लिए तथा 16 केवल तटीय परिवहन के लिए एवं 7 दोनों के लिए हैं।

वायु परिवहन

वायु परिवहन सबसे तेज गति से चलने वाला तथा सबसे महंगा परिवहन है। यह सबसे नवीनतम है। इसका प्रभाव इतना फैल गया है कि दूरियाँ अब मीलों में मापने के बजाय घंटों में मापी जाती हैं।

विश्व युद्ध से पहले भारत में वायु परिवहन द्वारा यात्री व माल ढ़ोने का काम नहीं के बराबर होता था। यह केवल एक डाक सेवा थी। परीक्षणों के अतिरिक्त वर्ष 1932 में पहली नियमित सेवा आरंभ हुई। हालाँकि पहली हवाई डाक 18 फरवरी 1911 में इलाहाबाद (प्रदर्शनी मैदान) से नेनी के बीच हुई। सरकार के सहयोग से तीस के दशक की शुरुआत में तीन घरेलू वायु सेवाओं की स्थापना हुई, टाटा एयर लाइन्स तथा इंडियन नेशनल एयरवेज डाक सेवाओं के लिए तथा एयर सर्विसेज ऑफ इंडिया यात्री व माल के लिए। उनकी सेवाओं का प्रयोग सेना, यातायात व इंडियन एयर फोर्स की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया।

युद्ध के बाद सस्ती कीमतों पर अमेरिकन हवाई जहाज की बिक्री के द्वारा उड़ने वाले तथा जमीन पर काम करने वाले कर्मचारियों (जो युद्ध के बाद उपलब्ध हुए थे) की सहायता से, नए स्थापित हवाई अड्डों के कारण कई कंपनियों ने हवाई-मार्गों पर सेवाओं में रुचि दिखाई। वायु यातायात की माँग का अनुमान आवश्यकता से अधिक लगाया गया जिससे लगभग एक दर्जन एयर लाइनों को लाईसेन्स दे दिए गए। शीघ्र ही ये वित्तीय कठिनाई में पड़ गए। नागरिक उड्डयन के सुदृढ़ व स्वस्थ विकास के लिए तथा परिवहन उपकरण व प्रचालन तकनीकी का पूरा लाभ उठाते हुए यह सुझाव दिया कि वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए।

दो सार्वजनिक निगमों, एयर इंडिया तथा इंडियन एयर लाइंस की क्रमशः अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू सेवाओं के लिए स्थापना की गई। अब इंडियन एयर लाइंस की एक सहायक भी हो गयी है जिसे एयर लाइंस कहते हैं। इनके अलावा कुछ निजी एयर लाइंस भी हैं जैसे, जेट,सहारा आदि। अभी हमने दो एयर लाइंस के शेयर (एयर इंडिया के 60 प्रतिशत तथा इंडियन एयर लाइंस के 51 प्रतिशत का) वित्तीय संस्थाओं, निजी निवेशकों तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेशकों को बेच दिए (विनिवेश द्वारा) । इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाना तथा इनको कुशलता से चलाना था।

एयर पोर्ट आथोरिटी ऑफ इंडिया 92 नागर हवाई अड्डों 28 तथा नागर अंतर्क्षेत्रों (सैनिक हवाई अड्डों पर) का रख-रखाव करती है। उनमें से पांच अंतरराष्ट्रीय हैं तथा बहुतों के स्तर को बढ़ा कर अंतरराष्ट्रीय मानक के अनुरूप बनाया गया। वे हमारी तथा विदेशी एयर लाइंस को सेवाएँ देते हैं। वायु परिवहन में यात्री तथा समान (माल व डाक) सम्मिलित हैं। वायु परिवहन क्षेत्र के संबंध में आपकी जानकारी बढ़ाने के लिए कुछ सांख्यिकी सारणी 4.9 में दी गयी है। दूसरे परिवहन क्षेत्रों की तुलना में यह छोटा विशिष्ट क्षेत्र है। वायु-परिवहन का प्रयोग घरेलू सामानों को ढ़ोने के लिए सामान्य रूप से नहीं होता है। हमारी एयर लाइंस में विदेशी कार्गों भी कम ही जाते हैं। हमारे हवाई अड्डे हमारी एयर लाइंस की क्षमता से 2.5 गुना अधिक यात्री तथा 3.5 गुना अधिक सामान संभालते हैं।

वायु परिवहन का प्रबंधन (management) एयर इंडिया के 25 हवाई जहाजों के बेड़े, इंडियन एयर लाइंस के 50 हवाई जहाजों तथा अन्य निजी एयर लाइंस के कुछ हवाई जहाजों द्वारा

सारणी 4.9
यात्री/माल सेवाओं की दृष्टि से नागर विमानन में वृद्धि

(हजार में)

	1950	1965	1973	1985	1991	1998
अंतरराष्ट्रीय						
यात्री	150.0	270.0	736.0	2207.0	2430.0	3436.0
सामान (टनों में)	3.2	10.2	28.0	84.3	101.0	92.0
घरेलू						
यात्री	303.0	1135.0	2636.0	8617.0	7912.0	11547.0
सामान (टनों में)	36.9	26.7	34.3	98.9	97.0	125.0
हवाई अड्डों द्वारा परिवहन						
यात्री			10738.0*		17723.0	36974.0
सामान (टनों में)			178.7*		377.3	699.0

** 1970-71 वर्ष के लिए*

स्रोत : भारतीय योजना अनुभव: एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार 2001, तथा आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

होता है। हमारे हवाई जहाज कुछ पुराने हैं फिर भी भार क्षमता (जो उपलब्धता के प्रयोग का संकेत देती है) 65-70 प्रतिशत है।

पाइपलाइन परिवहन

आप जानते ही हैं कि शहरों में पीने के पानी का परिवहन पाइप लाइनों द्वारा होता है। अधिकांश गंदे पानी का वहन भी पाइप लाइनों द्वारा होता है। किंतु बहुत से दुर्गम क्षेत्रों में नदियों या जलाशयों से शहरों तथा गांवों में पीने का पानी पहुँचाया जाता है। इसका लाभ उठाकर, कच्चे तेल, पेट्रोलियम पदार्थों तथा प्राकृतिक गैस का वहन आजकल इसी के द्वारा किया जाता है। पाइप लाइन परिवहन में कम ऊर्जा लागत, कम मार्गस्थ हानि तथा कुल मिलाकर लागत कम लगती है। पाइप लाइनें बिछाने में आरंभ में बहुत लागत लगती है। यह तरल अथवा गैस के रूप में माल को दो ऐसे स्थानों के बीच, जहाँ माल की लगातार तथा लंबे अरसे तक जरूरत पड़े, पहुँचाने में कम खर्चीला है। इसलिए इसमें निवेश करना सार्थक है। पाइप लाइन परिवहन द्वारा तरल रूप में, लौह-अयस्क (लौह-अयस्क को पानी में मिलाकर) भी परिवहन किया जाता है। मुख्य पाइप लाइनें निम्नलिखित हैं :

कच्चा तेल

(i) असम के तेल क्षेत्र से कच्चा तेल गुवाहाटी (असम) तथा बरौनी (बिहार) परिष्करण-शालाओं तक।

(ii) आयातित कच्चा तेल कोयाली (गुजरात) के पश्चिमी तट से मथुरा (उ.प्र.) परिष्करण-शाला तक।

(iii) पूर्वी तट से आयातित कच्चा तेल बरौनी से (बिहार) के परिष्करणशाला तक।

(iv) आयातित कच्चा तेल विरमगाम (गुजरात) से करनाल (हरियाणा) परिष्करणशाला तक।

पेट्रोलियम उत्पाद

(i) बरौनी परिष्करणशाला से कानपुर तक।
(ii) मथुरा परिष्करणशाला से दिल्ली, अम्बाला (हरियाणा) तथा जालंधर (पंजाब) तक।
(iii) मुम्बई परिष्करणशाला से पुणे तक।

प्राकृतिक गैस

(i) पश्चिमी तट हजीरा से गैस आधारित नाइट्रोजेनस फर्टिलाइजर प्लांट से तथा मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में प्राकृतिक गैस पर आधारित पावर प्लांट से।

कच्चे तेल तथा पेट्रोलियम पदार्थों के लिए पाईप लाइनों का निर्माण तथा प्रबंधन इंडियन ऑयल कारपोरेशन द्वारा किया जाता है तथा प्राकृतिक गैस के पाईप लाइनों का गैस ऑथोरिटी ऑफ इंडिया द्वारा संभाला जाता है।

संचार (Communication)

विकास, संचार व्यवस्था में परिवर्तन लाता है तथा बेहतर संचार व्यवस्था विकास में सहायक होती है। आज के विश्व में जीवन के सभी क्षेत्र जैसे, सरकारी कार्य, सरकारी प्रशासन, राष्ट्रीय रक्षा, व्यवसाय प्रबंधन, कृषि तथा अन्य विस्तार सेवाएं, शिक्षा, विज्ञापन, प्रेस तथा मीडिया, आदि को अच्छे संचार व्यवस्था की आवश्यकता होती है। क्रेता तथा विक्रेता को बाजार के बारे में सूचना प्रदान कर एक दूसरे के पास लाते हैं जिससे उपभोक्ताओं को प्रोत्साहन मिलता है तथा अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिलती है।

आज के युग को तकनीकी क्रान्ति का युग कहा जाता है। हमने तकनीकी विकास का लाभ दूर-संचार तथा सूचना तकनीकी द्वारा उठाया है। फिर भी संचार का पुराना माध्यम महत्त्वपूर्ण है। हम संचार व्यवस्था को डाक संचार तथा दूर-संचार सेवाओं से जानते हैं जबकि एक समय ऐसा था जब संचार का आशय परिवहन तथा विशेषकर वायु परिवहन से होता था।

डाक सेवा

डाक सेवा आज भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डाक विभाग ने अपनी वर्तमान वार्षिक रिपोर्ट में ऊँची गुणवत्ता की डाक, पार्सल तथा संबंधित सेवाओं को भारत तथा पूरे विश्व में ग्राहकों, कर्मचारियों तथा समुदाय की आशाओं के अनुरूप प्रदान करने का वादा किया है।

भारत में शहरों तथा चुने हुए गाँवों में डाक घरों की संख्या वर्ष 1947-48 में 23344 से बढ़कर 2000-01 में 154551 हो गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या साढ़े चार गुना बढ़ी, जो वर्ष 1950-51 में लगभग 31000 से बढ़कर वर्ष 2000-01 में 138000 हो गयी तथा शहरी डाकघरों की संख्या तीन गुनी बढ़ी, जो वर्ष 1950-51 में 5400 से बढ़कर वर्ष 2000-01 में 16400 हो गयी। इन डाकघरों में मुख्य डाकघर, उप-डाकघर, जो विभाग तथा शाखा डाकघरों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में ठेके के आधार पर चलाए जाते हैं, वे सभी सम्मिलित हैं। पूरे देश में 5.8 लाख से भी ज्यादा पत्र पेटिकाएं हैं। यह व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी है। अभी भी लगभग एक लाख से ज्यादा गाँव ऐसे हैं जहाँ तीन कि.मी. की दूरी तक कोई डाक घर नहीं है। इन क्षेत्रों में डाक विभाग ग्राम पंचायतों के आधारिक संरचनाओं को प्रयोग कर मूलभूत डाक सेवाएं ठेके पर प्रदान करता है। सारणी 4.10 देखें। प्रत्येक डाकघर औसतन 21-22 कि.मी. की दूरी तथा 5500 लोगों की सेवा करता है। डाक मनीआर्डर भेजने तथा प्राप्त करने की एक महत्त्वपूर्ण सेवा

सारणी 4.10

ग्रामीण तथा शहरी विभाजन के अनुसार डाकघरों की संख्या में वृद्धि

	1951	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2001*
ग्रामीण डाक घर	30810	69513	98835	124689	132646	138149
शहरी डाक घर	5424	7624	10224	13535	16073	16402
कुल डाक घर	36234	77137	109059	138224	148719	154551

स्रोत : *भारतीय योजना परीक्षणः एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार, तथा वार्षिक रिपोर्ट 2000-01, डाक विभाग, संचार मंत्रालय, भारत सरकार।*

प्रदान करता है। 5000 करोड़ रुपयों से अधिक धनराशि मनीआर्डर से भेजी जाती है। इन सेवाओं में 12 से अधिक उपग्रह प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है।

वर्ष 1950-51 से डाक मार्ग में दस गुनी वृद्धि हुई जो 2,72,000 कि.मी. से बढ़कर 2000-01 में 27,20,000 हो गयी। वर्ष 1986 से इसने स्पीड पोस्ट भी आरंभ किया है। स्पीड पोस्ट की सेवाएँ देश के लगभग 108 शहरों तथा विदेश में 97 देशों में उपलब्ध है। उदारीकरण के तहत सरकार ने प्राईवेट कोरीयर सर्विस को भी एक औपचारिक स्थान दे दिया है। दिल्ली तथा राज्य की राजधानियों तथा महानगरों को जोड़ने की भी योजनाएँ हैं। प्रक्रिया अंतरण तथा वितरण व्यवस्था प्रणाली का भी आधुनिकीकरण हो गया है।

इसमें डाक प्रणाली के अलावा बचत-बैंक भी हैं। इसमें लगभग 6 करोड़ लेखे हैं। इसमें आवर्ती जमा, सावधि जमा तथा जनता भविष्य-निधि भी है। यह प्रणाली डाक जीवन-बीमा का भी प्रचालन करती है।

तार प्रेषण तथा टेलेक्स

तार भेजने की प्रथा भारत में बहुत पुरानी है। वर्ष 1951 में 8,200 तारघर थे, जो बढ़कर अब लगभग 45,000 हो गये हैं। विभाग ने फोनोग्राम सेवा की शुरुआत टेलीफोन से टेलीग्राम को भेजकर तथा प्राप्तकर तथा टेलेक्स सेवा एक केंद्र से दूसरे केंद्र में छपे हुए समाचार भेजकर व प्राप्त कर आरंभ की। 95 प्रतिशत टेलीग्राम 12 घंटों में सुपुर्द किए जाते हैं। किंतु ये सेवाएं अब फोन/फैक्स/ई-मेल सुविधाओं की वजह से पुरानी हो गयी हैं। टेलेक्स भी शीघ्र ही प्रणाली से बाहर हो जाएगा।

दूरभाष (Telephone)

दूरभाष तकनीकी में असाधारण बदलाव आया है, जिसमें जमीन के ऊपर के तारों के स्थान पर उपग्रह व जमीन के अंदर ऑप्टिक फाइबर व कोएक्सिल केबल का प्रयोग हुआ है। दूरभाष की संख्या वर्ष 1950-51 में 1.7 लाख से बढ़कर वर्ष 2001 में 3 करोड़ हो गयी है। गत वर्षों में प्रत्येक वर्ष लगभग 50 लाख दूरभाष कनेक्शन प्रदान किए गए थे। सभी कनेक्शनों में (एस.टी.डी.) नैशनल डायलिंग की सुविधा प्रदान की गई है। आई.एस.डी.(अंतरराष्ट्रीय डायलिंग) लगभग 170 देशों के लिए उपलब्ध है। सेल्यूलर मोबाइल फोन बहुत प्रचलित हो रहे हैं। लगभग 33 लाख लोग इसका प्रयोग कर रहे हैं। हमारे सार्वजनिक निगम भी निजी प्रचालकों के सहयोगी बन गए हैं। वे इंटरनेट सर्विस भी प्रदान कर रहे हैं। लगभग 2 लाख लोकल पब्लिक कॉल ऑफिस तथा 3.25

लाख से भी ज्यादा एस.टी.डी. बूथ हैं। वी.पी.टी. (Village Public Telephone) योजना के अंतर्गत लगभग 4 लाख गाँव इससे जुड गए हैं। बी.एस.एन.एल. की वर्ष 2002 तक सभी गाँवों को जोड़ने की योजना है। हमारी टेले-डेंसिटी वर्ष 1990-91 में 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 2000-01 में 3 प्रतिशत हो गयी है। ग्रामीण-शहरों में विषमताएँ बहुत हैं। ग्रामीण सघनता 0.8 प्रतिशत से कम है तथा शहरी सघनता 8.0 प्रतिशत से ज्यादा है। इसमें दो मत नहीं हैं कि ग्रामीण तथा शहरी टेले सघनता में समानता होनी चाहिए।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दूरभाष सेवाओं तथा प्रचलन का अक्तूबर 2000 में भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL) के रूप में निगमीकरण हो गया है। दिल्ली तथा मुम्बई की दूरभाष सेवाओं का पहले से ही महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड के रूप में निगमीकरण हो गया था। BSNL के पास लगभग 4.21 लाख कर्मचारी हैं। संचार क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के लिए तथा शुल्क नियंत्रण के लिए टेलीकॉम रेगुलेटरी ऑथारिटी ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। दूर-संचार विभाग केवल नीतिगत मुद्दे तथा कुछ तकनीकी मुद्दे जैसे वाइड स्पेक्ट्रस मेनेजमेंट की देख-भाल करेगा।

संचार उपग्रह

हमारे अंतरिक्ष में विभिन्न उपग्रह हैं। उनमें से एक इनसेट (INSAT) का डिजाइन इंडियन नेशनल सेटेलाइट प्रोग्राम के अंतर्गत हुआ। इसका उद्देश्य लंबी दूरी की दूर संचार के लिंक को सुदृढ़ बनाना था जैसे रेडियो, टेलेग्राफ, टेलीविजन। जीओ सेंट्रिक सेटेलाइट जो लगभग 6 हैं, जो पूर्वनिश्चित अर्थ स्टेशनों के बीच कड़ी का काम करते हैं।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के समय से हमने अपने आर्थिक आधारिक संरचना में सुधार लाने की एक लंबी यात्रा की है। क्षेत्रों में मात्रात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। अभी भी सुधार करने की आशा है। विभिन्न प्रकार की आधारिक संरचनाएँ अर्थव्यवस्था का आधार हैं तथा इसके विकास की गति निर्धारित करती हैं। अतः हमें आधारिक-संरचनाओं पर ध्यान देना चाहिए तथा कमियों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। हम इनके बारे में आगे के अध्याय में और अध्ययन करेंगे।

अभ्यास

1. आधारिक संरचना से आपका क्या आशय है? आधारिक संरचना के चार मूलभूत गुणों के बारे में समझाइए।
2. संरचना की दो श्रेणियों/वर्गों के बारे में बताइए। उदाहरण दीजिए।
3. नहरों, आवासों, स्कूल, रेलवे, जहाजों, अस्पतालों, बैंकों, विकास बैंकों, हवाई अड्डों, न्यायालयों, पावर प्लांट वितरण, लाइन उपग्रहों को आर्थिक व सामाजिक आधारिक संरचना के वर्गों में वर्गीकृत कीजिए।
4. वाणिज्यिक, गैर-वाणिज्यिक तथा गैर-परंपरागत ऊर्जा के स्रोत बताइए।

5. प्राथमिक व अंतिम ऊर्जा के स्रोतों में अंतर कीजिए तथा बताइए कि कोयला प्राथमिक तथा अंतिम स्रोत दोनों कैसे हैं?
6. प्राथमिक स्रोत की दृष्टि से, वाणिज्यिक तथा गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में पिछले 50 वर्षों में ऊर्जा के उपभोग के प्रारूप में हुए परिवर्तन पर विचार विमर्श कीजिए।
7. पिछले 50 वर्षों में कोयले, पेट्रोलियम उत्पाद, गैसें तथा विद्‌युत को अंतिम स्रोत मानकर ऊर्जा के उपभोग की प्रवृत्ति में परिवर्तन की चर्चा करें।
8. कोयले के प्रयोग तथा इसके प्रयोग के बदलते हुए रूप पर चर्चा कीजिए।
9. तेल के महत्त्व, इसकी प्रगति तथा इसकी समाप्ति की समस्या पर चर्चा कीजिए।
10. एक नये संसाधन के रूप में गैस कितनी महत्त्वपूर्ण है?
11. विद्‌युत के तीन मुख्य स्रोत क्या हैं? यह जानते हुए कि कोयले के दहन से प्रदूषण होता है, हमने थर्मल पावर के प्रयोग का चयन क्यों किया?
12. गैर-परंपरागत ऊर्जा के विकास की संभावना पर संक्षेप में चर्चा करें।
13. रेल की पटरियों के विद्‌युतीकरण तथा इंजन के संयोजन इत्यादि की दृष्टि से स्वतंत्रता के समय से रेलवे में हुई वृद्‌धि पर विचार-विमर्श करें।
14. लंबी यात्रा के लिए हम रेल-परिवहन को क्यों पसंद करते हैं?
15. परिवहन के साधनों में, रेल-परिवहन की तुलना में सड़क-परिवहन किस प्रकार श्रेष्ठ है?
16. स्वतंत्रता के बाद से सड़क परिवहन में विस्तार तथा सुधार का एक विवरण कीजिए।
17. जहाजरानी के प्रकारों की सूची बनाइए।
18. तटीय आंतरिक जहाजरानी का क्या महत्त्व है, तथा इसकी क्या सीमाएँ हैं, चर्चा कीजिए।
19. तटीय जहाजरानी तथा समुद्रीय जहाजरानी का एक विवरण दीजिए।
20. नागर विमानन की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
21. पाइपलाइन परिवहन के महत्त्व को रेखांकित करें।
22. स्वतंत्रता के समय से भारतीय डाक सेवा में क्या विकास हुआ? विचार-विमर्श कीजिए।
23. पिछले 10 वर्षों में दूर-संचार क्षेत्र में क्या सुधार हुए हैं।
24. टेले-सघनता से आपका क्या तात्पर्य है। ग्रामीण-शहरी टेले-सघनता में असमानता 1:10 है। हम जानते हैं कि इसे कम होना चाहिए। क्या यह असमानता एक दम समाप्त कर देनी चाहिए? अपने उत्तर पर तर्क दीजिए।

क्रियाकलाप

गैर-उपयोगिता द्‌वारा विद्‌युत उत्पादन की दृष्टि से उपभोक्ताओं के विभिन्न वर्गों में उपभोग प्रतिशत ज्ञात करें। ऐसा मान लें कि गैर-उपयोगिता द्‌वारा उत्पादित विद्‌युत का उपभोग केवल उद्‌योगों द्‌वारा किया जाता है।

अध्याय 5

सामाजिक आधारिक संरचना

परिचय

पिछले अध्याय में हमने अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आर्थिक आधारिक संरचना के महत्त्व के बारे में अध्ययन किया। किंतु हम जानते हैं कि हमेशा मशीन के पीछे मनुष्य होता है। यदि मनुष्य स्वस्थ तथा शिक्षित है तो वह बेहतर ढंग से योगदान कर सकता है। लोग कैसे स्वस्थ तथा शिक्षित हो सकते हैं? यदि लोग अच्छा भोजन करते हैं, साफ-सुथरे घरों में रहते हैं, प्रदूषण रहित वातावरण का आनंद उठाते हैं, तथा बीमार होने पर सही स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त करते हैं तो वे स्वस्थ रह सकते हैं। जन-स्वास्थ्य की दिशा में किए गए उपायों के द्वारा आस-पास का वातावरण साफ रहता है तथा संक्रामक रोगों पर नियंत्रण रह सकता है।

इसी प्रकार जब लोग, छोटी आयु में हों, तो उनका नामांकन विद्यालयों में होता है जहाँ उन्हें अध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाता है जिससे वे शिक्षित हो जाते हैं। बाद में जब वे अपना अध्ययन आगे बढ़ाते हैं तो ऐसा अध्ययन उनको उत्पादक व्यवसाय (vocation) में नियोजन के योग्य बनाता है जिससे वे जिम्मेदार मानव संसाधन बन जाते हैं । किंतु पहली शर्त यह है कि छात्रों व छात्राओं के लिए विद्यालय होने चाहिए, तथा विद्यालय पहुँच के अंदर होने चाहिए। शिक्षा तथा स्वास्थ्य लोगों को ज्यादा उत्पादक बनाने के अतिरिक्त उनको बेहतर जीवन योग्य बनाते हैं।

आवास आजकल बहुत से लोगों की महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता मानी जाने लगी है क्योंकि अधिकांश लोगों को आवश्यकतानुसार भोजन व वस्त्र मिलने लगा है। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आश्रय यह इंगित करते हैं कि वे न केवल मानव संसाधनों को उत्पादक बनाने के उपकरण हैं बल्कि लोगों के कल्याण में भी वे प्रत्यक्ष योगदान देते हैं, इसलिए उनको सामाजिक आधारिक संरचनाएँ कहते हैं। इस अध्याय में हम तीन सामाजिक आधारिक संरचनाओं, जैसे, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा मकान पर चर्चा करेंगे।

शिक्षा (Education)

साक्षरता (Literacy)

हम साक्षरता से शुरू करें, परंतु साक्षरता ही शिक्षा नहीं है। एक निश्चित आयु से ऊपर के लोग जो किसी भी भाषा में किसी सरल परिच्छेद को समझकर पढ़ तथा लिख सकें, उन्हें हम **साक्षर** कहेंगे। स्वाभाविक रूप से सभी शिक्षित लोग इसमें सम्मिलित हैं। 1951 की जनगणना के अनुसार केवल 1/6 लोग ही साक्षर थे, शताब्दी के अंत तक लगभग 2/3 लोग साक्षर हो चुके हैं। वर्ष 1951 में साक्षरों की निरपेक्ष संख्या मुश्किल से 5.7 करोड़ थी। 0-6 वर्ष के वर्ग की जनसंख्या को छोड़कर वर्ष 2001 में उनकी संख्या लगभग 57 करोड़ हो

गयी। 50 वर्ष पूरे होने के बाद साक्षरों की संख्या 10 गुनी बढ़ गयी तथा साक्षरता दर 20 प्रतिशत से बढ़कर 65 प्रतिशत के ऊपर हो गयी। साक्षरता की प्रगति का पता लगाने के लिए हम सारणी 5.1 देख सकते हैं।

फिर भी, हमारी महिला साक्षरता दर अभी भी 55 प्रतिशत से कम है, जबकि पुरुष साक्षरता-दर 75 प्रतिशत से ज्यादा है। अभी भी हमें साक्षरता के क्षेत्र में, विशेषकर महिला साक्षरता के क्षेत्र में बहुत कुछ करना है। किंतु यह संतोषजनक बात है कि निरक्षरों की संख्या जो 1991 तक बढ़ रही थी, अब कम होनी शुरू हो गयी है। कुछ राज्यों जैसे केरल तथा मिजोरम, में साक्षरता दर 85 प्रतिशत से ज्यादा है, कुछ अन्य राज्यों, जैसे बिहार, में यह 35 प्रतिशत से कम है।

इसी तरह, हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में साक्षरता 60 प्रतिशत से कम है जबकि शहरी पुरुष साक्षरता दर 86.7 प्रतिशत है, तथा ग्रामीण महिला साक्षरता दर केवल 46.7 प्रतिशत है। विभिन्न सामाजिक समूहों में साक्षरता दर में अंतर 40 प्रतिशत बिंदु (points) है।

विद्यालयी शिक्षा

लोग किसी भी आयु में साक्षर हो सकते हैं तथा कुछ ऐसे भी कार्यक्रम हैं जो प्रौढ़ शिक्षा पर केंद्रित हैं, सार्थक तथा स्थायी साक्षरता केवल विद्यालयों के द्वारा ही दी जाती है। हमारे संविधान में 14 वर्ष के आयु के सभी बच्चों के लिए राज्यों द्वारा सर्वशिक्षा (Universal Education) प्रदान करने का प्रावधान है। इसे 50 के दशक की शुरूआत में आयु 8 वर्षीय विद्यालयी शिक्षा के रूप में माना गया। इसका तात्पर्य यह है कि 6 वर्ष का प्रत्येक बालक या बालिका को विद्यालयों में होना चाहिए तथा हमने इसे वर्ष 1960 तक पूरा करने का संकल्प लिया था। छः लाख से अधिक कस्बों तथा गाँवों, जिनमें 10 लाख से अधिक आवास हैं (जो दूर-दूर तक बिखरे तथा आकार में छोटे हैं) , के लिए इस संकल्प की प्राप्ति संभवतः बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा थी। 6 या 7 वर्ष के बच्चे का प्रतिदिन दूर तक चलकर जाना संभव नहीं।

सारणी 5.1

जनसंख्या आकार, साक्षरों की संख्या (करोड़ में) एवं साक्षरता दर (प्रतिशत में)

वर्ष	*जनसंख्या*		*संख्या*		*साक्षरता दर*
	सभी	*आयु 7+*	*साक्षर*	*निरक्षर*	*(प्रतिशत)*
(1)	(2)	(3)=(4)+(5)	(4)	5=(3) - (4)	(6)=(4)/(3)
1951	36.1	28.3	5.5	22.8	19.2
1961	43.9	34.4	10.2	24.2	29.8
1971	54.8	43.0	15.6	27.4	36.2
1981	68.4	53.6	23.4	30.2	43.6
1991	84.1	67.6	35.2	32.4	52.1
2001	102.7	86.9	56.7	30.2	65.4

टिप्पणी : *जनसंख्या आयु 7+ तथा साक्षरता दरें वर्ष 1951, 1961 तथा 1971 के लिए अनुमानित हैं जबकि वर्ष 1981, 1991 तथा 2001 के लिए ये वास्तविक आँकड़े हैं।*

स्रोत: *भारत की जनगणना सीरीज-1, भारत, 1981 तथा 1991 का पेपर 1।*

प्रारंभिक शिक्षा (Elementary Education)

हमें याद होगा कि लोक सभा ने 18 नवंबर 2001 को 93वें संविधान संशोधन के द्वारा एक अधिनियम पारित किया जिसमें यह घोषणा की गयी कि 6-14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार है। अभिभावकों/संरक्षकों का भी मौलिक कर्तव्य है कि वे 6-14 वर्ष के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करें।

प्रारंभिक शिक्षा को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है– कक्षा I-V को प्राथमिक विद्यालय तथा VI-VIII को उच्च प्राथमिक विद्यालय कहते हैं। इनके लिए बच्चों के आयु-वर्ग क्रमशः 6-11 वर्ष तथा 11-14 वर्ष हैं। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 3 लाख प्राथमिक विद्यालय तथा 13,500 उच्च प्राथमिक विद्यालय थे। 1999-2000 में हमारे पास 6.4 लाख से ज्यादा प्राथमिक विद्यालय (उच्च स्तरीय विद्यालय की प्राथमिक कक्षाओं सहित) तथा 2.0 लाख से ज्यादा उच्च प्राथमिक विद्यालय थे।

वर्ष 1950-51 में प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन 2 करोड़ से कम था। आज यह 11 करोड़ से भी अधिक है (बच्चों की जनसंख्या तीन गुना बढ़ी जबकि नामांकन 5.5 गुना बढ़ा)। नामांकन को संबंधित आयु वर्ग से विभाजित करने की एक प्रथा हो गयी है, जिससे हम एक निश्चित समयावधि में तुलना कर सकें। इसको सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। सकल नामांकन अनुपात वर्ष 1950-51 में मुश्किल से 43 प्रतिशत था किंतु अब यह 100 प्रतिशत से भी अधिक है। यह आश्चर्यजनक है कि यह अनुपात 100 से भी अधिक कैसे हो सकता है! इसका साधारण तात्पर्य है कि प्राथमिक कक्षाओं में केवल 6-11 वर्ष की आयु वर्ग का ही नामांकन नहीं हुआ था। हम जानते है कि अधिकांश कस्बों व शहरों के विद्यालय 5 वर्ष की आयु के बच्चे को कक्षा 1 में प्रवेश देते हैं। हमें यह भी जानना चाहिए कि 11 वर्ष से बड़े बच्चे भी दूर दराज के प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ रहे होंगे। फिर भी, इस आयु वर्ग में कई बच्चे विद्यालय नहीं भी जाते। लड़कियों में गैर-नामांकन अधिक प्रबल है। सारणी 5.2 देखें।

सारणी 5.2

प्रारंभिक शिक्षा संबंधी सांख्यिकी : नामांकन, स्कूल तथा अध्यापक

	इकाई	*1951*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2000*
प्राथमिक							
नामांकन	लाख	186.8	336.3	570.4	737.7	973.7	1136.0
स्कूल	लाख	2.1	3.3	4.1	4.9	5.3	6.4
अध्यापक	लाख	5.5	7.4	10.6	13.6	16.2	19.2
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	42.6	62.4	78.6	80.5	100.1	104.1
उच्च प्राथमिक							
नामांकन	लाख	33.0	74.8	133.1	207.2	273.1	420.6
स्कूल	लाख	0.14	0.5	0.9	1.2	1.5	1.98
अध्यापक	लाख	0.9	3.5	6.4	8.5	9.7	13.0
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	12.9	22.5	34.2	41.9	60.1	58.8

स्रोतः *इंडिया ईयर बुक 2001, मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।*

उच्च प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन वर्ष 1950-51 में केवल 13 प्रतिशत था, जिसमें 21 प्रतिशत लड़के थे तथा 5 प्रतिशत लड़कियाँ थीं। आज लगभग 70 प्रतिशत लड़कों व 50 प्रतिशत लड़कियों के उच्च प्राथमिक कक्षाओं में उपस्थिति का अनुमान है। पिछले 50 वर्षों में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या जो 14,000 से कम थी, जो बढ़कर 2 लाख हो गयी है। विद्यार्थियों की संख्या वर्ष 1950-51 में 33 लाख से बढ़कर 1999-2000 तक 4.2 करोड़ हो गयी। यद्यपि महिलाओं और पुरुषों के नामांकन में विषमता कम हो रही है फिर भी यह विद्यमान है।

प्रशिक्षित अध्यापकों का अनुपात बढ़ रहा है तथा इसी प्रकार महिला अध्यापकों का अनुपात भी बढ़ रहा है। ऐसा माना जाता है कि प्रशिक्षित अध्यापक अच्छा पढ़ाते हैं तथा विद्यालय स्तर पर महिलाएँ अच्छी अध्यापिका सिद्ध होती हैं।

अधिकतर प्राथमिक विद्यालय स्थानीय, राज्य अथवा केंद्र सरकारों के द्वारा चलाए जाते हैं। अपने-अपने क्षेत्रों में राज्य सरकार शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाती है। किंतु बहुत से स्कूल समाज/संस्था/ट्रस्ट द्वारा भी चलाए जाते हैं। इनको पब्लिक स्कूल कहा जाता है।

विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों (drop-outs) का एक महत्त्वपूर्ण विषय हमारे लिए ध्यानाकर्षण योग्य है। विद्यार्थी कक्षा I (या VI) में नामांकन कराते हैं तथा कक्षा V(या VIII) तक की पढ़ाई पूरी किए बिना ही पढ़ना छोड़ देते हैं। कुल आरंभिक नामांकन में, ऐसे विद्यार्थियों के अनुपात को **ड्रॉप-आउट अनुपात** कहते हैं। केवल 60 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो कक्षा I में नामांकन कराने के बाद कक्षा V तक पढ़ते हैं और कक्षा VI में नामांकन कराते हैं, केवल 50 प्रतिशत ही कक्षा VIII तक पढ़ पाते हैं।

केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारें प्रतिवर्ष लगभग 60,000 करोड़ रुपयों से अधिक (जो कि सकल घरेलू उत्पाद के 4 प्रतिशत से कम है) शिक्षा पर खर्च करती हैं। भारत में इसका 50 प्रतिशत व्यय प्राथमिक शिक्षा पर होता है। कुछ जगह ऐसी हैं जहाँ शिक्षा की सुविधा प्रदान करना बहुत कठिन है, क्योंकि वहाँ पर या तो जनसंख्या बहुत कम है या लोग अपनी जीविका के लिए विभिन्न स्थानों पर घूमते रहते हैं। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ लोग बहुत गरीब हैं तथा बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते हैं। ऐसे स्थानों पर अधिकतर माँ-बाप अपने या किसी और के खेतों पर काम

भारत में पब्लिक स्कूल

भारत में पब्लिक स्कूलों का स्वामित्व तथा प्रबंधन सरकार के पास नहीं है। वे समाज का वर्गो के आधार पर विभेद किए बिना जनता के लिए खुले हैं। इनकी तुलना परिवहन क्षेत्र से की जा सकती है। कुछ गाड़ियों का स्वामित्व सरकार के पास है तथा कुछ गाड़ियों का दूसरों के पास। जो गाड़ियाँ सरकारी स्वामित्व में नहीं होती हैं, उन्हें पब्लिक तथा प्राइवेट कैरियर में वर्गीकृत कर सकते हैं। निजी वाहन तथा प्राइवेट कंपनियों के वाहन उनके अपने माल वहन करते हैं इसलिए उन्हें प्राइवेट कहा जाता है। वाहन जो लोगों से किराया लेकर तथा माल का वहन भुगतान के आधार पर करते हैं, उन्हें पब्लिक गाड़ियाँ कहते हैं। हमारे पब्लिक स्कूल "पब्लिक" इस अर्थ में है कि उनका स्वामित्व सोसाइटी, एसोसिएशन अथवा ट्रस्ट के पास है न कि सरकार के पास। अन्य बातों के आधार पर उनमें विभेदन हो सकता है, जिनमें से योग्यता एक है।

करते हैं तथा लड़के पशुओं को चराते हैं तथा लड़कियाँ छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। कुछ क्षेत्रों में, एक निश्चित आयु के बाद माँ-बाप लड़कियों को विद्यालय जाने की अनुमति नहीं देते। इसका आशय यह है कि कुछ स्थानों पर विद्यालयों की सुविधा नहीं है तो कुछ स्थानों पर इन सुविधाओं का प्रयोग नहीं होता।

इन समस्याओं को दूर करने के लिए भारत सरकार की सहायता द्वारा 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की एक योजना शुरू की गयी। शुरू में 1986-87 में ग्रामीण, जनजातीय, रेगिस्तानी, पहाड़ी तथा सुदूर क्षेत्रों, शहरी गंदी बस्तियों के लिए शिक्षा के पिछड़े नौ राज्यों में अनौपचारिक स्कूल खोले गए। इस काम के लिए लगभग 500 स्वैच्छिक संगठनों (जहाँ संभव हो सके) को सम्मिलित कर लगभग 3 लाख अनौपचारिक स्कूल खोले गए (इनमें एक लाख स्कूल केवल लड़कियों के लिए थे), जिनमें 75 लाख बच्चों का नामांकन हुआ। प्रत्येक अनौपचारिक स्कूल में औसतन नामांकन 25 था। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम जो मूलतः 15-35 वर्ष के निरक्षरों के लिए थी उसमें भी 6-14 वर्ष के बच्चे जो स्कूल नहीं जा पाए थे, उनका नामांकन किया गया।

राज्य सरकारों ने भी प्राथमिक शिक्षा को व्यापक करने के विचार से उन बच्चों के लिए जो अभी भी स्कूलों से बाहर हैं, कई पूरक योजनाएँ आरंभ कीं। यह अंशतः संविधान की बाध्यता को पूरा करने के लिए तथा अंशतः हाल के सर्वोच्च न्यायालय की उद्घोषणा तथा संविधान के संशोधन के कारण, जिसमें 'प्राथमिक शिक्षा बच्चे का मूल अधिकार' माना गया, के कारण आवश्यक हुआ। बहुत से विद्वानों ने इन पूरक प्रयासों को प्राथमिक शिक्षा का तनुकरण (dilution) बताया। उनके विचार से प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह किसी जाति, रंग, संस्कृति, धर्म, लिंग या निवास स्थान का हो, समान शिक्षा का अधिकार है। उनका सुझाव था कि सरकार को एक समान स्कूल व्यवस्था को अपनाना चाहिए, जो पड़ोस के विद्यालय में नामांकन के द्वारा चलाए जा सकें।

आठवीं कक्षा तक के लिए शिक्षा की एक पृष्ठभूमि बनायी गयी जहाँ पर लोग विशेष कुशलता का विकास कर अपने आपको समुदाय के लिए अधिक उत्पादक बना सकें। कुछ बच्चे आठवीं तक की शिक्षा प्राप्त कर अर्थव्यवस्था की श्रम-शक्ति में जा सकते हैं तथा कुछ व्यावसायिक शाखाओं में अपना अध्ययन आगे बढ़ा सकते हैं।

कुछ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं, पॉलीटेक्नीक तथा कुछ नर्सिंग-स्कूलों को छोड़कर ऐसी बहुत कम संस्थाएँ हैं जहाँ बच्चे आठवीं या दसवीं पास करके जा सकते हैं। साधारणतः व्यावसायिक पाठ्यक्रम 12वीं कक्षा के बाद आरंभ होते हैं। अब माध्यमिक शिक्षा की क्या स्थिति है? इसके लिए गंभीर विचार करने की आवश्यकता है।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

माध्यमिक स्तर की शिक्षा (14-18 वर्ष के आयु वर्ग के लिए) विद्यार्थी को उच्च शिक्षा तथा कार्य के संसार में प्रवेश के लिए तैयार करती है। पहले हमारे यहाँ 10+ 2+3 अथवा 10+2+2 प्रणाली थी । उसके बाद 11+3 प्रणाली आई। बाद में हम फिर से 10+2+3 प्रणाली पर आ गए। यह परिवर्तन अब समाप्त हो गया है। जहाँ तक गैर-व्यावसायिक शिक्षा का सवाल है यह 10+2+3 है। व्यावसायिक शिक्षा 10+2+4 है। अब 12वीं तक की शिक्षा स्कूल प्रणाली का एक हिस्सा है। IX व X की

कक्षाओं की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा तथा XI-XII की कक्षाओं की शिक्षा को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा कहते हैं। वर्ष 1950-51 में ऐसे विद्यालय/महाविद्यालय/विभागों में लगभग 73सौ तथा 13 हज़ार अध्यापक व 32 लाख विद्यार्थी थे। अब हमारे यहाँ 1.16 लाख विद्यालय, 15 लाख अध्यापक तथा 280 लाख विद्यार्थी हैं। सारणी 5.3 देखें।

सारणी 5.3

माध्यमिक शिक्षा : नामांकन, स्कूल व अध्यापक संबंधित सांख्यिकी

	इकाई	*1951*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2000*
नामांकन	लाख	12.2	34.63	65.80	88.07	143.65	185.82
स्कूल	लाख	0.07	0.17	0.37	0.51	0.80	1.17
अध्यापक	लाख	1.26	2.96	6.29	9.12	13.34	17.20
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	5.3	10.6	19.00	17.30	24.00*	-

** वर्ष 1990 के लिए*

स्रोत: इंडिया 1985 रेफरेंस मेन्यूअल, पब्लिकेशनस् डिवीजन, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार तथा इंडिया ईयर बुक 2001 : मेनपावर प्रोफाइल, इन्स्टीटयूट ऑफ एप्लाईड मेनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।

माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। कुछ समय पहले अस्सी के दशक के अंत में यह प्रस्ताव दिया गया था कि वर्ष 1995 तक उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों में से 10 प्रतिशत विद्यार्थियों को तथा वर्ष 2000 तक 25 प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक धारा की ओर मोड़ देना चाहिए। ऐसा लगता है कि हम 10 लाख विद्यार्थियों के लिए प्रशिक्षण-क्षमता (जो कि कुल नामांकन का 5 प्रतिशत है) उत्पन्न करने में सफल हो गए हैं। हमारे यहाँ लगभग 4000 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (ITI s) हैं, जिनके अंतर्गत विभिन्न व्यवसायों में 6-7 लाख विद्यार्थियों के प्रशिक्षण की क्षमता है।

उच्च शिक्षा (Higher Education)

शैक्षिक सूची स्तम्भ के शिखर पर होने के कारण उच्च-शिक्षा, शिक्षा प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आशा की जाती है कि उच्च शिक्षा लोगों को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मुद्दों की नाजुक स्थिति का सामना करने वाली मानवता को अभिव्यक्त करने का एक अवसर प्रदान करेगी। उच्च शिक्षा का दूसरा पहलू, जो तकनीकी शिक्षा (प्रबंधन शिक्षा के सहित) आयुर्विज्ञान शिक्षा, कृषि शिक्षा (पशु चिकित्सा सहित) तथा वानिकी की सुविधा प्रदान करता है।

वर्ष 1950-51 से उच्च शिक्षा प्रणाली में विश्वविद्यालयों में 12 गुना बढ़ोतरी, महाविद्यालयों की संख्या में 23 गुना बढ़ोतरी तथा नामांकन में 29 गुना बढ़ोतरी हुई है। अब लगभग 250 से कुछ कम विश्वविद्यालय/डीम्ड (मान्यता प्राप्त) विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएँ, पौलीटेकनीक, प्रौद्योगिकी महाविद्यालय तथा प्रबंधन संस्थाओं सहित लगभग 11000 महाविद्यालय हैं। सामान्य शिक्षा (कला, विज्ञान व वाणिज्य इत्यादि) के लिए 3.5 लाख अध्यापक हैं, जिसमें 80,000

अध्यापक (विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं के भी) सम्मिलित हैं। कुछ अन्य संस्थाएं भी हैं जो विभिन्न प्रकार से उच्च शिक्षा प्रदान करती हैं, जिनको डिग्री अथवा डिप्लोमा प्रदान करने का औपचारिक अधिकार नहीं मिला हुआ है।

उच्च माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के बाद लगभग 75 लाख विद्यार्थी हैं जो किसी न किसी प्रकार का पाठ्यक्रम तथा 15 लाख व्यावसायिक पाठ्यक्रम कर रहें हैं। यह ध्यान रहे कि हमारी शिक्षा प्रणाली का झुकाव सामान्य शिक्षा की ओर है (कला में 40 प्रतिशत, वाणिज्य में 22 प्रतिशत तथा विज्ञान में 19 प्रतिशत नामांकन हैं) ।

शैक्षिक वित्त (Educational Finance)

वित्त हमारे प्रयासों का हमें एक संकेत देता है, यद्यपि यह जानना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पैसा कहाँ खर्च होता है, कैसे खर्च होता है और कौन ख़र्च करता है। वर्ष 1976 से शिक्षा एक समवर्ती विषय है, जिसमें केंद्र व राज्य दोनों स्तर की सरकारें संसाधनों का व्यय करती हैं। हालांकि राज्यों को काफी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। सरकारों के अलावा अभिभावक भी संसाधनों को अपने बच्चों पर खर्च करते हैं तथा लोकोपकारी दूसरों के बच्चों पर खर्च करते हैं।

देश में, दोनों स्तरों की सरकारों ने मिलकर शताब्दी के अंत तक लगभग 60,000 करोड़ रुपये खर्च किया, जिसमें से राज्य सरकारों ने 50,000 करोड़ रुपये से ज्यादा, तथा केंद्र सरकार ने लगभग 7000-8000 करोड़ रुपये खर्च किए। विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने बजट का 10 से 30 प्रतिशत तक खर्च किया, जो औसतन 20 प्रतिशत होता है। दूसरी ओर, केंद्र सरकार अपने बजट का वार्षिक 3 प्रतिशत से कम शिक्षा पर खर्च करती है। सरकार पूरी तरह से सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 4 प्रतिशत खर्च करती है। संस्थाओं के कुल खर्च में सरकार 80-90 प्रतिशत वहन करती है, तथा शेष स्थानीय निकायों (7 प्रतिशत), शुल्क (4-5 प्रतिशत) तथा स्थायी निधि (3 प्रतिशत) द्वारा वहन किया जाता है।

सरकार शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यय का आबंटन करती है। लगभग 50 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर, 30 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा पर, 20 प्रतिशत उच्च शिक्षा पर, 12-14 प्रतिशत सामान्य शिक्षा तथा 4-5 प्रतिशत तकनीकी शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय है। यह वर्तमान वर्षो की स्थिति है।

स्वास्थ्य

जनसंख्या की स्वास्थ्य-स्थिति का अध्ययन करने के दो तरीके हैं। एक, हमारी जीवन-अवधि कितनी है तथा हमारा स्वास्थ्य कैसा है? दूसरा, हमारी कितनी देखभाल होती है। पहले हम अपनी जन्म-मरण संबंधी सांख्यिकीय की स्थिति देखेंगे। उसके बाद देखेंगे कि हमारे स्वास्थ्य की देखभाल कैसे तथा किस सीमा तक होती है?

जन्म-मरण सांख्यिकी (Vital Statistics)

विभिन्न आयु-वर्गों में मृत्यु दरों को देखते हुए हमें यह जानना चाहिए कि किसी बच्चे के जन्म के बाद कितनी आयु तक जिंदा रहने की संभावना है। इसे हम जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा कहेंगे। शताब्दी के शुरू में जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा मुश्किल से 25 वर्ष थी। वर्ष 1921 के पहले के मृत्यु दर के आधार पर हमारी जीवन-प्रत्याशा घट कर 20 वर्ष हो गयी। सारणी 5.4 देखें। मृत्यु की स्थिति में बाद में सुधार हुआ तथा हमारी जीवन प्रत्याशा (जन्म के समय) धीरे-धीरे बढ़कर 1951

में 32 वर्ष हो गयी। स्वतंत्रता के बाद हमने खाद्य, पोषण तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक कदम उठाए जिससे हमारी जीवन-प्रत्याशा (जन्म पर) शताब्दी के अंत तक बढ़कर 65 वर्ष तक पहुंच गयी। हमारे जनसांख्यिकीकार तथा बीमांकिक सांख्यिकीज्ञाता विभिन्न आयु के लिए जीवन-प्रत्याशा की गणना करते हैं, जैसे 1, 5, 10, 20, 30, 40, 50, 60, तथा 70 वर्ष पर। हम सब जानते हैं कि लोग विभिन्न आयु में मरते हैं। विभिन्न लोग एक ही वर्ष में पैदा होकर विभिन्न वर्षों में मरते हैं। समूह की जीवन-प्रत्याशा उस समूह के औसत जीवन-काल से है (वर्षों की संख्या में) जितनी कि उस समूह के जीवित रहने की संभावना है। x-आयु पर जीवन-प्रत्याशा सुधरती है, जब बचपन में जैसे-जैसे आयु बढ़ती है मृत्यु होने की संभावना कम होती रहती है। जन्म पर मृत्यु की संभावना बहुत अधिक होती है, फिर पहले दिन, पहले सप्ताह, पहले महीने तथा पहले वर्ष घटते हुए क्रम में होती है। उदाहरण के लिए, जन्म पर जीवन-प्रत्याशा की तुलना में, 1 वर्ष की आयु में जीवन-प्रत्याशा 4 वर्ष अधिक होगी। जबकि बच्चे जो जीवित रह गए, वे पहले से ही एक वर्ष की आयु तक जीवित रह चुके हैं। यह प्रवृत्ति हमेशा के लिए नहीं रहती तथा एक निश्चित आयु (जैसे 10 वर्ष) के बाद मृत्यु की संभावना घटने लगती है। परिणामतः 10 वर्ष पर जीवन-प्रत्याशा, जन्म पर जीवन-प्रत्याशा से कुछ अधिक होगी। हम सारणी 5.4 की ऊपर की पंक्तियों में यह देख सकते हैं, जीवन-प्रत्याशा (10 वर्ष पर), जीवन-प्रत्याशा (जन्म पर) से 10 वर्ष के अधिक होगी। जबकि ये लोग पहले से ही 10 वर्ष का जीवन बिता चुके होंगे । यह स्थिति शताब्दी के आरंभ में भी थी। स्वतंत्रता के बाद, (जैसा हम सारणी में नीचे की पंक्तियों में देख सकते हैं), जीवन-प्रत्याशा (10 वर्ष पर) जीवन प्रत्याशा (जन्म पर) के बराबर हो गयी। अतः जीवन-प्रत्याशा सुधर गयी है।

सारणी 5.4 के आँकड़े जनगणना के आँकड़ों से तैयार किए गए हैं। वर्ष 1970 से हमारे पास

सारणी 5.4
जनगणना वर्षों के लिए चयनित आयु के लिए जीवन-प्रत्याशा

(वर्षों में)

	जन्म		*आयु 10*		*आयु 30*		*आयु 50*		*आयु 60*	
वर्ष	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*
1901	23.6	24.0	34.7	33.9	22.9	23.8	13.6	14.5	09.5	10.0
1911	22.6	23.3	33.4	33.7	22.5	23.0	14.0	14.3	10.0	10.1
1921	19.4	20.9	29.6	29.2	21.6	21.8	14.3	15.0	10.7	11.7
1931	26.9	26.6	36.4	33.6	23.6	22.3	14.3	14.7	10.3	10.8
1941	32.1	31.4	41.2	38.6	29.0	27.9	17.8	18.2	12.6	13.7
1951	32.5	31.7	39.0	39.5	26.6	26.2	14.9	16.1	10.1	11.3
1961	41.9	40.5	45.2	43.8	29.0	27.9	16.5	17.5	11.8	13.0
1971	46.4	44.7	48.8	47.7	33.5	32.0	19.2	19.7	13.6	13.8

स्रोत : *हेल्थ इनफोर्मेशन ऑफ इंडिया 1997 व 1998, सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इन्टेलीजेन्स, डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ सर्विसेज, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 2000।*

'सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम' के आँकड़े हैं। जीवन-प्रत्याशा के आँकड़े, जो इन मूल आँकड़ों पर आधारित हैं, सारणी 5.5 में दिए गए हैं। सारणी 5.5 में दो लिंगों की जीवन-प्रत्याशा जिस आयु पर मापी गयी है, वह जो सारणी 5.4 में दिए गए आँकड़ों के समान नहीं है।

उपर्युक्त सारणी में से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

(1) जीवन-प्रत्याशा को आयु तथा लिंग के लिए माप सकते हैं।

(2) जैसे-जैसे आयु बढ़ती है महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक होती है।

(3) अस्सी के दशक से महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक है।

यह एक अच्छा प्रतीक है। नवीनतम अनुमान बताते हैं कि महिला जीवन-प्रत्याशा 65.3 वर्ष है जबकि पुरुष जीवन-प्रत्याशा 62.3 वर्ष है। हम सभी लंबी आयु चाहते हैं (अच्छे स्वास्थ्य के साथ) किंतु हम यह भी जानते हैं कि हमारा जीवन अनंत लंबा नहीं हो सकता है। यदि लोग समाज-सेवा करके मरते हैं तो हमें उतना बुरा नहीं लगता। यदि लोग शिशु-अवस्था अथवा बाल्यावस्था में मरते हैं तो समाज में उनका योगदान कुछ भी नहीं होता है। हम इसे जीवन का व्यर्थ होना मानते हैं, क्योंकि इससे माँ का स्वास्थ्य, समय तथा धन की हानि होती है। खुशी का विषय है कि सभी आयु-वर्गों में मृत्युदर कम हो गयी है, विशेषकर शिशु मृत्यु दर के कम होने पर।

हम देखते हैं कि शताब्दी के दौरान जब प्रति हजार जनसंख्या पर मृत्युदर कम हुई है, आरंभ में 45, मध्य में 45 से कम होकर 25 तथा शताब्दी के अंत में 9 हो गयी। शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार जीवित जन्म दर) जो आरंभ में 200 से ऊपर थी, मध्य में कम होकर 145 तथा शताब्दी के अंत में 70 हो गयी। हम आगे देखते हैं कि शहरी क्षेत्रों में जबकि सामान्य मृत्यु दर 6.5 है, शिशु मृत्यु-दर 45 है। तथापि, अभी भी शिशु मृत्यु दर कम होने की सम्भावना है तथा हम अगले 10 वर्षों में इसे घटाकर 30 करना चाहते हैं।

सारणी 5.5
विभिन्न आयु में जीवन-प्रत्याशा (सेम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित)

(वर्षों में)

	जन्म दर		*आयु 1*		*आयु 5*		*आयु 50*		*आयु 60*	
	पुरुष	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*
1970-75	50.5	49.0	57.0	55.6	57.5	57.7	19.8	21.3	13.4	14.3
1976-80	52.5	52.1	58.6	58.6	58.8	60.2	20.5	23.0	14.1	15.9
1981-85	55.4	55.7	60.8	61.1	60.1	61.8	21.4	23.8	14.6	16.4
1986-90	57.7	58.1	62.2	62.6	60.9	62.5	21.7	23.7	14.7	16.1
1991-95	59.7	60.9	63.9	65.1	61.8	63.9	22.3	24.8	15.3	17.1

स्रोत : कम्पेडियम ऑफ इंडिया फरटीलिटी व मोरटिलिटी इंडीकेटरस् 1971-1997, सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

यह याद रखना चाहिए कि समाज को आगे बढ़ाने के लिए जन्म जरूरी है, किंतु इनका अत्यधिक होना भी अल्पकाल में समस्याएँ पैदा कर सकता है तथा हमारी उपलब्धियों को कम कर सकता है। फिर भी एक बार जब शिशु जन्म ले लेता है तो मानव-समुदाय चाहता है कि वह जीवित रहे, अपना योगदान दे तथा जीवन का आनंद उठाए।

जन स्वास्थ्य (Public Health)

यह कैसे संभव हो सकता है कि लोग ज्यादा स्वस्थ तथा उत्पादक/सार्थक जीवन व्यतीत करें तथा बाल्यावस्था में नहीं मरें। पहला, बच्चे स्वस्थ होने चाहिए, जिसके लिए माँ के स्वस्थ होने की जरूरत है। दूसरा, वे सभी तरह के टीके इत्यादि लगवाएँ। तीसरा, उन्हें स्वच्छ वातावरण का आनंद लेना चाहिए। चौथा, उन्हें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए। पाँचवाँ, उन्हें बीमार होने पर पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएँ मिलनी चाहिए। इनके अतिरिक्त बच्चों को खेलने तथा सीखने का मौका मिलना चाहिए और उन पर काम करने का दबाव नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि वयस्कों को स्वच्छ वातावरण, पौष्टिक भोजन, आश्रय तथा बीमार पड़ने पर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। प्रत्येक के पास वस्त्र तथा आश्रय होना चाहिए। वयस्कों को काम करने का अवसर मिलना चाहिए ताकि वे अवश्य काम करें। पहले तीन प्रेक्षण जन स्वास्थ्य के वर्ग में आते हैं। जन स्वास्थ्य की दिशा में किए गए उपायों के कारण ही हमारे जीवन के स्तर में सुधार हुआ है।

बाल्यावस्था में मृत्यु के कारण पूरे जीवन के व्यर्थ होने से आंशिक विकलांग बनकर जीने से बचाने के लिए हमें अपने बच्चों तथा उनकी माताओं के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि आप गाँव में हैं, तो आपने बच्चों के लिए विभिन्न टीकाकरण के शिविर तथा टीकाकरण के कार्यक्रमों के बारे में दीवारों पर लिखा हुआ देखा होगा। यदि आप कस्बों अथवा शहरों में रह रहे हैं तो आपने तख्ते देखे होंगे जिन पर बच्चों के सामाजिक टीकाकरण कार्यक्रमों की तिथियाँ लिखी होंगी। पहले की तुलना में गर्भवती माताओं तथा बच्चों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। गर्भवती माताओं को टेटनस के संक्रमण से बचाने के लिए टेटनस (Tetanus Toxoid) के टीके दो बार लगवाने चाहिए। वर्ष 1980-81 में भी केवल 53 लाख माताओं ने टी.टी. का टीका लगवाया तथा वर्ष 1996-97 में उनकी संख्या 2 करोड़ 30 लाख

जन स्वास्थ्य

औद्योगिक क्रांति का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा था। यह समाज के लिए चिंता का विषय था तथा इस पर सरकार के सतत प्रयास की जरूरत पड़ी। यह महसूस किया गया कि औद्योगिक क्रांति तथा शहरीकरण के कारण खराब स्वास्थ्य तथा असामयिक मृत्यु के रूप में मानव लागत (human cost) बहुत अधिक थी। ऐसा पता चला कि गंदे वातावरण के कारण संक्रामक रोग फैलते हैं। 1842 में, स्वास्थ्य की स्थिति पर एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित हुआ था। 6 वर्ष तक संघर्ष के बाद, 1848 में ब्रिटिश संसद में एक स्वास्थ्य अधिनियम पारित किया गया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप 1919 में ब्रिटेन में स्वास्थ्य मंत्रालय की स्थापना हुई।

यह उल्लेखनीय है कि कौटिल्य स्वास्थ्य तथा सफाई के बारे में बहुत जागरुक थे। उन्होंने इसे नागरिक कर्त्तव्य का एक अंग बना दिया था कि कोई भी सार्वजनिक स्थानों, उद्यानों तथा गलियों को गंदा नहीं करेगा। उन्होंने इसे एक सजा-योग्य अपराध घोषित कर दिया था। शायद उन दिनों औद्योगिक प्रदूषण था ही नहीं।

पहुंच गयी। माताओं, विशेषकर गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के रक्तक्षीणता से बचाव के लिए इस रोगनिरोधन का टीका लगवाना चाहिए। दुर्भाग्यवश, ज्यादातर भारतीय महिलाएँ अपर्याप्त पोषण के कारण रक्तक्षीणता से पीड़ित हैं। ऐसी माताओं से पैदा हुए बच्चे भी रक्तक्षीणता से पीड़ित होंगे।

बच्चों को विभिन्न बीमारियों के लिए टीके लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (जैसे– डिफथेरिया, परटुसिस तथा टेटनस DPT टीके द्वारा; पोलियो– ओरल पोलियो टीके द्वारा; मीजल्स-बेसिलस कालिमेटे गुएरिन (BCG) टीके द्वारा; अंधापन– विटामिन A के द्वारा), इत्यादि। परिवार कल्याण विभाग (भारत सरकार के परिवार कल्याण मंत्रालय का) सामूहिक टीकाकरण कार्यक्रम, (यूनीवर्सल इम्यूनाइजेशन प्रोग्राम) के अंतर्गत सभी बच्चों को ऐसी बीमारियों से बचाने का प्रयास कर रहा है (अधिकतर ये टीके भारत में सरकारी तथा निजी क्षेत्र की कंपनियों द्वारा बनाए जा रहे हैं) ।

पहले प्लेग तथा काला-ज़ार जैसी महामारियाँ कभी-कभी फैलती थीं तथा इससे भारी हानि होती थी। स्वच्छता की कमी से भी ये बीमारियाँ फैलती हैं। 1994 में प्लेग सूरत (गुजरात) में फैल गया था। बिहार में अभी भी काला-ज़ार तथा इससे मृत्यु की रिपोर्ट मिलती है। हजारों की मृत्यु का कारण हैजा तथा चेचक दो बड़े अभिशाप हुआ करते थे। वर्ष 1977 से चेचक का उन्मूलन हो गया है। हैजे के रोगियों की संख्या जो पहले दस हजारों में होती थी, कम होकर हजारों में हो गयी, परंतु अभी भी इससे कुछ मौतें हो जाती हैं। किंतु अतिसार जैसी बीमारियाँ अभी भी एक प्रतिशत लोगों को प्रभावित करती हैं तथा कुछ हजार लोगों की मृत्यु का कारण भी होती हैं। दुर्भाग्यवश, मलेरिया का प्रभाव अभी भी अधिक है। लाखों लोग इससे पीड़ित हैं तथा सैकड़ों लोग इससे मर भी जाते हैं। इतनी ही हानि जापानी मस्तिष्क ज्वर से होने की सूचना मिली है। राष्ट्रीय मलेरिया विरोधी कार्यक्रम (पहले राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम) मलेरिया, काला-ज़ार, मस्तिष्क ज्वर तथा फाईलेरिया से रक्षा करता है। लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या, संवाहकों द्वारा फाईलेरिया के जोखिम से प्रभावित हैं तथा इसके रोगी भी करोड़ों में है। इसी प्रकार, हमारे यहाँ राष्ट्रीय कुष्ठरोग निवारण कार्यक्रम हैं जो 5 लाख से अधिक रोगियों की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तपेदिक (T.B.) नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय अंधापन नियंत्रण कार्यक्रम भी हैं।

एस.टी.डी., एच.आई.वी. सकारात्मक तथा एड्स के निवारण तथा उपचार के लिए एक राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन है, जो रोगियों को स्वास्थ्य-सुविधाएँ देता है। एड्स न केवल रोगियों का स्वास्थ्य खराब करता है, बल्कि उन्हें दूसरी बीमारियों के प्रति अतिसंवेदनशील भी बनाता है। इससे व्यक्ति एवं समुदाय दोनों को कीमत चुकानी पड़ती है।

STD, HIV तथा AIDS
STD = Sexually Transmitted Diseases
HIV = Human Immunodeficiency Virus
AIDS = Acquired Immune Deficiency Syndrome

स्वच्छ वातावरण तथा पौष्टिक भोजन के बारे में आप क्या सोचते हैं? आइए, हम संयत कार्यसूची के साथ आगे बढ़ें। एक दूषित पीने के पानी के प्रयोग से कई प्रकार की बीमारियाँ तथा कुछ मौतें भी हो जाती हैं। ये बीमारियाँ हैं — डायरिया, ट्रेकोमा, इनेटस्टाइनल वर्म, हेपेटाइटिस तथा टायफाइड । इन बीमारियों के परिणाम हैं — अस्थायी विकलांगता तथा अनावश्यक उपचार, स्थायी विकलांगता तथा निवार्य जीवन की हानि।

50 प्रतिशत रोगी संक्रामक रोगों से पीड़ित हैं, जिसमें से 20 प्रतिशत जल-जनित रोगों से पीड़ित हैं। 5 वर्ष की कम उम्र के 25 प्रतिशत बच्चे दस्त से मरते हैं। करोड़ों श्रम-दिनों की हानि जल-जनित बीमारियों से होती है। अतः हम प्रत्येक व्यक्ति को पीने के सुरक्षित पानी की सुविधाएँ सुनिश्चित करें। तथापि, पिछले 15 वर्षों में सुरक्षित पीने के पानी के क्षेत्र में काफी सुधार हुआ है। ऐसा कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के सुरक्षित पानी की उपलब्धता 1985 में 56 प्रतिशत से बढ़कर 1999 में 82 प्रतिशत हो गई है।

शहरी क्षेत्रों में वातावरण सुधर सकता है, यदि सफाई-सुविधा उपलब्ध हों। शहरी क्षेत्रों में काफी प्रयास करने के बावजूद वर्ष 1985 में 30 प्रतिशत के विपरीत वर्ष 1997 में केवल 50 प्रतिशत जनसंख्या को सफाई सुविधाएँ प्राप्त हुईं। ग्रामीण क्षेत्र में ये सुविधाएँ, वर्ष 1985 में 0.8 प्रतिशत की तुलना में अभी 8 प्रतिशत जनसंख्या को उपलब्ध हैं।

स्वास्थ्य देख-भाल व्यवस्था (Health Care System)

ऐसी आशा करना कि हम बीमार न पड़ें अच्छी बात है। हमें सफाई के उपायों, जन-स्वास्थ्य के उपायों तथा स्वास्थ्य, पोषण व सफाई संबंधी छोटी-छोटी सलाहों द्वारा बीमारियों से बचना चाहिए। यदि हमें बीमारी हो, तो हमें इसका उपचार करना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि हमारे यहाँ अस्पताल, दवाखाना, स्वास्थ्य केंद्र, डाक्टर, नर्सें, दवा-विक्रेता तथा स्वास्थ्य सलाहकार एवं मार्गदर्शक भी होने चाहिए। तथापि, हम जानते हैं कि ऐलोपैथी के अतिरिक्त आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी, सिद्धा,

रुग्णता (Morbidity)

रुग्णता खराब स्वास्थ्य की स्थिति है। इससे आपको अच्छा नहीं लगेगा अथवा दूसरे लोग भी आपके बारे में चिंतित होंगे। आप तीक्ष्ण अथवा चिरकालिक बीमारियों से पीड़ित हुए होगें । यह आपको अस्थायी विकलांग बनाकर आपके कार्य को प्रभावित करता है। लंबी रुग्णता से मृत्यु हो सकती है।

हमारे देश में रुग्णता के दो मुख्य कारण हैं– तीक्ष्य श्वास संक्रमण (1.5 करोड़) तथा दस्त की बीमारी (80 लाख) है जिससे कई हजार मौतें हुई हैं।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा संचालित हाल ही के सर्वेक्षण के अनुसार, सर्वेक्षण के एक दिन पहले तक, केरल में, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में प्रति हजार में, बीमार लोगों की संख्या 118 तथा 88 थी जबकि मिजोरम में यह क्रमशः 18 व 12 थी। ये देश के अधिकतम साक्षर राज्य हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में ये संख्याएँ क्रमशः 61, 41, 36 तथा 28 थीं तथा शहरी क्षेत्रों में क्रमशः 72, 38, 41 तथा 33 थीं। इन आँकड़ों की सरल व्याख्या नहीं की जा सकती।

यदि हमारी जनसंख्या का पोषण-स्तर अच्छा हो तो अधिकांश रुग्णताओं से बचा जा सकता है। कुछ राज्यों में संचालित सर्वेक्षण के अनुसार सभी वर्गों जैसे 1-3 या 16-18 आयु के लड़के या लड़कियों में तथा पुरुषों या महिलाओं में, संयत अथवा आसीन होकर कार्य करने वाले पुरुषों व महिलाओं में कैलोरी तथा प्रोटीन की कमी 10-30 प्रतिशत है। केवल एक वर्ग में अपवाद है जहाँ पर महिलाएँ आसीन-कार्य करती हैं तथा प्रति दिन कैलोरी ग्रहण अनुशांसित 1875 के विपरीत 1954 है, तथा औसतन प्रोटीन ग्रहण 50 ग्राम है जो अनुशांसित मात्रा है। यह एक औसत दृश्य है। यदि कुछ ज्यादा खा रहे हैं, तो कुछ कम खा रहे हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा तथा योग के डाक्टर भी हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय के अतिरिक्त दूसरे मंत्रालय (जैसे रेल-मंत्रालय अपने कर्मचारियों के लिए, श्रम-मंत्रालय अपने खदानों में, ऊर्जा-मंत्रालय कोयले की खदानों में) भी अस्पताल चलाते हैं। अस्पताल विभिन्न परिषदों, विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारों के द्वारा भी चलाए जाते हैं परंतु महत्त्वपूर्ण रूप से निजी संस्थाओं के द्वारा। अस्पताल रोगियों को भर्ती करने के लिए तथा औषधालय चिकित्सा सहायता व दवाइयाँ देने के लिए होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्र हैं।

हमारे यहाँ अधिक सूचनाएँ ऐलोपैथी संस्थाओं के बारे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि हमारी 70-75 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है, ग्रामीण क्षेत्रों में कुल अस्पतालों का 1/3 तथा कुल बिस्तरों का 1/4 भी उपलब्ध नहीं है। सरकारी प्रबंधन के अस्पतालों में यद्यपि 60 प्रतिशत से अधिक बिस्तर हैं परंतु कुल अस्पतालों में सरकारी प्रबंधन का अनुपात केवल 30 प्रतिशत है। स्वाभाविक रूप से सरकारी अस्पताल बड़े तो हैं किंतु अच्छे नहीं। ग्रामीण क्षेत्रों में औषधालयों के वितरण की स्थिति थोड़ी अच्छी है। सरकारी व निजी औषधालयों में बिस्तरों की संख्या बराबर होती है। सरकार के अधीन 40 प्रतिशत औषधालय हैं। स्थानीय निकाय, जैसे नगरपालिका, भी कुछ हद तक चिकित्सा की देख रेख व्यवस्था में हिस्सा लेती हैं।

अब हम ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य देख-भाल की व्यवस्था की ओर ध्यान दें। ऊपर दर्शाए गए अस्पतालों तथा औषधालयों के अलावा हमारे यहाँ निम्नलिखित संरचनाएँ हैं :

(i) जिले के स्तर पर 1 लाख जनसंख्या की देखभाल के लिए 30 बिस्तरों वाला गर्भ विज्ञान, बाल चिकित्सा, शल्य चिकित्सा तथा दवाओं की विशिष्ट चिकित्सा सुविधा सेवा वाला, एक समुदाय स्वास्थ्य केंद्र (Community Health Center)।

(ii) ब्लॉक के स्तर पर 30,000 की जनसंख्या (पहाड़ी तथा जन-जातीय क्षेत्र में 20,000) की देख भाल करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जो परिवार नियोजन संबंधी सलाहों के साथ साधारण चिकित्सा सुविधाएँ भी प्रदान करता है। समुदाय स्वास्थ्य केंद्र को सहायक स्वास्थ्य केंद्र कह सकते हैं।

(iii) 5000 जनसंख्या (पहाड़ी तथा जन-जातीय क्षेत्र के लिए 3000) की सुविधा के लिए स्वास्थ्य उप-केंद्र होते हैं। मूलतः ये केंद्र परिवार नियोजन की सेवाओं तथा आपूर्ति के लिए होते हैं। कुछ राज्यों में, जैसे केरल में एक स्वास्थ्य उप-केंद्र एक गाँव को सुविधा प्रदान करता है जबकि कुछ अन्य राज्यों जैसे नागालैण्ड में एक स्वास्थ्य उप-केंद्र 10 गाँवों को सुविधाएँ प्रदान करता है।

प्रथम योजना से ही हमने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की परियोजना को आरंभ कर दिया था। बाद में 60 के दशक के मध्य में हमने स्वास्थ्य उप-केंद्रों तथा इसके बाद, समुदाय केंद्रों के विचार को इसमें जोड़ दिया। यह स्वाभाविक है कि इन सुविधाओं को स्थापित करने के लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है। हम जितने ज्यादा विकसित होते हैं हमें उतनी ही ज्यादा सुविधाएँ मिलती हैं। शताब्दी के अंत तक, हमारे पास 3000 समुदाय स्वास्थ्य केंद्र, 24,000 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा 140,000 उप-केंद्र थे। निश्चित किए हुए मानकों के अनुसार हमें कम-से-कम 7000-8000 समुदाय स्वास्थ्य केंद्रों तथा 25000-30000 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की आवश्यकता है। उप-केंद्रों की अधिक कमी

नहीं है। किंतु हमें इन केंद्रों की कार्यप्रणाली में सुधार लाना होगा। हमें समाचार-पत्रों से ज्ञात होता है कि हमारे डाक्टर गाँवों में नहीं रहते हैं, नर्से प्रतिदिन आती-जाती रहती हैं तथा स्वास्थ्य कर्मचारी व सहायक/मार्ग दर्शक गायब रहते हैं। सारणी 5.6 देखें।

चिकित्सा कर्मचारी (Medical Personnel)

जब आप बीमार होते हैं तब आपको केवल अस्पताल अथवा औषधालय की ही जरूरत नहीं होगी बल्कि आपको डाक्टर, नर्स, औषधि-विक्रेता, तथा प्रयोगशाला तकनीशियन की भी आवश्यकता होगी।

कुछ बीमारियों में चिकित्सक तथा शल्य चिकित्सक के अतिरिक्त विशेषज्ञों की भी आवश्यकता होती है। जन्म के समय दाई की आवश्यकता होती है। डाक्टरों की गिनती चिकित्सा कर्मचारियों में होती है, दूसरे कर्मचारियों को जो इलाज में डाक्टरों की सहायता करते हैं उन्हें परा-चिकित्सा कर्मचारी के रूप में जाना जाता है। बड़े अस्पतालों में गैर-चिकित्सा कर्मचारी बहुत हैं। वर्ष 1951 की तुलना में, जब हमारे यहाँ केवल 60,000 चिकित्सक थे, आज हमारे यहाँ 5 लाख चिकित्सक हो गए, जिनमें से अधिकांश सरकारी संस्थानों में कार्यरत हैं। दंत चिकित्सकों की संख्या 1951 में 3300 से बढ़कर आज 29,000 हो गयी है। नर्सों की संख्या वर्ष 1951 में 15,000 की तुलना में आज 6 लाख के आस-पास है। दाइयों/प्रसाविकाओं, तथा स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या 8000 से बढ़कर 3 लाख से अधिक हो गयी है। औसतन प्रति 1 लाख जनसंख्या के लिए व्यवसायी-जनसंख्या अनुपात जो वर्ष 1951 में 17 था, बढ़कर वर्ष 1998 में 52 हो गया। औसतन नर्स-जनसंख्या अनुपात जो 1951 में 5 था से बढ़कर 1998 में 62 हो गया है।

आवास (Housing)

पर्याप्त खाद्यान्न तथा कपड़ों की आपूर्ति के बाद लोगों को सिर पर छत की आवश्यकता होती है। प्राचीनकाल में लोग गुफाओं के अन्दर रहते थे। अधिवास (settlement) का वास्तव में अर्थ है, पशुओं को पालना, फसलों की खेती तथा झोपड़ियों

सारणी 5.6
उपचारिक स्वास्थ्य देख-रेख प्रणाली की संस्थागत सांख्यिकी

अवधि	*अस्पताल*	*औषधालय*	*CHC*	*PHC*	*HSC*
1951-56	2694	6515		725	
1961	3094	9406		2565	
1971	3862	12180		5112	28489
1981	6804	16751	214	5740	51405
1991-92	13692	27403	2070	20433	130964
1998	15128	25670	2913	23179	137006

CHC = सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (Community Health Centre); PHC = प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (Primary Health Centre); HSC = स्वास्थ्य उप-केंद्र (Health Sub-Centre)

स्रोत : *हेल्थ इनफोर्मेशन ऑफ इंडिया 1997 व 1998, सेंट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इन्टेलिजेंस, डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ सर्विसेज, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार 2000।*

का निर्माण करना। जैसे हमारे खाद्यान्नों तथा वस्त्रों की स्थिति सुधरी है, हमने अपने आवासों में भी सुधार किया। हमे केवल रिहायशी घरों की ही आवश्यकता नहीं होती बल्कि व्यापारिक गतिविधियों के लिए घरों तथा औद्योगिक गतिविधियों के लिए भवनों की भी आवश्यकता होती है। यद्यपि हम इस तथ्य की उपेक्षा करेंगे कि घरों का अन्य उद्देश्यों के लिए अलग-अलग अथवा साथ-साथ भी प्रयोग होता है, तथापि यहाँ हम रिहायशी घरों तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे। एक दुकान घर के एक हिस्से में चलायी जा सकती है। गायों को घर के एक हिस्से में रख सकते हैं अथवा एक पूरे अलग घर को उनका निवास बनाया जा सकता है। अतः एक घर रिहायशी, गैर-रिहायशी अथवा अंशतः रिहायशी और अंशतः गैर-रिहायशी भी हो सकता है। यद्यपि अंशतः रिहायशी घरों को समूह-सांख्यिकी में रिहायशी ही समझा जाएगा क्योंकि हमारी चर्चा रिहायशी आवासों की कमी पर ही केंद्रित है।

जनगणना घर (Census House)

जनगणना के अनुसार, एक जनगणना घर एक भवन अथवा भवन का हिस्सा होगा जिसमें निम्नलिखित हों – (i) सड़क से अलग मुख्य द्वार, (ii) एक सामूहिक प्रांगण, अथवा (iii) एक सीढ़ी। यह जनगणना घर खाली अथवा भरा हुआ हो सकता है। यदि यह भरा हुआ हो, तो इसका प्रयोग रिहायशी या गैर-रिहायशी अथवा अंशतः रिहायशी या अंशतः गैर-रिहायशी उद्देश्यों के लिए हो सकता है। तथापि, हम अपने उद्देश्य के लिए रिहायशी तथा अंशतः रिहायशी इकाईयों को रिहायशी इकाईयों की तरह मानेंगे।

आवासीय-स्टॉक (Housing Stock)

हमारे यहाँ कच्चे, अर्ध-पक्के तथा पक्के घर हैं। दीवारों तथा छत में प्रयोग हुए माल के आधार पर घरों को कच्चा, अर्ध-पक्का तथा पक्का घोषित किया जाता है। कोई घर जिसमें दीवार तथा छत पक्के माल से बने हों, पक्का घर होगा जबकि कोई घर जिसमें दोनों कच्चे माल से बने हों, कच्चा घर होगा। अन्य स्थितियों में किसी घर को अर्ध-पक्का कहते हैं। कच्चे घरों को दो प्रकारों में विभाजित करते हैं — टिकाऊ तथा गैर-टिकाऊ। टिकाऊ घर दीवारों तथा छतों की न्यूनतम मरम्मत करने पर वर्षों तक रहते हैं। उनकी साधारणतया गारे की ठोस दीवार तथा फूस की छत होती है। गैर-टिकाऊ घर वे हैं, जिनका प्रत्येक मौसम अथवा वर्ष में पुनर्निर्माण अथवा प्रतिस्थापन किया जाता है, तथा इनकी दीवारें, छतें ऐसे माल (जैसे घास, पत्तियों, सरकण्डे अथवा बाँस) से बनी होती हैं जिनकी मरम्मत नहीं की जा सकती है। हम इस बात से सहमत होंगे कि अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के स्तर को देखते हुए हमें कम से कम कच्चे टिकाऊ (मरम्मत योग्य) घरों की आवश्यकता है। भविष्य में विकास को ध्यान में रखकर प्रत्येक के लिए पक्के घर की आवश्यकता है।

वर्ष 1951 में 6.4 करोड़ घर थे इनमें से 5.4 करोड़ ग्रामीण क्षेत्र में तथा लगभग 1 करोड़ शहरी क्षेत्र में थे। वर्ष 1961 में ग्रामीण घरों के बारे में दिए गए वक्तव्य से घरों की गुणवत्ता के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 5 करोड़ घरों को या तो प्रतिस्थापित करना अथवा पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता थी। वे मरम्मत योग्य होते हुए भी कच्चे घर थे। जहाँ तक शहरी क्षेत्रों की बात है,

घरों के मूल्यह्रास (ह्रास) तथा पुरानेपन का ध्यान न रखते हुए, एक अनुमान के अनुसार 55 लाख घरों की कमी है। इन सब बातों तथा जनसंख्या में बढ़ोतरी और गंदी बस्तियों के घरों को (जिनका लगभग 10 लाख होने का अनुमान है) को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान में उपलब्ध एक करोड़ घरों के अलावा 80 लाख अतिरिक्त घरों की आवश्यकता है। अतः आवासों की कमी चिंताजनक है।

यदि हम इन आँकड़ों को ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार अलग करते हैं तो कुल स्टॉक, खाली स्टॉक, भरे हुए घर (भरे हुए घरों का रिहायशी और गैर-रिहायशी में वर्गीकृत) के संबंध में निम्नलिखित चित्र उभर कर सामने आता है। यद्यपि 70 तथा 80 के दशक में जनसंख्या की तुलना में कुल स्टॉक थोड़ी अधिक दर से बढ़ा है, किंतु पहले से ही वर्तमान कमी के कारण यह अपर्याप्त है। फिर भी 80 में खाली स्टॉक में 40

सारणी 5.7

ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार आवासीय स्टॉक के अभिलक्षण (1951-1991)

(लाखों में)

	1951	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
राष्ट्रीय					
कुल		1045	1185	1499	1903
खाली		61	75	79	112
भरे-हुए	644	984	1114	1420	1791
गैर-रिहायशी इकाई		222	219	305	349
रिहायशी इकाई		762	892	1107	1432
ग्रामीण					
कुल		860	947	1138	1391
खाली		47	58	56	78
भरे हुए	541	813	889	1082	1313
गैर-रिहायशी इकाई		188	178	242	262
रिहायशी इकाई		624	711	840	1050
शहरी					
कुल		185	239	354	512
खाली		13	18	23	44
भरे हुए	103	172	281	321	468
गैर-रिहायशी इकाई		34	41	64	87
रिहायशी इकाई		138	181	268	382

स्रोत : इंडिया 1962 ए रेफरेंस मेन्यूअल, प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार तथा भारत की जनगणना 1991, सीरीज 1, भारत, पेपर 2 ऑफ 1993, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई। यह अंशतः स्टॉक की दशा तथा अंशतः स्वामियों की संवृद्धि/असुरक्षा के कारण हुआ। बेहतर अंतर्दृष्टि के लिए हमें इसे ग्रामीण-शहरी विभाजन में भी देखना चाहिए। सारणी 5.7 देखें (2001 जनगणना के आंकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं)।

हमें यह ध्यान देना चाहिए कि दोनों ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में, केवल गैर-रिहायशी उद्देश्य से कुल स्टॉक का 1/6 से 1/5 ही भरा हुआ है। बिरले की क्या हम गैर-रिहायशी उद्देश्य के स्टॉक की अपर्याप्तता के बारे में बात करते हैं? हमारा अधिकांश संबंध रिहायशी उद्देश्य की गृह निर्माण की इकाइयों की अपर्याप्तता से रहता है।

आवास की कमी (Housing Shortage)

यदि प्रत्येक परिवार के पास कम से कम एक मकान हो तथा किसी भी परिवार के पास एक से अधिक मकान नहीं हो, तब दिए हुए निवास-स्थान के लिए परिवारों की संख्या तथा मकानों की संख्या में अंतर आवास की कमी दिखाएगा। एक परिवार एक से अधिक मकान में रह भी सकता है अथवा उनको खाली रखता है, तब कमी और अधिक होगी। इसका अर्थ निम्न होगा– (i) कुछ परिवार आश्रय रहित हैं, रैन बसेरा अथवा फुटपाथ पर रहते हैं, तथा (ii) कुछ परिवार एक मकान में साझे रूप से रहते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि झुग्गी-झोपड़ी भी आवास है।

कुल राष्ट्रीय आवासीय कमी जो 1961 में 55 लाख थी, अब (1991) में केवल 38 लाख है जिसमें 31 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में है तथा लगभग 8 लाख शहरी क्षेत्रों में। अनुपात के रूप में यह 2.5 प्रतिशत है। वास्तव में यह अनुमान उन परिवारों को भी विचार में लाता है जो दूसरों के साथ साझे में रहते हैं, किंतु उन परिवारों पर ध्यान नहीं देता जो आश्रय रहित हैं। यदि हम दोनों को जोड़ें तो अपर्याप्तता 44 लाख तक मानी जाएगी।

यदि हम एक विचार लें कि प्रत्येक परिवार के पास रहने के लिए एक टिकाऊ (मरम्मत योग्य) मकान होना चाहिए तब हमें ऐसे मकानों की संख्या भी मालुम करनी चाहिए। शहरी क्षेत्रों के 11 लाख मकानों को सम्मिलित करने पर ऐसे मकानों की संख्या 1.14 करोड़ है। अधिकतर शासकीय अधिकारी तथा विश्लेषक मरम्मत योग्य कच्चे मकानों को ग्रामीण क्षेत्रों में तो सहन कर लेते हैं, परंतु शहरी क्षेत्रों में नहीं। वे महसूस करते हैं कि शहरी क्षेत्रों में मरम्मत योग्य कच्चे मकानों को भी पक्के मकानों से प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। तब शहरी क्षेत्रों में ऐसे मकानों की संख्या मालूम करनी चाहिए। उनकी संख्या 26 लाख से अधिक है। सरकारी प्रकाशन सभी संख्याओं को जोड़कर कुल कमी लगभग 1.85 करोड़ दिखाते हैं। शायद हमें ग्रामीण तथा शहरी आवासीय कमी को जोड़ना नहीं चाहिए जैसा कई प्रकाशन कर रहे हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकानों का मरम्मत योग्य कच्चे मकानों से प्रतिस्थापन को स्वीकृत माना गया है। मकानों की कमी के विभिन्न आयामों के लिए सारणी 5.9 देखें।

अन्य आयाम (Other Dimensions)

आप अपने मकान में रहते हैं, आप किराए के मकान में रहते हैं। आप साझे आवास में रहते हैं, आप साझे आवास में नहीं रहते हैं। आप पक्के मकान में, आधे पक्के मकान में अथवा कच्चे मकानों (जो मरम्मत योग्य अथवा गैर-मरम्मत योग्य), में रहते हैं।

सारणी 5.9
वर्ष 1991 में मकानों की अपर्याप्तता के आयाम

	ग्रामीण	*शहरी*	*कुल योग*
मकान रहित परिवार	305000	217000	520000
साझा रहने वाले परिवार	3113000	779000	3900000
गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकान	10306000	1140000	11440000
शहरी क्षेत्र में मरम्मत योग्य मकान		2640000	2640000
कुल योग	13724000	4776000	18500000

स्रोत: *भारत की जनगणना 1991, सीरीज-1 इंडिया पेपर 2 ऑफ 1993, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।*

वर्ष 1971 व 1991 की एक तुलना बताती है कि पक्के मकानों का हिस्सा, ग्रामीण क्षेत्रों में 18 प्रतिशत से बढ़कर 31 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में, 64 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जैसा अपेक्षित है, लगभग 6-7 प्रतिशत परिवार आवास किराए पर देते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में मकान किराए पर देने वाले परिवारों की संख्या 54 प्रतिशत है। यह परिदृश्य 1961 तथा 1971 में था। वर्ष 1981 में 46.5 प्रतिशत तथा वर्ष 1991 में 36.5 प्रतिशत परिवार मकान किराए पर देते थे।

निष्कर्ष

यह अध्याय पढ़कर आप एक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं कि पिछले 50 वर्षों में, केंद्र व राज्य स्तर की सरकारों की सहायता से शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास के सामाजिक क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं। शिक्षा में जहाँ प्रारंभिक शिक्षा को सर्वव्यापक कर देना चाहिए था, वहीं अभी भी इसे सर्वव्यापक करना है। माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण करने में, अभी भी हम लक्ष्य से पीछे हैं। उच्च शिक्षा में सामान्य शिक्षा का आधिक्य है तथा तकनीकी शिक्षा का अभाव।

इसी तरह, स्वास्थ्य क्षेत्र में हमें मालूम हुआ कि हमारी जन्म-मरण सांख्यिकी में काफी हद तक सुधार हुआ है। इसके लिए जन-स्वास्थ्य उपाय तथा पोषण कार्यक्रम धन्यवाद के पात्र हैं। हमें शिशु मृत्यु दर को और घटाने की चिंता है तथा हमारा पोषण स्तर भी बहुत अपर्याप्त है। सभी माताएँ तथा बच्चे टीकाकरण के दायरे में आने चाहिए। ग्रामीण स्वास्थ्य देख-रेख व्यवस्था को गुणवत्ता की दृष्टि से सुधारने की, चिकित्सा कार्मिकों को नियुक्त करने की तथा नियुक्त कार्मिकों को काम पर उपस्थित रहने की आवश्यकता है।

जहाँ तक आश्रय का प्रश्न है हमारे यहाँ आवासीय स्टॉक की संख्या तथा गुणवत्ता में कमी है, यद्यपि, कुछ लोग पूर्णतया आश्रय-रहित भी हैं। समयावधि में पक्के मकानों का अनुपात बढ़ा है। मकान किराए पर देने का चलन घटता हुआ प्रतीत होता है।

अभ्यास

1. सामाजिक आधारिक संरचना से आपका क्या तात्पर्य है? तथा आप आर्थिक आधारिक संरचना से इसका अंतर कैसे करेंगे?
2. आवास को सामाजिक आधारिक संरचना के रूप में आप कैसे उचित सिद्ध करेंगे, जबकि यह माना जाता है कि आवासीय स्टॉक से वार्षिक प्राप्तियां होती हैं जिन्हें GDP में जोड़ा जाता है।
3. आप साक्षर किसे कहेंगे? साक्षरता, शिक्षा से कैसे भिन्न है?
4. अब भारत में साक्षरता दर की कैसे गणना होती है?
5. पिछले 50 वर्षों में भारत में साक्षरता के विकास का एक लेखा दीजिए, तथा समस्यात्मक क्षेत्र बताएं जहाँ पर हम भविष्य में ध्यान केंद्रित करें।
6. निरक्षरों की संख्या के संबंध में, जनगणना 2001 से क्या नए विकास हुए हैं।
7. सकल नामांकन अनुपात की कैसे संगणना होती है? प्रतिशत के रूप में क्या यह 100 से अधिक हो सकता है?
8. प्रारंभिक शिक्षा की प्रगति पर चर्चा कीजिए तथा बताइए कि हम इसको व्यापक करने में कितने पीछे हैं।
9. माध्यमिक शिक्षा की प्रगति पर विचार विमर्श कीजिए तथा इसमें सीमित सफलता के क्षेत्रों को बताइए।
10. उच्च शिक्षा से आपका क्या अभिप्राय है? विकास की मुख्य बातें तथा संबंधित क्षेत्रों पर चर्चा करें।
11. स्वतंत्रता से पहले तथा स्वतंत्रता के बाद, जीवन-प्रत्याशा, (जन्म पर,) कैसे सुधर गयी है, चर्चा करें।
12. विभिन्न आयु तथा लिंग में जीवन-प्रत्याशा की मुख्य बातें प्रस्तुत करें।
13. जन-स्वास्थ्य का अर्थ बताइए। बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए सरकार ने हाल के वर्षों में क्या उपाय किए, चर्चा कीजिए।
14. शहरी क्षेत्रों में सफाई की भूमिका पर चर्चा करें।
15. स्वतंत्रता पश्चात् भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य देख रेख व्यवस्था कैसे विकसित हुई?
16. ग्रामीण स्वास्थ्य देख रेख व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
17. जनगणना मकान तथा आवासीय स्टॉक से आपका क्या तात्पर्य है?
18. पक्का, कच्चा तथा अर्ध-पक्का मकानों को परिभाषित करें।
19. मरम्मत योग्य कच्चे मकान तथा गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकान की परिभाषा दें।
20. मकान के विभिन्न प्रयोगों की चर्चा करें। कुछ मकान क्यों खाली पाए जाते हैं।

21. ग्रामीण क्षेत्र में वर्ष 1961 से आवास के दृश्य में विकास का एक लेखा दीजिए।
22. शहरी क्षेत्र में वर्ष 1961 से आवास के दृश्य में विकास का एक लेखा दीजिए।
23. आवासीय स्टॉक के विभिन्न पक्षों पर चर्चा कीजिए।
24. देश में आवासीय कमी के बारे में चर्चा करें।

गतिविधियाँ

अपने इलाके, मुहल्ले अथवा गांव में मालुम करें:

(i) कितने लड़के तथा लड़कियों ने स्कूल में नामांकन नहीं कराया है।

(ii) नामांकन के बाद कितने लड़कों तथा लड़कियों ने विभिन्न कक्षाओं से अध्ययन छोड़ दिया (drop out) है।

(iii) लड़कों तथा लड़कियों के drop out (स्कूल छोड़ने में) तथा नामांकन नहीं कराने के क्या कारक हैं।

अभिभावकों, लड़के तथा लड़कियों से बात करें जो स्कूल नहीं गए हों।

अध्याय 6

1991 तक विकास की व्यूह-रचनाएँ

परिचय

अर्थव्यवस्थाएँ स्वयं के अनुरूप बढ़ती तथा विकसित होती हैं। कुछ दार्शनिकों के अनुसार इन्हें बिना किसी अधिक हस्तक्षेप के कार्य करने देना चाहिए। बाजार अपनी दिशा अपने आप निश्चित कर लेंगे। तथापि, सभी अर्थव्यवस्थाओं में सरकार बाजारों की रुचि के कारण, कोई-न-कोई कारण ढूंढकर हस्तक्षेप करना आवश्यक समझती है। देशों के स्वरूप, विकास के स्तर, लोगों का वैचारिक पूर्वाभिमुखीकरण, उनके द्वारा चुनी हुई सरकार के अनुसार विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विधियों, विस्तार तथा गति में भिन्नता होती है। दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के विकास का प्रदर्शन-प्रभाव व बहुपक्षीय/अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की विचारधारा का भी कोई प्रभाव नहीं होता।

जब भारत को स्वतंत्रता मिली तथा यह गणराज्य बना तब इसने सामाजिक तथा आर्थिक योजना का मार्ग चुना। तात्पर्य यह है कि सरकार निजी संपदा की संस्थाओं तथा बाजार का सम्मान करती हुई, आर्थिक व सामाजिक क्रियाकलापों/गतिविधियों द्वारा उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के स्तर तथा विधियों के निर्धारण में एक अनुकूल सक्रिय भूमिका निभाएगी। हमारे संविधान ने स्वयं ही बाजारों को कार्य का अवसर दिया है, साथ ही सरकार को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया है। संविधान ने सरकारों को अन्य बातों के साथ निम्नलिखित का ध्यान रखते हुए नीतियाँ बनाने का निर्देश दिया है :

(i) समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण का वितरण जन-हित को ध्यान में रखते हुए हो,

(ii) आर्थिक प्रणाली का इस प्रकार संचालन हो जिससे संपदा तथा उत्पादन के साधनों का केंद्रीयकरण नहीं हो, जो सामान्य हानि है।

हमारे संविधान में, केवल समवर्ती सूची की 7वीं अनुसूची में उल्लिखित आर्थिक व सामाजिक योजना को छोड़कर, आर्थिक व सामाजिक विकास की क्रियाओं को चलाने वाली संस्थाओं के लिए कोई विस्तृत निर्देश नहीं है। तथापि संविधान के प्रख्यान के 50 दिनों के अंदर ही मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च 1950 को योजना आयोग की स्थापना हुई। जवाहर लाल नेहरू को उसका अध्यक्ष बनाया गया था। तब से, प्रधानमंत्री इसका पदेन अध्यक्ष होता है। इसके कुछ मंत्री-सदस्य पूर्णकालिक होते हैं। साधारणतः सभी सदस्य पूर्णकालिक होते हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व योजना का इतिहास

देश की योजना का एक इतिहास-क्रम है। लोगों के आर्थिक उद्धार की दृष्टि से राजनीतिक स्वतंत्रता

को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया था। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन हमें रियासतों में सरकार बनाने की अनुमति मिल जाने के पश्चात हमने योजना बनाने की तैयारियाँ करनी आरंभ कर दीं। इससे पहले हमारे पास तीन नमूने थे। एक, वर्ष 1928 से तात्कालिक सोवियत संघ में प्रचलन में था, दूसरा, जो वर्ष 1934 में एम. विश्वेश्वरैया (अभियंता-राजनेता) द्वारा लिखित एक पुस्तक में दिया गया था, तथा तीसरा, जो एक अर्थशास्त्री केन्स द्वारा दिया गया था। दस वर्षों में योजना ने रूस की अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण में अत्यधिक सफलता दिखाई। दस वर्षों में राष्ट्रीय आय को दुगुनी करने के लिए विश्वेश्वरैया ने लिखा कि, "भारत की मूल समस्या औद्योगिक है तथा इसका समाधान उसी विधि से किया जाना चाहिए, जो अमेरिका, जापान तथा कनाडा में प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी थी। तत्पश्चात् सोवियत संघ की चौंकाने वाली सफलता... भारत शीघ्रगामी औद्योगीकरण के बिना समृद्ध नहीं हो सकता है... औद्योगीकरण को संगठित तथा नियोजित किया जाता है तथा इसके लिए प्रयास किया जाता है ... भारत एक औद्योगिक विकसित देश हो सकता है अथवा विदेशी विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाजार हो सकता है किंतु दोनों नहीं।" कीन्स (Keynes) ने यह भी कहा कि अबंध-नीति (laissez-faire) के दिन समाप्त हो गए थे तथा सरकार पूँजीवादी देशों में अर्थपूर्ण राजस्व हस्तक्षेप (विशेषकर व्यय के क्षेत्र में) की दृष्टि से एक सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

कांग्रेस शासित प्रांतों में उद्योग मंत्रियों का एक सम्मेलन अक्तूबर 1938 में आयोजित किया गया तथा जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में

राष्ट्रीय योजना समिति

वर्ष 1938 के अंत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस ने 8 कांग्रेस-शासित प्रांतों के उद्योग मंत्रियों के सम्मेलन के समापन के समय जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक नियोजन समिति का गठन किया। स्वयं समिति ने ही विभिन्न क्षेत्रों/विषयों पर काम करने के लिए 29 उप-समितियों का गठन किया जिन्होंने प्रशंसनीय कार्य किए। परंतु इन समितियों के विचार प्रस्तुत करने से पहले ही युद्ध आरंभ हो गया तथा समिति के कई सदस्यों को (जवाहर लाल नेहरू सहित) अक्तूबर 1940 में जेल भेज दिया गया।

तदनंतर 1946-49 के दौरान, के.टी. शाह, जो समिति के सचिव थे, के नाम से 4 साधारण रिपोर्टों तथा 25 विषयानुसार रिपोर्टों का प्रकाशन किया। समिति ने अपनी अनुशंसाओं में कहा कि अपने तत्त्वावधान में आधारिक संरचना के विकास तथा मौलिक उद्योगों को आरंभ करने में तथा अपने संरक्षण में खादी एवं ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित करने में तथा वृद्धि की शक्तियों को छूट देने की दृष्टि से भूमि के सभी मध्यस्थ स्वार्थों को समाप्त करने में राज्य एक सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।

एक वयस्क श्रमिक को 2400-2800 इकाई कैलोरी मूल्य का संतुलित आहार, प्रतिव्यक्ति 30 गज कपड़ा तथा प्रतिव्यक्ति 100 वर्ग फुट आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय आय को 10 वर्षों की अवधि में दो से तीन गुना बढ़ाने की आशा की जाती है।

औद्योगीकरण, भारी अभियांत्रिक तथा मशीन-विनिर्माण के उद्योग, विद्युत-शक्ति तथा लघु इकाइयों का समायोजन, औद्योगिक विकास में राज्य तथा सरकारी क्षेत्र की प्रबल भूमिका, यथासंभव राष्ट्रीय स्व-पर्याप्तता, इस नीति के मुख्य तत्व थे।

एक राष्ट्रीय नियोजन समिति गठित करने का निर्णय लिया गया। समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि आधारिक संरचना के विकास तथा अपने तत्त्वावधान में मूलभूत उद्योगों को स्थापित करने, अपने संरक्षण में कुटीर एवं ग्रामोद्योग में वृद्धि को प्रोत्साहित करने तथा वृद्धि की शक्तियों को छूट देने के लिए भूमि की मध्यस्थता संबंधी सभी स्वार्थी तत्वों को समाप्त करने में सरकार एक सक्रिय भूमिका निभा सकती है।

युद्ध की समाप्ति पर, उद्योग तथा अन्य विभागों की भावनाओं का सम्मान करते हुए, भारत सरकार ने वर्ष 1944 में नियोजन तथा विकास विभाग की स्थापना की। विभाग ने केंद्र सरकार, प्रान्तीय सरकारों तथा बड़े राजाओं के राज्यों के विभिन्न विभागों को युद्धोपरांत, योजनाओं के पुनर्निर्माण करने के लिए प्रेरित किया। इसने (नियोजन विभाग) उद्योग तथा श्रम के विकास की योजनाओं (सभी वर्ष 1944 में), जैसे बॉम्बे योजना, जन-योजना तथा गाँधी-योजना को प्रस्तुत किया। शिक्षा तथा स्वास्थ्य के लिए क्षेत्रीय योजनाएँ भी बनाई गई थीं।

वर्ष 1946 में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बनाई गई तथा भारत सरकार ने सलाहकार योजना बोर्ड का गठन किया। अन्य बातों के अतिरिक्त सलाहकर बोर्ड ने राष्ट्रीय नियोजन आयोग बनाने की अनुशंसा की, जिसका गठन स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात् 15 मार्च 1950 में किया गया। साठ के दशक के उत्तरार्ध में राज्य-स्तरीय योजना आयोग अथवा बोर्डों ने कार्य प्रारंभ कर दिया।

आर्थिक योजना का अर्थ

योजनाएँ व्यक्तियों, संगठनों, फर्मों, किसानों तथा राष्ट्र द्वारा बनायी जाती हैं ताकि भविष्य में विशेष उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सोच-समझकर कार्य किया जा सके। उद्देश्य-हीन प्रवाह के विपरीत, योजना क्रियाओं का संकल्पित चुनाव है। यह मानव क्रिया-कलापों के सचेतन-गठन से संबद्ध है। **योजना एक उद्देश्य अथवा बहुत सारे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं को रूप देने के लिए सोच-समझकर बनाई गई एक रूपरेखा है। यह नीतिगत उपायों के संदर्भ में कार्य करने का एक तरीका है जिसका अनुसरण भविष्य में पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाएगा।** यह महत्त्वपूर्ण है कि उद्देश्य पारस्परिक अनुकूल हों तथा सही योजना के द्वारा साधनों तथा उपायों की अनुकूलता निश्चित हो। साधन स्वायत्त होते हैं क्योंकि उनका चयन आयोजकों द्वारा होता है। परंतु उनका चयन करने में एक प्रतिबंध है जो आपसी अनुकूलता के लिए एक आवश्यक शर्त है।

'योजना शब्द'

प्रबंधक की भाषा में तथा प्रबंधन की पुस्तकों में अथवा निगमों की योजना-इकाइयों में 'योजना' शब्द का अर्थ थोड़ा भिन्न होता है। नगर-आयोजकों द्वारा, भौतिक तथा स्थानिक योजना के लिए भी योजना शब्द का प्रयोग हुआ है। आजकल पर्यावरण-विशेषज्ञ संसाधनों की बात करते हैं। लोग सेवा-निवृत्ति योजना की भी बात करते हैं।

वर्तमान संदर्भ में योजना का अर्थ भिन्न है। यहाँ इसका संबंध लोगों के कल्याण से है। यह सरकार की क्रियाओं तथा हस्तक्षेप से संबद्ध है तथा इसका क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक विकास है।

अन्य योजनाएँ जैसे नगर तथा देश योजना अब राष्ट्रीय योजना में संघटित हो रही है।

सरकार लोगों के लिए जिन उद्देश्यों को निर्धारित करती है, उन्हें पूरा करने में गैर-समन्वित

बाजारों की प्रक्रियाओं पर पूर्ण विश्वास नहीं कर सकती है। अनेक दिशाओं से यह सुझाव आया कि आर्थिक योजना सरकार द्वारा ही बनाई जानी चाहिए। आर्थिक कल्याण की दृष्टि से आर्थिक योजना, सरकार के अधीन सभी साधनों के द्वारा, प्रत्ययकारी साधनों (persuasive measures) सहित, आर्थिक विकास की गति को आगे बढ़ाने से संबंधित है। तथापि, भारत में हमारा संबंध आर्थिक व सामाजिक विकास की योजनाओं से है। इन योजनाओं के उद्देश्य थोड़े भिन्न हैं। हमारे देश ने जब योजना के बारे में सोचा, उस समय तक योजना शब्द ने आर्थिक अधिस्वर अर्जित कर लिया था। आरंभ में ही हमने स्पष्ट कर दिया था कि हमारी योजना आर्थिक व सामाजिक दोनों क्षेत्रों को सम्मिलित करेगी। आर्थिक क्षेत्र कृषि, उद्योग, परिवहन आदि से संबद्ध हैं, जबकि सामाजिक क्षेत्र विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों, औषधालयों, स्वास्थ्य-केंद्रों, परिवार नियोजन केंद्रों, प्रसारण आदि से संबंधित हैं। आप देख सकते हैं कि कई आर्थिक क्षेत्र कुछ 'सामाजिक' क्षेत्रों से भी संबंध रखते हैं तथा बहुत से सामाजिक क्षेत्र बहुत से 'आर्थिक' क्षेत्रों से भी संबंध रखते हैं तथा कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो जितने सामाजिक होंगे उतने ही आर्थिक भी। इसलिए आर्थिक व सामाजिक शीर्षकों में विभाजन, सुविधा के लिए किया गया है, न कि सिद्धांतों के आधार पर। योजना के अंतर्गत हम लगभग उन सभी गतिविधियों को सम्मिलित करते हैं जिन्हें हम स्वेच्छा से विकसित करना चाहते हैं। अतः इसे हम व्यापक योजना कहते हैं।

हम अपने सशस्त्र बलों के आधुनिकीकरण, कानून-व्यवस्था के सशक्तिकरण, न्यायिक-व्यवस्था को सुधारने, सरकार के दूसरे अंगों को बेहतर बनाने में बहुत व्यय करते हैं। किंतु ऐसा हम व्यवस्था को निर्विघ्न चलाने के स्वार्थ से करते हैं अथवा ऐसा करना हमारे लिए आवश्यक होता है। इसलिए हम उनको न तो विकासात्मक गतिविधियाँ कहेंगे और न ही उनको आर्थिक अथवा सामाजिक गतिविधियों का नाम देंगे। हालाँकि उन सभी गतिविधियों का ध्यान अधिकतर सरकार द्वारा रखा जाता है।

कई प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों को सम्मिलित करते समय सरकार अप्रत्यक्ष राजस्व एवं वित्तीय रचनातंत्र द्वारा तथा कानून बनाकर केवल सलाह दे सकती है अथवा समन्वित कर सकती है या प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर सकती है। यह वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण का कार्य भी कर सकती है। भारत ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष साधनों के विवेकपूर्ण मिश्रण के प्रयोग को चुना-कृषि तथा गैर-कृषि भूमि का विभिन्न वर्गों के लोगों अथवा विभिन्न गतिविधियों में वितरित करने के लिए कानून बनाना : विशेष क्रियाओं पर प्रतिबंध लगाना, रोक लगाना या उन्हें अवैध घोषित करना; विशेष वित्तीय संस्थाएँ खोलकर, विभिन्न क्रियाओं के वर्गों के लिए ब्याज की दरों या साख की सीमाओं को प्रभावित करना; विशेष क्रियाओं पर कर लगाना अथवा उन्हें आर्थिक सहायता देने के लिए वित्तीय प्रावधान बनाना; विशेष सामाजिक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर पूरक क्रियाओं के रूप में उत्पादन/वितरण करना तथा विशेष वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन व वितरण करना (स्वाभाविक एकाधिकार)। केंद्रीय मंत्रालय द्वारा अथवा राज्य सरकार द्वारा अथवा सरकार की किसी एजेंसी के द्वारा किए गए सीधे उत्पादन तथा वितरण को सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधि माना जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने

उद्देश्य तथा साधन

कुछ लोगों ने विभिन्न देशों की योजनाओं में सूचीबद्ध उद्देश्यों को संकलित किया। उनके उद्देश्यों का विस्तार पूर्ण रोजगार से लेकर कीमत-स्थिरता तक; निजी उपभोग में बढ़ोतरी से लेकर जनसंख्या का आकार तथा संरचना तक; श्रम की गतिशीलता में बढ़ोतरी से लेकर पूँजी की गतिशीलता में बढ़ोतरी तक; उत्पादन के निर्यात से लेकर भुगतान शेष में सुधार तक; उद्योगों के संरक्षण से लेकर आपूर्ति की सुरक्षा, आंतरिक प्रतिस्पर्धा के प्रोत्साहन, समन्वयन के प्रोत्साहन, तथा श्रम के घंटों में कमी तक था।

जहाँ तक साधनों की गिनती की बात है, उन्होंने 60 साधनों को दोबारा गिना : लोक वित्त के 17 साधन; मुद्रा, साख तथा विदेशी विनिमय के 16 साधन; प्रत्यक्ष नियंत्रण के 16 साधन तथा संस्थागत संरचना के 11 प्रकार के परिवर्तन।

परिशिष्ट में उद्देश्यों की सूची दी जा रही है जो हमारे योजना दस्तावेजों से ली गई है।

कुल विनिर्माण, संसाधन तथा वित्त प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण अंश अपने हाथ में ले लिया है। वास्तव में हमने सार्वजनिक क्षेत्र को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका देकर इसे प्रभावशाली बना दिया है।

पंचवर्षीय योजनाएँ

केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना हुई। आयोग को शीघ्रातिशीघ्र पंचवर्षीय योजना का पूरा खाका तैयार करने को कहा गया, जिससे इसे अप्रैल 1951 में कार्यान्वित किया जा सके। आयोग ने रूपरेखा का प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य देश के विभिन्न वर्गों के बीच एक सार्थक वाद-विवाद आरंभ करना था, क्योंकि प्रजातांत्रिक देश में योजना एक सामाजिक विषय है, न कि तकनीकी। इसी ड्राफ्ट रूपरेखा में राष्ट्रीय विकास परिषद् के गठन का सुझाव दिया गया था, जिसकी स्थापना मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा अगस्त 1952 में हुई थी। हालाँकि, यह कहा जाता कि प्रथम योजना में उन परियोजनाओं को भी शामिल कर लिया गया था, जो भारत सरकार में पहले से ही आरंभ कर छोड़ दी गई थीं। अंतिम रिपोर्ट, योजना की औपचारिक शुरुआत के 21 महीनों बाद, दिसंबर 1952 में प्रस्तुत की गई, जिसे प्रथम पंचवर्षीय योजना कहा गया।

प्रत्येक पंचवर्षीय योजना लंबी समयावधि के परिप्रेक्ष्य में बनायी जाती है। वस्तुतः प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अंतर्गत एक योजना पाँच वर्षों के लिए (मध्यावधि योजना) होती है तथा एक परिप्रेक्ष्य-योजना होती है। योजना विशेष (पंचवर्षीय योजना) इस परिप्रेक्ष्य का एक अंग होती है। यद्यपि हम कुछ संकटों का सामना भी कर रहे थे, फिर भी हमने बिना किसी बाधा के लगातार तीन पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी कीं। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत में, 1965 के अंत में, पाकिस्तान के साथ युद्ध का भी सामना करना पड़ा तथा कृषि के क्षेत्र में लगातार दो वर्षों तक (1965-66 तथा 1966-67) असफलता मिलती रही, जिससे विदेशी-विनिमय का संकट उत्पन्न हो गया और रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। उसके बाद 1966-71 के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना बनी, जिसे आरंभ होते ही रोक देना पड़ा। ऐसा निश्चित किया गया कि स्थिति के सामान्य होने पर ही चौथी योजना का आरंभ किया जाए। अतः चौथी पंचवर्षीय योजना 1969-74 की अवधि के लिए बनाई तथा क्रियान्वित की गई। बीच की

अवधि में तीन वार्षिक योजनाओं का कार्यान्वयन हुआ। पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-79) के दौरान, कुछ राजनैतिक परिवर्तन हुए– आंतरिक आपात्-स्थिति लागू की गई, नए चुनाव हुए, नई गठित जनता पार्टी चुनाव में विजयी हुई। राजनैतिक परिवर्तनों के कारण जब कांग्रेस सरकार पुनः सत्ता में आई, तो इस योजना को रोक दिया गया। इसके बाद छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) का आरंभ हुआ। वर्ष 1978-79 को अब पंचम पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किया जाता है, जैसा मूलतः सोचा गया था तथा वर्ष 1979-80 को (योजना आयोग के संकलन सहित सभी संकलनों में) वार्षिक योजना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सातवीं योजना बिना बाधा के पूरी हुई। राजनैतिक अस्थिरता, कम समयावधि की सरकारें, राजीव गाँधी की हत्या तथा विदेशी विनिमय की अनिश्चित स्थिति आदि के कारण आर्थिक संकट उत्पन्न हुए। सामान्य स्थिति के आने पर आठवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ वर्ष 1992 में हुआ। यद्यपि समयावधि के मध्य में ही सरकार बदल गई परंतु न तो योजना स्थगित की गई और न ही समयावधि घटाई गई। अभी दसवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। सभी योजनाओं की समयावधि के विवरण तथा इनकी परिप्रेक्ष्य योजनाएँ परिशिष्टों में दी गई हैं।

मुख्य उद्देश्य

योजना किसी उद्देश्य की प्राप्ति का एक प्रभावशाली साधन है। इसके कुछ निश्चित उद्देश्य होने चाहिए। प्रजातंत्र में, संविधान में दिए गए उद्देश्यों के अतिरिक्त, देश की योजना का कोई अन्य उद्देश्य नहीं हो सकता। यदि किसी संस्था को देश के आर्थिक व सामाजिक विकास की योजना बनाने की जिम्मेदारी दी जाती है, तो वह विस्तार की सीमाओं को अधिक-से-अधिक बढ़ाता है तथा इसे अधिक विशिष्ट बनाता है। योजना का उद्देश्य विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाकर सही रास्ते पर रखना है। भारत को लंबे समय तक विकास में गतिरोध ह्रास तो नहीं, परंतु विकास की धीमी गति का सामना करना पड़ा है। अतः हम अधिक वृद्धि चाहते थे। हम सर्वाधिक उत्पादन (वृद्धि) चाहते थे, क्योंकि हमारा विचार था कि हम अभी सर्वोत्तम से कम स्तर पर हैं। भारत लंबे समय तक खुली-बेरोजगारी नहीं तो कम-से-कम अर्ध-बेरोजगारी की समस्या का सामना कर रहा था। हमने ऐसा सोचा कि सर्वाधिक उत्पादन (वृद्धि) द्वारा सर्वाधिक अवसर प्राप्त होंगे, जो सभी को रोजगार देने के लिए पर्याप्त होंगे। अतः हम अधिकतम उत्पादन तथा पूर्ण-रोजगार चाहते थे। भारतीय समाज में असमानता व्याप्त थी, अतः हमने अपनी आय तथा संपत्ति की असमानता को दूर करने की इच्छा की। संभवतः इन सभी उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त करने के अंतर्विरोधों को समझकर, पहली योजना की रिपोर्ट में कहा गया कि 'इनमें से किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति दूसरे उद्देश्यों की उपेक्षा करके नहीं हो सकती है।'

उद्देश्यों को दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक उद्देश्यों में विभाजित कर सकते हैं। एक योजना से दूसरी योजना के बीच दीर्घकालिक उद्देश्यों में कोई विशेष अंतर नहीं होता, परंतु अल्पकालिक उद्देश्यों में काफी अंतर होता है। दीर्घकालिक उद्देश्य सामान्य होते हैं, जबकि अल्पकालिक उद्देश्य विशिष्ट होते हैं। सभी योजनाओं में वृद्धि-दर के लक्ष्य निश्चित किए गए, क्योंकि उनमें से कुछ ने ही अपने उद्देश्यों की सूची में उनका उल्लेख किया, सभी ने नहीं। दूसरी योजनाओं ने दीर्घकालिक उद्देश्यों को अल्पकालिक उद्देश्यों

के साथ मिला दिया। कुछ अन्य ने तो उद्देश्यों तथा साधनों को ही मिला दिया। विशेषकर द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं ने समाज की समाजवादी व्यवस्था पर बहुत बल दिया। बाद की योजनाओं ने उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा साधनों के बीच बहुत अंतर नहीं किया।

यदि हम चाहें तो **दीर्घकालिक उद्देश्यों को योजनाओं के उद्देश्य तथा अल्पकालिक उद्देश्यों को योजना-विशेष के उद्देश्य कह सकते हैं**। 50 वर्षों तक दीर्घ-कालिक उद्देश्यों/विकास उद्देश्यों के लक्ष्य निम्नलिखित रहे –

(i) राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्तिआय के ऊँचे स्तर की प्राप्ति के लिए उत्पादन में यथासंभव वृद्धि करना,

(ii) पूर्ण रोजगार प्राप्त करना,

(iii) आय तथा संपत्ति की असमानता तथा आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को कम करना।

इन्हें मुख्य उद्देश्य माना जा सकता है। जबकि कुछ लेखकों ने इस सूची में खाद्यान्नों की आत्म-निर्भरता को भी रखा, तो कुछ ने मौलिक तथा भारी उद्योगों के स्थापित करने की जिम्मेदारी योजना को सौंपी, कुछ ने क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता पर बल दिया। कुछ ने मुद्रा-स्फीति को स्थिर रखने तथा भुगतान-संतुलन में सुधार लाने को विशेष उल्लेख योग्य बताया। इनमें से सभी उद्देश्यों में तथ्य हैं, अतः यह योजना-विशेष के दस्तावेजों में से, अपने विवेक के आधार पर, महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के चुनाव का प्रश्न है।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ लेखकों के अनुसार, **विद्यमान संरचना के विघटन तथा संघटकों का इच्छानुसार एक भिन्न तथा नए रूप में पुनः एकत्रीकरण** ही योजना है।

आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएँ

'नीति' तथा 'व्यूह-रचना' शब्दों का लेखन में प्रयोग बहुत भ्रामक है। यदि शब्दकोष का अनुसरण करें तो 'नीति' को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं– यह विकल्पों के समूह से किसी क्रिया की समन्वित योजना है, जबकि व्यूह-रचना चुनी हुई नीति को अधिकतम सहायता प्रदान करती है। अनुसरण की जाने वाली नीति की मुख्य घोषणा के अनुसार देश में योजना के अंतर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया जाना था। मिश्रित अर्थव्यवस्था, जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है, व्यावसायिक उद्यमों (औद्योगिक, व्यावसायिक तथा वित्तीय) में निजी क्षेत्रक तथा सार्वजनिक क्षेत्रक के सह-अस्तित्व पर बल देती है। सह-अस्तित्व के अतिरिक्त, ऐसा माना गया कि जहाँ सार्वजनिक क्षेत्रक का उद्देश्य मूलतः लोक-हित

मिश्रित अर्थव्यवस्था

पालॅ ए. सैमुएलसन (अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता) तथा विलियम डी. नोरधस ने अपनी लोकप्रिय पाठ्यपुस्तक इकोनौमिक्स में मिश्रित अर्थव्यवस्था को ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जो आर्थिक संगठनों के लिए कीमत-तंत्र पर निर्भर करती है, परंतु समष्टि आर्थिक अस्थिरता तथा बाजार-असफलताओं के संचालन के लिए विभिन्न सरकारी हस्तक्षेपों (जैसे कर, व्यय तथा नियंत्रण) का प्रयोग करती है।

यह मौलिक अर्थ नहीं है, सैमुएलसन और उसके सहयोगियों ने इसे ग्रहण किया है।

इन अर्थशास्त्रियों से पहले, जोसेफ ई. स्टीग्लीट्ज (Joseph E. Stiglitz) ने इसको (term) बहुत सरल तरीके से परिभाषित किया। उनसे इसे सार्वजनिक तथा निजी निर्णय का मिश्रण (mix of public private dicision making) कहा।

होगा, वहीं निजी क्षेत्रक उद्यम केवल लाभ के उद्देश्य से ही कार्य नहीं करेंगे। वे देश की आर्थिक संभावनाओं को बढ़ाने की दिशा में, प्रतिद्वंद्वी होकर नहीं, बल्कि एक-दूसरे के सहयोगी होकर कार्य करेंगे।

हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने पिछले 40 वर्षों के दौरान केवल एक ही नीति का अनुसरण किया है, वस्तुतः इनका विकास हो रहा है। परंतु इन नीतियों की कुछ विशेषताएँ समान थीं– सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, औद्योगीकरण, आयात-प्रतिस्थापित, खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता, वित्तीय संसाधनों पर सरकार का नियंत्रण, विदेशी पूँजी पर नियंत्रण, लघु-उद्योगों का संरक्षण, बड़े उद्योगों का नियंत्रण, एकाधिकारों की कटौती, जन-स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान तथा शिक्षा व साक्षरता का प्रसार। तथापि, इन योजनाओं की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है, जैसे, हस्तक्षेपीय सरकार, केंद्रीकृत योजना, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, भारी उद्योगों का विकास, आयात-प्रतिस्थापन आदि पर बल दिया गया। हम देख सकते हैं कि अंतिम तीनों औद्योगिक क्षेत्र में हैं।

हस्तक्षेपीय सरकार

सरकार बाजार प्रक्रिया में हस्तक्षेप करेगी ताकि यह गरीबों के लिए पर्याप्त आजीविका सुरक्षित कर सके तथा विभिन्न वर्गों के बीच असमानता को कम कर सके। यह ऐसे कानून बनाएगी जिससे भूमि-बिचौलियों के स्वार्थ की समाप्ति कर, संपत्ति के केंद्रीकरण को रोक सके। यह ऐसी संस्थाएँ स्थापित करेगी जो कृषि, उद्योग तथा व्यापार को प्रोत्साहित करे। यह ऐसी राजस्व नीति अपनाएगी जो वृद्धि तथा सामाजिक न्याय को बढ़ावा दे। यह ऐसी मौद्रिक नीति अपनाएगी जो उद्योगों को अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक/पर्याप्त कोष उपलब्ध कराए तथा/या बड़ी संख्या में लोगों को नियोजित करे। यह विदेशी पूँजी निवेश को अनुमति नहीं देगी और यदि दे, तो उसके प्रयोग को संचालित करे। यह विभिन्न हितों को, विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र में, ध्यान में रखते हुए कोषों का स्वामित्व, स्केल तथा प्रयोग निर्धारित करेगी। संक्षेप में, सरकार विभिन्न साधनों जैसे लाइसेंस तथा महत्त्वपूर्ण आगतों (विदेशी मुद्रा सहित) के आबंटन के द्वारा निजी क्षेत्र की अधिकांश आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करेगी, यदि नियंत्रित न भी करे तो भी।

केंद्रीकृत योजना

सरकार केंद्रीकृत योजना को प्रोत्साहित करेगी जिससे विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न वर्गों के हितों को प्रोत्साहन मिले। उप-राष्ट्रीय योजनाएँ राष्ट्रीय योजनाओं में समन्वित हो जाएंगी। इनका निर्माण मूलतः राष्ट्रीय योजना आयोग के स्तर पर किया जाएगा। आज भी, यद्यपि राज्य-स्तरीय योजना आयोग हैं, परंतु राज्यों के लिए स्वतंत्र योजनाएँ नहीं हैं। हमारे देश में योजनाएँ लगभग केंद्रीकृत हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

सरकार की भूमिका पर, विशेषकर उद्योगों से संबंधित, तीस के दशक से ही विवाद आरंभ हो गया। जबकि राष्ट्रीय योजना आयोग में सर्व-सम्मति थी कि रक्षा-उद्योगों का स्वामित्व तथा नियंत्रण सरकार के पास रहेगा, यह सुझाव दिया गया कि अन्य मुख्य उद्योगों में सरकार का नियंत्रण ही पर्याप्त रहेगा। हमारे योजना बनाने के बारे में सोचने से पहले, औद्योगिक नीति ने (प्रस्ताव 1948), जो पहले से ही बन चुकी थी, निश्चित

उद्योगों में सार्वजनिक स्वामित्व के विस्तार की सीमा हटा ली (असीमित कर दिया) ।

स्वतंत्रता के समय रेलवे के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र में विशेष कुछ भी नहीं था, जिसे सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत कहा जा सके। औद्योगिक नीति (प्रस्ताव .1956) में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि सरकार नए औद्योगिक उपक्रमों को स्थापित करने की एवं परिवहन सुविधाओं को विकसित करने की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी धीरे-धीरे अपने आधिपत्य में ले लेगी। ऐसा विश्वास था कि निजी क्षेत्र शीघ्र-उत्पादकता वाले उद्योगों में रुचि लेगा, जो स्वामियों तथा उद्योगों को कम समय में अधिक लाभ देंगे, जिनमें जोखिम कम होंगे तथा जिनकी पक्वनावधि भी कम होगी। इसके अतिरिक्त देशीय निजी क्षेत्र के पास पर्याप्त पूँजी भी नहीं थी। विकास की प्रक्रिया को आरंभ करने तथा गतिशील बनाने के लिए मूलभूत तथा मुख्य उद्योगों एवं आधारिक संरचना के लिए बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता थी। सार्वजनिक क्षेत्र को यह भूमिका निभाने के लिए नियुक्त किया गया। संक्षेप में, सार्वजनिक क्षेत्र ने भारी तथा मूलभूत उद्योगों (इस्पात, ईंधन तथा ऊर्जा, यंत्र-निर्माण तथा रासायनिक उद्योग) तथा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र (जैसे बैंक, अन्य वित्तीय संस्थान) , रेलमार्ग तथा वायुमार्ग, विद्युत् इत्यादि विकसित करने की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली, जो मूलभूत व्यूह-रचना थी। निजी क्षेत्र को उपभोक्ता वस्तुएँ, उद्योग तथा व्यापार विकसित करने का अधिकार दिया गया। कृषि, पशुधन, बागान तथा मत्स्य-पालन के अतिरिक्त, लगभग पूर्ण आंतरिक व्यापार तथा अधिकांश विदेशी व्यापार की भी, जिम्मेदारी इसके पास थी। सार्वजनिक क्षेत्र को अपने ऐसे उपक्रमों द्वारा (जो केंद्र तथा राज्यों दोनों के अंतर्गत हैं) निजी क्षेत्र का मार्ग-दर्शन करने वाला माना गया था। अतः इसकी स्थिति सबसे महत्त्वपूर्ण होने की संभावना थी।

भारी उद्योगों का विकास

स्मरण रहे कि स्वतंत्रता से पहले बनाई गई अधिकतर योजनाओं में यह सुझाव दिया गया कि भारत की अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास के लिए भारी अभियांत्रिक व मशीन-निर्माण करने वाले उद्योगों, सर्वविदित मध्यस्थों जैसे विद्युत, मूलभूत उद्योग (सीमेंट), भारी रसायन (उर्वरक सहित), धातु-कर्म (जैसे लौह व इस्पात, एल्यूमीनियम तथा मैंगनीज) आदि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसा माना गया कि भारत का औद्योगिक विकास मूलभूत तथा भारी उद्योगों की अनुपस्थिति के कारण रुक गया था। दूसरी योजना के प्रतिपादन के आरंभ में लगातार यह सुझाव दिया गया कि हमें प्राथमिक उत्पाद का निर्यात तथा मशीनों का आयात बंद कर देना चाहिए तथा अपनी स्वयं की यंत्र बनाने की क्षमता का विकास करना चाहिए।

आयात प्रतिस्थापन

एक सामान्य विचार था कि जहाँ तक संभव हो, हमें आयातित वस्तुओं को घरेलू उत्पादित वस्तुओं से प्रतिस्थापित करना चाहिए। हमें अपने ही देश में पूँजीगत माल (उत्पादकों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए) तथा उपभोक्ता माल, दोनों का उत्पादन करना चाहिए। इनमें से कुछ उद्योगों को विदेशी वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाने हेतु, यदि कुछ समय के लिए किसी प्रकार का संरक्षण भी देना पड़े तो, हमें प्रदान करना चाहिए। यह हमें एक ओर निर्यात से बचाएगा तथा दूसरी ओर आवश्यक ऋण से।

मुख्य उपलब्धियाँ और विफलताएँ

यद्यपि सभी उपलब्धियों के लिए, अपनाई गई व्यूह-रचना को ही श्रेय नहीं दे सकते और न ही यह कह सकते कि व्यूह-रचनाएँ आधे-रास्ते में नहीं बदली गईं, फिर भी हमने पिछले चालीस वर्षों में जो उपलब्धियाँ की हैं उन्हें जानना अच्छा रहेगा। यह कहना भी कठिन होगा कि हमने क्या पाया और क्या नहीं। स्थिति को पूरी सफलता या पूरी असफलता के रूप में नहीं देख सकते। ज्यादा से ज्यादा हम कह सकते हैं कि हम कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में कुछ दूर तक सफल हुए हैं और कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में नहीं। सफलता या विफलता का श्रेय योजना की नीति को भी नहीं दे सकते।

इस उद्देश्य से पहले हम अपने दीर्घ-कालिक मूलभूत उद्देश्यों, जैसे अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आय तथा संपत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण आदि का उल्लेख करेंगे। उसके बाद हम अन्य क्षेत्रों की चर्चा करेंगे, जो इन उद्देश्यों के ही विस्तार हैं।

अधिकतम उत्पादन

पचास, साठ तथा सत्तर के दशकों में दीर्घकाल के आधार पर हम 3.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर से अधिक प्राप्त नहीं कर सके तथा योजना-विशेष में तय किए गए लक्ष्यों को भी पूरा नहीं कर सके, जो सामान्यतः 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक था। यह निर्णय करना कठिन होगा कि हमने अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं किया अथवा हमारे लक्ष्य यथार्थवादी अथवा तर्क-संगत थे या नहीं। उदाहरण के लिए, प्रथम योजना के लिए हमने वृद्धि का लक्ष्य बहुत कम रखा (1.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष) तथा इससे दुगुना प्राप्त किया। इसका श्रेय अच्छे मानसून को जाता है (यद्यपि यह वृद्धि अनियोजित क्षेत्रों के कारण थी) । दूसरी योजना में यद्यपि हमने पहली योजना से अधिक वृद्धि की, परंतु हम संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि हम केवल 4.0-4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष का लक्ष्य प्राप्त कर पाए, जबकि हमारा लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष था (मूल लक्ष्य 5.0 प्रतिशत था)। तीसरी योजना में हमें बहुत असफलता हुई तथा हम केवल 2.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि-दर (1980-81 की कीमतों पर) तथा 2.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष (1993-94 की कीमतों पर) प्राप्त कर सके, जबकि हमारा लक्ष्य 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। परंतु इसका कारण 1962 में चीन के तथा 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध तथा 1965-66 में मानसून की असफलता था। सत्तर के दशक के मध्य से (1979-80 के बाद से निश्चित रूप से) भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई।

संक्षेप में, 40 वर्षों की लंबी अवधि में हमारी वृद्धि दर लगभग 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। जनसंख्या में वृद्धि दर को दो प्रतिशत मानते हुए, हम यह कह सकते हैं कि हमारी प्रतिव्यक्ति आय में 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई है। वर्ष 1990 में लोग, औसतन स्वतंत्रता के समय अपने माता-पिता की (जो उस समय लगभग उनकी आयु के ही रहे होंगे) तुलना में, दुगुने बेहतर ढंग से जीवन जी रहे थे।

इस संदर्भ में शायद यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि किस क्षेत्र में वृद्धि हुई है और किस दर से? यदि लोग भूखे हैं, तो हमें पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्नों का उत्पादन करना होगा। वर्ष 1951 में सभी अनाजों तथा दालों को मिलाकर हमारे पास 50 मिलियन टन से कम खाद्यान्न थे। 1980

की समाप्ति के समय हमने लगभग 150 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन किया। वर्ष 1951 में हमारी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए 5 मिलियन टन खाद्यान्नों का आयात किया गया। उस समय हमारी दशा उतनी बुरी नहीं थी कि खाद्यान्नों का आयात किया जाए, अतः आयात द्वारा केवल खाद्यान्न की उपलब्धता में सुधार आया। जबकि 50 के दशक में हमारे पास प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 400 ग्राम खाद्यान्न थे, वर्ष 1990 तक, लगातार घरेलू उत्पादन बढ़ने से, प्रतिव्यक्ति उपलब्धता लगभग 500 ग्राम हो गई। इसका सरल अर्थ यह है कि हमारे अनाज का उत्पादन, जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में अधिक तीव्र था।

साठ के दशक के मध्य में हमने बहुत बुरे दिनो का सामना किया जब हमें 10 मिलियन टन से अधिक खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा तथा हमें दूसरे देशों, मुख्यतः अमेरिका, से खाद्य सहायता मिली। एक बार तो अमेरिका ने खाद्य सहायता को मासिक आधार पर नियंत्रित करने की धमकी भी दी। इससे हम साठ के दशक में **हरित क्रांति** की ओर अग्रसर होने पर विवश हुए। हरित क्रांति शब्द का प्रयोग ऊँची उत्पादक किस्मों के बीज, गहन सिंचाई, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक पदार्थ आदि के लिए हुआ। इसकी सफलता के कारण हमारे आयात नाममात्र के रह गए। थोड़ी मात्रा में, निवल आधार पर, खाद्यान्नों का निर्यात करना पड़ा।

जहाँ तक जन-समूह के उपभोग की अन्य वस्तुओं का संबंध है, इन 40 वर्षों के दौरान (जिनकी समीक्षा की जा रही है) कई वस्तुओं जैसे खाद्य तेल व वनस्पति, चीनी, कपड़े, दूध, अण्डे, मछली, चाय तथा विद्युत के प्रतिव्यक्ति उपभोग में सुधार हुआ। हालाँकि, खाद्यान्नों के अतिरिक्त, अन्य क्षेत्रों में हम लक्ष्य से तथा अन्य विकासशील देशों से भी पीछे थे।

उत्पादन सीमित होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं — क्षमता की कमी अथवा माँग की कमी। दुर्भाग्यवश बहुत से क्षेत्रों में हमें इन दोनों में से किसी का भी सामना नहीं करना पड़ा। तो क्या यह कार्यान्वयन की असफलता है या परिकल्पना का दोष है? अधिकांश लोग इसका दोष कार्यान्वयन को देते हैं। हमारे विचार से कार्यान्वियन-संबंधी बाधाओं को भी योजना बनाते समय ध्यान में रखना चाहिए।

पूर्ण रोजगार

हमारी अर्थव्यवस्था में, थोड़े-बहुत अपवादों को छोड़कर, जनसंख्या का 1/3 से 2/5 तक अनुपात कार्यरत है। इनमें से अधिकतर लोग स्व-नियोजित हैं, हालाँकि इस अवधि में उनका अनुपात 77 से घटकर लगभग 55 रह गया है। उनमें से अधिकांश कृषक हैं, किंतु शहरी क्षेत्रों में हैं जो अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं, शेष भी मजदूरी का कार्य करते हैं। उनमें से कुछ लोगों को नियमित वेतन मिलता है तथा अन्य आकस्मिक मजदूर हैं। नियमित वेतन भोगियों में भी कुछ मजदूर खेतों में कम मजदूरी पर काम करते हैं। ये कारखानों, दूकानों अथवा घरों में काम करते हैं। इनमें से कई कंधे से कंधा मिलाकर अपने श्रमिकों के साथ काम भी करते हैं, परंतु ऐसे लोगों की संख्या कम है। यद्यपि नियमित वेतन-भोगियों का अनुपात कुछ कम हो गया है, आकस्मिक नियोजित श्रमिकों का अनुपात बहुत बढ़ रहा है। अस्सी के दशक के अंत में यह अनुपात 30 प्रतिशत था। अधिकतर लोग इन विकासों को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते हैं। स्पष्टतः उनकी दृष्टि में, नियमित मजदूरी,

आकस्मिक मजदूरी से कम होते हुए भी तुलनात्मक रूप से बेहतर है।

यदि कोई पूर्ण-रोजगार की स्थिति का दावा करे तो हमें क्या आशा करनी चाहिए? वे सभी जो 15 वर्ष की आयु से ऊपर तथा 60/65 वर्ष की आयु से कम हैं तथा काम करना चाहते हैं, उन्हें काम मिलना चाहिए। यदि वे मजदूरी पर नियोजित हैं तो उनको पर्याप्त मजदूरी मिलनी चाहिए तथा यदि वे स्व-नियोजित हैं तो उनको अपने काम का पर्याप्त पारिश्रमिक मिलना चाहिए। 'इच्छा', 'पर्याप्त' तथा 'पारिश्रमिक' ऐसे शब्द हैं जो इस संदर्भ में अनिश्चित हैं। 'इच्छा' एक ओर मजदूरी के स्तर से संबंधित है तथा दूसरी ओर जीविका के लिए अन्य सहायताओं की उपलब्धता से। काम करने की विवशता, काम करने की इच्छा जैसा प्रतीत होता है। उचित पारिश्रमिक का मिलना उत्पादों के प्रकारों पर तथा क्रेताओं पर निर्भर करता है। व्यापक गरीबी की स्थिति में अधिकतर स्व-नियोजित व्यक्तियों को उचित पारिश्रमिक मिलने की कम संभावना है। कम उत्पादकता की व्यापकता के कारण मजदूरों को पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलेगी। यह गंभीर समस्या है।

चूँकि मजदूरी कम है, अतः न्यूनतम मजदूरी की निश्चितता के लिए कानून बनाना पड़ता है। अनेक संस्थापनाएँ तथा खेत इतने छोटे हैं, कि ये कानून दोनों के लिए लाभदायक न होकर पुनः परेशानी उत्पन्न करते हैं।

विचाराधीन समयावधि में, अकुशल श्रमिकों के रोजगार दर में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में अधिक नहीं थी, परिणामतः अनियोजितों की वृद्धि दर भी बनी रही। दीर्घ-अवधि में, विशेष परिस्थितियों में, व्यापक उतार-चढ़ावों के साथ भी बेरोजगारी दर इन वर्षों में लगातार एक जैसी रही। फसलों के मौसम को छोड़कर, कोई भी वर्ष ऐसा नहीं था जब अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों के कारण श्रम की माँग इतनी बढ़ी कि श्रम की अपर्याप्तता महसूस हुई।

तुलनात्मक आधार पर आँकड़े केवल 1972-73 के लिए उपलब्ध हैं। निम्नलिखित उपलब्धियों की ओर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है– (i) बेरोजगारी, **सामान्य स्थिति के आधार** पर वर्ष 1972-73 में 1.6 प्रतिशत तथा वर्ष 1977-78 में 3.9 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1983 में 2.5 प्रतिशत तथा वर्ष 1987-88 में 3.7 प्रतिशत रही; (ii) **प्रचलित दैनिक आधार** पर बेरोजगारी 8.0 प्रतिशत से अधिक श्रम-दिनों से घटकर सत्तर व अस्सी के दशकों के आरंभ में 6.0 प्रतिशत श्रम-दिन हो गई; (iii) गरीबी निरपेक्ष संख्या रूप में वर्ष 1973-74 से 1987-88 तक लगातार लगभग 32 करोड़ रही; (iv) गरीबी-रेखा से नीचे के लोगों के संदर्भ में गरीबी जो वर्ष 1973-74 में लगभग 55 प्रतिशत थी, घटकर वर्ष 1987-88 में 39 प्रतिशत हो गई; तथा (v) गरीबों में बेरोजगारी का अनुपात गैर-गरीबों की तुलना में कम है।

ऐसा मानकर कि यह प्रवृत्ति 50 तथा 60 के दशकों में समान थी, हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि रोजगार/बेरोजगारी में उतार-चढ़ाव के बावजूद, सामान्य स्थिति प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन रोजगार तथा मजदूरी में सुधार हुआ है। परिणामतः गरीबी कुछ हद तक कम हुई है। गरीबों में कम बेरोजगारी-दर दीखती है। गरीब बेरोजगार नहीं रह सकते हैं, क्योंकि उनकी जीविका का कोई अन्य साधन नहीं है। सभी के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं हैं जिससे मजदूरी पर्याप्त मात्रा में बढ़ सके। बहुत लोग ऐसी स्थिति को रोजगार की वृद्धि कहते हैं।

हमारी वृद्धि की प्रवृत्ति ने पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा नहीं किए, जो इस बात से प्रमाणित होता है कि सरकार को पूरक स्वरोजगार अथवा मजदूरी रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए बहुत से कार्यक्रम चलाने पड़े। कुछ कार्यक्रम छोटे किसानों, विनिर्माणकर्त्ताओं तथा व्यापारियों पर केंद्रित थे, जिससे वे लोग अपने-आप को स्व-नियोजित कर सकें, ताकि वे वस्तुएँ बनाकर अथवा सेवाएँ प्रदान कर अपनी आजीविका अर्जित कर सकें।

असमानता में कमी

हम आय तथा उपभोग के वितरण में तथा संपत्ति के केंद्रीकरण में असमानता को कम करना चाहते थे। ऐसा विश्वास है कि विकास की प्रारंभिक स्थिति में असमानता के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि अधिकतर लोगों की संपन्नता में वृद्धि होती है। वास्तव में हमारे पास आय-वितरण के कोई आँकड़े नहीं हैं। हम केवल इतना जानते हैं कि समयावधि में निजी आयकरदाताओं के प्रतिशत में बढ़ोतरी हुई है तथा गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के प्रतिशत में कमी हुई है। वर्ष 1993-94 में, जो विचाराधीन समयावधि के निकटतम वर्ष हैं, गरीबों का अनुपात घटा है तथा उनकी निरपेक्ष संख्या समान रही है। आयकरदाताओं का अनुपात तथा निरपेक्ष संख्या, दोनों में थोड़ी बढ़ोतरी हुई है। मध्यवर्ग का आकार (संख्या तथा अनुपात दोनों में) भी बढ़ा है।

यद्यपि, जब तक हम यह नहीं दिखा देते कि लंबी समयावधि में उच्च-वर्ग के x लोगों की आय Y_1 प्रतिशत से घटकर Y_2 प्रतिशत हो गई है, तबतक हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। परिवारों द्वारा किए गए कुल निजी उपभोग व्यय में ग्रामीण-क्षेत्रों में, नीचे के 40 प्रतिशत के प्रत्येक दशमक के अनुपात में, सुधार आया है। दूसरी ओर, शहरी क्षेत्र में नीचे के 80 प्रतिशत के प्रत्येक दशमक (दसवें भाग) में परिवारों द्वारा किए गए व्यय में गिरावट आई है।

जहाँ तक संपत्ति का संबंध है, हम कृषि जोतों के बारे में पहले से ही थोड़ा जानते हैं। पहला, मध्यस्थों (बिचौलियों) के स्वार्थ को समाप्त कर दिया गया। सभी राज्यों में दो बार (50 के दशक के मध्य में तथा सत्तर के दशक के आरंभ में) सूखी, एक-फसल सिंचाई, दो-फसल सिंचाई जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी गई। अधिशेष-भूमि की घोषणा कर तथा उन्हें अपने अधिकार में लेकर छोटे किसानों, निकाले गए किराएदारों तथा भूमि-हीन श्रमिकों में वितरित कर दिया गया। 14 करोड़ हेक्टेयर निवल बोए गए क्षेत्र में से वर्ष 1951 से वर्ष 1972 तक (40 वर्षों में) हमने देखा कि सीलिंग के सरल कानून बनाने के पश्चात् भी 20 लाख हेक्टेयर भूमि भी अधिशेष नहीं हो सकी तथा केवल 10 लाख हेक्टेयर भूमि का लगभग 44 लाख व्यक्तियों में (औसतन एक एकड़ से कुछ अधिक) वितरण हुआ। समय के साथ इस मुद्दे का काफी हद तक समाधान किया गया। वर्ष 1951 में 72 मिलियन परिवार थे, उनमें से 60 मिलियन गाँवों में थे तथा 50 मिलियन के पास भूमि थी। वर्ष 1991 में, देश में 170 मिलियन परिवार थे, जिसमें से लगभग 125 मिलियन गाँवों में रहे होंगे तथा 100 मिलियन के पास भूमि होगी। जोतों का औसत आकार केवल 1.4 हेक्टेयर है। अतः समयावधि में जनसंख्या की बढ़ोतरी से जोतों का विभाजन हुआ तथा केवल दो प्रतिशत जोत ऐसे होंगे जो कि आकार में 10 हेक्टेयर से बड़े हैं। निश्चित रूप में इनके स्वामियों के पास कुल भूमि का लगभग 20 प्रतिशत है। अधिकतम लोगों के पास एक एकड़ से कम भूमि है।

क्षेत्रीय मापों के समदर्शी

10 हेक्टेयर = 1 वर्ग कि.मी.= 1000000 वर्ग मी.
हेक्टेयर = 100 एकड़ = 100 × (100 × 100) वर्ग मी.
10 एकड़ = 1 वर्ग फर्लांग = 220 × 220 वर्ग गज;
एकड़ = 4840 वर्ग गज = 4000 वर्ग मीटर (लगभग)

औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने से पहले हम औद्योगिक क्षेत्र (गैर-कृषि) में आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण पर दृष्टि डालें। हम जानते हैं कि कंपनियाँ — सरकारी तथा निजी होती हैं। इसमें सार्वजनिक लिमिटेड तथा निजी लिमिटेड कंपनियाँ होती हैं। प्रदत्त पूँजी का प्रयोग सरकारी कंपनियों में उतना ही होता है जितना निजी कंपनियों में। वर्ष 1991 में लाखों कंपनियों में (2.5 लाख पंजीकृत कारखाने) से 1690 को बड़ी कंपनियाँ माना गया है। ऐसी कंपनियों की संख्या 83.7 प्रतिशत थी, जिनमें 100 करोड़ से कम पूँजी लगी थी तथा जिनकी परिसंपत्तियाँ 27 करोड़ के मूल्य की थीं और जो कुल कंपनियों की परिसंपत्तियों का 30 प्रतिशत भाग नियंत्रित करती थीं। ऐसी कंपनियों की संख्या 1 प्रतिशत थी जिसमें 1000 करोड़ रुपये से अधिक की पूँजी लगी थी तथा जिनकी परिसंपत्तियाँ औसत 1083 करोड़ रुपये के मूल्य की थीं और जो कुल कंपनियों की परिसंपत्तियों का 20 प्रतिशत नियंत्रित करती थीं।

वर्ष 1965 में पता चला कि 75 व्यावसायिक घराने हैं जो 1500 कंपनियों का नियंत्रण करते हैं। वर्ष 1990 के 20 सबसे ऊँचे औद्योगिक घराने ये थे– टाटा, बिड़ला, रिलायंस (जिसका सत्तर के दशक के अंत में प्रवेश हुआ), थापर, जे.के., एल. एण्ड टी., मोदी, बजाज, मफतलाल, एम.ए. चिदम्बरम्, हिंदुस्तान लीवर, यूनाइटेड बेवरेजेज़, टी.वी.एस. आयंगार, आई.टी.सी., श्री राम, ए.सी.सी., ओसवाल, महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा, एस्सार, किर्लोस्कर। प्रथम पाँच औद्योगिक घराने, 20 औद्योगिक घरानों की कुल संपत्ति के 60 प्रतिशत का नियंत्रण करते हैं।

जबकि प्राथमिकताओं का निर्धारण ही मुख्यतः इस केंद्रीकरण के लिए उत्तरदायी था, औद्योगिक-घरानों ने परिस्थितियों को अपने पक्ष में करने के लिए चाल चली। वर्ष 1969 से पूर्व जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था, बैंकिंग उद्योग का नियंत्रण इन्हीं घरानों द्वारा किया जाता था। एक समिति द्वारा औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति की जाँच किए जाने पर मालूम हुआ कि विशिष्ट वित्तीय संस्थानों, जैसे भारतीय औद्योगिक विकास निगम (IFCI), भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विकास निगम (ICICI) तथा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) का 56 प्रतिशत, जीवन बीमा निगम (LIC) का 70 प्रतिशत सावधि-ऋण तथा भारतीय स्टेट

एकाधिकार जाँच समिति 1965 द्वारा अवलोकन

स्वतंत्रता के तुरंत बाद की अवधि में, उन सभी शक्तियों ने, जो देश में शीघ्र औद्योगीकरण लाना चाहती थीं, उद्योगों में शक्ति का केंद्रीकरण कुछ व्यक्तियों अथवा परिवारों में कर दिया जो पहले से ही धनाढ्य तथा शक्तिशाली थे। योजना के लिए आवश्यक संसाधनों का आवंटन तथा प्राथमिकताओं की व्यवस्था ने नए उद्योगों को आरंभ करने अथवा पुरानी संस्थापित इकाइयों का विस्तार करने अथवा विद्यमान उद्योगों में नई इकाइयाँ आरंभ करने के लिए लाइसेंसिंग प्रणाली को आवश्यक किया। पूँजी निर्गमों का नियंत्रण भी किया जाना था। उपर्युक्त सभी परिस्थितियाँ आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को प्रोत्साहित करती हैं।

वित्तीय संस्थाएँ

आई.सी.आई.सी.आई. (ICICI) = भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम
(Industrial Credit and Investment Corporation of India)
आई.डी.बी.आई. (IDBI) = भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
(Industrial Development Bank of India)
आई.एफ.सी.आई. (IFCI) = भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
(Industrial Finance Corporation of India)
एल.आई.सी. (LIC) = भारतीय जीवन बीमा निगम
(Life Insurance Corporation of India)
एस.बी.आई (SBI) = भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)

बैंक (*SBI*) का 62 प्रतिशत सावधि-ऋण इन बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण औद्योगिक क्षेत्र के कुछ हाथों में हो गया। उन्होंने 80 लाख से अधिक लोगों को रोजगार भी नहीं दिया।

अब हम संक्षेप में कुछ अन्य उद्देश्यों की चर्चा करेंगे, जिनका बाद की योजनाओं में स्पष्ट रूप से उल्लेख है।

गरीबी में कमी

ऐसा सोचा गया कि वृद्धि की व्यूह-रचना से; संपत्ति व आय (भूमि के) के पुनर्वितरण से; करों के राजस्व कारकों द्वारा तथा मूल्य नियंत्रण व सार्वजनिक वितरण द्वारा उपभोग की अनिवार्य वस्तुओं के बाजारों में हस्तक्षेप द्वारा सामूहिक गरीबी स्वतः दूर हो जाएगी। संतुलित वृद्धि के साथ पुनर्वितरण के साधनों के प्रचालन के बावजूद ऐसा लगा कि गरीबी में महत्त्वपूर्ण कमी नहीं हो रही थी। पाँचवीं योजना ने गरीबी निवारण का अपना मुख्य उद्देश्य रखा। यद्यपि चौथी योजना के दौरान ही समाज के गरीब वर्ग के लिए कुछ पूरक कार्यक्रम आरंभ कर दिए गए थे। गरीबी का अनुमान लगाने की विधि पर वाद-विवाद हुए। इससे पता चला कि गरीबी (गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का अनुपात) वर्ष 1973-74 तक स्थायी रूप से कम नहीं हुई थी। किंतु उसके बाद यह 56 प्रतिशत से घटकर वर्ष 1993-94 तक 36 प्रतिशत हो गई। वे, जो गरीबी-रेखा से नीचे थे, गरीबी-रेखा के निकट आ गए। फिर भी, गरीबों की निरपेक्ष संख्या 32 करोड़ रही।

आर्थिक गतिविधियों की विविधता

सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान तथा निजी क्षेत्र की सहायता द्वारा हमारे औद्योगिक आधार में, वर्ष 1991 में, काफी विविधता आई। फिर भी हमारी वृद्धि दर का मूल्यांकन अधिक नहीं हुआ। हमारी आवश्यकताएँ संबंधी कई वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनका उत्पादन हम कर सकते हैं तथा उनका आयात करने की जरूरत नहीं थी। पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पादों का आयात इसलिए किया गया ताकि हम अपने भंडार को सुरक्षित रख सकें। इस क्षेत्र में हम कुछ विशेष नहीं कर सकते हैं।

बहुत से ऐसे भारी रासायनिकों तथा उर्वरकों का उत्पादन देश में होने लगा था जिनका हम पहले आयात करते थे। हमने भारी अभियांत्रिक उद्योग में काफी उन्नति की है। हमने प्रौद्योगिकी

के क्षेत्र में काफी प्रगति की है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ हमें यह उपलब्ध न हो सकी ।

स्वास्थ्य एवं कल्याण

बहुत-सी ऐसी उपलब्धियाँ हुईं जिनकी चर्चा यहाँ नहीं हुई है। उल्लेखनीय है कि हमारी जीवन-प्रत्याशा (जन्म के समय) दुगुनी हो गई तथा अन्य आयु पर जीवन-प्रत्याशा में भी काफी सुधार हुआ है। हमारी शिशु मृत्यु-दर, जो पचास के दशक में 140 प्रति हजार थी, घटकर अस्सी के दशक के अंत तक 80 प्रति हजार रह गई। फिर भी यह दूसरे देशों की तुलना में बहुत अधिक थी। मृत्यु-दर जो वर्ष 1951 में लगभग 23 प्रति हजार थी, घटकर वर्ष 1991 में 10 प्रति हजार रह गई। जन्म-दर भी, जो वर्ष 1950 में 45 प्रति हजार थी, घटकर वर्ष 1951 में 30 प्रति हजार रह गई।

निष्कर्ष

हमने योजनाओं को अपनाए जाने के तर्काधार के विषय में जानकारी प्राप्त की तथा स्वतंत्रता के पूर्व की योजनाओं के बारे में भी जाना। हमने योजना के व्यापक अर्थ को भी समझने का प्रयास किया तथा देश की राष्ट्रीय योजना के विशेष संदर्भ को भी समझा। हमने आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र की परिधि में व्यापक योजना के बारे में जाना। उसके बाद हमने योजना के इतिहास की एक झलक देखी। फिर हमने योजना के उद्देश्य तथा उद्देश्यों की योजना में भिन्नता पर चर्चा की, जिन्हें दीर्घकालिक लक्ष्य कहा तथा इनका वर्णन वृद्धि, रोजगार तथा असमानता को कम करने की दृष्टि से किया। आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताओं का चित्रण, हस्तक्षेपीय राज्य, केंद्रीकृत योजनाओं, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तथा आयात-प्रतिस्थापन के रूप में किया।

अंत में हमने वर्ष 1951 से 40 वर्षों में योजना-नीति की उपलब्धियों एवं असफलताओं के बारे में चर्चा की। हमारा दावा है कि हमने सभी क्षेत्रों में सुधार किया है। हमारी उपलब्धियाँ हमारी आशा से कम रहीं। हमारी उपलब्धियों का स्तर वांछित स्तर से कम रहा। यदि हम अपनी उपलब्धियों की तुलना स्वतंत्रता-पूर्व की स्थिति से करें तो हमारी उपलब्धियाँ निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं तथा इसका श्रेय हमारी आर्थिक एवं सामाजिक विकास-योजनाओं की नीतियों को जाता है। किंतु हम गरीबी कम करने में तथा बेरोजगारी को दूर करने में कुछ हद तक असफल रहे। हम औद्योगिक क्षेत्र में संपत्ति या आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को कम करने में बुरी तरह असफल रहे।

अभ्यास

1. भारतीय संविधान माल तथा संसाधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण की अनुमित देता है तथा साथ ही बाजारों की प्रक्रिया का हस्तक्षेप भी यह चाहता है, क्यों?
2. संविधान में आर्थिक एवं सामाजिक योजना के लिए प्रावधान कहाँ हैं?
3. तीस के दशक के अंत में कौन-से तीन मॉडल थे जिन्होंने भारतीय नेताओं को योजनाओं के पक्ष में निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया?

4. राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किसने तथा कब किया? योजना आयोग के अध्यक्ष तथा सचिव कौन थे? एक अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा, हस्तक्षेप करने के तरीकों, विस्तार तथा गति को निर्धारित करने वाले क्या कारक हैं।
5. राष्ट्रीय योजना समिति की मुख्य अनुशंसाएँ क्या थी?
6. आर्थिक योजना से आपका क्या तात्पर्य है? उद्देश्यों तथा साधनों को कार्यान्वित करने योग्य बनाने की क्या क्या मूलभूत शर्तें हैं।
7. व्यापक विकास योजना से आपका क्या तात्पर्य है?
8. कुछ आर्थिक क्षेत्रों तथा सामाजिक क्षेत्रों को सूचीबद्ध करें।
9. अर्थव्यवस्था के कार्य करने में राज्य द्वारा हस्तक्षेप की कुछ विधियों को सूचीबद्ध करें।
10. हमारी योजनाओं का संक्षिप्त इतिहास लिखिए तथा उन कारणों का उल्लेख कीजिए जिनके कारण एक पंचवर्षीय योजना तब क्यों नहीं तैयार की गयी जब इसका बनना उचित था।
11. योजना के दीर्घकालिक उद्देश्यों तथा योजना उद्देश्यों में अंतर कीजिए। योजना उद्देश्यों के बारे में लिखिए तथा इसके तर्काधार बताएँ।
12. हमारी योजना का मुख्य ढांचा क्या है? क्या यह मिश्रित अर्थव्यवस्था के अस्तित्व को बनाए रखता है? मिश्रित अर्थव्यवस्था से आपका क्या आशय है?
13. 1991 तक की हमारी आर्थिक-नीति की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या उनकी पृष्ठभूमि को न्यायोचित ठहराते हुए है, विस्तार से प्रत्येक की चर्चा करें।
14. अधिकतम उत्पादन के क्षेत्र में विशेषकर खाद्यान्नों में उपलब्धियों/असफलताओं पर चर्चा करें।
15. स्व-रोजगार तथा मजदूरी-रोजगार से आपका क्या तात्पर्य है?
15. 'श्रम-दिन' से आपका क्या अभिप्राय है?
17. नयी आर्थिक नीति के लागू होने के समय रोजगार के क्षेत्र में हमारी उपलब्धियों तथा असफलताओं पर चर्चा कीजिए।
18. वर्ष 1951-1991 के दौरान निम्न क्षेत्रों में हमारे आँकड़े असमानता कम करने के बारे में क्या कहते हैं– (i) आय वितरण में, (ii) ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में उपभोग व्यय के वितरण में, (iii) भू-जोतों के वितरण में ।
19. आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण विशेषकर औद्योगिक संपत्ति के संदर्भ में हमारे आँकड़े क्या हैं?
20. विभिन्न उद्देश्यों की तुलनात्मक सफलता पर प्रकाश डालते हुए वर्ष 1951-1991 के दौरान हमारी उपलब्धियों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

गतिविधियाँ

6.1 यदि हम अपने खाद्यान्नों के लिए आयातों पर निर्भर नहीं रहना चाहते हैं, तो देश में हमें कितने खाद्यान्नों का उत्पादन करना चाहिए, यदि हममें से प्रत्येक प्रतिदिन 500 ग्राम खाद्यान्नों का उपभोग करता है (12.5 प्रतिशत खाद्यान्न बीज, दाना तथा हानि के लिए सुनिश्चित करें)। आपको याद होगा कि निवल निर्गत सकल निर्गत का 87.5 प्रतिशत हो गया है।

6.2 माना कि 40 करोड़ लोग उपलब्ध कुल श्रम-दिन किसी विशेष वर्ष के दौरान 40 करोड़ कार्यरत लोगों के द्वारा 14600 करोड़ व्यक्ति दिन (= 40 cr* 365 days) उपलब्ध होता है। बेरोजगारी दर 10 प्रतिशत लेने पर हमें 1460 करोड़ श्रम-दिनों की = 14600 मिलियन श्रम-दिनों की आवश्यकता होगी (क्षेत्रीय आयामों के साथ श्रम बल के संघटन रूपरेखा का पूरा ध्यान रखते हुए) बताएँ कि रोजगार की विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा कितने श्रम-दिनों का सृजन हुआ? क्या यह हमारी आवश्यकता का आधा था?

6.3 समूह गतिविधि– संविधान को देखिए। यह जानने का प्रयास कीजिए कि 'राज्य' शब्द का प्रयोग संविधान में कितने अर्थों में हुआ है। अपने अध्यापक की उपस्थिति में आपस में विचार-विमर्श कीजिए।

अध्याय 7

वर्ष 1991 से आर्थिक सुधार

परिचय

हमने पिछले अध्याय में संकेत दिया था कि वर्ष 1951 से 40 वर्षों तक किसी एक नीति/नीतियों का अनुसरण नहीं किया गया। हमने बहुत क्षेत्रों में परिवर्तन किए किंतु वे सभी शायद एक ही दिशा में थे – हस्तक्षेपीय राज्य, केंद्रित योजना तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार। वास्तव में हमने किसी अधिकृत मार्ग का अनुसरण नहीं किया बल्कि कई मार्गों को आज़मा रहे थे। हम 40 वर्षों के दौरान तथा वर्तमान सुधारों से पहले हुए मुख्य विकासों की यहाँ पर फिर से चर्चा करेंगे।

वर्ष 1960 के अंत में बहुत-सी बातें सामने आईं जिसके परिणामस्वरूप कुछ नीतियों की कार्य प्रणालियों की जाँच करने के लिए समितियों का गठन किया गया। यह ज्ञात हुआ कि औद्योगिक नीति, प्रस्ताव 1956 के अनुकूल नहीं थी। अतः इसको और सख्त किया गया। यह पाया गया कि बड़े औद्योगिक घराने वित्तीय संसाधनों का नियंत्रण करते थे, क्योंकि व्यावसायिक बैंकों का स्वामित्व उनके पास था। इसीलिए 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण वर्ष 1969 में (तथा 6 और बैंकों का वर्ष 1980 में) हुआ जिससे कृषि विकास तथा छोटे तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए कोष उपलब्ध हो सके। यह भी मालुम हुआ कि बहुत से औद्योगिक घरानों का निश्चित गतिविधियों पर एकाधिकार था तथा वे प्रतिस्पर्धा को रोकने का प्रयास कर रहे थे। इसके नियंत्रण के लिए एक अधिनियम मोनोपोलीस एण्ड रिस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रैक्टिसेज (MRTP) ऐक्ट लागू किया। ऐसे कार्यों को रोकने के लिए एक आयोग (MRTPC) की स्थापना हुई।

वर्ष 1970 के अंत में कुटीर तथा लघु पैमाने के उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने के लिए, सार्वजनिक क्षेत्रों के उत्तरदायित्व का विस्तार करने के लिए तथा निजी क्षेत्र से रूग्ण उद्योगों को अपने अधिकार में लेने के लिए एक आंदोलन का सुझाव दिया गया, परंतु इसे और आगे नहीं बढ़ाया जा सका।

सत्तर के दशक के अंत में यह व्यापक रूप से उद्योगों द्वारा अनुभव किया गया कि लघु उद्योगों के संरक्षण के नाम पर प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए (वस्तुओं को आरक्षित करके, कच्चे माल की उपलब्धता निश्चित करके, उत्पादित माल के क्रय तथा विक्रय में आर्थिक सहायता देकर) ऊँचे प्रशुल्क लगाकर, विदेशी पूंजी तथा तकनीकी के प्रवाह पर रोक लगाकर तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमों को, जो कि बहुत हानि उठा रहे थे, विशेष सुविधाएँ देकर सरकार अनावश्यक ही निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों की गतिविधि पर रोक लगा रही है।

विदेशी हितों के द्वारा स्वार्थों को इस दृष्टि से अभिव्यक्त किया गया कि सरकार कोटा प्रणाली लगाकर (यद्यपि विदेशी मुद्रा की सीमितता के कारण जिसकी आवश्यकता थी) तथा ऊँचे कस्टम प्रशुल्कों द्वारा तथा विदेशी पूंजी के प्रवाह, सहायता तथा ऋण के प्रवाह को रोक कर विदेशी व्यापार पर प्रतिबंध लगा रही हैं। मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं ने सोचा कि ऊँचे प्रशुल्कों द्वारा विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योग का अतिसंरक्षण किया जा रहा था तथा सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम अर्थव्यवस्था के हित में कार्य नहीं कर रहे थे।

इनमें से कुछ मुद्दों को संबोधित करने के लिए अस्सी में ही एक शुरुआत हो गयी थी। वर्ष 1980 में एक नई औद्योगिक नीति वक्तव्य की घोषणा की गई थी। इस वक्तव्य में यह स्पष्टतौर पर उल्लेख किया गया कि वर्ष 1950 प्रस्ताव ही वर्तमान वक्तव्य का आधार बना है। नयी नीति ने सार्वजनिक क्षेत्र की कुशलता पर से सरकार का विश्वास उठ जाने की बात को स्वीकार किया। वस्तुतः वर्ष 1977 के वक्तव्य में दिए गए निर्देशों को 1980 में वक्तव्य में काफी हद तक स्वीकृत किया। इसने एक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा उद्योगपतियों को आवश्यकता से अधिक क्षमता स्थापित करने के लिए दण्डित करने के बजाय, बिना लाइसेंस के अधिक क्षमता (उन वस्तुओं को छोड़कर जो लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित है अथवा वे स्थितियाँ जहाँ कंपनियाँ MRTPA अथवा FERA के लिए पंजीकृत हैं) नियमित करने का सुझाव दिया। अस्सी के दशक के दौरान, लाइसेंसिंग नीति में निम्नलिखित छूटें दी गई —

1. 15 करोड़ रुपये के मूल्य की स्थायी संपत्तियों वाले उद्योगों को लाइसेंस से पूर्णरूप से मुक्त कर दिया गया तथा यदि वे भारत सरकार द्वारा घोषित पिछड़े क्षेत्र में स्थित हैं तो उनकी सीमा 50 करोड़ रुपये रखी गई।
2. प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण के कारण होने वाली, पैमाने की मितव्ययताओं को ध्यान में रखते हुए लाइसेंस क्षमता को 49 प्रतिशत बढ़ा दिया गया।
3. एम.आर.टी.पी.सी. आयोग में पंजीकरण करने के लिए अवसीमा को 20 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 100 करोड़ रुपये कर दिया गया।
4. विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए फेरा (FERA) कानूनों को उदार कर दिया गया, तथा
5. निगम आय के नियमों के अंतर्गत रियायत दी गयीं।

उनके अतिरिक्त, सभी स्रोतों से उदारतापूर्वक विदेशी पूंजी उधार ली गई। गैर-निवासी भारतियों (*NRIs*) ने बहुत देश-भक्ति का परिचय दिया तथा अपनी जमाओं के द्वारा विदेशी मुद्रा भण्डार में बहुत बड़ा योगदान किया।

पचास, साठ और सत्तर के दशक में औसत वृद्धि-दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, जो अस्सी के दशक में, दो योजनाओं (छठी और सातवीं योजनाओं) में बढ़कर 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी। आयातों के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा की राशि संतोषजनक थी। फिर भी, यह ध्यान देना चाहिए कि अस्सी के दशक के दौरान :

(क) राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 5 प्रतिशत से बढ़कर 8.5 से अधिक हो गया।

(ख) राजस्व घाटा वर्ष (1981-82 में) सकल घरेलू उत्पाद 0.2 से बढ़कर 3.5 प्रतिशत हो गया।

(ग) चालू लेखा घाटा (बाहरी भुगतान में) 1.2 प्रतिशत से बढ़कर 2.5 प्रतिशत हो गया।

ये तथ्य अस्सी के दशक के दौरान अपनाई गई नीतियों की कमजोरियों को प्रतिबिंबित करते हैं। इन नीतियों ने वृद्धि को प्रोत्साहन दिया, फिर भी ये नीतियाँ आंतरिक तथा बाह्य ऋणों पर निर्भर थीं। अतः अस्सी के दशक के दौरान वृद्धि-दर की स्थिरता संदिग्ध थी किंतु परिणाम आशा के विपरीत शीघ्र ही आए।

तात्कालिक संकट

खाड़ी के देशों में संकट के कारण अंतरराष्ट्रीय वातावरण में परिवर्तन से गंभीर विदेशी मुद्रा का संकट उत्पन्न हुआ। खाड़ी देशों को हमारा निर्यात समाप्त हो गया जिससे विदेशी मुद्रा के प्रवाह (दुर्लभ मुद्रा के रूप में) में कमी हो गयी। प्रेषित धन (remittances), जो अप्रवासी भारतियों द्वारा खाड़ी-देशों से आते थे, समाप्त हो गए। पेट्रोलियम तेल तथा स्नेहक (लुब्रिकेंट) पदार्थों के आयात का बिल बढ़ गया। इन सभी कारकों के संयुक्त प्रभाव से हमारी विदेशी मुद्रा का भण्डार घटकर एक बिलियन डॉलर तक हो गया।

राजनीतिक अस्थिरता ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे बड़ी मात्रा में पूँजी का पलायन हुआ, और हमारी विदेशी मुद्रा का कोष समाप्त हो गया। अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक बैंकों ने नए ऋण देने से मना कर दिया। ऋण मूल्यांकन एजेंसियों ने अपनी व्यावसायिक कुशलता से भारत के अस्तित्व का मूल्यांकन बहुत कम किया। इस कारण, गैर-निवासी भारतियों ने अचानक ही अपने जमाओं (deposits) को वापिस ले लिया। वर्ष 1991 के मध्य से हम अपनी किश्तों का भुगतान न करने के कारण दोषी (default) होने के कगार पर आ गए। दो सप्ताहों के आयातों के भुगतान के लिए भी हमारे पास पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा का भंडार नहीं था। निर्यातों से उपार्जन तथा विदेशी मुद्रा का भंडार हमारे बंधनों (obligations) का शोधन करने में कम पड़ गया। ऐसा आर्थिक सर्वेक्षण 1991-92 में बताया गया है।

जून 1991 से भुगतान शेष का संकट

सरकार के लिए भुगतान शेष के प्रबंध की योग्यता व आत्म विश्वास की कमी अत्यधिक संकट का कारण हो गयी। जून 1991 तक, भुगतान शेष के

हमें कितनी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है

आप जानते होंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य में निर्वाह करने के लिए कुछ वस्तुओं के आरक्षित स्टॉक की आवश्यकता होती है, जैसे- सब्जियों/फल/मिठाई कुछ दिनों के लिए, चीनी/चाय/कॉफी कुछ सप्ताहों के लिए, चावल/गेंहूँ कुछ महीनों/मौसम के लिए। आपके स्कूटर तथा कार में भी आपातकालीन जरूरतों के लिए सुरक्षित स्टॉक (तेल) होता है। सरकार भी खाद्यान्नों का सुरक्षित भंडार रखती है, जो फसलों के खराब होने पर काम आता है।

इसी तरह हमें विदेशी मुद्रा के भंडार की आवश्यकता होती है। हम उनको किसी विशेष मात्रा में अथवा विशेष वर्षों के लिए नहीं रखते । हमें विदेशी मुद्रा भंडार के एक विशेष स्तर की आवश्यकता होती है, जो 11-12 सप्ताह के आयातों के लिए पर्याप्त हो।

हम अतिरिक्त भंडार बनाने के लिए अपने संसाधनों को अवरुद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि संसाधनों के वैकल्पिक प्रयोग भी होते हैं। इसी तरह, हमें वर्षों के लिए विदेशी मुद्रा के भंडार रखने की आवश्यकता नहीं है। इनका वापिस भुगतान ब्याज के साथ करना पड़ता है।

बढ़ते हुए संकट ने सरकार की भुगतान शेष के प्रबंधन की योग्यता पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया। इससे विदेशी-ऋण के सभी रास्ते बंद हो गए। हमारे देश के इतिहास में जून 1991 में पहली बार भुगतान का दोष एक गंभीर समस्या हो गयी।

आंतरिक तथा बाह्य विश्वास को वापस स्थापित करने की दृष्टि से, समष्टि आर्थिक स्थिरता के उपाय आरंभ करने की अत्यधिक आवश्यकता महसूस हुई। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि समष्टि आर्थिक उपाय व्यापक होते हैं तथा पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं न कि किसी क्षेत्र विशेष को। राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, विनिमय-दर नीति तथा मजदूरी-आय नीति में परिवर्तन ही वे उपाय हैं, जो समष्टि आर्थिक संतुलन (आंतरिक तथा बाह्य) को स्थिर/अस्थिर करते हैं। स्थिरता लाने की दृष्टि से, इन मुख्य नीतियों में सुधारों का सुझाव दिया गया था, जो बहुत बड़ी आवश्यकता थी।

किंतु कई समष्टि आर्थिक (क्षेत्रीय) नीतियों को सुधारने के अवसर भी बंद हो गए थे यह नहीं कहा जा सकता है कि इन समष्टि आर्थिक नीतियों में सुधार किए बिना स्थिरता के उपायों में सुधार प्रभावशाली नहीं होंगे। राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसा माना जा रहा था कि हमारी नीतियाँ वस्तुओं की कीमतों और संसाधनों के आवंटन को विकृत कर रही होंगी। हमने सोचा कि हमारी नीतियाँ भेद-मूलक थी, किंतु यह कहा गया था कि वास्तव में हमारी नीतियाँ कीमतों में विकृति के द्वारा संसाधनों के आवंटनों को विकृत कर रही थीं। इस क्षेत्र में किए गए सुधारों को **संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम** (*structural adjustment programme*) कहा गया। व्यापार नीति, औद्योगिक नीति, सार्वजनिक क्षेत्र नीति, निर्देशित कीमतों की नीति, शुल्क नीति तथा कारक-बाजार नीति, में सुधार इस संदर्भ में विशेषकर उल्लेखनीय हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार, स्थिरता सामूहिक माँग से तथा संरचनात्मक समायोजन सामूहिक आपूर्ति से संबंधित है। किंतु दूसरे विद्वानों के अनुसार स्थिरता का अभिप्राय समष्टि आर्थिक असंतुलनों को दूर करने के अल्प-कालिक उपायों से है तथा संरचनात्मक समायोजन का श्रम तथा पूँजी की उत्पादकता में सुधार के उपायों से। भारत सरकार ने दूसरे दृष्टिकोण को स्वीकार किया। उदाहरण के लिए, औद्योगिक नीति, श्रम नीति तथा व्यापार नीति में होने वाले परिवर्तन उस दिशा के सूचक हैं। राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति तथा विदेशी मुद्रा नीति में परिवर्तन लाने के प्रयास समष्टि आर्थिक असंतुलन में सुधार करने के लिए हैं। यहाँ इस स्थिति में, दोनों प्रकार के उपायों को साथ-साथ प्रारंभ किया गया।

सुधारों की मुख्य विशेषताएँ

ऊपर दिए गए सुझावों के अनुसार नब्बे के दशक में, लाइसेंस, कोटा, परमिट (LQP) राज का प्रतिस्थापक उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण प्रणाली द्वारा किया गया। उद्योग तथा व्यापार के अतिरिक्त सुधार के अन्य बहुत से क्षेत्र हैं। किंतु हम सुधार के उपर्युक्त क्षेत्रों की ही चर्चा करेंगे, क्योंकि ये उपाय ही इन क्षेत्रों को निर्णायक ढंग से प्रभावित करेंगे। समष्टि आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया है– उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण।

उदारीकरण (Liberalisation)

यदि आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी नीतियों द्वारा प्रतिबंध लगाए जाते हैं तो इस प्रणाली को

प्रतिबंधन की नीति कहेंगे अथवा प्रतिबंधित नीति कहेंगे। इसके विपरीत, यदि सरकार ने कोई प्रतिबंध नहीं लगाए हैं तो इस प्रणाली को अबंध नीति (laissez-faire) कहेंगे। यद्यपि, कोई वास्तविक अर्थव्यवस्था कभी भी पूर्णतया प्रतिबंधों से मुक्त नहीं होगी। जब इनमें से कुछ प्रतिबंध हटा दिए जाते हैं अथवा उनमें ढील दी जाती है तो इस प्रणाली को उदारीकरण कहेंगे। इसके विपरीत यदि अधिक प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं तो इस प्रणाली को कठोर नियंत्रण वाली प्रणाली कहेंगे। वास्तव में यह संभव है कि कुछ क्षेत्रों में अधिक प्रतिबंधित, तो कुछ अन्य क्षेत्रों में अधिक उदार नीतियों को अपनाया गया है।

अपने उद्योगों के मामले में हमने देखा था कि औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार पर ऊँचे प्रतिबंध निम्नलिखित विधियों से लगाए गए– किसी न किसी अधिनियम के द्वारा कीमतों पर प्रतिबंध लगाकर, औद्योगिक घरानों के निवेश के स्तर पर प्रतिबंध लगाकर, वित्तीय संस्थाओं का साख-नियंत्रण करके, पूंजी निर्गम (शेयर/ऋण पत्र) पर नियंत्रण करके; विदेशी निवेश/तकनीकी पर आयात लाइसेंस द्वारा रोक लगाकर तथा उद्योगों अथवा उनके श्रम के बाहर निकालने पर प्रतिबंध लगाकर।

बहुत लोगों ने ऐसा सोचा कि इन बातों ने एक तरफ लोगों की पहल तथा उद्यमशीलता पर रोक लगाई तथा दूसरी ओर बाजार में प्रतिस्पर्धा पर।

यह भी कहा गया कि बड़े उद्योगपति नौकरशाही के साथ मिलकर इन बाधाओं को अभी पार कर सकते थे, जो इन प्रतिबंधनों को रोकने में सफल हुए। उनका हित इस प्रणाली के चालू रहने में है ताकि उनको प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े। अतः अंतिम परिणाम भ्रष्टाचार तथा विलम्ब था। इससे न तो वृद्धि को बढ़ावा मिला और न ही सामाजिक न्याय को। यह तर्क दिया गया कि कम वृद्धि दर ने अर्थव्यवस्था की सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने की क्षमता को कम कर दिया। एक शब्द में, मध्यस्थता, हस्तक्षेप में बदल गयी।

मध्यस्थता तथा हस्तक्षेप

ये शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। किंतु देश तथा बाजार के संबंधों के संदर्भ में हस्तक्षेप की तुलना में मध्यस्थता शब्द का प्रयोग बेहतर है।

लोगों को यह कहते हुए देखा गया है कि 'कृपया मध्यस्थता कीजिए' (kindly intervene) जब वे किसी तीसरे पक्ष को सम्मिलित कर किसी झगड़े का समाधान शांतिपूर्वक करना चाहते हैं।

लोगों को यह कहते हुए भी देखा गया है कि 'कृपया हस्तक्षेप न करें' (please do not interfere) जब वे किसी मामले का समाधान करने के लिए किसी तीसरे पक्ष को सम्मिलित नहीं करना चाहते हैं।

ऐसी परिस्थितियों के अंतर्गत, तत्कालीन वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने जुलाई-अगस्त 1991 तथा बाद में अप्रैल 1993 में एक नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की थी, जिसमें निम्नलिखित क्षेत्रों में उदारवादी प्रावधान थे अथवा प्रोत्साहन देने वाली विशेषताएँ थीं :

(क) व्यवसाय को लाईसेंस,

(ख) विदेशी निवेश,

(ग) विदेशी तकनीकी समझौता,

(घ) प्रतिष्ठानों का विलयन/सम्मेलन, इकाइयों का अधिग्रहण तथा विशेष निदेशकों की नियुक्ति,

(ङ.) सरल निर्गम नीतियाँ।

लाइसेंसिंग प्रणाली मूलतः 18 वस्तुओं तक ही सीमित थी। बाद में तीन वस्तुओं, रेफ्रीजिरेटर, कपड़े धोने की मशीन तथा एयर कंडीशनर को इस सूची से बाहर निकाल दिया गया। विदेशी निवेशों विशेषकर, प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों, को आमंत्रित किया गया तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों का अनुमोदन सरल बना दिया गया था। विदेशी तकनीकी के सहयोग को प्रोत्साहित किया गया। विलयन/अधिग्रहण पर लगे प्रतिबंधों को हटा लिया गया। श्रम कानूनों को निर्गम की अनुमति देने के लिए थोड़ा आसान बना दिया गया।

अतः मुद्दा यह है (किसी अर्थशास्त्री के अनुसार) क्या उदारीकरण का तात्पर्य नौकरशाही को खत्म करना अथवा बाजारीकरण है? हम में से बहुत लोग यह महसूस करते हैं कि हम नौकर शाही को समाप्त करने में कम सफल हुए हैं तथा बाजारीकरण को प्रोत्साहित किया है। बहुत-सी नीतियों में परिवर्तन करना पड़ा क्योंकि जिन उद्देश्यों के लिए वास्तव में नीतियाँ बनाई गई थी उनसे या तो बहुत अधिक हो रहा है या बहुत कम।

निजीकरण

'सरकार का कार्य व्यवसाय करना नही है' (Government has no business to do business) यह मुहावरा एक नया मंत्र बन गया। यह विश्व में निजीकरण की तरंग के अनुरूप स्वर था। एक समय था जब तथाकथित पूंजीवादी देशों में अनेक निजी उद्योगों (तथा व्यापार) का राष्ट्रीयकरण हुआ था। अब स्थिति विपरीत है तथा अ-राष्ट्रीयकरण एक चलन हो गया है। हमारे देश में बहुत से सार्वजनिक उद्यमों के भावशून्य प्रदर्शन ने ऐसा अवसर दिया।

इस संदर्भ में यह महसूस किया कि सरकार अनेक क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से प्रचालन कर रही थी जहाँ नहीं करना चाहिए था तथा इसके अनेक उपक्रम अपने लक्ष्य के अनुरूप स्तर तक का भी प्रदर्शन नहीं कर रहे थे। पहली स्थिति में सरकार आसानी से पीछे हट सकती थी। इसका तात्पर्य है कि ऐसे उपक्रमों को बेच देना चाहिए था। इसे विनिवेश (*disinvestment*) कहा जाने लगा। बाद की स्थिति में, उपक्रमों के इतने सुधार हो गए कि उनके प्रदर्शन अच्छे हो गए, भले ही उन्हें इसके लिए निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी भी करनी पड़े। यहाँ विचाराधीन है कि खराब प्रदर्शन व हानि उठाने वाले उद्यमों को कौन खरीदेगा तथा यदि कोई खरीदने का इच्छुक भी होगा तो वह अधिक राशि क्यों देगा। एक ऐसी सरकार, जिसके पास कोषों की कमी हो, तो वह अच्छे प्रदर्शन करने वाले उद्यमों के शेयर को बेचने के बारे में सोच सकती है ताकि वह अपना बजट कुछ बेहतर संतुलित कर सके।

यदि निजीकरण का कुछ यथार्थ मूल्य है, तो हमें इसे प्रोत्साहन देने में संकोच नहीं करना चाहिए। हम निजीकरण के विभिन्न निदर्शों का परीक्षण कर रहे हैं। उनमें सबसे सरल, स्वामित्व के मुद्दे से संबंधित है। उपक्रम को पूर्ण रूप से बेच देना, 26 प्रतिशत स्टॉक निषेधाकार (veto) शक्ति के साथ रखकर, 51 प्रतिशत स्टॉक अपने पास रखकर तथा 75 प्रतिशत स्टॉक अपने पास रखकर, इन सभी तरीकों का किसी न किसी स्थिति में परीक्षण किया जा चुका है। कौन-सा रूप अपनाया जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि एक विशिष्ट उद्यम कौन-सा उत्पाद विनिर्मित करता है अथवा कौन-सी सेवा प्रदान करता है। अधिकार-हरण या उपक्रम को पूर्णतया बेच देना,

ऐसे क्षेत्र में सोचा जा सकता है जिसके सार्वजनिक क्षेत्र में रहने का कोई औचित्य नहीं है। यदि उत्पाद की गयी वस्तुएँ/सेवाएँ ऐसी श्रेणी में आते हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित हैं तो सरकार को शेयर-पूंजी कम से कम 51 प्रतिशत हिस्सा अपने पास रखना चाहिए तथा कुल स्टॉक में से 49 प्रतिशत से अधिक विनिवेश नहीं करना चाहिए (यदि अंतिम तीन विकल्पों का सहारा लिया जाता है तो इसका तात्पर्य है कि ये उद्यम संयुक्त उद्यमों में बदल जाएंगे)। शेयरों को अपने कर्मचारियों को बेचकर उद्यम का सहकारिता सिद्धांत पर चलना इसका दूसरा विकल्प है। बाद में, भारत सरकार ने लाभ देने वाले उद्यमों तथा हानि पहुँचाने वाले उद्यमों के शेयरों को इकट्ठा करके (बंडल बनाकर) प्रयोग किया परंतु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

निजीकरण के बारे में दूसरे मत भी हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में व्यावसायिक आत्मा जागृत करना एक ऐसा ही मत है। रेलवे को निगमित करने का सुझाव आया है, जिसका तात्पर्य है कि रेलवे बोर्ड को ऐसे सार्वजनिक निगम में परिवर्तित कर देना चाहिए, जिसमें स्वायत्तता है। इसको परिचालन की दृष्टि से निजीकरण कहा जा सकता है। यथापि इसमें विनिवेश सम्मिलित नहीं है। दूसरे सुझाव के अनुसार सार्वजनिक उद्यम को निजी-पार्टी को पट्टे पर दे दिया जाए अथवा इसकी आगतों के रूप में प्रयुक्त बहुत-सी सेवाओं को ठेके पर दे दिया जाए। संगठन की दृष्टि से इसे निजीकरण माना गया है। किंतु सही शब्दों में यह स्वामित्व का प्रश्न है। स्वामित्व के साथ नियंत्रण आता है। सामान्य सरकार अभी भी संक्रियात्मक तथा संगठनात्मक स्वायत्तता प्रदान कर सकती है तथा प्रबंधन के साथ समझौते का ज्ञापन दे सकती है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि विनिवेश द्वारा हमारे निजीकरण के कार्यक्रम को केवल 50 प्रतिशत ही सफलता मिली है।

विश्वीकरण

विश्वीकरण शब्द को अभी भी कोई निश्चित अर्थ नहीं मिल सका है। एक अर्थशास्त्री ने इसे विशिष्ट उद्योग में विश्व नेता के साथ प्रतिस्पर्धा में प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया है। दूसरे यह सोचते हैं कि यह उत्पादन के कारकों की मुक्त अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता के साथ, यह वस्तुओं व सेवाओं का राष्ट्रों के बीच मुक्त व्यापार है। हमें केवल भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्वीकरण के बारे में ही बात करनी चाहिए। इसका अर्थ भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बेहतर एकीकरण के संदर्भ में लें। दो अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण कैसे हो सकता है? सहायता द्वारा नहीं (जो एक-पक्षीय प्रवाह है), बल्कि व्यापार द्वारा (जो द्वि-पक्षीय प्रवाह है) । सरकारों के बीच आर्थिक संबंधों द्वारा नहीं, बल्कि हमारे बाजारों के विश्व के बाजारों के साथ आमना-सामना के द्वारा।

एक देश-दूसरे देश में अपनी वस्तुएँ कैसे बेच सकता है, यदि सरकार आयात पर 'कोटा' द्वारा प्रतिबंध लगा देती है, (जबकि हम आपूर्ति करने के इच्छुक हैं तथा दूसरे लोग खरीदने के इच्छुक हैं) अथवा 300 प्रतिशत आयात शुल्क लगाकर (ऊँचे प्रशुल्क लगाकर) रोक लगा देती है। हम ऐसे उपायों के द्वारा प्रतियोगिताओं से बाहर हो गए तथा सरकार अकुशल देशीय उत्पादकों को संरक्षण देती रही। यदि सरकार ऐसे प्रतिबंध हटा देती है, तो देशीय उत्पादक या तो कुशलता में सुधार लाएंगे अन्यथा उत्पादन की दूसरी धाराओं को अपना लेंगे। यदि आप इस तर्क से सहमत हैं

तो आप, प्रशुल्क तथा गैर-प्रशुल्क, दोनों को हटाने की वकालत करेंगे। किंतु इस प्रकार के तर्क से असहमत होने के कई कारण हो सकते हैं। कोई भी सरकार यह खुशी से नहीं करती है। कुछ क्षेत्रों में घरेलू उद्योगों को प्रतिस्पर्धा से संरक्षण देना वांछनीय हो सकता है।

क्या आप अपने देश में उत्पादन करके दूसरे देश में विक्रय करना पसंद करेंगे? बहुराष्ट्रीय निगम तथा अंतरराष्ट्रीय निगमों के संयंत्र बहुत से देशों में हैं। मेज़बान देश में उत्पादन उनको परिवहन लागत से बचाता है। इसलिए हमें पूंजी के गमनागमन को भी अनुमति देनी चाहिए। अतः कारक बाजारों का भी एकीकरण हो जाता है। एक बार उत्पादक देश में जम गया तो वह बेहतर प्रौद्योगिक प्रबंधकीय प्रणालियों तथा उद्यमीय निपुणताएँ लाने का प्रयास करेगा। इसके दूरगामी प्रभाव होंगे।

हम में से बहुत लोग जानना चाहेंगे कि क्या श्रम तथा मानव शक्ति का संचालन उतना ही सरल होगा? हम जानते है कि यह इतना सरल नहीं है।

संक्षेप में विश्वीकरण निम्नलिखित बातों की अनुमति देती है :

(क) वस्तुओं को मुक्त प्रवाह की अनुमति देने के लिए व्यापार के रुकावटों में कमी,

(ख) प्रेरक वातावरण तथा प्रस्तावों की आसान स्वीकृतियों द्वारा सावधि निवेश (प्रत्यक्ष तथा पत्राधान/portfolio) के रूप में विदेशी पूँजी का मुक्त प्रवाह,

(ग) तकनीकी का मुक्त प्रवाह, तथा

(घ) श्रम तथा मानवशक्ति की मुक्त गतिशीलता

गैर-प्रशुल्क प्रतिबंधों को हटाकर प्रशुल्क-प्रतिबंधों में पर्याप्त कमी करके तथा आर्थिक सहायता को कम करके/हटाकर असंरक्षित प्रतिस्पर्धा द्वारा विश्व व्यापार संगठन (WTO) मुक्त व्यापार के लिए कार्य कर रही है। इसने परंपरागत रूप में GATT में किए गए समझौतों के क्षेत्रों को बढ़ा लिया है। इसमें व्यापार सेवाओं में सामान्य समझौता (GATT), व्यापार संबंधी बुद्धिजीवी संपदा अधिकार (TRIPS) तथा व्यापार संबंधित निवेश उपायों (TRIMS) को सम्मिलित किया गया है।

निष्कर्ष

हमने यह अध्याय भारत में औद्योगिक अर्थव्यवस्था तथा नीतियों के विकास को चित्रित करते हुए आरंभ किया। सबसे पहले हमने देखा कि हमने नीतियों के सही अभिप्रायों का अनुसरण नहीं किया है। न चाहते हुए भी शक्ति के केंद्रीकरण में बढ़ोतरी हुई। सत्तर के दशक में विदेशी मुद्रा की खराब होती स्थिति ने सख्त नियंत्रणों को बढ़ावा दिया। अतः सख्ती बरती गई। किंतु अस्सी के दशक तक यह देखा गया कि हमारी नीतियाँ बहुत प्रतिबंधित हो गयी हैं। लाइसेंस, परमिट व कोटा राज व्यापक हो गया है। अतः प्रतिबंधन कुछ ढ़ीले किए गए। अंतरराष्ट्रीय बाजार से उदारता पूर्वक ऋण लिए गए, क्योंकि अंशतः सहायता-धन राशि समाप्त हो रही थी। आयातों को उदार कर दिया। वृद्धि-पथ में आश्चर्यजनक सुधार हुआ। तथापि, कार्यक्रम की कुछ कमियाँ थीं जो इसे विरासत में मिली थीं। ये समष्टि आर्थिक दृश्य से स्पष्ट हैं। हमें इसका पता, राजस्व घाटे, राजकोषीय घाटे, भुगतान शेष में चालू लेखा घाटे की बिगड़ती हुई स्थिति से चलता है।

वर्ष 1991 में खाड़ी युद्ध होने से अर्थव्यवस्था के प्रेषित धन में कमी आयी। राजनीतिक अस्थिरता के कारण पूंजी का काफी पलायन हुआ। हमारे विदेशी मुद्रा के भंडार इस स्तर तक संकुचित हो

गए कि वे दो सप्ताह के आयातों की आवश्यकता को मुश्किल से पूरा कर सकते थे। हमें समष्टि आर्थिक स्थिरता तथा व्यष्टि आर्थिक सामंजस्य संबंधी नीतिगत सुधार लाने की सलाह दी गयी। यह कहा गया कि हमने देश की गति को पीछे मोड़ दिया है। कुछ लोग कहते हैं कि हमने केवल हस्तक्षेप की संरचना में परिवर्तन किया है न कि दूसरे स्तरों में।

अंत में, हमने आर्थिक सुधारों की तीन मौलिक विशेषताओं, अर्थात् उदारता, निजीकरण तथा विश्वीकरण के सूक्ष्म भेद पर विचार-विमर्श करने का प्रयास किया। हमने कुछ सुधारों को भी आगे बढ़ाया तथा हमें इसमें कुछ हद तक सफलता मिली। उनमें से कुछ को, जिन्हें दूसरी पीढ़ी के सुधार के रूप में जाना जाता है, लागू करने में विलम्ब हुआ है। सुधारों के दो समूहों में यह अंतर है कि, पहली पीढ़ी के सुधारों को कार्यकारी तथा प्रशासकीय यंत्र द्वारा लागू किया जा सका, जबकि दूसरी पीढ़ी के सुधार लागू करने के लिए वैधानिक क्रिया की आवश्यकता हुई।

अभ्यास

1. साठ, सत्तर तथा अस्सी के दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास (विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र में) की चर्चा करें।
2. अस्सी के दशक में आगे बढ़ायी गयी नीतियों के गुणों तथा मुख्य कमियों का उल्लेख कीजिए।
3. हम कुछ गतिविधियों पर प्रतिबंध क्यों लगाते है? उदाहरण सहित समझाइए।
4. मूलभूत समस्या क्या थी जिसने हमें हमारी नीतियों को U-घुमाव (U-turn) लेने पर विवश किया?
5. वर्ष 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार का क्या स्तर था?
6. समष्टि आर्थिक स्थिरता के कार्यक्रमों से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों तथा विस्तार के आधार पर इनकी विशेषताएँ बताइए।
7. व्यष्टि आर्थिक सामंजस्य के कार्यक्रमों से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों तथा विस्तार के आधार पर इनकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
9. अबंध-नीति से आपका क्या आशय है? अबंध-नीति तथा उदारीकरण की नीतियों के बीच अंतर बताएँ।
10. प्रतिबंध की नीतियों तथा उदारीकरण की नीतियों में अंतर कीजिए।
11. निजीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? यह अ-राष्ट्रीयकरण से कैसे भिन्न है, चर्चा करें।
12. विनिवेश से आपका कया आशय है? इस कार्यक्रम में हम कितने सफल हुए?
13. विश्वीकरण से आपका क्या तात्पर्य है?
14. विश्व व्यापार संगठन द्वारा पूंजी बाजार तथा श्रम बाजार के असमान व्यवहार पर आप की क्या प्रतिक्रिया है?
15. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इससे किन कार्यों की आशा की जा सकती है?

इकाई III

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ

इस इकाई में आप भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष जो वर्तमान चुनौतियाँ हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करेंगे। हम उन स्थायी समस्याओं की चर्चा करेंगे जिनके साथ हम वर्षों से जूझ रहे हैं। ये हैं, जनसंख्या, निर्धनता तथा बेरोजगारी।

बहुधा ऐसा कहा जाता है कि आधारिक संरचना की कमी के कारण आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होती है। कुछ आधारिक संरचना सेवाओं में पिछले पचास वर्षों में हुई प्रगति के बारे में हम पहले पढ़ चुके हैं। यहाँ जिन आधारिक संरचनाओं की चर्चा की गई वे हैं: ऊर्जा, परिवहन, तथा संचार। यहाँ हम उन चुनौतियों का अध्ययन करेंगे, जिनका उन्हें सामना करना पड़ रहा है।

अंतिम अध्याय में हम कुछ उभरते हुए विषयों पर चर्चा करेंगे। यहाँ जो विषय लिए गए हैं वे हैं– पर्यावरण, लिंग तथा प्रवसन।

अध्याय 8

भारत में जनसंख्या

परिचय

एक समय था जब जनसंख्या में वृद्धि वांछनीय मानी जाती थी। कुछ विकसित और अविकसित समाजों में जनसंख्या में वृद्धि अभी भी वांछनीय मानी जाती है। यूरोप के कई देश परिवारों का आकार बड़ा रखने के लिए प्रोत्साहन भी देते हैं। परंतु, **कुछ अर्थव्यवस्थाएँ और कुछ समय ऐसे होते हैं जहाँ जनसंख्या में वृद्धि अवांछनीय होती है, विशेषकर यदि यह वृद्धि तेज हो तो।** भारत में, जनसंख्या की वृद्धि तीस के दशक से ही अवांछनीय मानी जा रही थी जब यह जानकारी हुई कि 1921 से 1931 के बीच जनसंख्या में 10 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। उसके बाद, यह अधिक तेजी से बढ़ी और पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह इससे भी दूनी तेजी से बढ़ी।

जनसंख्या के द्वारा जहाँ एक ओर उत्पादन के लिए श्रमबल प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर इन उत्पादों के लिए बाजार भी। जनसंख्या का आकार यदि छोटा हो तो इससे उत्पादन की नवीन प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन नहीं मिलता और फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि नहीं होती। आकार के छोटे होने से विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन का लाभ भी नहीं मिलता। जनसंख्या का आकार बड़ा हो तो हाथों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि उन्हें काम में लगाना संभव नहीं। बड़े आकार की जनसंख्या पर्यावरण तथा संसाधनों के लिए भी समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है। जब भी अति जनसंख्या की बात उठती है तो कुछ विद्वान या बुद्धिजीवी या तो इसे मानते ही नहीं या यदि मानते भी हैं तो इसके लिए वे व्यवस्था तथा उसकी संस्थाओं तथा प्रौद्योगिकी को जिम्मेदार मानते हैं। वस्तुतः जनसंख्या कम है या अधिक यह एक ओर तो उपलब्ध संसाधनों या प्रौद्योगिकी के द्वारा तथा दूसरी ओर लोगों को उपलब्ध और उनके द्वारा अपेक्षित जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होता है। फिर भी हमें जनसंख्या की वृद्धि-दर को कम करने की आवश्यकता हो सकती है।

आकार के अतिरिक्त जनसंख्या के अन्य पक्ष भी हैं जो समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। आकार इनमें से एक है। दूसरा रोचक पक्ष लिंग और आयु की दृष्टि से जनसंख्या का संघटन है। बच्चे अधिक हैं या कम? बुजुर्गों की संख्या अधिक है या कम? कार्य करने योग्य वयस्कों की संख्या अधिक है या उनकी कमी है? क्या महिलाओं की संख्या सभी आयु-वर्ग में कम है या किसी विशेष आयु-वर्ग में ही?

ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'बहुत अधिक या बहुत कम' किसी वस्तुस्थिति से संबद्ध होता है अर्थात् सापेक्ष होता है। हम इन्ही विषयों का अध्ययन इस अध्याय में करेंगे।

हमारी जनसंख्या कितनी है

कई बार हमारा सामना ऐसे प्रचिलत अंधविश्वासों से होता है जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। ये अनावश्यक रूप से भय का वातावरण पैदा करते हैं।

ऐसा एक उदाहरण है– हमारी जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का छठा भाग है जबकि हमारी भूमि विश्व की कुल भूमि का 2.5 प्रतिशत है। दूसरा उदाहरण है– भारत चीन के बाद विश्व में दूसरा ऐसा देश है जो एक बिलियन की संख्या को पार कर चुका है। यदि स्थिति ऐसी ही बनी रही तो हमारा आकार जल्दी ही चीन से बड़ा हो जाएगा।

ये तथ्य सही हैं। स्थिति की गंभीरता और इन आँकड़ों को एकत्र करने का उद्देश्य ही हमारी विषय-वस्तु है।

आज हमारा आकार विश्व में सबसे बड़ा होता यदि पाकिस्तान और बांग्लादेश (म्यांमार को छोड़कर) हमारे देश के अंग होते। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि 2001 में चीन पाकिस्तान तथा बांग्लादेश की जनसंख्या निम्नलिखित थी– चीन की 127.76 करोड़ (01.02.2000), पाकिस्तान की 15.65 करोड़ (01.07.2000) तथा बांग्लादेश की 12.92 करोड़ (01.07.2000) । भारत पाकिस्तान तथा बांग्लादेश इन तीनों की जनसंख्या मिलकर 131.33 करोड़ होती है जो चीन की जनसंख्या से अधिक है। क्या यह राजनैतिक सीमाओं की बात नहीं है? चीन का क्षेत्रफल (96 लाख वर्ग कि.मी.) भारत के क्षेत्रफल (33 लाख वर्ग कि.मी.) से तीन गुना तथा एक साथ तीन दक्षिण एशियाई देशों के कुल क्षेत्रफल से दो गुने से भी अधिक है। पाकिस्तान का क्षेत्रफल 8 लाख वर्ग किलोमीटर तथा बांग्लादेश का 1.45 लाख वर्ग किलोमीटर है।

इन बातों का तात्पर्य है कि हमारा देश सघन आबादी वाला देश है। हमारी जनसंख्या की सघनता चीन की तुलना में अधिक है परंतु जापान तथा अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में कम है। ज़रा यूरोप के बारे में सोचें। यदि उनके निवासी नई दुनिया या ऑस्ट्रेलिया में आकर नहीं बसते तो क्या होता।

यदि कृषि योग्य भूमि पर विचार करें तो देखेंगे कि हमारी भूमि चीन के बराबर है। हालाँकि कुछ देश ऐसे हैं जो अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरी तरह आयातों पर निर्भर हैं, पर उनके पास इसके बदले में देने के लिए कुछ और है।

यह कहानी अंतहीन है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि बिना उपयुक्त तुलना के केवल कुछ तथ्यों की चर्चा का कोई अर्थ नहीं।

जनसंख्या का आकार

जनसंख्या के आकार को लोगों की संख्या द्वारा मापते हैं। यदि हम देश की वर्तमान सीमाओं को ध्यान में रखकर विचार करें तो देखेंगे कि हमारी संख्या इस शताब्दी के आरंभ में 25 करोड़ से कम थी जो शताब्दी के अंत तक बढ़कर 100 करोड़ से अधिक हो गई। एक शताब्दी के अंदर हमारी संख्या में चार गुनी वृद्धि हो गई। आरंभ में तीन गुनी वृद्धि हो रही थी। शताब्दी के मध्य में हम 36 करोड़ थे। शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, जनसंख्या में 50 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही थी जो उत्तरार्द्ध में बढ़कर 150 प्रतिशत से भी अधिक हो गई। यह वृद्धि 180 प्रतिशत थी।

सारणी 8.1 में, विभिन्न जनगणना में जनसंख्या के आँकड़े दिए गए हैं जो रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया के नवीनतम प्रकाशनों से लिए गए हैं। यहाँ दिए गए आँकड़े इकाइयों में हैं (परंतु आप उन्हें करोड़ या मिलियन में पूर्ण कर सकते हैं) । निम्न सारणी आधारभूत है जिससे कुछ अन्य सारणियों का निर्माण भी किया जाएगा।

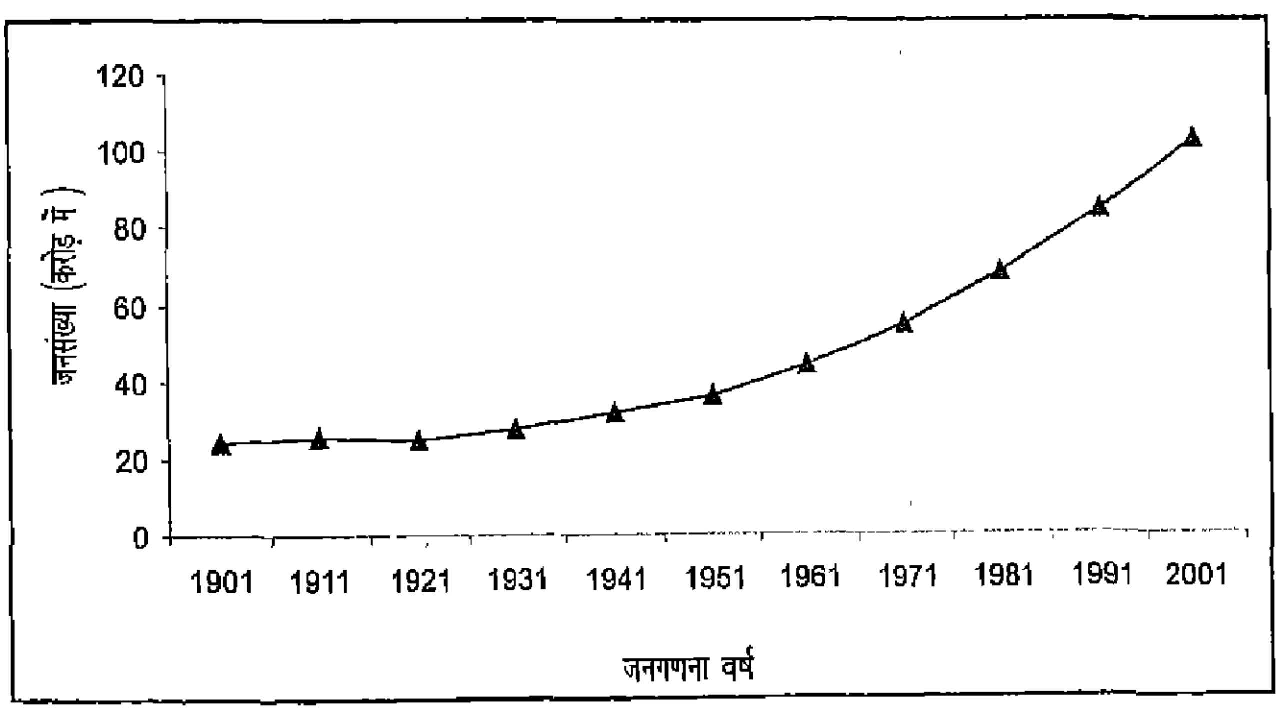
सारणी 8.1
जनगणना के अनुसार बीसवीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या

वर्ष	*जनसंख्या*
1901	23,83,96,327
1911	25,20,93,390
1921	25,13,21,213
1931	27,89,77,238
1941	31,86,60,580
1951	36,10,88,090
1961	43,92,34,771
1971	54,81,59,652
1981	68,33,29,097
1991	84,33,87,888
2001	102,70,15,247

स्रोत : *भारत की जनगणना, 2001, शृंखला 1 भारत: अनंतिम जनसंख्या योग — 2001 का पेपर 1, रजिस्ट्रार जनरल तथा सेन्सस कमिश्नर, भारत।*

इस सारणी से हम देख सकते हैं कि 1921 में देश की जनसंख्या (वर्तमान सीमाओं के भीतर) 1911 की तुलना में कम थी। जनसंख्या गणनाकारों के अनुसार इसका कारण 1918 में देश के कई भागों में फैलने वाली फ्लू की महामारी थी। इसके कारण यद्यपि जनसंख्या में 8 लाख की कमी बताई गई थी, परंतु वास्तव में यह संख्या 1.5 करोड़ से कम नहीं थी। बीसवीं शताब्दी के दौरान सिर्फ एक ही बार एक ही दशक में ऐसा हुआ था कि मृत्यु की संख्या जन्म की संख्या से अधिक थी। 1921 के बाद से जनसंख्या में नियमित वृद्धि होती रही, कमी कभी नहीं हुई। देखें आरेख 8.1।

1921 के बाद के हर दशक में हमारी संख्या में पूर्ववर्ती दशक की तुलना में अधिक वृद्धि होती रही है। पहले यह कहा जाता था कि प्रत्येक वर्ष हम एक आस्ट्रेलिया जोड़ रहे हैं। नब्बे के दशक में, हम में पूरा एक अर्जेन्टीना जुड़ गया,



आरेख 8.1 : भारत की जनसंख्या

जो संसार का पाँचवाँ बड़ा देश है, जब हमारी जनसंख्या में 18 करोड़ की वृद्धि हुई। सारणी 8.2 को देखिए। चूँकि हमारी जनसंख्या का आधार अब पहले से बड़ा है, हम देख सकते हैं कि जनसंख्या की निरपेक्ष संख्या बहुत अधिक है और अब भी बढ़ रही है। परंतु आप ध्यान दे सकते हैं कि दोनों निरपेक्ष वृद्धियों में अंतर घट रहा है।

सारणी 8.2
बीसवीं शताब्दी के दशकों में निरपेक्ष वृद्धि

दशक	*निरपेक्ष वृद्धि*
1901-1911	1,36,97,063
1911-1921	-7,72,177
1921-1931	2,76,56,025
1931-1941	3,96,83,342
1941-1951	4,24,27,510
1951-1961	7,81,46,681
1961-1971	10,89,24,881
1971-1981	13,51,69,445
1981-1991	16,30,58,791
1991-2001	18,0627,359

स्रोत : सारणी 8.1 पर आधारित।

वृद्धि की दर

दशकवार वृद्धि

अब हम दशकों के लिए वृद्धि दर निकालें। इसके लिए निरपेक्ष वृद्धि को आधार जनसंख्या से भाग देकर भागफल को 100 से गुणा करें। वृद्धि दर प्रतिशत (प्रति दशक) के रूप में होगी। देखें सारणी 8.3 जिसमें में हर दशक में प्रतिवर्ष वृद्धि दर दी गई है।

सारणी 8.3
शताब्दी के विभिन्न दशकों में जनसंख्या की वृद्धि

(प्रतिशत में)

दशक	*वृद्धि दर*	
	प्रतिदशक	*प्रतिवर्ष*
1901-1911	05.74	00.56
1911-1921	(-) 00.31	(-) 00.03
1921-1931	11.00	01.05
1931-1941	14.22	01.34
1941-1951	13.31	01.26
1951-1961	21.64	01.98
1961-1971	24.80	02.24
1971-1981	24.66	02.23
1981-1991	23.42	02.13
1991-2001	21.77	01.99

स्रोत : सारणी 8.1 पर आधारित।

विशाल और लघु विभाजक

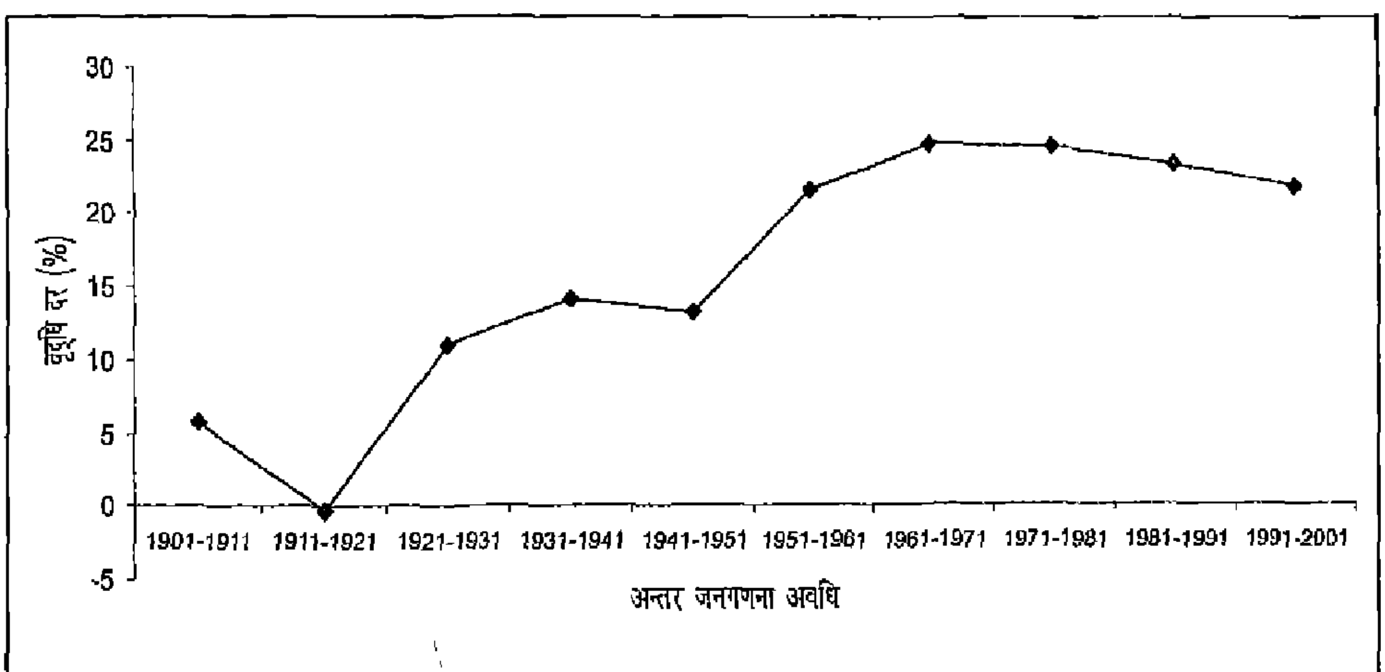
बीस, तीस और चालीस के दशकों में जनसंख्या वृद्धि क्रमशः 11,14, तथा 13 प्रतिशत थी। चालीस के दशक में थोड़ी कमी हुई थी जो विभाजन के बाद लोगों के पाकिस्तान चले जाने तथा विभाजन के दौरान हुई मौतों के कारण हुई थी। अतः **वर्ष 1921** भारतीय जनांकिकी में **विशाल विभाजनिक वर्ष** के रूप में जाना जाता है क्योंकि उसके बाद से जनसंख्या के आकार में उतार-चढ़ाव समाप्त हो गया।

1951 के बाद से जनसंख्या की प्रति दशक वृद्धि दर 20 प्रतिशत के निशान से बढ़ गई। अतः 1951 को लघु विभाजक वर्ष माना जाता था। हालाँकि सबसे अधिक वृद्धि 1971 के दशक में हुई जो 24.8 प्रतिशत थी। परंतु सत्तर के दशक में वृद्धि दर में कोई प्रत्यक्ष कमी नहीं आई। अतः 1981 को एक अन्य प्रवृत्ति के समापन का वर्ष माना जाता है। अस्सी और नब्बे के दशकों के

दौरान वृद्धि दरों में स्पष्ट कमी आई। नब्बे के दशक में वृद्धि-दर पचास के दशक की वृद्धि दर के लगभग बराबर थी (हम यहाँ दस वर्षों की लंबी अवधि पर विचार कर रहे हैं)। निश्चय ही वृद्धि दरों का घटना आरंभ को चुका है। देखें आरेख 8.2।

जनांकिकीय अवस्थाएँ

जैसा चार्ट में दिखाया गया है, जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति के आधार पर, भारत के जनांकिकीय इतिहास को चार अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। 1941 से 1951 के बीच की गिरावट को एक अपवाद माना जाता है। 1921 के पहले जनसंख्या बढ़ नहीं रही थी बल्कि इसमें उतार-चढ़ाव हो रहा था। अतः 1921 के पहले की अवधि को स्थिरता (या उतार-चढ़ाव) की अवधि माना जाता है। 1901-1921 के दौरान, जनसंख्या में 1.3 करोड़ की वृद्धि हुई जो केवल 5.4 प्रतिशत थी। **विशाल विभाजक वर्ष (1921)** के बीच जनसंख्या में 11 करोड़ की वृद्धि हुई जो 44 प्रतिशत थी। इस अवधि को सतत (नियमित) वृद्धि की अवस्था के रूप में माना जाता है। इस अवधि के प्रत्येक दशक में वृद्धि-दर 10 प्रतिशत से अधिक और 15 प्रतिशत से कम रही। उसके बाद मात्रात्मक उछाल आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पाँचों दशकों में दशकवार वृद्धि दर 20 प्रतिशत से अधिक रही परंतु पहले



आरेख 8.2 : जनसंख्या में दशकवार कमी

यह तीव्र गति से बढ़ी फिर धीमी गति से। शोधकर्त्ता 1981 को दूसरा **लघु विभाजक वर्ष** मानते हैं। वे 1951-81 जिसमें जनसंख्या 34 करोड़ या 89 प्रतिशत बढ़ी अवधि को तीव्र वृद्धि की अवधि कहते हैं। इसको हम उच्च एवं त्वरित वृद्धि की अवस्था भी कह सकते हैं। इसके विपरीत 1981 के बाद की अवधि को ऊँची परंतु धीमी वृद्धि की अवधि कह सकते हैं। 1981-2001 के बीच जनसंख्या में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

वार्षिक वृद्धि दरें

कुछ लोग 'प्रतिशत प्रतिवर्ष' के रूप में वृद्धि दर को मापने में विश्वास करते हैं। चूँकि दो ही संख्याएँ उपलब्ध हैं– आरंभिक तथा अंतिम। अतः प्रतिवर्ष वृद्धि दर के परिकलन के लिए चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। देखें सारणी 8.3 । एक प्रतिशत प्रतिवर्ष से कुछ अधिक से आरंभ कर, पचास के दशक में वृद्धि दर बढ़कर दो प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा साठ और सत्तर के दशकों में 2.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक पहुँच गई। अस्सी के दशक में यह 2.13 प्रतिशत प्रतिवर्ष से घटकर नब्बे के दशक में 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई।

हमारी वृद्धि दरें यूरोप में आजतक की उच्चतम वृद्धि दर की तुलना में दुगुनी तथा कई विकासोन्मुख देशों की उच्च्तम वृद्धि दरों की तुलना में दो-तिहाई या तीन-चौथाई है। हमारी वृद्धि दरें काफी ऊँची मानी जाती हैं। अतः वृद्धि दर को कम करने के प्रयास में कोई समझौता करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

ऊँची वृद्धि के मूलभूत कारक

जनसंख्या की वृद्धि चार मूलभूत कारकों पर निर्भर करती है – जन्म, मृत्यु तथा अप्रवसन (in migration तथा out migration) । हमारे देश की तरह बड़े देश के लिए, प्रवसन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है (छोटे तथा सीमावर्त्ती राज्यों के लिए हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते) । अतः दो मुख्य कारक हैं जो वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं। जन्म का धनात्मक तथा मृत्यु का ऋणात्मक योगदान। अतः सामान्यतः वृद्धि दर को जन्म-दर और मृत्यु-दर के अंतर के रूप में वर्णित करते हैं। वृद्धि-दर को बहुधा प्राकृतिक वृद्धि या प्राकृतिक बढ़ोत्तरी कहते हैं क्योंकि जन्म तथा मृत्यु को प्रवसन की तुलना में प्राकृतिक तथ्य मानते हैं तथा प्रवसन को सामाजिक या आर्थिक। ये सभी दरें जनगणनाकारों के द्वारा प्रति सैंकड़े (प्रतिशत) के रूप में नहीं बल्कि प्रति हजार के रूप में वर्णित की जाती हैं। पहले जनगणना के आँकड़ों के आधार पर **जन्म-दर** तथा **मृत्यु-दर** का परिकलन किया जाता था। अब इसके स्थान पर सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम द्वारा एकत्र किए गए आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है। सारणी 8.4 में, बीसवीं सदी के पहले सात दशकों तथा दशक के अंतराल के वर्षों में जन्म और मृत्यु-दर की सूचनाएँ दी जा रही हैं जो जनगणना तथा सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित हैं। आरेख 8.4 भी देखें।

जन्म व मृत्यु-दरों की प्रवृत्ति

1911 तथा 1921 की जनगणनाओं के अनुसार, मृत्यु-दर तथा जन्म-दर लगभग बराबर थे। प्राकृतिक वृद्धि दर 0.09 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। यह दशक ऐसा था जब जनसंख्या में सचमुच कमी आई थी। जन्म-दर और मृत्यु-दर दोनों में कमी आई थी। हालाँकि कमियों का अंतर यह निर्धारित करेगा कि वृद्धि दर में वृद्धि हुई थी या कमी। जन्म-दर की कमी की तुलना में मृत्य-दर में कमी सामान्यतः

सारणी 8.4
जन्म-दर, मृत्यु-दर और प्राकृतिक वृद्धि दर

(प्रति हजार)

दशक	जन्म-दर	मृत्यु-दर	प्राकृतिक वृद्धि दर	वर्ष	जन्म-दर	मृत्यु-दर	प्राकृतिक वृद्धि दर
1901-1911	49.2	42.6	6.6	1971	36.9	14.9	22.0
1911-1921	48.1	47.2	0.9	1976	34.4	15.0	19.4
1921-1931	46.4	36.3	10.1	1981	33.9	12.5	21.4
1931-1941	45.2	31.2	14.0	1986	32.6	11.1	21.5
1941-1951	39.9	27.4	12.5	1991	29.5	9.8	19.7
1951-1961	41.7	22.8	18.9	1996	27.5	9.0	18.5
1961-1971	41.7	18.9	22.2	1998	26.5	9.0	

स्रोत : भारत के जन्म और मृत्यु-दरों का सारांश, 1971-1997, सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया, 1999 तथा इण्डिया ईयर बुक मैनपावर प्रोफाइल, जन साधन अनुसंधान संस्थान, 2001।

अधिक थी, परिणामस्वरूप वृद्धि दर बढ़ी। हालाँकि तीस तथा चालीस के दशकों के बीच विभाजन के दौरान हुई मौतों के बावजूद जन्म-दर में कमी मृत्यु-दर में कमी की तुलना में अधिक थी। परंतु, सामान्य प्रवृत्ति वृद्धि दर के बढ़ने की ही थी जो मृत्यु-दर में आई भारी कमी के कारण थी। अतः **वृद्धि दर के तेजी से बढ़ने का कारण जन्म-दर का बढ़ना नहीं है बल्कि मृत्यु-दर का घटना है।** जन्म-दर, मृत्यु-दर तथा वृद्धि दर के लिए आरेख 8.3 देखें।

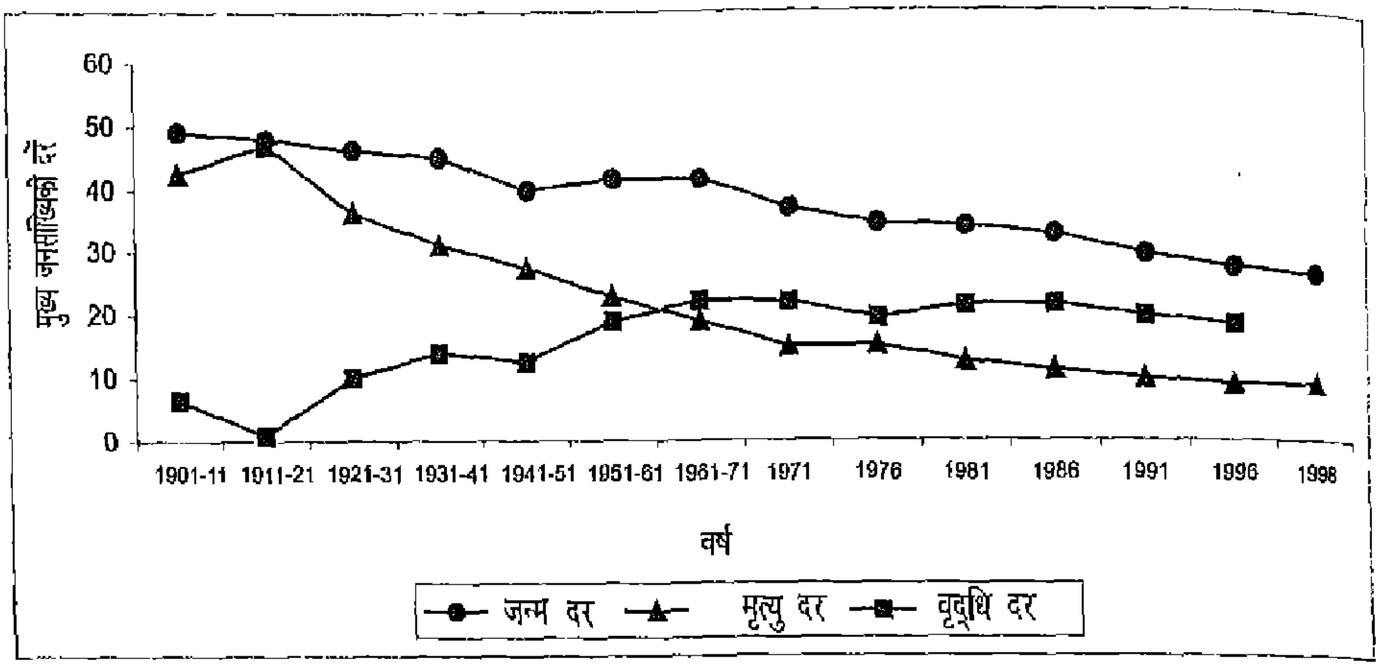
इस आरेख से यह पता चलता है कि यद्यपि मृत्यु-दर में कमी जन्म-दरों में कमी की तुलना में तीव्र थी। लेकिन जन्म-दर में भी कमी हो रही थी। चूँकि मृत्यु-दर कम होती हुई एक पठार जैसी स्थिति में पहुँच गयी है, अतः जन्म-दर को ही कम करने की आशा की जा सकती है।

जनांकिकीय संक्रमण

पश्चिमी देशों के जनांकिकीय इतिहास के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि संक्रमण के आरंभ में जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों अधिक थे जिससे जनसंख्या वृद्धि दर कम रही या बढ़ती-घटती रही। विकास के साथ, पहले मृत्यु-दर में कमी होती है और जन्म-दर में कोई अंतर नहीं होता, जिसके कारण वृद्धि दर बढ़ती है। अगले चरण में, जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों समांतर रूप से कम होते हैं, वृद्धि-दर को ऊँची किंतु स्थिर रखते हुए। अगले चरण में, जहाँ मृत्यु-दर में कमी तथा गतिहीनता आती है, वहीं जन्म-दर में कमी होती है। इस चरण में, वृद्धि दर कम होती है। अंततः जन्म-दर भी कम और स्थिर हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वृद्धि दर कम हो जाती है। यहाँ हम जनांकिकीय परिवर्तन के तीसरे चरण में हैं। हम देख सकते हैं कि संक्रमण के बाद जीवन-प्रत्याशा बढ़ी है जबकि संक्रमण के पहले यह कम है।

जीवन और मृत्यु का विषय

यदि हमारी जन्म-दरें कम होतीं तो यह कहा जा सकता था कि वृद्धि कम हो सकती थी।



आरेख 8.3 : जन्म, मृत्यु तथा वृद्धि दरों की प्रवृत्तियाँ

यदि जन्म-दर, मृत्यु-दर की तुलना में तेजी से कम होती, तो वृद्धि दर में वास्तविक कमी हो सकती थी। परंतु ऐसा नहीं हुआ। जनांकिकीय परिवर्तन का सिद्धांत यह बताता है कि जन्म-दर में कमी हमेशा मृत्यु-दर में कमी के बाद आती है।

सत्तर वर्षों में, 1971 तक जन्म-दर में 7.5 प्रति हजार अंक की कमी की तुलना में 1971 के बाद से 10 प्रति हजार अंक की कमी उल्लेखनीय है। सत्तर वर्षों में 1971 तक मृत्यु-दर में 25 हजार अंक की कमी की तुलना में 1971 के बाद से 6 प्रति हजार अंक की कमी काफी कम है। हालाँकि, हमें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक सीमा तक पहुँचने के बाद से इन दरों में और कमी नहीं होती। ये दरें, विशेषकर मृत्यु दरें अब अपनी सीमा तक पहुँच रही हैं।

मनुष्य सदा अधिक से अधिक लंबा जीवन जीने का इच्छुक रहा है। हमें जितना संभव हो सके उतने लोगों को मृत्यु से बचाना है। हम ऐसा कर भी रहे हैं। किसी को जन्म लेने से तो रोका जा सकता है, पर एक बार जन्म लेने के बाद उसे मौत से बचाना पुण्य-कार्य तथा शिशु-हत्या को, यदि यह किया जाता है, जघन्य अपराध माना जाता है।

कुल प्रजनन दर, जो सामान्यरूप से प्रति स्त्री जन्म की संख्या है, 8 से घटकर 3 हो गई है, फिर भी जन्म-दर में वृद्धि हुई है, क्योंकि मृत्यु दरों में कमी के कारण स्त्रियों (तथा पुरुषों) की संख्या बढ़ गई है। यदि प्रत्येक दम्पति अपने को प्रतिस्थापित भी करना आरंभ करें तो संख्या के रूप में लगभग सत्तर वर्षों में जनसंख्या में स्थिरता आ पाएगी क्योंकि औसत रूप से एक दम्पति सत्तर वर्षों तक जीवित रहता है।

आजकल माँ-बाप द्वारा अपने बच्चों की संख्या कम रखने का कारण शिशु मृत्यु-दर में कमी है। मृत्यु-दर में कमी का प्रमुख कारण भी शिशु मृत्यु-दर में कमी है। इससे जन्म-दर में और अधिक कमी आने की संभावना है। मृत्यु-दर निम्नतम के निकट पहुँच चुका है। संसार भर में निम्नतम मृत्यु-दर 7 प्रति हजार है। मृत्यु-दर में इससे अधिक कमी कठिन है क्योंकि यदि जन्म-दर कम हो रही है तो अधिकांश जनसंख्या वृद्ध हो रही है। जन्म-दर में कमी के कारण आर्थिक स्थितियों तथा शिक्षा के प्रसार में सुधार आता है। अर्थव्यवस्था की विविधता और स्त्रियों की जीविका की रूपरेखा जन्म-दर में कमी को और कम करने में योगदान देती है।

जनसंख्या का संघटन

लिंग-अनुपात

किसी भी सुव्यवस्थित जनसंख्या में दोनों लिंगों का होना अनिवार्य है। इनकी संख्या में संतुलन होना चाहिए। ऐसा पाया गया है कि प्रकृति बालिकाओं की तुलना में अधिक बालकों को जन्म देती है। साथ ही प्रकृति ने स्त्रियों को अधिक मजबूत बनाया है। अतः यदि समाज में किसी तरह का पक्षपात न किया जाए तो इन दोनों संख्याओं में संतुलन बना रहना चाहिए। दोनों में से किसी एक का भी बहुत अधिक या बहुत कम होना अच्छा नहीं क्योंकि ये दोनों कई प्रकार से एक-दूसरे के पूरक हैं। संसार में कुछ देश ऐसे हैं जैसे रूसी राष्ट्र संघ (1140), जापान (1041), संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (1029) तथा इण्डोनेशिया (1004), जहाँ लिंग-अनुपात स्त्रियों के पक्ष में है तथा कई अन्य देश हैं जहाँ ये पुरुषों के पक्ष में हैं। हमारे देश में भी ऐसी ही स्थिति है।

भारत में, सामान्यतः लिंग-अनुपात को प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या के रूप में परिभाषित करते हैं। बीसवीं सदी में लिंग-अनुपात पूरे देश के लिए महिलाओं के पक्ष में नहीं रहा। सदी के आरंभ में यह 972 थी जो 1991 में घटकर 927 हो गई, यद्यपि थोड़े-बहुत अपवाद थे। इस परिप्रेक्ष्य में 2001 में 933 का लिंग-अनुपात एक महत्त्वपूर्ण सुधार माना जाता है। साठ के दौरान लिंग-अनुपात में सबसे अधिक कमी आई थी।

ध्यान दें कि शताब्दी के आरंभ में कई राज्यों में लिंग अनुपात 1000 से अधिक था। उदाहरण के लिए, जहाँ बिहार में लिंग-अनुपात 1061 तथा तमिलनाडु में 1044 था, वहीं केरल में यह केवल 1004 था। शताब्दी के अंत में जहाँ केरल में यह बढ़कर 1058 हो गया, वहीं बिहार और तमिलनाडु में घटकर 921 तथा 986 हो गया। पंजाब और हरियाणा में भी लिंग-अनुपात अच्छा नहीं था।

सारणी 8.5
भारत में बीसवीं सदी में लिंग-अनुपात

(प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या)

वर्ष	1901	1911	9121	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001
लिंग-अनुपात	972	964	955	950	945	946	941	930	934	927	933

स्रोत : भारत की जनगणना 2001 श्रृंखला 1 भारतः अनंतिम जनसंख्या योग 2001 का पेपर 1, रजिस्ट्रार जनरल और सेन्सस कमिश्नर, भारत।

परंतु महत्त्वपूर्ण यह है कि 0-6 वर्ष के आयु-वर्ग के लिए लिंग-अनुपात 1991 में 945 से घटकर 2001 में 927 हो गया। पंजाब में लिंग-अनुपात 1991 में 875 से घटकर 2001 में 793 हो गया तथा हरियाणा में उसी अवधि में 879 से घटकर 820। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लड़कियों की उपेक्षा सभी जगह समान रूप से हो रही है।

आयु संरचना

क्या हमारे यहाँ मैदानों में खेलते हुए बच्चों की संख्या अधिक है या पार्क में छड़ी लेकर टहलते हुए वृद्धों की या खेतों और फैक्टरियों के काम करते हुए वयस्कों की? 2001 की जनगणना के आयु संरचना के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं। उपर्युक्त तीनों वर्गों अर्थात् बच्चों (0-14), वयस्क (15-60) तथा वृद्ध (60+) के लिए चुने हुए वर्षों के आँकड़े नीचे सारणी 8.6 में दिए जा रहे हैं। देखा जा सकता है कि बच्चों का अनुपात, जो धीरे-धीरे बढ़ता हुआ 1971 में 41% से ऊपर हो गया था फिर से घटने लगा और 1991 में न्यूनतम हो गया। वृद्धों की संख्या बढ़ती गई और इसके अनुपात में छः गुनी वृद्धि हुई। यदि बच्चों के अनुपात की वृद्धि U-अक्षर के आकार के विपरीत है तो वृद्धों के अनुपात में वृद्धि U-अक्षर के आकार के समान है।

अतः यह स्पष्ट है कि सत्तर के दशक तक जन्म दर ऊँची रही परंतु मृत्यु दरों में गिरावट बहुत पहले से शुरू हो गई थी। बच्चों के अनुपात में कमी भी घटते हुए जन्म दर पर प्रकाश डालती है। वृद्धों के बढ़ते हुए अनुपात के कारण कई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

विकास पर प्रभाव

परस्पर विरोधी तर्क

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि जनसंख्या समस्या नहीं है। आप उनके पक्ष में तर्क दे सकते हैं कि माल्थस के आगाह करने के बाद, पिछली दो शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या जो एक सौ करोड़ से भी कम थी, बढ़कर छः सौ करोड़ हो गई है जो छः गुने से भी अधिक है। फिर भी, अधिकांश देशों में अधिकांश लोग पहले की तुलना में तीन गुनी लंबी आयु और दोगुना बेहतर जीवन जी रहे हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह तर्क दे रहे हैं कि जनसंख्या ही एकमात्र समस्या है। बहुतों की तरह आप तर्क दे सकते हैं कि गरीबी, कुपोषण, अस्वस्थता, पर्यावरण, प्रदूषण तथा अपराध आदि सामाजिक समस्याएँ जनसंख्या के बढ़ने के कारण ही उत्पन्न हो रही हैं। कुछ लोग जनसंख्या-बम तथा जनसंख्या-विस्फोट जैसे शब्दों का

सारणी 8.6
आयु वर्गों के अनुसार चुने हुए वर्षों के लिए आयु संरचना

(प्रतिशत)

वर्ग	*आयु वर्ग*	*1911*	*1921*	*1931*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
बच्चे	0-14	38.8	39.2	38.3	41.0	41.4	39.7	36.5
वयस्क	15-60	60.2	59.6	60.2	53.3	53.4	54.1	57.1
वृद्ध	60+	1.0	1.2	1.5	5.7	5.2	6.2	6.4

स्रोत : *इण्डिया ईयरबुक प्रोफाइल, जन साधन अनुसंधान संस्थान, 2001।*

प्रयोग कर रहे हैं। हाँ, ऐसी भविष्यवाणियाँ अवश्य हैं कि अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि खाद्य एवं पर्यावरण संबंधी घोर विपत्तियों का कारण हो सकती है।

जनांकिकीय निवेश

ऐसा मान लेना अधिक संतुलित दृष्टिकोण होगा कि जन्म दर में गिरावट के द्वारा वृद्धि की गति को कम रखना **अ-जनांकिकीय निवेश** का एक बेहतर उद्देश्य प्रदान करेगा।

मृत्यु हर आयु में होती है, यद्यपि बाल्यावस्था या वृद्धावस्था में इसका प्रकोप अधिक होता है। यदि जन्म दर अधिक होगी तो बच्चों की संख्या अधिक होगी। शिशु मृत्यु दर में कमी होने पर, जो सदा हमारा उद्देश्य रहा है, अधिक-से-अधिक बच्चे जीवित रहेंगे। बच्चों की संख्या जितनी अधिक होगी, उतने ही अधिक स्कूलों और स्वास्थ्य-सुविधाओं की आवश्यकता होगी। इसे **जनांकिकीय निवेश** कहते हैं। जनांकिकीय निवेश जितना अधिक होगा, विकास-संबंधी निवेश उतना ही कम होगा। यदि अधिक बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य-संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने में अधिक व्यय करना पड़ा तो शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार संबंधी कार्यों पर व्यय स्वतः कम हो जाएगा।

निर्भरता का बोझ

निर्भरता के बोझ के संबंध में भी यही बातें सही हैं। बच्चे बचपन में शुद्ध और सीधे उपभोक्ता होते हैं, इसलिए समाज के लिए बोझ होते हैं। उपभोग का बोझ जितना अधिक होगा, बचत और पूँजी निर्माण की संभावना उतनी ही अधिक होगी। अतः पूँजी की गहराई कम हो पाएगी।

इस तर्क के अनुसार, बच्चों पर किया गया व्यय मानव पूँजी निर्माण पर निवेश नहीं माना गया है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम बल में भी वृद्धि होती है तथा अधिक श्रमबल को साधनों और उपकरणों के रूप में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार नई तकनीकों में निवेश के लिए कम पूँजी बच जाती है जिससे प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलती है।

कुछ लोग निम्नलिखित तर्क देते हैं :

(i) जनसंख्या की तेज वृद्धि के कारण पड़ने वाला दबाव हरित क्रांति के पीछे एक मुख्य प्रेरणा था।

(ii) अल्पवयस्क जनसंख्या परिवर्तन को स्वीकारती है, नए विचारों को अपनाती है, संसाधनों को अल्प उत्पादक क्षेत्रों से हटाकर अधिक उत्पादक क्षेत्रों में ले जाने की इच्छुक होता है।

(iii) जनसंख्या बढ़ने से निर्णयकर्त्ताओं की संख्या में वृद्धि होती है, बाजार का विस्तार होता है तथा कमियों (जो माँग बढ़ने से उत्पन्न होती हैं) के द्वारा विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विकसित देश अपनी जनसंख्या में वृद्धि की इच्छा क्यों कर रहे हैं, कुछ अन्य प्रवसन को क्यों प्रोत्साहित कर रहे हैं और कुछ विकासशील देश ऐसा क्यों मानते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि विकास को कम कर देगी। **एक अधिक संयत विचार यह होगा कि स्थिर जनसंख्या में थोड़ी वृद्धि आवश्यक है तथा तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को कम करने की आवश्यकता है।**

वृद्धि की तीव्र दर को रोकने के उपाय

विश्लेषण

हाल में भारत में हुए सर्वेक्षणों से पता चलता है कि निम्नलिखित तीन कारणों से प्रजनन दरें ऊँची रहती हैं :

(i) इसे ऊँची रखने में प्रजनन आयु-वर्ग की महिलाओं के अधिक अनुपात के कारण प्रजनन दरों में 60 प्रतिशत वृद्धि होती है।

(ii) गर्भनिरोधकों का आवश्यकता से कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण प्रजनन दरों में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

(iii) शिशु मृत्यु दर के ऊँचे होने के कारण अपनी इच्छा से प्रजनन दरें अधिक रखने के कारण प्रजनन दरों में 20 प्रतिशत की वृद्धि।

हम महिलाओं की संख्या तो कम नहीं कर सकते और न ही कम करना चाहिए परंतु हम उनके विवाह की आयु को बढ़ाकर उनकी प्रजनन अवधि को नियंत्रित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त दो अन्य उपाय भी हैं। पहला, विवाहित दम्पतियों को उचित कीमतों पर गर्भनिरोधक साधन उपलब्ध कराना तथा दूसरा, शिशु मृत्यु दर को और कम करना ताकि लोग अपने परिवार के आकार अपनी इच्छानुसार रख सकें। यदि शिशु मृत्यु दर कम हो जाए तो अगली पीढ़ी तक यह संख्या और भी कम हो सकती है।

प्रचलित मत यह भी है कि एक पुत्र की आशा में कुछ दम्पति कई पुत्रियों को जन्म दे देते हैं और कई बार बालिकाओं की हत्या शैशव में या भ्रूण में ही कर दी जाती है। अधिक बालिकाओं को जन्म देना अन्य विकल्पों से बेहतर है। पुत्र की कामना-मात्र ही हमारे समाज में 12 प्रतिशत अधिक जन्म दर के लिए उत्तरदायी है। इसके लिए लोगों को लैंगिक समानता के संबंध में शिक्षित किया जा रहा है।

प्रजनन क्षमता में कमी के कारण

वृद्धि की दर में कमी जन्म दर में कमी पर निर्भर है। जन्म दर आयु विशेष जन्म (प्रजनन) दरों तथा आयु-विशेष में महिलाओं की संख्या पर निर्भर करती है। हम महिलाओं की संख्या को तो कम नहीं कर सकते बल्कि जैसे-जैसे जीवन-प्रत्याशा में सुधार होता है, महिलाओं की संख्या बढ़ती जाती है। अतः आयु विशेष प्रजनन दर को ही धीरे-धीरे कम करने की आवश्यकता है। जन्म-दर के धीरे-धीरे कम होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि प्रजनन आयु वर्ग में विवाहित महिलाओं की संख्या बहुत अधिक है। आइए देखें, वस्तु-स्थिति क्या है? पाँच-पाँच वर्षों के आयु-वर्गों के लिए आयु-विशेष प्रजनन क्षमता के अनुसार प्रजनन आयु की जानकारी के लिए सारणी 8.7 देखें। आँकड़े सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम (SRS) पर आधारित हैं इसलिए केवल 1971 से हैं।

सबसे पहले हमें ध्यान देना चाहिए कि पिछले तीन दशकों में कुल प्रजनन दर 5.2 से घटकर 3.2 हो गई है अर्थात् इसमें 40 प्रतिशत की कमी आई है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बहुत कम और बहुत अधिक आयु वर्गों के प्रजनन दरों में भी काफी कमी आई है। अन्य वर्गों में प्रजनन दरें भी कम हुई हैं। आयु-विशेष प्रजनन में कमी बहुत अधिक तो नहीं फिर भी महत्त्वपूर्ण कमी हुई है। सबसे अधिक गर्भाधान 20-24, 25-29 तथा 30-34 आयु वर्गों में होता है। जन्म लेने वाले शिशु पहले या दूसरे शिशु हो सकते हैं। यद्यपि 30-34 के आयु वर्ग के प्रजनन दर में महत्त्वपूर्ण कमी हुई है यदि महिलाओं का विवाह अधिक आयु में किया

सारणी 8.7

प्रजनन अवधि (प्रति हजार) के अनुसार आयु वर्गों में आयु-विशेष प्रजनन क्षमता

आयु-वर्ग	*1971*	*1981*	*1991*	*1998*
15-19	100.8	90.4	76.1	54.0
20-24	250.8	246.9	234.0	220.3
25-29	254.8	232.1	191.3	182.8
30-34	202.2	167.7	117.0	104.2
35-39	137.8	102.5	66.8	54.3
40-44	62.2	44.0	30.6	25.0
45-49	24.2	19.6	12.1	9.0
टी.एफ.आर*	5.2	4.5	3.6	3.2

टी.एफ.आर – कुल प्रजनन दर।*

टिप्पणी : *1971 में बिहार और पश्चिम बंगाल शामिल नहीं हैं। 1991 और 1998 में जम्मू कश्मीर भी शामिल नहीं है।*

स्रोत : *रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया, 1999 तथा जन साधन अनुसंधान संस्थान 2001।*

जाए तो गर्भ निरोधकों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इससे अधिक संख्या में बच्चे पैदा होने की संभावना कम रहती है।

इसी प्रकार हम यह भी देखते हैं कि शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों व पुरुषों के विवाह की औसत आयु बढ़ रही है तथा कम आयु-वर्ग में विवाहितों के अनुपात में महत्त्वपूर्ण कमी आई है।

प्रजनन दरों को और कम करने के सामान्य निर्देशक सिद्धांत

महिलाएँ 15 वर्ष से लेकर 45/49 वर्ष की आयु की अवधि में प्रजनन करती हैं। विवाह लगभग 20 वर्ष की आयु तक टालने से ऐसे बच्चों के जन्म की संख्या में कुछ कमी आएगी जो बहुत स्वस्थ नहीं होते। 20 से 35 वर्ष के बीच सबसे प्रजनन-अवधि है, परंतु व्यक्तिगत एवं सामाजिक कारणों से विवाह का 20-29 वर्ष की आयु के बीच हो जाना आवश्यक है। अतः इस आयु-वर्ग के दम्पति यह समझ सकें कि उन्हें कम बच्चे पैदा करने चाहिए तथा गर्भ-निरोध के लिए कृत्रिम साधन आदि उपलब्ध हैं। जैसे-जैसे पति-पत्नी, विशेषकर पत्नियाँ, अधिक शिक्षित होती हैं तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य नौकरियाँ करती हैं और शिशु-मृत्यु दरों में होने वाली कमियों की जानकारी रखने लगती हैं तो ऐसी संभावना होती है कि वे कम बच्चे पैदा करें।

जो पति-पत्नी आर्थिक आधार पर अधिक बच्चे पैदा करने के इच्छुक हों तो उन्हें शिक्षित करने के लिए कार्यक्रम होने चाहिए कि यह उनके हित में नहीं है। साथ ही उन्हें यह भी बताना चाहिए कि इससे उनके जीवन-स्तर में सुधार आने की भी संभावना है– उनके बेहतर जीवन की आशा की एक किरण।

सरकार द्वारा बनाई गई कई योजनाओं ने जन्म दर तथा कुल प्रजनन दर में कमी के साथ

जीवन स्तर में सामान्य सुधार और मृत्यु दर में विशेषकर शिशु मृत्यु दर में कमी लाने में योगदान दिया है।

विशिष्ट उपाय

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार को ऐसा सुझाव दिया गया कि एक जनसंख्या-नीति बनाई जानी चाहिए तथा एक जनसंख्या-आयोग (कमीशन) की स्थापना होनी चाहिए। अभी हमने आधा रास्ता ही तय किया है। परिवार-नियोजन कार्यक्रम बने जो आगे चलकर परिवार-कल्याण कार्यक्रम में परिवर्तित हो गए। हमारे देश में जनसंख्या के लिए एक राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) भी है।

जनसंख्या वृद्धि की धीमी गति के बावजूद यह महत्त्वपूर्ण है कि हमने एक सर्वांगीण नीति अपनाई है न कि केवल जनसंख्या नियंत्रण। माता और शिशु का स्वास्थ्य सदा हमारे कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है, यद्यपि इससे जनसंख्या बढ़ने का खतरा रहता है। हमने एक समन्वित पद्धति अपनाई है तथा हमारा विश्वास अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने पर अधिक रहा है। अतः परिवार कल्याण के मुख्य उद्देश्य अभी भी निम्नलिखित रहे हैं :

(i) पति-पत्नियों द्वारा परिवार नियोजन की विधियों को अपनाया जाना (गर्भ निरोधक तरीकों द्वारा)।

(ii) मीडिया, स्वास्थ्य कर्मचारी/परिवार कल्याण कर्मचारी आदि द्वारा गर्भनिरोध की जानकारी देना।

(iii) प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा स्वास्थ्य उप-केंद्रों व डिस्पेंसरियों के द्वारा गर्भनिरोधकों की आपूर्ति करना।

(iv) वैसेक्टोमी और ट्यूबेक्टोमी जैसी अंतिम विधियों को प्रचलित करना, तथा

(v) शिशु मृत्यु-दर में कमी और माताओं के स्वास्थ्य में सुधार लाना।

श्रीमती इंदिरा गाँधी ने एक बार कहा था कि विकास सर्वोत्तम गर्भनिरोधक है। हम देखते हैं कि विकास के साथ जन्म-दर, मृत्यु-दर तथा वृद्धि-दर में महत्त्वपूर्ण कमी दृष्टिगोचर है। सरकार मृत्यु दर को विशेषकर शिशु मृत्यु-दर को कम करने का काफी प्रयास कर रही है। लोगों ने भी परिवार नियोजन की विधियों को स्वयं अपनाना आरंभ कर दिया है।

निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी की जनगणना के उपलब्ध आँकड़ों से हमने जनसंख्या की वृद्धि की प्रवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया तथा जनसंख्या की सतत बढ़ती हुई निरपेक्ष संख्या का अध्ययन किया। इस अध्ययन से हमें पता चलता है कि वृद्धि-दर ने अधिकतम सीमा का अतिक्रमण सत्तर के दशक में ही कर लिया था। हमने वृद्धि की प्रवृत्ति का विश्लेषण किया और इस आधार पर दो विभाजकों और चार अवस्थाओं का वर्णन किया।

वृद्धि दरों को जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के रूप में बाँटते हुए हमने पिछली सदी में जन्म तथा मृत्यु-दर के स्वरूप का अध्ययन किया। जनांकिकीय परिवर्तन के सिद्धांत के अनुसार, हमने देखा कि हम एक ऐसी अवस्था में उलझे हुए हैं जहाँ मृत्यु-दर स्थिर हो चुकी है परंतु जन्म-दर में कमी अभी हो ही रही है।

पिछली शताब्दी में आयु तथा लिंग संरचना के बारे में जानकारी भी हमें प्राप्त करनी थी। 1991 की तुलना में 2001 में जहाँ लिंग-अनुपात

में सुधार हुआ है वहीं बच्चों (0-6) के लिंग अनुपात में बहुत गिरावट आई है। जैसा अपेक्षित था, जनसंख्या में बच्चों का अनुपात पहले बढ़ा क्योंकि जन्म-दर ऊँची थी परंतु बाद में जन्म-दर में कमी आने के कारण यह भी कम हो गया। अतः वृद्धों का अनुपात बढ़ रहा है, जो कि कुछ समस्याओं को जन्म दे सकता है।

उसके बाद जनसंख्या के बड़े आकार और इसकी वृद्धि के प्रभावों पर विचार किया। बढ़ती हुई जनसंख्या को समस्या स्वीकारने वाले वैकल्पिक मतों को जानने के बाद हमने जनसंख्या की वृद्धि-दर को नियंत्रित करने के विषय पर सोचा। हमने जनांकिकीय निवेश तथा बढ़ती हुई जनसंख्या की निर्भरता-बोझ के प्रभावों पर भी चर्चा की। हमने यह भी माना कि युवा-वर्ग की संख्या का अधिक होना अच्छा है।

अंत में हमने जनसंख्या की वृद्धि को कम करने पर विचार किया। मृत्यु-दर में अभी और अधिक कमी की संभावना है, इसलिए जन्म-दर को कम करने के उपायों का महत्त्व अधिक हो जाता है। आयु-विशेष की प्रजनन क्षमता के अध्ययन के द्वारा हमने देखा कि प्रजनन दरों में संतोषजनक कमी आई है। विवाह की आयु को कुछ बढ़ाकर प्रजनन दरों को कुछ कम किया जा सकता है। गर्भनिरोधकों की अपूर्ण माँग को पूरा करने में अभी वक्त लगेगा। कुछ दम्पतियों को छोटे परिवार के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित करने की दिशा में शिशु मृत्यु-दर में कमी का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। समन्वित स्वास्थ्य सेवाओं ने संतोषजनक योग दिया है तथा आगे भी लोगों के विश्वास को बढ़ाने में सहयोग देंगी। इस कार्यक्रम में समुदाय को, जितना संभव हो सके उतनी दूर तक, शामिल किया जाना चाहिए। इस क्रम में हम श्रीमती गाँधी द्वारा विकास को सर्वोत्तम औषधि माने जाने के विचार से भी परिचित हुए।

अभ्यास

1. किसी देश की जनसंख्या अधिक है, इसका निर्णय करने का आधार क्या होना चाहिए?
2. पूर्ण अंकों का प्रयोग करते हुए गत सौ वर्षों में भारत की जनसंख्या की वृद्धि की चर्चा कीजिए?
3. भारत में जनसंख्या का क्या परिदृश्य दिखाई देता है?
4. कुछ वर्षों को महान विभाजक तथा कुछ को लघु विभाजक क्यों कहा जाता हैं?
5. भारत में जनसंख्या की वृद्धि के स्तर तथा प्रवृत्ति के आधार पर भारतीय जनसंख्या के चार जनसांख्यिकीय चरणों की विशेषताओं की चर्चा कीजिए?
6. जनांकिकीय संक्रमण के पीछे क्या विचार है, संक्षेप में व्याख्या कीजिए?
7. शताब्दी के अंतर्गत जन्म-दर तथा मृत्यु-दर की तथा जनसंख्या वृद्धि-दर पर इनके प्रभाव की चर्चा कीजिए?
8. क्या आप भारत में जन्म-दर की कमी को प्रशंसनीय मानते हैं?

9. जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि का मौलिक कारण क्या रहा है– उच्च जन्म-दर या निम्न मृत्यु-दर या दोनों ही?
10. लिंग-अनुपात की प्रवृत्ति तथा इसके सामाजिक परिणामों की चर्चा कीजिए?
11. शताब्दी के अंतर्गत जनसंख्या में आयु-संरचना के परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
12. वाद-विवाद कीजिए– (i) जनसंख्या एकमात्र समस्या है (ii) जनसंख्या कोई समस्या नहीं है।
13. अर्थव्यवस्था के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या का परिणाम जनांकिकीय निवेश है या निर्भरता भार? व्याख्या कीजिए। इसके विपरीत विचारों को भी अभिव्यक्त कीजिए।
14. उच्च प्रजनन-दर को बढ़ाने वाले मुख्य कारक क्या हैं?
15. उच्च जन्म-दर को रोकने के सामान्य सिद्धांत क्या हैं?
16. जनसंख्या की वृद्धि-दर को रोकने के प्रयुक्त मुख्य उपाय क्या हैं?
17. अंतर कीजिए– जन्म नियंत्रण तथा जनसंख्या नियंत्रण, परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण।
18. शिशु मृत्यु-दर में कमी से जनसंख्या में तत्काल वृद्धि होगी परंतु दीर्घकाल में इससे वृद्धि को कम किया जा सकता है, इसलिए इसे उच्च प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। इस विचार पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है।

गतिविधियाँ

अपने इलाके में उन बातों (तर्कों) को नोट (Note) करें जो बड़े परिवार के पक्ष में हैं तथा छोटे परिवार के पक्ष में हैं। इन व्यक्तव्यों का विश्लेषण उन लोगों की सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा के आधार पर करें।

अध्याय 9

भारत में गरीबी

परिचय

गरीबी संभवतः हमारे समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। किसी भी समाज में गरीबी का असमानता के साथ घनिष्ठ संबंध है। एक समय ऐसा भी था जब सभी लोग गरीब थे, कच्चे अनाज और माँस खाकर जीवन बिताते थे। लोग अपने लिए काम करते थे। ऐसे समाजों में निजी संपत्ति की अवधारणा नहीं रही होगी और न ही वहाँ के लोगों ने विक्रय या विनिमय के लिए वस्तुओं के उत्पादन किए होंगे। हजारों वर्षों से समाज में निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी व्याप्त रही है। समाज में सदा से कुछ लोग ऐसे भी रहे हैं जो गरीबी को दूर करना और असमानता को कम करना चाहते थे। यहाँ पर हम गरीबी और असमानता की वर्तमान स्थिति तथा उन्हें दूर करने के उपायों की चर्चा करेंगे।

हम यहाँ भारत में गरीबी के मापकों और इसके आकलन पर भी विचार करेंगे। अध्याय के अंत में हम भारत सरकार द्वारा गरीबी दूर करने के लिए चलाए गए कुछ विशेष कार्यक्रमों का भी उल्लेख करेंगे।

निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी

कुछ समाज निर्धन होते हैं और कुछ धनी। इन दोनों समाजों के बीच स्वाभाविक असमानता होती है। एक ही समाज में भी कुछ लोग गरीब होते हैं और कुछ अमीर। व्यक्तियों की गरीबी या अमीरी सापेक्ष होती है और उसी प्रकार समाजों या राष्ट्रों की। जब हम यह कहते हैं कि कुछ लोग गरीब हैं और कुछ अमीर (या कम-से-कम गरीब तो नहीं) तो हम लोगों को किसी मानदण्ड के मापक (मान लें कि आय) के अनुसार दो वर्गों में बाँट देते हैं। यह विभाजक बिंदु गरीबी-रेखा के रूप में जानी जाती है।

जब हम अपेक्षाकृत गरीब या अमीर की बात करते हैं तो हम जोड़े बनाकर तुलना करते हैं। तुलना के लिए अपनाए गए मानदण्ड के स्केल (अर्थात् आय) के अनुसार व्यक्ति 'क' 'ख' की अपेक्षा गरीब या अमीर या उसके समान गरीब या धनी हो सकता है। इसे सापेक्ष गरीबी या असमानता कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि मानदण्ड के मापक पर एक बिंदु या स्तर तय किया जाए। यह दो व्यक्तियों के बीच तुलना है। यदि कुल व्यक्तियों की संख्या n है तो $\frac{n(n-1)}{2}$ जोड़े बन सकते हैं, यदि हम स्वयं अपनी तुलना अपने आप से न करें तो, अन्यथा $\frac{n^2}{2}$ जोड़े बन सकते हैं। किसी दिए गए जोड़े के लोगों की आय के बीच निरपेक्ष अंतर के रूप में प्रत्येक जोड़े की असमानता पर विचार किया जा सकता है। पूरे समाज के लिए असमानता

के स्तर को मापने के लिए इन तुलनाओं को संक्षिप्त करने की आवश्यकता है। **गिनी गुणांक** (Gini Coefficient) ऐसा ही एक मापक है जो शोधकर्त्ताओं के बीच बहुत प्रचलित है।

सभी जोड़ों पर विचार न कर, हम किसी भी स्थिति की तुलना वितरण के किसी प्राचल (मान लें, औसत) से कर सकते हैं। इस प्रकार कुल तुलनाओं की संख्या n है। असमानता के स्तर की माप करने के लिए इन तुलनाओं को (जो माध्य आय से किसी की भी आय का अंतर है) एक संख्या के रूप में संक्षिप्त किया जाना चाहिए। असमानता का एक ऐसा ही मापक है मानक विचलन या माध्य से इसका भागफल।

वितरण के कुछ मूल्यों का चुनाव करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए, परास एक ऐसा ही मापक है। परास की परिभाषा अधिकतम और न्यूनतम मूल्य के रूप में दी जाती है। कुछ लोग परास को माध्य से भाग देना पसंद करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि असमानता का संबंध आपस में जोड़े बनाकर की गई तुलना से है। दूसरी ओर, निर्धनता का संबंध किसी स्थायी रेखा से की गई तुलना से है जिसे गरीबी रेखा कहते हैं। आप देख सकते हैं कि जैसे-जैसे वितरण में परिवर्तन होता है, वितरण का प्राचल परिवर्तित होता रहता है। परंतु गरीबी रेखा बाहर से निर्धारित की जाती है, अतः स्थायी होती है।

गरीबी रेखा

गरीबी को सामान्यतः गरीबी रेखा के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है। परंतु गरीबी रेखा है क्या और कैसे निर्धारित होती है? **गरीबी रेखा वितरण-रेखा का विभाजक बिंदु है जो जनसंख्या को दो भागों में विभाजित करता है, ऐसे लोग जो गरीब हैं तथा ऐसे जो गरीब नहीं हैं।** सरलता के लिए, हम आय के वितरण पर विचार करें। गरीबी रेखा से नीचे के लोग गरीब हैं। तथा गरीबी रेखा से ऊपर के लोग गरीब नहीं हैं। मान लें कि हम प्रतिमाह और प्रतिवर्ष आय के वितरण पर विचार कर रहे हैं। मान लें कि दस व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी आय है 10, 17, 23, 30, 40, 50, 60, 70, 80, 90, इकाइयाँ (रुपये, सौ रुपये, हजार रुपये)। मान लें कि गरीबी-रेखा 50 इकाई है। स्पष्ट है कि पाँच लोग गरीबी-रेखा से नीचे होंगे। दूसरे शब्दों में 50 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। हम देखेंगे कि गरीबी की इस माप को, गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का प्रतिशत, व्यक्ति-गणना-अनुपात (head count ratio) कहते हैं। परंतु हम यह संख्या कैसे निर्धारित करते हैं जिसे गरीबी रेखा कहते हैं? इससे पहले कि हम इस प्रश्न का उत्तर दें, गरीबी रेखा का स्तर बहुत ऊँचा या बहुत नीचा रखने के परिणामों पर विचार कर लें।

ऊँची/नीची गरीबी रेखा

प्रायः लोग यह कहते हैं कि गरीबी बहुत कम है और यह भी कि विशेष गरीबी रेखा हमें यह बताती है कि भारत में 90 प्रतिशत लोग वास्तविक रूप से गरीब हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं जो यह कहते हैं कि ये रेखाएँ कुछ विशेष लोगों द्वारा किसी विशेष स्तर पर निर्धारित की जाती हैं जो यह दिखाना चाहते हैं कि लोगों का अधिक अनुपात गरीब है ताकि वे गरीबी निवारण कार्यक्रम बनाते जाएँ और उन्हें कार्यान्वित करते जाएँ और अपने आप को व्यस्त रखें। पहले हम इन बातों का आशय समझ लें।

मान लें कि गरीबी रेखा 100 इकाई है, तो प्रत्येक व्यक्ति गरीब है तथा प्रत्येक व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता है। सहायता के लिए संसाधन (रुपये) कहाँ से मिलते हैं? इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी और देखना होगा कि यदि लोग स्वयं गरीबी रेखा से ऊपर आ सकते हैं तो आएँ। स्थिति ऐसी ही होगी यदि गरीबी रेखा के दूसरी ओर बहुत कम लोग होंगे। दूसरी ओर, यदि गरीबी रेखा सिर्फ 5 इकाई है तो हर आदमी गरीबी रेखा से ऊपर होगा तथा गरीबी की कोई समस्या होगी ही नहीं क्योंकि हमने जान-बूझकर गरीबी रेखा के स्तर को बहुत नीचे रखा है।

अतः गरीबी रेखा न तो बहुत ऊँची होनी चाहिए और न ही बहुत नीची। नीति/योजनाओं के कार्यान्वयन की दृष्टि से उचित प्रबंधक राष्ट्र की क्षमता के साथ भी इसका थोड़ा संबंध होना चाहिए जिसे हम प्रतिव्यक्ति आय के रूप में ले सकते हैं।

उपभोग या आय के रूप में गरीबी रेखा

लोग गरीबी की परिभाषा संपत्ति के माध्यम से देते हैं। कई लोगों के अनुसार आय गरीबी का सबसे व्यापक मानदण्ड है। आय को एक बेहतर माप समझा जा सकता है क्योंकि इसे संभावित उपभोग मानते हैं क्योंकि आय से बचत के द्वारा लंबी अवधि में चुनाव के अवसर मिलते हैं। परंतु आय का उतार-चढ़ाव उपभोग की तुलना में अधिक होता है। यदि आय में उतार-चढ़ाव होता है तो उपभोग में अपेक्षाकृत स्थिरता होती है क्योंकि यह बचत के संचय या विसंचय के द्वारा संचालित होती है। आय तथा उपभोग के अंतर को बचत कह सकते हैं। बचत धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। ऋणात्मक बचत को निर्बचत (dis-saving) भी कहते हैं।

उन देशों में जहाँ आय के वितरण के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, उपभोग के वितरण के आँकड़ों को आय के वितरण के स्थान पर ले लिया जाता है। भारत एक ऐसा ही देश है। इसका तात्पर्य है कि गरीबी रेखा पर लोग न तो बचतकर्त्ता माने जाते हैं और न ही निर्बचतकर्त्ता, न ऋणदाता और न ही ऋणी। भारत में हमें एक अन्य कारण से भी उपभोग पर विचार करना चाहिए। इसका कारण है कि हमारे पास राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Organisation) के प्रतिदर्श सर्वेक्षणों द्वारा एकत्र किए गए आँकड़ों की लंबी श्रेणी है।

डॉलर गरीबी रेखा

अंतरराष्ट्रीय संगठन प्रायः संसार भर के लिए कोई भी आकलन करने के लिए \$ 1 या \$ 2 गरीबी रेखा की बात करते हैं। \$ 2 से कम आय वाले लोग गरीब तथा \$ 1 से कम आय वाले लोग बहुत गरीब माने जाते हैं।

विनिमय-दर से परिवर्तित करके यदि डालर के रूप में किसी धनी देश की प्रति व्यक्ति आय 30,000 डालर प्रतिवर्ष है, तब उनके लिए गरीबी रेखा को \$ 350 या \$ 700 मानने में कोई समस्या नहीं होगी।

हम अर्ध-विकसित देशों में प्रायः इसके निहितार्थों को समझे बिना ऐसी गरीबी रेखा की बात करते हैं। यदि हममें से प्रत्येक का \$ 1 प्रति दिन की गरीबी रेखा के स्तर पर रहना पड़ा तो वर्तमान विनिमय दर पर कुल आवश्यक राष्ट्रीय आय 19,00,000 करोड़ रु. होगी जो लगभग कुल राष्ट्रीय आय के बराबर होगी। \$ 2 प्रति दिन गरीबी रेखा के बारे में सोचें, तो आय के पुनर्वितरण के बाद भी हम सभी गरीब ही रहेंगे।

गरीबी रेखा का निर्धारण

गरीबी रेखा तब कैसे निर्धारित होती है? इसके निर्धारण की कई विधियाँ हैं। खाद्य-सामग्रियों का उपभोग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि खाद्य-सामग्रियाँ जीवन के लिए अनिवार्य हैं। भोजन में अनिवार्य वस्तुओं की निम्नतम मात्राएँ निर्धारित कर लें। इस भोजन की लागत का परिकलन करें। खाद्य-सामग्रियों के इस लागत में अन्य (गैर-खाद्य-सामग्रियों) मदों, जैसे वस्त्र, आवास, बिजली आदि के उपभोग हेतु 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी करें क्योंकि हम जानते हैं कि किसी भी सभ्य समाज में लोग सिर्फ भोजन पर ही आश्रित नहीं होते हैं। चिकित्सा के लिए भी कुछ प्रतिशत जोड़ने की आवश्यकता हो सकती है, यदि यह निःशुल्क प्रदान न की जाती हो। यह गरीबी की उपभोग-व्यय रेखा है, जिनमें खाद्य तथा गैर-खाद्य-सामग्रियाँ दोनों ही शामिल हैं।

कुछ लोग ऐसी सलाह देते हैं कि ऐसे परिकलन घेरलू स्तर पर किए जाने चाहिए क्योंकि भोजन परिवार के सभी सदस्यों के लिए बनाया जाता है, यद्यपि इसे सभी लोग अलग-अलग खाते हैं। इसी प्रकार कई अन्य वस्तुओं के उपभोग में भी उनके हिस्से होते हैं। परिवार की गरीबी रेखा को परिवार के आकार से भाग देकर, प्रतिव्यक्ति गरीबी रेखा मिलती है। इसके साथ इसमें बच्चों की शिक्षा पर हुए व्यय को भी जोड़ना पड़ सकता है। कुछ लोग अपव्यय के लिए भी कुछ छूट देना चाहते हैं। अतः इन सभी बातों को जानने के लिए लोगों को शिक्षित करने की आवश्यकता है।

भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण की वर्तमान प्रक्रिया

कुछ लोग सरकार द्वारा गरीबी रेखा निर्धारित करने की प्रक्रिया को काफी उलझा हुआ मानते हैं। इसे समझने के लिए धैर्य की आवश्यकता है। हम यहाँ पर वास्तविक विधि का एक अत्यंत सरल स्पष्टीकरण करेंगे। यह पहले ही बताया जा चुका है कि हम आय के स्थान पर निजी उपभोग व्यय का प्रयोग करेंगे, आंशिक रूप से इसलिए कि आय के वितरण के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

दादाभाई नौरोजी तथा गरीबी रेखा

भारत के वयोवृद्ध पुरुष दादाभाई नौरोजी गरीबी रेखा की आवधारणा का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने उपयुक्त प्रचलित कीमतों के प्रयोग द्वारा एक कैदी के भोजन की कीमत निकाली और उसे 'जेल-निर्वाह व्यय' का नाम दिया।

हालाँकि जेल में केवल वयस्क रहते हैं जबकि समाज में बच्चे भी रहते हैं। उन्होंने निर्वाह व्यय को उपयुक्त ढंग से समायोजित करके गरीबी रेखा निर्धारित की। इस समायोजन के लिए, उन्होंने ऐसा माना कि एक-तिहाई जनसंख्या बच्चों की थी जिसमें से आधे ऐसे थे जिनके उपभोग की मात्रा बहुत कम थी और बाकी आधे वयस्कों के उपभोग की आधी मात्रा का उपभोग करते हैं।

अतः इन तीनों खण्डों के उपभोग के भारित औसत हमें औसत गरीबी रेखा बताते हैं, जो जेल निर्वाह-व्यय का 3/4वाँ भाग होता है। आप नीचे देख सकते हैं कि (3/4) का गुणनखंड कैसे प्राप्त होता है--

$$\left(\frac{1}{6}\right) \text{(शून्य)} + \left(\frac{1}{6}\right) \text{(आधा)} + \left(\frac{2}{3}\right) \text{(कुल)} = \left(\frac{3}{4}\right) \text{(कुल)}$$

प्रक्रिया

सबसे पहले, हम गरीबी को निजी उपभोग व्यय तक सीमित रखते हैं, जो न भोजन पर किया गया उपभोग व्यय है और न ही पूरी तरह आय। इसमें हम सार्वजनिक उपभोग व्यय को भी शामिल नहीं करते। हम यह व्यय खाद्य और अखाद्य-सामग्रियों को खरीदने के लिए करते हैं। कोई भी ऐसा नहीं करता कि खाने की आवश्यकता पूरी होने के बाद ही कपड़े खरीदे या बिजली जलाए। लोग खाद्य व अखाद्य-सामग्रियों को एक ही साथ खरीदते हैं। उदाहरण के लिए बीड़ी का सेवन करने वाले लोग ऐसा तो नहीं करते कि अपेक्षित कैलोरी युक्त भोजन करने के बाद ही बीड़ी खरीदें। अतः हम लोगों को सामान्य लोगों की भाँति अपने व्यय करने के तरीके चुनने की अनुमति देते हैं।

दूसरे, प्रति व्यक्ति पारिवारिक उपभोग के अनुसार वर्गीकृत किए गए लोगों के प्रत्येक समूह के द्वारा उपभोग की गई खाद्य व गैर-खाद्य-सामग्रियों की मात्राओं को सारणियों के रूप में लिखते हैं।

तीसरे, किसी विशेष खाद्य-सामग्री में पाई जाने वाली एक इकाई कैलोरी की मात्रा का प्रयोग करते हुए हम प्रतिव्यक्ति उपभोग की गई कुल कैलोरी की गणना कर सकते हैं।

चौथे, निम्नतम व्यय वर्ग से आरंभ करते हुए हम ऊपर चलते हैं तथा उस उपभोग व्यय वर्ग की जानकारी लेते हैं जिस वर्ग में कैलोरी की आवश्यकताएँ पूरी होती हों। चूँकि उपभोग-वर्गों के सामने दिए गए परिमाण औसत परिमाण हैं, हम इन कैलोरियों को उन उपभोग वर्गों के मध्य मानों के साथ जोड़ सकते हैं।

कैलोरी प्रतिमान (Calorie Norms)

कैलोरी की आवश्यकताएँ कैसे निश्चित की जाती हैं? कुछ बच्चे हैं, कुछ वयस्क और कुछ वृद्ध। कुछ पुरुष हैं और कुछ महिलाएँ। कुछ बैठ कर काम करने वाले हैं और कुछ कठिन परिश्रम करने वाले, यदि हम उनके निवास-क्षेत्रों की जलवायु के अंतर की उपेक्षा भी कर दें तो।

आहार-विशेषज्ञों ने लोगों के द्वारा जीवन में स्वस्थ रहने तथा अपने सामान्य उत्पादक क्रियाकलापों को संचालित करने के लिए विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए कैलोरी की विभिन्न मात्राओं के उपभोग का सुझाव दिया है। वर्गों को सामान्यतः आयु, लिंग और क्रियाओं के अनुसार परिभाषित करते हैं। हमारे आहार विशेषज्ञों ने जनसंख्या को आयु, लिंग तथा कार्यों के अनुसार सोलह वर्गों में बाँटा है तथा एक वर्ष से नीचे के बच्चों के लिए न्यूनतम कैलोरी 300 तथा भारी कार्यों में लगे वयस्कों के लिए न्यूनतम कैलोरी 3600 निर्धारित की है।

जनसंख्या संघटन

वर्ष 1970 में जब गरीबी के अनुमान लगाने का प्रथम प्रयास किया गया तब जनसंख्या के आंकड़े जो 1971 की जनगणना द्वारा उपलब्ध कराए गए थे उन्हें प्रयोग किया गया। उदाहरण के लिए, जहाँ शहरी क्षेत्रों में महिला गैर-श्रमिक कुल शहरी जनसंख्या का 23 प्रतिशत हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिक कुल ग्रामीण जनसंख्या का 22 प्रतिशत हैं। ऐसा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अलग-अलग सोलह वर्गों के लिए निकाला गया है।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के औसत कैलोरी प्रतिमान

किसी वर्ग विशेष की जनसंख्या के अनुपात को उस वर्ग की कैलोरी आवश्यकता से गुणा कर तथा इन कैलोरियों को प्रदान करने वाले सभी

उत्पादों को जोड़कर हम जनसंख्या की औसत कैलोरी आवश्यकता जान सकते हैं। ऐसा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अलग-अलग किया गया। भारी उद्योगों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक लोग कार्यरत पाए गए। परिणामस्वरूप ग्रामीण और शहरी लोगों के लिए औसत कैलोरी आवश्यकता क्रमशः 2435 तथा 2095 कैलोरी निर्धारित की गई जिनका सन्निकटन 2400 तथा 2100 कैलोरी किया गया जैसा हर जगह उल्लेख किया जाता है। यदि जनसंख्या संघटन में परिवर्तन होता है तो ये औसत कैलोरी आवश्यकताएँ भी बदल जाएँगी। परंतु ये परिवर्तन नाममात्र के होंगे। परंतु **भारत में गरीबी रेखा, निजी उपभोग व्यय का वह स्तर है जो अपेक्षित मात्रा में कैलोरी युक्त भोजन द्वारा निर्धारित होता है।** इसका अर्थ केवल निर्धारित कैलोरी प्रदान करने वाली खाद्य-सामग्री की कीमत ही नहीं है। लोगों के सामान्य क्रय को स्वीकर किया जाता है तथा अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त आवश्यक परिमाणों में कैलोरी युक्त खाद्य-सामग्रियों पर व्यय को ही गरीबी रेखा के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार परिकलन की गई कैलोरी की मात्रा न्यूनतम मात्रा है। साथ ही लोग अन्य वस्तुओं का लाभ भी उतने परिमाण में उठा सकते हैं जितना वे इन स्थितियों में उठा सकें।

राजकीय कार्यवाई के समय 1973-74 के लिए राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एन.एस.एस.) उपलब्ध था। उपभोग-सर्वेक्षण आँकड़ों को प्रतिव्यक्ति परिवारिक उपभोग व्यय के द्वारा सारणीबद्ध किया जाता है। प्रतिव्यक्ति पारिवारिक उपभोग व्यय के वर्ग-अंतराल के सामने उपभोग की मदों के परिमाण लिखे जाते हैं। अतः उस अंतराल के लिए, हम कैलोरी के परिमाण का परिकलन कर सकते हैं यदि हम यह जानते हों किसी विशेष खाद्य-पदार्थ की एक इकाई का उपभोग मनुष्य को कितनी कैलोरियाँ प्रदान करता है। कैलोरियों के आवश्यक परिमाण किसी एक वर्ग-अंतराल के बराबर होंगे या दो वर्ग-अंतरालों के बीच में होंगे। प्रतिलोम अंतर्वेशन (inverse interpolation) के द्वारा हम आसानी से उपभोग व्यय की मात्रा जान सकते हैं जो कैलोरी आवश्यकताओं को पूरा करता हो। यह गरीबी रेखा है। 1973-74 की प्रतिमाह कीमतों पर ग्रामीण गरीबी रेखा 49.9 रु. तथा शहरी गरीबी रेखा 56.64 रु. थी।

भारत में गरीबी का आकलन

हम जानते हैं कि हमारे आँकड़े प्रतिदर्श आँकड़े हैं। प्रतिदर्श प्रतिशत को समष्टि प्रतिशत मानते हैं। इन प्रतिशतों को उपयुक्त जनसंख्या आकारों से गुणा कर हम प्रत्येक राज्य के शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकाल सकते हैं। इन संख्याओं द्वारा कई प्रकार के समुच्चय बनाए जा सकते हैं। किसी विशष राज्य में गरीबों की कुल संख्या जानने के लिए उस राज्य के शहरों तथा गाँवों में रहने वाले गरीबों की कुल संख्या का योग निकालें। मान लें कि कई राज्यों के एक विशेष समूह में, जैसे दक्षिणी राज्यों मे गरीबी की कुल संख्या निकालनी है। इसके लिए समूह के सभी राज्यों के गाँवों तथा शहरों में रहने वाले गरीबों की संख्या का योग कर लें। देश में ग्रामीण (या शहरी) गरीबों की संख्या जानने के लिए, सभी राज्यों के ग्रामीण (या शहरी) गरीब लोगों की संख्या का योग निकालें। देश में गरीबों की कुल संख्या जानने के लिए, देश के गाँवों में रहने वाले गरीबों की संख्या को जोड़ें। इन योगों को उपयुक्त जनसंख्या समुच्चयों से भाग दें, जिससे

हमें गरीबी रेखा से नीचे वाले लोगों का प्रतिशत मिलेगा। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के प्रतिशत को जनगणना अनुपात (head count ratio) या गरीबी आपतन अनुपात (poverty incidence ratio) भी कहते हैं।

भारत में गरीबी के आँकड़े

भारत में गरीबी का आकलन जनगणना अनुपात (head count ratio) के रूप में किया जाता है। कई विद्वानों ने आकलन का कार्य किया है। भारत सरकार तथा विश्व बैंक ने भारत की गरीबी का आकलन किया है। इनमें से कई श्रेणियाँ पचास के दशक के मध्य से आरंभ होती हैं। हम यहाँ गरीबी का जो आकलन दे रहे हैं वह प्रचलित विधि तथा 1973-74 से उपभोग व्यय के तुलना योग्य प्रतिदर्श सर्वेक्षणों से प्रतिदर्श विधि द्वारा निकाले गए हैं। योजना आयोग ने तीन आकलन तैयार किए हैं। देखें सारणी 9.1।

रिपोर्ट किए गए किंहीं दो वर्षों की तुलना करने पर आप देखेंगे कि गरीबी में कमी आई है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक या दो वर्षों के दौरान यह कमी नहीं हुई हो। छोटे प्रतिदर्शों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे निकाला है। परंतु लंबी अवधि के लिए ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं कि समय के साथ गरीबी में गिरावट आ रही है। 1956-57 के बीच तथा 1973-74 के बीच की अवधियों को छोड़कर, जब गरीबी अनुपात में उतार-चढ़ाव ही होते रहे थे, आप आगे देख सकते हैं कि 1993-94 से छः वर्षों तक ग्रामीण और शहरी दोनों प्रकार की गरीबी में 10 अंकों की कमी आई है। सारणी 9.1 से, कुछ अन्य सामान्य अनुमान भी निकाले जा सकते हैं:

(i) सत्तर के दशक के मध्य में गरीबी 50 प्रतिशत से अधिक थी, शताब्दी के अंत में यह घटकर लगभग 25 प्रतिशत हो गई।

(ii) ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से थोड़ी अधिक रही है।

(iii) 1977-78 तथा 1983 के बीच गरीबी में पहली महत्त्वपूर्ण कमी हुई, तथा

(iv) 1993-94 तथा 1999-2000 के बीच गरीबी में आश्चर्यजनक रूप से कमी आई।

हालाँकि जब हम गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकालने की कोशिश करते हैं तो स्थिति संतोष-जनक नहीं प्रतीत होती। गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकालने के लिए हम इन प्रतिशत आँकड़ों को संबद्ध जनसंख्या के निरपेक्ष आँकड़ों से गुणा करते हैं (और उन्हें 100 से भाग देते हैं) । सारणी 9.2 में इन आँकड़ों को निकाला गया है।

आप देख सकते हैं कि देश भर के लिए केवल वर्ष 1999-2000 को छोड़कर कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। देश में गरीबों की कुल संख्या 32 करोड़ थी, उसके बाद यह बढ़ी तथा घटकर 31 से 33 करोड़ के बीच हो गई। गाँवों में

सारणी 9.1

गरीबी का जनगणना अनुपात-ग्रामीण, शहरी तथा भारत

(प्रतिशत में)

वर्ष	*ग्रामीण*	*शहरी*	*भारत*
1973-74	56.4	49.0	54.9
1974-78	53.1	45.2	51.3
1983	45.7	40.8	44.5
1987-88	39.1	39.2	38.9
1993-94	37.3	32.4	36.0
1999-00	27.1	27.6	26.1

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

सारणी 9.2
गरीबी का जनगणना आकलन : ग्रामीण, शहरी तथा भारत (करोड़ में)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	भारत
1973-74	26.1	6.0	32.1
1977-78	26.4	6.5	32.9
1983	25.2	7.1	32.3
1987-88	23.2	7.5	30.7
1993-94	24.4	7.6	32.0
1999-00	19.3	6.7	26.0

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

भी ऐसा ही हुआ, कोई विशेष कमी नहीं हुई। शहरी क्षेत्रों में वृद्धि नियमित रही, केवल वृद्धि के आकार में उतार-चढ़ाव होता रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में जो कमी आई उसे शहरी क्षेत्रों में हुई वृद्धि ने निष्क्रिय कर दिया। 1999-2000 में गरीबों की संख्या 1973-74 की संख्या का दो-तिहाई है। 1999-2000 में शहरी गरीबों की संख्या 1977-78 की संख्या से अधिक है। जनसंख्या में वृद्धि भी इसके लिए कुछ दूर तक उत्तरदायी रही होगी। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि हमें इस दिशा में अभी बहुत दूरी तय करनी है।

गरीबी निवारण कार्यक्रम

यदि व्यापक वृद्धि के द्वारा समाज के सभी वर्गों में, परिवारों या व्यक्तियों का, विकास हो तो गरीबी रेखा से नीचे के लोग भी धीरे-धीरे इसके निकट होते हुए एक दिन गरीबी की इस दहलीज को भी पार कर जाएंगे। योजना अवधि के आरंभ में, ऐसा माना जाता था कि विकास के लाभ बेहतर मजदूरी, बेहतर रोजगार के अवसर, बेहतर उत्पादकता तथा अधिक उत्पादन के रूप में छनकर नीचे तक (percolate down) जाते हैं। इसे 'परकोलेशन' सिद्धांत का नाम दिया गया था। ऐसा माना गया कि यद्यपि समाज का एक छोटा वर्ग अर्थात् 10 प्रतिशत जनसंख्या, जो उत्पादक माध्यमों द्वारा अर्थव्यवस्था से सुसंबद्ध नहीं, जिनके लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता पड़ेगी।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुनर्वितरण की दिशा में प्रयास नहीं किए जा रहे थे। परिसंपत्तियों के पुनर्वितरण (विशेषकर भूमि), धनी और मध्यवर्ग की संपत्ति और आय पर कर लगाना, विलासिता उपभोग मदों की वस्तुओं पर ऊँची दरों पर कर लगाना, खाद्यान्नों जैसी आवश्यक वस्तुओं को आर्थिक सहायता देना, मुफ्त शिक्षा तथा मध्य-दिवस भोजन (mid-day meal) आदि इसी उद्देश्य के लिए उठाए गए, पुनर्वितरक कदम थे। परंतु इनमें सीमित सफलता मिली थी, या, हम ऐसा कह सकते हैं कि यदि ये प्रयास नहीं किए जाते तो स्थिति और भी खराब होती। इन उपायों का महत्त्व समाप्त हो गया है।

साठ के दशक के मध्य तक यह स्पष्ट हो गया था कि विकास तथा पुनर्वितरण की दिशा में उठाए गए उपायों के परिणाम सीमित रहेंगे यदि कुछ व्यावसायिक स्तरों और सामाजिक वर्गों की सहायता करने के लिए कुछ विशेष संपूरक कार्यक्रम आरंभ न किए गए। हम भारत सरकार द्वारा आरंभ किए गए कार्यक्रमों तक ही सीमित हैं। इन कार्यक्रमों के दो अभीष्ट प्रकार हो सकते हैं– (i) स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना, तथा (ii) संपूरक मजदूरी रोजगार प्रदान करना। ये कार्यक्रम अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में ही सीमित हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में चार गुना अधिक लोग रहते हैं। यहाँ हम सिर्फ ग्रामीण कार्यक्रमों तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे।

यहाँ हम निम्नलिखित कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करेंगे– (i) स्व-नियोजित कार्यक्रम, (ii) मजदूरी नियोजन कार्यक्रम, (iii) सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम (संक्षेप में), तथा (iv) सार्वजनिक वितरण प्रणाली। कुछ अर्थों में ये कार्यक्रम अधिकार संबंधी (entitlement) कार्यक्रम हैं जबकि वे कार्यक्रम जो गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य या आवास के लिए सहायता प्रदान करते हैं, क्षमता वर्धक (capability enhancing) कार्यक्रम हैं।

स्वनियोजन कार्यक्रम

स्वनियोजन के लिए बनाए गए सभी कार्यक्रमों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसे अब स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना का नाम दे दिया गया है। यह केंद्र द्वारा समर्थित योजना है जो 1980 से देश के सभी 5000 विकास प्रखंडों में क्रियान्वित है। अनुदान/आर्थिक-सहायता प्रदान करने में केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार 50 : 50 के हिस्सेदार हैं। परंतु यह योजना अब, जिला प्रशासन द्वारा पंचायती राज्य के प्रतिनिधियों की सहायता से चलाई जाती है।

इस योजना के अंतर्गत, गरीबी रेखा के नीचे वाले परिवारों (मूलतः छोटे तथा सीमांत कृषक, कृषिश्रमिक तथा ग्रामीण कारीगर) को उत्पादक परिसंपत्तियों और उचित आय प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है । इस योजना का उद्देश्य यह है इससे परिवारों को निरंतर अतिरिक्त आय प्राप्त होती रहे। आर्थिक सहायता तथा बैंक ऋण के रूप में सहायता प्रदान की जाती है। विभिन्न प्रवर्गों के लिए भिन्न-भिन्न अनुपात में आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है– छोटे किसानों के लिए 25 प्रतिशत, सीमांत किसानों एवं कृषि श्रमिकों के लिए 33.33 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/विकलांगों के लिए 50 प्रतिशत। विभिन्न प्रवर्गों के लिए योजनाओं के विस्तार (coverage) के प्रतिशत भी निश्चित कर दिए गए। आर्थिक सहायता एक सीमा तक ही दी गई।

आरंभ किए जाने के बीस वर्षों के बीच 5 करोड़ से अधिक परिवारों को सहायता प्रदान की जा चुकी है। अब तक लगभग बीस वर्षों से अधिक की प्रविधि में 40,000 करोड़ रुपए की सहायता प्रदान की जा चुकी है, जिसमें से 15,000 करोड़ रु. से अधिक ही आर्थिक सहायता (subsidy) के रूप में थी। यह विभिन्न वर्षों में हुए व्यय का योग है जिनमें स्पष्ट रूप से कीमतें भिन्न-भिन्न थीं। औसत सहायता, जो सहायता प्रदान किए गए परिवारों की दृष्टि से वास्तव में निवेश था, लगभग 7500 से 8000 थी। ऐसा सुझाव दिया गया कि यह निवेश, परिवारों को आय का निरंतर स्रोत प्रदान करने की दृष्टि से, बहुत कम है। बहुत गरीब परिवारों की स्थिति में इस एक बार की सहायता से कोई सुधार नहीं आया। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि संवितरण (disbursal) हेतु धन कम है, तब कुछ ही परिवारों की सहायता की जानी चाहिए, परंतु यह सहायता पर्याप्त होनी चाहिए। यह सुझाव भी दिया गया कि गरीबों में भी जिनकी स्थिति थोड़ी अच्छी है उनकी सहायता की जानी चाहिए ताकि वे अपने पाँवों पर खड़े होने योग्य हो सकें। कुछ लोग इसके विपरीत भी सुझाव देते हैं कि जिनकी स्थिति गरीबों में सापेक्ष रूप से बदतर है, उन्हें आर्थिक सहायता की अधिक आवश्यकता है।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP) के कई सहबद्ध कार्यक्रम थे, जैसे, TRYSEM, DWCRA, GKY, MWS तथा SITRA । योजना आयोग की एक समीक्षा के अनुसार यद्यपि ये

बहुत सारे कार्यक्रम एक साथ प्रस्तुत किए, परंतु इनमें आपस में कोई वांछित संयोजन (linkage) नहीं है। उदाहरण के लिए, ट्राइसेम यद्यपि स्व-नियोजन के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम है परंतु 25 प्रतिशत से भी कम ट्राइसेम प्रशिक्षार्थियों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता मिलती है। इसी प्रकार, यदि इस योजना के हिताधिकारियों (लाभ भोगियों) का सार्थक प्रशिक्षण हुआ तो उन्हें अपने लिए पर्याप्त आय का स्रोत मिल सकता है परंतु 5 प्रतिशत से भी कम हिताधिकारी ट्राइसेम के अंतर्गत प्रशिक्षित किए गए।

एक्रोनिम (परिवर्णी शब्द)

TRYSEM -	ट्राइसेम— स्व-रोजगार हेतु ग्रामीण युवाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम
DWCRA -	ड्वाकरा— ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास
GKY -	जी.के.वाई.— गंगा कल्याण योजना
MWS -	एम. डब्ल्यू. एस.— मिलियन कूप योजना
SITRA -	सिट्रा— ग्रामीण कारीगरों के लिए बेहतर उपकरण आपूर्ति

अध्ययनों के द्वारा, भ्रष्टाचार एवं अयोग्य परिवारों को सहायता मिलने की रिपोर्ट भी मिली है। जो उसके योग्य नहीं होते। पैसे वसूल न होने के भय से जिला अधिकारियों तथा बैंक प्रबंधकों का रवैया शिथिल रहा है जो इन योजनाओं की असफलता के लिए उत्तरदायी हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में 5 करोड़ परिवारों (25 करोड़ लोगों) को सहायता दिए जाने के बावजूद गरीबों की संख्या 25 करोड़ (5 करोड़ परिवार) बनी रहे तो इसका स्पष्टीकरण कैसे दिया जा सकता है? इसके पीछे निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(i) गरीबों को नहीं के बराबर सहायता नहीं दी गई होगी।

(ii) उत्पादकीय क्षमता वृद्धि हेतु सार्थक स्व-रोजगार आर्थिक क्रियाओं को आरंभ करने की दृष्टि से सहायता का परिमाण बहुत कम रहा होगा।

(iii) परियोजनाओं का चुनाव गलत हुआ होगा (जैसे– दूध देने वाले पशु का क्रय तो काफी प्रचलित था परंतु एक ओर तो उनके लिए दाना व चारा तथा चिकित्सा सेवाओं की उपलब्धता पर और दूसरी ओर दूध के लिए बाजार की संभावनाओं पर पर्याप्त ध्यान न दिया गया) ।

(iv) उत्पादक उद्देश्यों के लिए दी गई सहायता को, उपभोग क्रियाओं द्वारा जैसे बीमारियों आदि पर व्यय करना, आदि में खपत कर लिया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) का एक नया अवतार SGSY है जिसमें आधारिक संरचनाओं की सुविधाओं, प्रौद्योगिकी, साख तथा विपणन व्यवस्थाओं पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इस कार्यक्रम से हमें बहुत आशाएँ हैं।

मजदूरी रोजगार योजनाएँ (Wage Employment Programmes)

ऐसे लोगों के लिए जिनकी अपनी कोई संपत्ति (जैसे भूमि, पशु आदि) नहीं हैं, उनके लिए, समन्वित ग्राम विकास योजना (IRDP) के साथ ही 1980 में केंद्र सरकार द्वारा 50 प्रतिशत निधीयन (funding) के द्वारा एक मजदूरी रोजगार कार्यक्रम अर्थात् राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) आरंभ किया गया। इस योजना की सहायता के

लिए एक दूसरी मजदूरी रोजगार योजना का 15 अगस्त 1983 को आरंभ किया गया। ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) के रूप में जानी जाने वाली योजना भी केंद्र समर्थित (centrally sponsored) योजना थी जिसका 100 प्रतिशत निधीयन केंद्र सरकार द्वारा किया गया था। 1989 में दोनों योजनाएँ एक साथ मिला दी गईं तथा इस एकीकृत योजना को जवाहर रोजगार योजना (JRY) कहा जाने लगा। इसका 80 प्रतिशत निधीयन केंद्र सरकार द्वारा तथा शेष 20 प्रतिशत अपने-अपने राज्यों द्वारा किया गया। इसके अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को सूचित दरों पर रोजगार दिए जाने की व्यवस्था की गई जिसका कार्यान्वयन ग्राम पंचायतों द्वारा ही किया जाना था।

कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार तथा अल्प रोजगार वाले पुरुषों एवं महिलाओं के लिए लाभकारी रोजगार आरंभ करना था। परंतु इसके अन्य उद्देश्य भी थे। इसमें से दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(क) सामुदायिक तथा सामाजिक परिसम्पत्तियों जैसे सामाजिक वानिकी, मृदा एवं संरक्षण कार्य, लघु सिंचाई कार्य, ग्रामीण कुओं की मरम्मत, ग्रामीण सड़कें, दवाखाना, स्कूल, पंचायत घर, बाजार, बस-स्टैण्ड, आंगनवाड़ी/ बालवाड़ी आदि को स्थापित करना।

(ख) मजदूरी के स्तर पर धनात्मक प्रभाव डालना।

दो योजनाएँ, जो पहले NREP/RLEGP की उप-योजनाएँ थीं JRY का अंग बना दी गईं। ये हैं, अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजातियों के गरीब व सीमांत किसानों को बिना किसी लागत के सिंचाई कुएँ प्रदान करने के लिए मिलियन कुआँ योजना (MWS) तथा उपयुक्त परिवारों के अतिरिक्त अन्य गरीब परिवारों को भी बिना किसी लागत के, घर देने के लिए इंदिरा आवास योजना (IAY) ।

इस योजना के द्वारा कुछ आधारिक संरचना का निर्माण हुआ तथा कुछ लोगों को कुछ दिनों के लिए रोजगार मिले। परंतु जिस प्रकार कार्यक्रम का संचालन हुआ, उसके कारण यह पर्याप्त रोजगार प्रदान नहीं कर सकी जिससे गरीबी कम हो सके या संबद्ध आधारिक संरचना का निर्माण हो सके। 1998-99 में 2500 करोड़ रु. के व्यय से 40 करोड़ श्रम दिनों (man days) से कम रोजगार का निर्माण हुआ। यदि इस व्यय का भौतिक संघटन 40 प्रतिशत माना जाए तो इसके द्वारा 1500 सौ करोड़ रु. मजदूरी के तौर पर दिया गया। अतः औसत मजदूरी दर 40 रु. से भी कम हुई। यदि रोजगार तलाश करने वालों की पंक्ति में चार करोड़ लोग भी हों तो एक वर्ष में एक व्यक्ति को औसत रूप से 10 दिन का काम मिला। परिवार को एक वर्ष में अधिक-से-अधिक 800 रु. की कुल सहायता प्राप्त हुई जिसमें पति और पत्नी दोनों के श्रम शामिल थे। यह किसी भी परिवार के लिए बहुत कम राशि है। ऐसी स्थिति में पंचायत अधिकारियों पर लगाए गए आरोपों में कुछ सच्चाई जान पड़ती है कि उन्होंने अपने परिचितों और संबंधियों के साथ पक्षपात किए।

अब यह लगता है कि इस योजना में रोजगार निर्माण पर बहुत जोर दिया तथा गाँव की आधारिक संरचना के विकास की उपेक्षा की। जवाहर रोजगार योजना (JRY) का स्थान जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) ने ले लिया। इसका प्राथमिक लक्ष्य माँग-संचालित सामुदायिक ग्रामीण आधारिक संरचना तथा द्वितीयक लक्ष्य रोजगार का सृजन है।

सामाजिक सुरक्षा

सामाजिक सुरक्षा के नाम पर बहुत कम काम हुआ है। यद्यपि, परिवार के प्राथमिक कमाऊ सदस्य की मृत्यु के बाद गरीब परिवारों में असहाय वृद्धों के लिए तथा गर्भावस्था के दौरान गरीब परिवारों की महिलाओं के लिए 100 प्रतिशत निधीयन वाली केंद्रिय संचालित योजनाएँ हैं। आरंभ तो सही दिशा में हुआ है, यद्यपि यह राशि उनकी भौतिक स्थिति में सुधार लाने के लिए बहुत कम है। वृद्धों के पेंशन की योजना बहुत सफल रही जबकि अन्य दोनों योजनाओं के बारे में जानकारी का अभाव है।

खाद्य सुरक्षा

गरीब लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), समन्वित बाल विकास योजना (ICDS), तथा स्कूलों मे मध्य-दिवस भोजन योजना (MDMS) प्रारम्भ की गई।

देश में पिछले 50 वर्षों में खाद्यान्नों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता 400 ग्राम से भी कम से बढ़कर शताब्दी के अंत तक 500 ग्राम हो गई। परंतु क्रय शक्ति की कमी के कारण अभी भी काफी लोग भूख, अल्पपोषण और कुपोषण के शिकार हैं।

हमें एक सुरक्षित भंडार (बफर स्टॉक) रखने की आवश्यकता थी जो खाद्यान्नों की मूल्य-स्थिरता को बनाए रखता क्योंकि इनका उत्पादन प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित होता है। उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कृषि उत्पादों की समर्थित कीमतों को एक अच्छी प्रेरणा के रूप में माना गया। हमारी सरकार ने इतना अधिक भंडार इकट्ठा कर लिया जो आवश्यक सुरक्षित भंडार (buffer stock) से बहुत अधिक था। हमारी आवश्यकता 20 मिलियन टन खाद्यान्न की भी नहीं थी और हमारे पास इसका स्टॉक 60 मिलियन टन का था।

अल्पपोषित लोग तथा भारतीय खाद्य निगम (FCI) के अत्यधिक भरे हुए गोदाम एक ऐसा धर्मसंकट प्रस्तुत करते हैं जिसका हल निकालना कठिन है। फिर भी खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के क्रम में चार लाख उचित दर की दूकानों (FPS) के माध्यम से गरीबों को खाद्यान्न सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराए गए (उन्हें भी जो गरीब नहीं थे)। कुछ राज्यों के शहरी क्षेत्रों में इन दूकानों की अच्छी व्यवस्था की गई तथा कुछ राज्यों के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में। आज ये 15000 करोड़ रुपये का व्यापार संचालित कर रहे हैं तथा 16 करोड़ परिवारों की सहायता कर रहे हैं। इसके लिए 8000-9000 करोड़ रु. की आर्थिक सहायता मिलती है जो केंद्र सरकार के कुल बजट व्यय का 2.5-3.0 प्रतिशत के बराबर है। इस आर्थिक सहायता का पूरा लाभ गरीबों को नहीं मिल पा रहा है क्योंकि इसका काफी अंश ऊँची लागत पर भंडार (stock) को सुरक्षित रखने में लगता है। गरीब लोग इन उचित दर दुकानों से जो थोड़ा बहुत खरीद सकते हैं वह दो कारणों से नहीं खरीदा गया। पहला कारण, तो व्यवस्था का दोषपूर्ण होना है और दूसरा यह है कि सामान्यतः ऐसा नियम बना दिया गया है कि जितनी मात्रा उनके लिए निश्चित है उतनी पूरी उन्हें खरीदना पड़ेगा।

सार्वजनिक वितरण व्यवस्था ने निश्चित ही गरीबों की कुछ सहायता की है। इसके अतिरिक्त, समन्वित शिशु विकास योजना (ICDS) के अंतर्गत माताओं तथा छः वर्ष से नीचे के बच्चों को भी कुछ सहायता की। मध्य-दिवस भोजन योजना के अंतर्गत बच्चों को स्कूलों में निःशुल्क भोजन दिया जाता है।

निष्कर्ष

सबसे पहले सापेक्ष गरीबी तथा निरपेक्ष गरीबी के अंतर का वर्णन किया गया। हमने गरीबी रेखा को बहुत ऊँचे और बहुत नीचे स्तर पर रखने से सहायता-संबंधी नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन भी किया। इस पर भी ध्यान दिया गया कि गरीबी के आकलन में क्या हमें आय या उपभोग के वितरण पर भी विचार करना चाहिए या नहीं।

इसके बाद हमने सरल विधि से यह बताया कि भारत में राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी रेखा का निर्धारण कैसे होता है तथा ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखाएँ क्या थीं। सामान्य विधि तथा तुलनात्मक सर्वेक्षणों पर आधारित गरीबी के आकलन 1973-74 तथा 1999-2000 के बीच में छः अंकों के लिए उपलब्ध हैं, हमने उनका विश्लेषण गरीबी का प्रतिशत तथा इसकी निरपेक्ष संख्याएं जानने के लिए किया।

अंत में हमने देखा कि यद्यपि वृद्धि तथा सामान्य पुनर्वितरण नीति गरीबी निवारण के लिए आवश्यक हैं, परंतु इसके लिए पूरी तरह उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसे ध्यान में रखते हुए, सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध से कई केंद्रित सम्पूरक योजनाएँ आरंभ की गई। हमने केवल उन पर ही चर्चा की जो ग्रामीण क्षेत्रों में चलाई जा रही हैं। स्वरोजगार तथा मजदूरी रोजगार देने वाले कार्यक्रमों ने कई लाख परिवारों की गरीबी रेखा के ऊपर और कई की गरीबी रेखा के पास जाने में सहायता की होगी परंतु उनकी सफलता सीमित रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप गैर-कृषि क्रियाओं से कुछ आशा की जा सकती है।

अभ्यास

1. गरीबी से आप क्या समझते हैं?
2. सापेक्ष तथा निरपेक्ष गरीबी के मध्य अंतर की व्याख्या करें?
3. आप के विचार से सापेक्ष गरीबी (असमानता) कैसे मापी जा सकती है? इस पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. वितरण समापांक तथा गरीबी रेखा के बीच क्या अंतर है?
5. गरीबी रेखा की परिभाषा दीजिए। नीति-निर्धारण के लिए गरीबी रेखा का एक ऊँचा स्तर तय करने की आवश्यकता है, व्याख्या कीजिए?
6. आर्थिक-सहायता की नीति निर्धारण के लिए, एक निम्न गरीबी रेखा तय करने की आवश्यकता है। व्याख्या कीजिए।
7. गरीबी रेखा को कैसे परिभाषित करना चाहिए-- आय के आधार पर या उपभोग के स्तर के आधार पर? अपने कथन की पुष्टि कीजिए।
8. भारत में विभिन्न उपभोग व्यय वाले वर्गों के कैलोरी उपभोग को कैसे प्राप्त किया जाता है?
9. भारत में औसत ग्रामीण व्यक्ति तथा औसत शहरी व्यक्ति के लिए कैलोरी की मात्रा का निर्धारण कैसे किया जाता है?

10. भारत में राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी रेखा का निर्धारण किस प्रकार होता है?
11. 1973-74 से देश में गरीबी के अनुमानों की चर्चा कीजिए तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में इनकी मूक प्रवृत्तियों की रूपरेखा दीजिए?
12. भारत में गरीबी का स्तर क्या है? ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में निर्धनता का क्या स्तर है? 1993-94 तथा 1999 में गरीबी के प्रतिशत तथा मात्रा में कमी को आप किस प्रकार देखेंगे?
13. गरीबी-निवारण कार्यक्रमों को लागू करने की क्या आवश्यकता थी? इन्हें पहले क्यों नहीं आरंभ किया गया?
14. ग्रामीण क्षेत्रों में चलाए जाने वाले कुछ गरीबी-निवारण कार्यक्रमों की सूची बनाएं।
15. स्वरोजगार सृजन करने वाले कार्यक्रमों की प्रकृति, कार्य प्रणाली एवं परिणामों की व्याख्या करें।
16. मजदूरी रोजगार सृजन करने वाले कार्यक्रमों की प्रकृति कार्यप्रणाली एवं परिणामों की चर्चा करें।
17. भारत में खाद्य संरक्षण के लिए अपनाए गए उपायों की संक्षेप में चर्चा करें।
18. सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते हैं? हमारे पास किस वर्ग के लिए इस प्रकार के कार्यक्रम हैं?
19. आपके विचार से भारत में गरीबी-निवारण के लिए क्या किया जाना चाहिए?

क्रियाकलाप

9.1 सामूहिक क्रिया– यह ज्ञात करने का प्रयास करें कि आपके गाँव/क्षेत्र में गरीबी-निवारण के विभिन्न कार्यक्रमों से लाभान्वित लोगों का चयन किस प्रकार किया गया। अपने पर्यवेक्षणों की अपने अध्यापक/अध्यापिका के साथ चर्चा करें।

अध्याय 10

बेरोजगारी

परिचय

बेरोजगारी एक बड़ी समस्या है। आप ऐसे लोगों से मिले होगें जिनके पास कोई रोजगार नहीं हो और आपने अवश्य उनकी बातचीत में आक्रोश की झलक देखी होगी। यह दृश्य व्यवस्था में लोगों के विश्वास को हिला देता है। आधारभूत तथ्य के रूप में हम कह सकते हैं कि किसी भी योग्य व्यक्ति को जो एक निश्चित आयु (15 वर्ष) से ऊपर तथा एक निश्चित आयु (60 वर्ष) से कम हो, अवश्य कार्य करना चाहिए यदि वह किसी अन्य उपयोगी व्यवसाय जैसे उच्च शिक्षा (या घर बनाने) में न लगा हो। व्यवस्था द्वारा उन्हें कार्य करने की अनुमति मिलनी चाहिए। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि ऊपर दिए गए व्यक्तियों के समुच्चय में से कम से कम ऐसे लोगों को तो कार्य करने की अनुमति मिलनी चाहिए जो कार्य करने के इच्छुक हों। कुछ ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि कम-से-कम उन्हें तो काम करने की अनुमति मिल ही जानी चाहिए जो इसकी तलाश में हैं।

मूल बात यह है कि कोई व्यक्ति जो सिर्फ एक उपभोक्ता है परंतु उत्पादक नहीं, वह एक अच्छा और जिम्मेदार नागरिक नहीं होगा। 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' के साथ 'प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार' भी एक अच्छे स्वस्थ समाज की उक्ति होनी चाहिए। उत्पादक होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सामान्य अर्थ में कार्यरत हों या किसी के अधीन कार्य करें। इसके लिए, व्यक्ति दूसरों को काम में लगाए या स्वयं को कार्य में लगाए या किसी अन्य के द्वारा कार्य में लगाए जाएँ। ये सभी उपयोगी ढंग से कार्यरत हैं। अतः रोजगार में लगे हुए माने जाते हैं। श्रमिक या तो स्वयं रोजगार में लगे होते हैं या वे वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करते हैं और अपने उत्पादों का विक्रय ग्राहकों को स्वयं करते हैं या मजदूरी-रोजगार में लगे होते हैं और अपनी सेवाएँ उन उत्पादनकर्त्ताओं को बेचते हैं जो अपने उत्पाद ग्राहकों में बेचते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष

बच्चे और वयस्क

दुर्भाग्यवश 15 वर्ष से कम के कुछ तथा 60 वर्ष से अधिक और पूरी तरह स्वस्थ लोग कार्य करने को बाध्य किए जाते हैं। इसी प्रकार, कई लोग जो अपनी युवावस्था में हैं (15 से 60 के बीच) और काम करने की तलाश में हैं (या कार्य करने की इच्छा रखते हैं) परंतु बेकार रहने के लिए बाध्य किए जाते हैं। जैसे-जैसे समाज का विकास होता है, इसमें बच्चों का प्रयोग बंद हो जाना चाहिए। कार्य में बच्चों को लगाना, उनके बचपन को नकारना और युवावस्था को कुचलना है। इसे

पाप मानना चाहिए। बच्चों के कार्य न करने के अधिकार का आदर किया जाना चाहिए, भले ही ये बच्चे स्कूल न जाकर खेलकूद में ही लगे हों। जहाँ तक युवकों का प्रश्न है, उपयोगी आर्थिक क्रियाओं में उनकी भागीदारी आवश्यक है तथा समाज द्वारा उन्हें ऐसा करने की अनुमति भी मिलनी चाहिए। कार्यों में व्यस्तता के द्वारा ही उनकी ऊर्जा या सृजन-शक्ति को अभिव्यक्ति मिलती है। अपनी युवा शक्ति का सदुपयोग न करना समाज के लिए अनुचित है। उन्हें सुस्त और वृद्ध बना देना तो और भी अनुचित है। स्थिति सचमुच चिंताजनक है क्योंकि बच्चे जिन्हें स्कूलों व खेल के मैदानों में होना चाहिए था, कार्य कर रहे हैं तथा स्वस्थ और योग्य वयस्क बेरोजगार बैठे हैं।

अधिक बेरोजगारी के निहितार्थ

बेरोजगारी आर्थिक समस्या भी है और सामाजिक भी। यह एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक समस्या है क्योंकि इस संसाधन के अनुपयुक्त रहने पर इनकी लागत दूनी हो जाती है– एक तो इनके भरण-पोषण का खर्च और दूसरा उत्पादन में कमी (विश्वव्यापी मंदी के समय औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में इंग्लैण्ड तथा अमेरिका सहित, बेरोजगारी दर 20 प्रतिशत हो गई तथा संभाव्य उत्पादन (Potential output) में 40 प्रतिशत की कमी हो गई। अभी भी उनमें कभी-कभी बेरोजगारी दर बहुत बढ़ जाती है)। यह एक प्रमुख सामाजिक समस्या है क्योंकि बेरोजगार श्रमिकों को आय की कमी के कारण बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। बेरोजगारी बढ़ने पर, आर्थिक कष्ट लोगों की संवेदना और पारिवारिक जीवन पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

महिलाओं के कार्य

आगे चर्चा करने से पहले, यह जान लेना उपयोगी होगा कि गैर काम-काजी माताओं द्वारा किए गए अधिकांश उपयोगी कार्य अर्थशास्त्र में 'कार्य' नहीं माने जाते हैं। यह अवश्य आपको रुचिकर नहीं लगेगा क्योंकि आप जानते हैं कि अपने घर में कार्य करना किसी और के घर में कार्य करने की ही तरह है। भावी पीढ़ी के भावी माता-पिता के पालन पोषण करने तथा उन्हें सुनना-समझना और समझाना किसी भी क्रिया से कम उपयोगी नहीं है। मुख्य धारा के अर्थशास्त्रियों का तर्क यह रहा है कि सकल देशीय उत्पाद के परिकलन में इन क्रियाओं को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

बेरोजगारी के प्रकार

सभी अर्थव्यवस्थाओं में हमेशा कुछ लोग ऐसे होते हैं जो काम करने की इच्छा रखते हुए भी बेरोजगार होते हैं। जो अपनी इच्छा से कार्य नहीं कर रहे हैं उन्हें **ऐच्छिक बेरोजगार** कहा जाता है। हम उनकी चिंता नहीं करते क्योंकि ऐसा निर्णय लेने में उनके अपने कारण तथा उनकी अपनी परिस्थितियाँ होंगी। लोगों के स्वेच्छा से कार्य न करने के कई कारण हो सकते हैं। वे प्रचलित मजदूरी की दर पर काम न करने के स्थान पर आराम प्रसंद कर सकते हैं। वे अपनी पहली नौकरी की तलाश में हो सकते हैं। अल्प उत्पादक श्रमिक कम पैसों की नौकरियों की तुलना में कल्याण या बेरोजगारी बीमा को पसन्द कर सकते हैं, जो इन उद्देश्यों को ही निष्क्रिय कर देता है जिसके लिए ये योजनाएँ स्थापित की गई थीं।

स्वैच्छिक बेरोजगारों के अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी हैं जो प्रत्यक्ष रूप से तो रोजगार में हैं परंतु

वास्तविक रूप से वे बेरोजगार हैं। इस स्थिति को **प्रच्छन्न बेरोजगारी** कहते हैं। कृषि या किसी पारिवारिक उद्यम के उस कार्य में तीन व्यक्ति लगे हो सकते हैं जिसे आसानी से दो व्यक्ति कर सकते हैं। उनमें से एक यदि हटा लिया जाए तो भी उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी। अतः दो प्रकार की बेरोजगारी ऐसी है जो हमारे लिए चिंताजनक है, **खुली बेरोजगारी** और **प्रच्छन्न बेरोजगारी**। इन संकल्पनाओं को हम नीचे वर्णित करते हैं :

खुली बेरोजगारी (Open Unemployment)

खुली बेरोजगारी की स्थिति वह है जहाँ लोग योग्य व स्वस्थ हैं, कार्य करने के इच्छुक और कार्य की तलाश में हैं तथा आयु विशेष से ऊपर हैं, परंतु वे किसी आर्थिक क्रिया में लगे हुए नहीं हैं।

प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment)

प्रच्छन्न बेरोजगारी में लोग व्यस्त तो हैं अतः काम में लगे हुए प्रतीत होते हैं परंतु वे **पूर्ण नियोजित** नहीं कहे जा सकते क्योंकि यदि उनमें से कुछ व्यक्तियों को उस कार्य से निकाल भी लिया जाए तो भी उत्पादन में कोई कमी नहीं आएगी। ऊपर दिए गए उदाहरण में आपने देखा कि एक तिहाई श्रमबल सिर्फ ऊपरी तौर पर व्यस्त प्रतीत होते हैं। व्यस्तता रोजगार का पर्याय नहीं है। ऐसा किसी भी पारिवारिक उद्यम में सम्भव है जैसे किसी छोटे खेत के टुकड़े पर, निजी अथवा किराए का काम करना जहाँ श्रम की आवश्यकता परिवार के अंदर इसकी उपलब्धता से कम हो। शहरी और ग्रामीण इलाकों दोनों में, कई अन्य अनौपचारिक क्रियाएँ हैं जहाँ ऐसी ही स्थिति है। अतः पारिवारिक क्रियाओं/उद्यमों के अतिरिक्त अवसरों की कमी ही है, जो परिवार के कई सदस्यों को एक छोटे से कार्य में लगे रहने पर बाध्य करती है।

अर्थशास्त्र में पूरे पारिवारिक श्रम की व्यस्तता को उत्पादकता की दृष्टि से प्रायः अनावश्यक बताया गया है। इसका वर्णन उस स्थिति के रूप में किया गया है जब श्रम का एक हिस्सा अर्जक के रूप में कार्यरत/नियोजित (Gainfully employed) नहीं है। हमने यह भी बताया है कि वे समय-व्यवस्था की दृष्टि से भी पूरी तरह कार्यरत नहीं हैं। पारिवारिक आर्थिक क्रियाओं के स्व-नियोजन के उदाहरणों में आय, उत्पादन तथा समय-नियोजन (Time disposition), इन तीनों मानदण्डों का समान महत्त्व है। उत्पादकता के सिद्धांत में यह निहित विश्वास है कि किसी कारक को उसकी उत्पादकता के अनुसार ही पारिश्रमिक मिलता है। वस्तुतः आय, उत्पादन तथा समय-नियोजन ये उत्पादन के तीन आयाम हैं तथा श्रम के बाजार में इनका अलग-अलग महत्त्व है। जब सरकार को ऐसा लगता है कि कर्मचारियों का आधिक्य है और वह सरकारी कार्यालयों से लोगों की छँटनी करने का या अवकाश प्राप्त लोगों के स्थान पर नए लोगों की भर्त्ती न करने का निश्चय करती है तो इसका अर्थ है कि उत्पादन और समय-व्यवस्था की दृष्टि से ये कर्मचारी अनावश्यक माने जाते हैं। किसी निजी कंपनी के निदेशक (डायरेक्टर) की भी ऐसी ही स्थिति है जहाँ उन्हें दिन में केवल दो पत्रों पर हस्ताक्षर ही करने के पैसे मिलते हैं। जॉन राबिंसन ने पहली बार अनेक उत्पादक श्रमिकों के जूते चमकाने के कार्य में लगे होने के संदर्भ में पहली बार इस अवधारणा का उल्लेख किया था।

भारत जैसे देश में जहाँ 50 प्रतिशत श्रमिक अभी भी स्व-नियोजित हैं, प्रच्छन्न बेरोजगारी बहुत

अधिक है। यह एक कारण है जिसके कारण प्रच्छन्न रूप से बेरोजगार लोग शहरी क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करके खुली बेरोजगारी के शिकार हो जाते हैं। इस अर्थ में खुली बेरोजगारी बहुत गंभीर समस्या का संकेत देती है।

खुली बेरोजगारी का वर्गीकरण प्रायः तीन वर्गों में करते हैं-- चक्रीय, संरचनात्मक तथा प्रतिरुद्ध/अस्थाई बेरोजगारी। यदि हम चाहें तो खुली बेरोजगारी को पहले दीर्घकालिक तथा चक्रीय बेरोजगारी के रूप में बाँट सकते हैं तथा सुदीर्घकालिक बेरोजगारी को संरचनात्मक और प्रतिरुद्ध/अस्थाई बेरोजगारी के रूप में।

जब अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की समस्त माँग घटकर इसकी क्षमता से कम हो जाती है, तो श्रम-बल का एक बड़ा हिस्सा बेरोजगार हो जाता है। इसे चक्रीय बेरोजगारी के नाम से जाना जाता है। पूँजीवादी पद्धति में, अर्थव्यवस्था किसी सुदीर्घकालीन प्रवृति के चारों ओर एक चक्र की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरती है। ये अवस्थाएँ हैं-- तेजी, मंदी तथा पुनरुत्थान। तेजी सर्वोच्च आर्थिक क्रिया की अवस्था है जबकि मंदी निम्नतम आर्थिक क्रिया की। मंदी की स्थिति में बहुत सारे लोग अपने रोजगार से बाहर कर दिए जाते हैं, तेजी की स्थिति में बहुत लोग, श्रम-बाजार से बाहर वाले भी रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। दुर्भाग्यवश, युद्ध-अवधि आर्थिक क्रियाओं की दृष्टि से तेजी के समान होती है। पश्चिमी देशों में युद्ध की अवधि में महिलायें भी श्रम शक्ति में सम्मिलित कर ली जाती हैं और मंदी के समय पुरुषों को निकाल दिया जाता है।

जैसे-जैसे समय बीतता है, कई नई आर्थिक क्रियाएँ उभरती हैं, कुछ पुरानी आर्थिक क्रियाओं का महत्त्व बढ़ता है और कुछ का घट जाता है। परिणामस्वरूप, वस्तुओं की माँग की प्रवृत्ति में परिवर्तन के कारण श्रम की माँग की प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः यह आर्थिक क्रियाओं में संरचनात्मक परिवर्तन है परंतु, श्रमबल में माँग की प्रवृत्ति के अनुरूप परिवर्तन तत्काल तो नहीं होता। अतः अर्थव्यवस्था में जहाँ एक ओर खाली जगहें होंगी, वहीं दूसरी ओर लोग नौकरियों की तलाश करते हुए मिलेंगे। इसे संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं। काम की कमी नहीं है परंतु माँग की प्रवृत्ति तथा पूर्ति की संरचना के बीच ताल-मेल नहीं है। पुनर्प्रशिक्षण तथा पुनर्नियोजन से थोड़ी सहायता मिल सकती है। विभिन्न व्यवसायों तथा क्षेत्रों के बीच भी संरचनात्मक असंतुलन हो सकता है क्योंकि कुछ क्षेत्रों का विकास होता है और कुछ का नहीं। उच्च वास्तविक मजदूरी, कल्याण हित लाभ तथा कर में छूट के कारण पूरी अर्थव्यवस्था में ऊँचे स्तर की संरचनात्मक बेरोजगारी उत्पन्न कर सकती है।

श्रम-बाजार अन्य वस्तुओं के बाजार की तरह सहज नहीं होता। कई प्रकार के संस्थागत हस्तक्षेप भी होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग हमेशा बेहतर नौकरियों की संभावनाओं की तलाश में रहते हैं। उनमें से कुछ अपनी पुरानी नौकरी को नई नौकरी प्राप्त करने से पहले छोड़ देते हैं। वे किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण को पूरा कर श्रम बाजार में वापस लौट आते हैं। शहरी क्षेत्रों में अनेक महिलाएँ विवाह से पहले कुछ समय के लिए नौकरी करती हैं तथा विवाह के बाद नौकरी छोड़ देती हैं तथा बच्चों के पालन-पोषण के बाद फिर से श्रम बाजार में वापस लौट आती हैं। वे पुनः आसानी से अपनी मनपसंद नौकरियाँ आशानुकूल मजदूरी दरों पर नहीं पा सकतीं। इस प्रकार की बेरोजगारी को अस्थाई बेरोजगारी कहते

हैं। कभी-कभी यह तकनीकी परिवर्तनों के कारण होता है। अस्थाई बेरोजगारी उन लोगों के लिए एक प्रकार की ऐच्छिक बेरोजगारी जो अपनी पुरानी नौकरी की तलाश कर रहे हैं।

एक वर्ष के भीतर ही, कुछ अर्थव्यवस्थाओं में जैसे हमारी अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक क्रियाओं के स्तर में मौसमी उतार-चढाव हो सकता है। आप में कुछ लोगों को गाँधी जी का ग्रामवासियों को अपने कार्य व आय को बढ़ाने के लिए दिया गया सूत कातने का सुझाव याद होगा, क्योंकि वे जानते थे कि कृषि-कार्य में लगे लोगों के पास विशेषतौर पर बरसात में पर्याप्त कार्य का अभाव है। यद्यपि फसलों के समय श्रम की कुछ कमी हो जाती है तथा कुछ बेरोजगार लोग भी श्रम-बल के अंतर्गत शामिल कर लिए जाते हैं। कुछ रिक्शा चालक/निर्माण कार्य करने वाले मजदूर जो काम की कमी के कारण गाँवों से शहरों में आ जाते हैं वे फसलों के समय फिर से वापस गाँव लौट आते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते हैं।

बेरोजगारी की माप

लोगों की बेरोजगारी के कारणों के अतिरिक्त हमें किसी दिए गए वर्ष में बेरोजगारी के विस्तार (परिमाण) को भी जानने की इच्छा हो सकती है। हम किसी रोजगार में लगे व्यक्ति के बारे में कई तथ्य जानते हैं जैसे वह कहाँ काम करता है, उसकी मजदूरी क्या है, वह किस पद पर है आदि, जो इसके आर्थिक पक्ष हैं। जब हम बेरोजगारों की बात करते हैं तो हम उसकी जनांकिकीय/सामाजिक विशेषताओं के बारे में अधिक जानते हैं। अतः बेरोजगारी का अध्ययन ग्रामीण/शहरी विभेद, पुरुष/स्त्री विभेद, आयु द्वारा विभेद, आर्थिक स्तरों द्वारा विभेद, शैक्षिक स्तरों द्वारा विभेद आदि के रूप में करते हैं।

श्रम बल और कार्य बल

सबसे पहले हमें उन विशेष शब्दों को जान लेना चाहिए जो इस संबंध में उपयोगी हों। श्रम-आपूर्ति जिसका संबंध मजदूरी से है, के स्थान पर हम श्रम-बल की बात करते हैं। अधिक-से-अधिक हम श्रम-बल की बात सामान्यतः रोजगार में लगे हुए या रोजगार की इच्छा रखने वाले लोगों (वर्ष के अधिकांश भाग में) के रूप में कर सकते हैं, जबकि श्रम-आपूर्ति की चर्चा श्रम-दिवसों (कार्य करते हुए या कार्य करने के इच्छुक) के रूप में की जा सकती है। हम श्रम-बल और कार्य बल के बीच भी अंतर करते हैं।

जनसंख्या के सभी सदस्य आर्थिक रूप से उत्पादक क्रियाओं में नहीं लगे होते हैं। आरंभ में ही हमें बता देना चाहिए कि बच्चे तथा बूढ़े, मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग (विक्षिप्त/विकलांग) इन क्रियाओं में शामिल नहीं होते। अतः जो लोग वस्तुएँ व सेवाओं का उत्पादन कर सकते हैं (और जिन्हें करना भी चाहिए) वे ही श्रम बल का निर्माण करते हैं। इसे संभावित श्रम बल कहते हैं। इसमें से कुछ ऐसे लोगों को पृथक कर देना चाहिए जो किसी अन्य क्रिया (पारिवारिक कार्यों) में व्यस्त हैं या कार्य करने के इच्छुक नहीं हैं। इसका तात्पर्य है कि जो वस्तुतः आर्थिक रूप से उत्पादक क्रियाओं को कर रहे हैं या जो इन्हें कर सकते हैं, वे सभी श्रम बल में सम्मिलित हैं। जो इन क्रियाओं में सचमुच लगे हुए हैं उन्हें श्रम बल के रूप में जाना जाता है। श्रम बल तथा कार्य बल के संतुलन को बेरोजगार श्रम बल कहते हैं। दूसरे शब्दों में, रोजगार में लगे हुए श्रम बल को कार्य बल कहते हैं।

जब हम श्रम/कार्य बल में जनसंख्या के आकार से भाग देते हैं तो हमें श्रम बल/कार्य बल की भागीदारी दर प्राप्त होती है। ये दर सामान्यतः प्रतिशत के रूप में और कभी-कभी प्रति हजार के रूप में व्यक्त की जाती हैं।

सामान्य, साप्ताहिक व दैनिक स्थिति

ये सभी सामान्य स्थितियों के रूप में हैं। यदि आप एक विद्यार्थी हैं तथा किसी दूकान में भी काम करते हैं तो आप श्रम बल के सदस्य तभी हैं जब आप अपना अधिकांश समय काम करने में लगाते हैं। तभी आपकी सामान्य स्थिति एक श्रमिक की है। यदि ऐसा नहीं है तो आपकी स्थिति गैर-श्रमिक की है। यदि आप 183 दिनों से अधिक तक (> 1/2 वर्ष) कार्य के लिए उपलब्ध हैं परंतु आपकों 183 दिनों से कम के लिए कार्य उपलब्ध हो तो आप सामान्य स्थिति की संकल्पना के अनुसार बेरोजगार हैं।

सर्वेक्षण के लिए जब लोग आपके रोजगार/बेरोजगारी की स्थिति के बारे में पूछने आएँ तो वे कुछ प्रश्न पूछ सकते हैं तथा पता लगा सकते हैं कि सर्वेक्षण के पूर्व सप्ताह में आप रोजगार कर रहे थे या बेरोजगार थे? साप्ताहिक स्थिति की जानकारी यह जानने के लिए ली जाती है कि क्या आप श्रम बल के अंग थे या नहीं, और यदि आप श्रम बल के सदस्य घोषित किए गए थे तो आप रोजगार में थे या बेरोजगार। यह रोजगार/बेरोजगारी की साप्ताहिक स्थिति से संबद्ध है। आपके श्रम बल की सदस्यता की दैनिक स्थिति तथा आप कार्य कर रहे हैं या नहीं, आदि की जानकारी विस्तार पूर्वक लेने के बाद रोजगार व बेरोजगार की औसत दैनिक-स्थिति निकाली जाती है।

संक्षेप में, सामान्य स्थिति बेरोजगारी का संबंध लोगों की संख्या से है जो वर्ष के अधिकांश भाग (> 183 दिनों) में कार्य करने के इच्छुक हों परंतु उन्हें 183 दिनों तक भी कार्य उपलब्ध न हो। यह बेरोजगारी का आकार है। इसे श्रम बल के आकार से भाग देकर हमें सामान्य स्थिति द्वारा बेरोजगारी दर प्राप्त होती है। इसी प्रकार दैनिक बेरोजगारी उन श्रम-दिवसों की ओर संकेत करती है जब लोग कार्य करने के इच्छुक होते हुए भी बेरोजगार हों। यह दैनिक स्थिति के आधार पर बेरोजगारी का आकार है। इसे उपलब्ध श्रम-दिवसों से भाग देकर, हम दैनिक बेरोजगारी दर निकाल सकते हैं।

भारत में बेरोजगारी

हमने पहले बताया ही है कि बेरोजगारी का अध्ययन ग्रामीण/शहरी (विभेद), स्त्री/पुरुष (विभेद), आयु (विभेद), शैक्षिक स्तरों में विभेद आदि के आधार पर किया जाता है। यहाँ हम अपनी चर्चा ग्रामीण/शहरी तथा पुरुष/स्त्री विभेदों तक ही सीमित रखेंगे, हम 1972-73 से श्रम-बल और कार्य बल के आकार तथा उनकी दरों के बारे में बताएँगे। श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगार श्रम बल के बारे में जानने के लिए देखें सारणी 10.1। यह ध्यान रहे कि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSS) के आँकड़े प्रतिचयन पर आधारित हैं। प्रतिचयन आँकड़ों से प्राप्त भागीदार-दरों को गुणा करके निरपेक्ष आँकड़े तथा अंतर्वेशन या बहिर्वेशन द्वारा जनसंख्या आँकड़े निकाले गए हैं।

हम सारणी में देख सकते हैं कि हमारा श्रम-बल 24 करोड़ से बढ़कर 41 करोड़ हो गया है अर्थात् इसमें बाईस वर्षों में दो-तिहाई वृद्धि हुई है। जहाँ ग्रामीण श्रम बल 20 करोड़ से बढ़कर 30 करोड़ हो गया है (50 प्रतिशत से थोड़ा अधिक)

सारणी 10.1

पुरुष/महिला तथा गामीण/शहरी विभेदों के आधार पर श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगार श्रम बल

(करोड़ में)

वर्ष	ग्रामीण पुरुष	ग्रामीण महिलाएँ	शहरी पुरुष	शहरी महिलाएँ	कुल
श्रम बल					
1972-73	12.87	7.09	3.29	0.77	24.02
1977-78	14.45	8.36	4.14	1.21	26.16
1983	15.59	9.13	5.02	1.30	31.04
1987-88	16.50	9.51	5.85	1.58	33.44
1993-94	18.93	10.47	6.73	1.84	37.97
1999-00	20.02	10.50	8.07	2.00	40.67
कार्य बल					
1972-73	12.72	7.06	3.18	0.72	23.68
1977-78	14.14	8.01	3.88	1.04	27.07
1983	15.27	9.04	4.73	1.23	30.27
1987-88	16.05	9.20	5.50	1.45	32.20
1993-94	18.66	10.37	6.45	1.73	37.21
1999-00	19.68	10.40	7.71	1.89	39.68
बेरोजगारी					
1972-73	0.15	0.03	0.16	0.05	0.39
1977-78	0.31	0.35	0.26	0.17	1.09
1983	0.32	0.09	0.29	0.07	0.77
1987-88	0.45	0.31	0.35	0.13	1.24
1993-94	0.37	0.10	0.36	0.12	0.95
1999-00	0.32	0.10	0.29	0.09	0.80

स्रोत : *इंडिया इयर बुक 2001 मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीच्यूट ऑफ एप्लाइड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली 2001।*

वहीं शहरी श्रम बल 4 करोड़ से बढ़कर 10 करोड़ हो गया है (150 प्रतिशत) । इसमें प्रवसन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही होगी। जैसा आप देख सकते हैं कि श्रम बल में शहरी महिलाओं 200 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, फिर भी वे श्रम बल का केवल 5 प्रतिशत ही हैं। इसका अर्थ है कि शहरी क्षेत्रों में अधिक-से-अधिक महिलाएँ अपने घर से बाहर काम करने की इच्छा रखती हैं। ग्रामीण महिलाएँ पहले से ही बाहर कार्य कर रही हैं। कार्य बल के क्षेत्र में भी लगभग ऐसी ही स्थिति है, अतः उसकी अलग से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं।

जहाँ तक यह बेरोजगार श्रम बल का प्रश्न है, विभिन्न वर्गों और विभिन्न अवधियों में काफी उतार-चढ़ाव हुए हैं। उदाहरण के लिए 1973-74 की तुलना में 1977-78 में सभी वर्गों में बेरोजगारी बढ़ी थी विशेष रूप से महिलाओं में। दूसरे अंतराल में, जहाँ पुरुषों में

बेरोजगारी कम नहीं हुई, महिलाओं में यह काफी कम हो गई। इस प्रवृत्ति की बार-बार पुनरावृत्ति होती रही है। 1999-2000 में बेरोजगारी 1993-94 या 1987-88 की तुलना में कम ही हुई थी, या कम से कम बढ़ी नहीं थी। फिर भी 1999-2000 में बेरोजगारी की निरपेक्ष संख्या 1972-73 की तुलना में दुगुनी थी।

हालाँकि जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि श्रम-बल का कितना अनुपात बेरोजगार है तो हम पाते हैं कि श्रम बल में बेरोजगारी दर 4 प्रतिशत से ऊपर कभी नहीं बढ़ी है जिसमें निम्नतम दर केवल 1.6 प्रतिशत है। जब हम इसे भिन्न-भिन्न वर्गों में बाँट देते हैं तो हम पाते हैं कि शहरी क्षेत्रों की महिलाओं में बेरोजगारी उच्चतम है, यद्यपि इसमें काफी उतार-चढ़ाव होते रहे। 1999-2000 में भी सभी वर्गों की तुलना में इस वर्ग में बेरोजगारी उच्चतम थी। देखें सारणी 10.2 ।

क्या ये दर इतने कम हैं कि इनकी उपेक्षा की जा सकती है? क्या हम यह कह सकते हैं कि भारत में बेरोजगारी की समस्या नहीं है? पश्चिमी देशों की तुलना में, ऐसा कहा जा सकता है कि बेरोजगारी की दरें कम हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि हमारी समस्या गरीबी है जबकि उनकी बेरोजगारी।

दैनिक बेरोजगारी सामान्य बेरोजगारी की तुलना में दुगुनी/तीन गुनी अधिक है। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि वे लोग वर्ष के अधिकांश भाग में बेरोजगार नहीं होते, वे उन दिनों में बेरोजगार होते हैं जब वे कार्य करने के इच्छुक व उपलब्ध होते हैं। 1999-2000 में विभिन्न वर्गों में बेरोजगारी दर लगभग 7 प्रतिशत थी, सिर्फ शहरी महिलाओं के वर्ग को छोड़कर जिसमें यह 0.4 प्रतिशत थी। शिक्षित बेरोजगारों की स्थिति पर विचार करने पर हम देखते हैं कि जहाँ शहरी पुरुषों में बेरोजगारी 6-7 प्रतिशत है, वहीं यह ग्रामीण महिलाओं में स्नातकों के लिए 30 प्रतिशत तथा मैट्रिक पास के लिए 15 प्रतिशत जैसी ऊँची दरें हैं। अतः शिक्षा का स्तर जितना ऊँचा है, बेरोजगारी की दर उतनी ही अधिक होगी।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि निम्न बेरोजगारी दर गरीबी की द्योतक हो सकती हैं। गरीब लोग काम किए बिना बहुत दिनों तक नहीं रह सकते, मजदूरी चाहे कितनी भी हो। परंतु अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं तथा मानव संसाधनों की उपलब्धता में पर्याप्त असंतुलन है। इसे

सारणी 10.2

ग्रामीण/शहरी तथा महिला/पुरुष विभेद के आधार पर बेरोजगारी दर की सामान्य स्थिति

(उन वर्गों के श्रम बल के प्रतिशत रूप में)

वर्ष	*ग्रामीण पुरुष*	*ग्रामीण महिला*	*शहरी पुरुष*	*शहरी महिला*	*कुल*
1972-73	1.2	0.5	4.8	6.0	1.6
1977-78	2.2	5.5	6.5	17.8	3.9
1983	2.1	1.4	5.9	6.9	2.5
1987-88	2.8	3.5	6.1	8.5	3.7
1993-94	2.0	1.4	4.5	8.2	2.5
1999-00	2.1	1.0	4.5	5.7	2.0

स्रोत : *सारणी 10.1 के आधार पर।*

संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं। श्रम बल में आने वाले नए लोग अधिक नई नौकरियों को ढूँढ़ते होंगे, किसी युवक को ढूँढ़ने पर नौकरी न मिलने के कारण होने वाली निराशा की बात छोड़ दें, तो भी यह राष्ट्रीय संसाधनों की क्षति है जो उनकी शिक्षा व पालन पोषण में लगे हैं।

अभ्यास

1. रोजगार का महत्त्व बताएँ।
2. बेरोजगारी किस प्रकार एक आर्थिक तथा सामाजिक समस्या भी है?
3. महिलाओं के गृह कार्यों को कार्य क्यों नहीं मानते?
4. आप स्वैच्छिक बेरोजगारी से क्या समझते हैं? क्या यह पूरा स्वैच्छिक है?
5. अनैच्छिक बेरोजगारी का अर्थ बताएँ।
6. खुली बेरोजगारी तथा प्रच्छन्न बेरोजगारी के बीच अंतर बताओ? उदाहरणों द्वारा समझाएँ।
7. क्या प्रच्छन्न बेरोजगारी केवल कृषि में ही पाई जाती है? यह और कहाँ पायी जाती है?
8. संरचनात्मक तथा चक्रीय बेरोजगारी का अर्थ समझाएँ।
9. संरचनात्मक तथा अस्थाई बेरोजगारी के बीच अंतर बताएँ।
10. मौसमी बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं?
11. श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगारी की अवधारणाओं का वर्णन करें तथा इन तीनों के बीच के संबंध को बताएँ।
12. आप सामान्य रोजगार स्थिति तथा बेरोजगारी से क्या समझते हैं?
13. आप श्रम बल/कार्य बल भागीदारी दर कैसे निकालते हैं?
14. सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगारी दर क्या हैं?
15. दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी की दर को समझाने का प्रयत्न कीजिए।
16. श्रम बल का वर्तमान आकार क्या है तथा विभिन्न वर्गों में यह किस प्रकार वितरित है?
17. समय के साथ बेरोजगारी की निरपेक्ष संख्या में कितनी वृद्धि हुई है?
18. बेरोजगारी दरों की प्रवृत्ति एवं बेरोजगारी की दरों में परिवर्तन की विवेचना कीजिए?
19. आपके विचार से बेरोजगारी अधिक है या कम, बताएँ।
20. गरीबी तथा बेरोजगारी के बीच कैसा संबंध है?

गतिविधियाँ

जो लोग काम की तलाश में हैं उनका परीक्षण (observation) नोट करें। उन (observations) का विश्लेषण करके यह देखें कि क्या हम इस अध्याय में दिए गए वर्गों में उनकी स्थिति वर्णित कर सकते हैं।

अध्याय 11

आधारिक संरचनात्मक चुनौतियाँ

परिचय

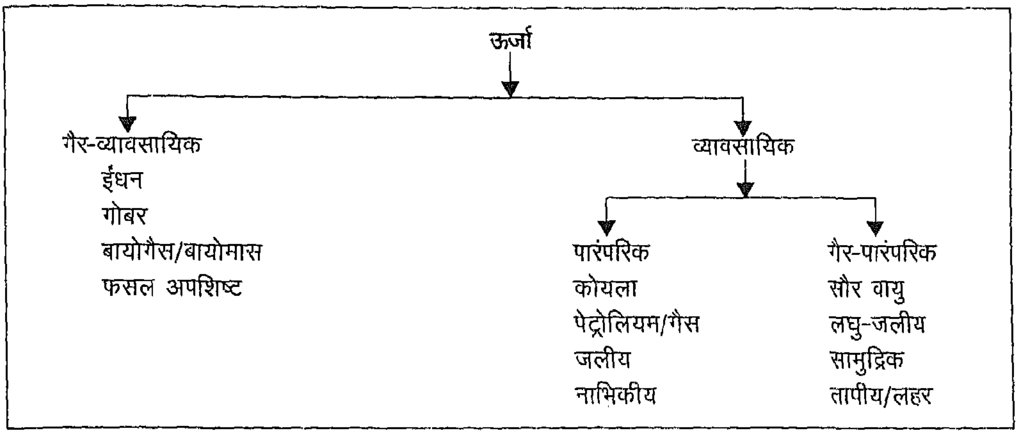
आधारिक संरचना तथा इसके द्वारा प्रदत्त सेवाएँ विकास की गति को बढ़ाने तथा घटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। उच्च कोटि की आधारिक संरचना, जो सक्षम तथा प्रयोगकर्त्ताओं के लिए अल्प-लागत वाली हो, खर्चीली होती है तथा इनकी पक्वनावधि लंबी होती है। इनके विकास के लिए आवश्यक अत्यधिक निवेश इस बात के सूचक हैं कि इसमें सभी क्षेत्रकों की भागीदारी — सार्वजनिक, निजी तथा विदेशी आवश्यक हो सकती है।

कई आधारिक सेवाओं का प्रचालन काफी बड़े पैमाने पर होता है अतः इनका स्वरूप एकाधिकारिक हो जाता है। ऐसी स्थितियों में एक नियंत्रक ढाँचे का गठन किया जाता है चाहे यह संरचना सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में। ये नियंत्रक ऐसे होने चाहिएं जिनका, इन सेवाओं को चलाने या कुशलतापूर्वक न चलाने और/या इनकी कीमतों को लागत से काफी अधिक रखने में कोई निहित स्वार्थ नहीं होना चाहिए।

हमने पहले बताया था कि आधारिक संरचनाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– आर्थिक और सामाजिक। हम यहाँ तीन प्रकार की आर्थिक और दो प्रकार की सामाजिक आधारिक संरचनाओं का वर्णन करेंगे। ये हैं– ऊर्जा, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य तथा शिक्षा।

ऊर्जा

जैसा हमने पिछले अध्यायों में देखा था, उत्पादन प्रक्रियाओं तथा उपभोग क्रियाओं में ऊर्जा एक महत्त्वपूर्ण आगत है। सभी देशों में आधुनिक, आर्थिक विकास ऊर्जा के अत्यधिक प्रयोग से संबद्ध हैं। पिछले पचास वर्षों में जनसंख्या की तीन गुनी से कम वृद्धि के लिए कुल ऊर्जा प्रयोग में चार गुनी वृद्धि हुई है। यह 1953-54 में 90 एम.ओ.टी.ई. (मिलियन टन ऑफ आइल इक्वीवैलेंट/MOTE) से बढ़कर 1996-97 में 375 एम.ओ.टी.ई. हो गई है। परंतु यदि हम केवल व्यावसायिक ऊर्जा की बात करें तो यह 25 एम.ओ.टी.ई. से बढ़कर 250 एम.ओ.टी.ई. हो गयी है– *अर्थात्* इसमें दस-गुनी वृद्धि हुई है। यह स्पष्ट है कि अधिकांश वृद्धि अव्यावसायिक ऊर्जा से व्यावसायिक ऊर्जा में परिवर्तन के कारण हुई है। कुल ऊर्जा उपभोग में व्यावसायिक ऊर्जा का अंश पचास के दशक के आरंभ में 28 प्रतिशत से बढ़कर नब्बे के दशक के अंत तक 66 प्रतिशत हो गया। व्यावसायिक ऊर्जा के प्रयोग में जहाँ दस गुनी वृद्धि हुई है वहीं अव्यावसायिक ऊर्जा के प्रयोग में केवल दो गुनी। हमारा प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग, जो 1953-54 में 0.25 एम.ओ.टी.ई. था, 1953-54 में बढ़कर 0.36 एम.ओ.टी.ई. हो गया। इसे काफी कम मानते हैं। प्राथमिक संसाधनों की सीमित संभावनाओं को



ध्यान में रखते हुए, हमें ऊर्जा की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए जहाँ तक संभव हो सके ऊर्जा का संरक्षण करना चाहिए।

प्राथमिक ऊर्जा संसाधनों तथा अंतिम ऊर्जा संसाधनों के बीच सूक्ष्म अंतर है। जब ऊर्जा उत्पादन में कोयले का प्रयोग तथा उद्योगों के द्वारा ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है तो हम कोयले को प्राथमिक ऊर्जा संसाधन तथा ऊर्जा को अंतिम संसाधन कहते हैं (इस विभेद के अनुसार, लकड़ी जिसे चारकोल बनाकर प्रयोग में लाया गया वह प्राथमिक संसाधन है तथा चारकोल अंतिम संसाधन)। कोयला, पेट्रोलियम उत्पाद तथा प्राकृतिक गैस ये सभी प्राथमिक तथा अंतिम दोनों संसाधन हैं क्योंकि इनका प्रयोग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से होता है, जबकि विद्युत केवल अंतिम संसाधन है। व्यावसायिक ऊर्जा के प्रमुख प्रयोगकर्त्ता हैं– उद्योग (50%), परिवहन (22%), घरेलू प्रयोग (12%), कृषि (9%), व्यावसायिक संस्थान (1%)।

ऊर्जा क्षेत्रक के विकास पर योजना व्यय एक योजना से दूसरी योजना के बीच बढ़ता रहा तथा प्रथम योजना में 20 प्रतिशत से बढ़कर नवीं योजना में 30 प्रतिशत हो गया, केवल दूसरी योजना के अपवाद को छोड़कर, जब यह केवल 12.5 प्रतिशत था। कार्यक्षमता में वृद्धि के साथ सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में ऊर्जा-प्रयोग की लोच में कमी आ रही है।

हम यहाँ केवल विद्युत तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे, क्योंकि यह विनिर्माण उद्योग का प्रधान परिवाहक (Prime mover) है। आज कृषि भी इस पर काफी दूर तक निर्भर है।

विद्युत

विद्युत वास्तविक ऊर्जा है। वर्तमान प्रौद्योगिकी वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में बिजली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करती है। अधिकांश घरेलू कामों में भी इसकी आवश्यकता होती है। कृषि भी अपने कई प्रकार के कार्यों के लिए बिजली पर ही निर्भर है। उद्योगों के बाद, कृषि में बिजली का सबसे अधिक उपभोग होता है। रेल द्वारा अधिकांश माल या यात्री बिजली द्वारा (Electrified) पटरियों से ले जाए जाते हैं। इसे तेल-आधारित (Oil-based) ऊर्जा की तुलना में स्वच्छ ऊर्जा माना जाता है। हमें आर्थिक कीमतों पर भरोसेमंद और उच्च कोटि की विद्युत सेवाओं की आवश्यकता है।

विद्युत-आपूर्ति में कई बार खराबी भी आ जाती है। यद्यपि विद्युत-क्षेत्रक की क्षमता में वृद्धि हुई है फिर भी बिजली की उपलब्धता का अभाव है। जबकि 1996-97 में यह अभाव लगभग 12 प्रतिशत था तथा अब तक का अधिकतम अभाव लगभग 18 प्रतिशत है। इसका मुख्य कारण यह है कि बिजली की माँग इसकी आपूर्ति से अधिक रही है।

संयंत्रों (Plants) के अकुशल परिचालन भी काफी दूर तक इसके लिए जिम्मेदार हैं।

भारत में तीन प्रकार के विद्युत-उत्पादक संयंत्र/कारखाने (Plants) हैं — जल-विद्युत/पन बिजली (Hydro-electric), ताप-बिजली (Thermal) तथा नाभिकीय (Nuclear)। नाभिकीय संयंत्रों में प्रतिष्ठापित क्षमता का 3 प्रतिशत तथा विद्युत-आपूर्ति का 4 प्रतिशत उत्पादित होता है। अपारंपरिक संसाधनों (सौर, गोबर गैस तथा वायु) का प्रयोग करने वाले कारखानों द्वारा नाममात्र की आपूर्ति की जाती है। एक बार यदि बिजली का उत्पादन हो गया तो यह उसी प्रक्रिया द्वारा पहुँचाई जा सकती है। स्थानीय स्तरों पर बिजली डाउनलोड की जाती है (Downloaded) तथा वितरित की जाती है। अतः विद्युत-आपूर्ति के तीन स्तर हैं– उत्पादन, प्रसरण/संचरण (Transmission) तथा वितरण। निजी निवेशकर्त्ताओं के प्रवेश को उत्पादन व वितरण के क्षेत्र में प्रोत्साहित किया जाता है, परंतु प्रसरण/संचरण के क्षेत्र में नहीं।

पिछले पचास वर्षों में हमारी विद्युत-उत्पादन करने की कुल प्रतिष्ठापित क्षमता जो 1500 मेगा वॉट से भी कम थी, बढ़कर 1 लाख मेगा वॉट (1,00,000 MW) से भी अधिक हो गई। वर्तमान क्षमता का 72 प्रतिशत ताप क्षेत्र से तथा 25 प्रतिशत जल-क्षेत्र से प्राप्त होता है। हम प्रतिवर्ष लगभग 4000 मेगा वॉट क्षमता बढ़ा रहे हैं। ऊर्जा के उत्पादन में, वाष्पीय ऊर्जा का योगदान 80 प्रतिशत तथा जल का 16 प्रतिशत। जल-ऊर्जा परियोजनाएँ संग्रहण (भंडारण) सुविधाओं सहित ऊर्जा प्रक्रिया को अधिकतम शक्ति की सहायता प्रदान करती हैं। पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रों में जल-ऊर्जा द्वारा अधिकतम सहायता (Peaking support) की कमी है, अतः वाष्प-संयंत्रों को यह कार्य पूरा करना चाहिए।

केंद्र सरकार, राज्य सरकारें तथा निजी क्षेत्र जल, वाष्प तथा गैस का प्रयोग कर ऊर्जा उत्पादन करती हैं। इसके अतिरिक्त केंद्र के अधीन ऐसे संयंत्र हैं जो नाभिकीय विखण्डन प्रौद्योगिकी (Nuclear fission technology) का प्रयोग करती है। केंद्र सरकार नेशलन थर्मल पावर कारपोरेशन (NTPC), नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कारपोरेशन (NHPC) तथा न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (NPCIL) के द्वारा उत्पादन का कार्य करती है। राज्य सरकारों के अपने राज्य विद्युत बोर्ड हैं। इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल इलेक्ट्रिसिटी ऑथोरिटी तथा सेन्ट्रल इलेक्ट्रिक रेगुलेटरी कमीशन भी है। नीचे हम इन पर विचार करेंगे।

संयंत्र लोड फैक्टर (Plant Load Factor)

किसी ताप संयंत्र की परिचालन क्षमता की जाँच करने के लिए प्लांट लोड फैक्टर नामक सूचक का प्रयोग किया जाता है। यदि कुल क्षमता का लगातार एक वर्ष तक प्रयोग किया जाए, अर्थात् सभी 365 दिनों तक 24 घंटे कुल 72000 × 24 × 365 = 63,07,20,000 मिलियन वॉट घंटे, जो 6,30,720 मिलियन किलो वॉट घंटे या 630 मिलियन KWh के बराबर होता है। प्रौद्योगिक कारणों के लिए कुछ छूटें दी जाती हैं तथा हम

600 बिलियन KWh को अधिकतम उत्पादन मानते हैं। परंतु हम वस्तुतः 400 मिलियन KWh का उत्पादन कर रहे हैं। अतः संयुक्त प्लान्ट लोड फैक्टर लगभग 66 प्रतिशत है।

हालाँकि यदि हम इसकी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों पर ध्यान दें तो हम देखते हैं कि उत्तर पूर्व में 18 प्रतिशत से दक्षिण में 80 प्रतिशत तक हो सकता है। जहाँ उत्तर तथा पश्चिम में यह 72 प्रतिशत है, पूर्व में यह लगभग 50 प्रतिशत है। निजी क्षेत्रक के संयंत्र 75 प्रतिशत हैं, पूर्व में यह लगभग 50 फैक्टर दिखाते हैं तथा केंद्रीय (सरकार) क्षेत्रक में 72-73, परंतु राज्य (सरकार) क्षेत्रक केवल लगभग 64 । विश्लेषणों से पता चलता है कि राज्य तथा केंद्र सरकार समान क्षमता वाले हैं, यदि पूर्व तथा उत्तर-पूर्व के संयंत्रों को छोड़ दिया जाए। परंतु इसका उल्लेख भी आवश्यक है कि हमने हाल के कुछ वर्षों में प्लांट लोड फैक्टर में पर्याप्त सुधार कर लिया है, विशेषकर जब से वाष्प-संयंत्रों का प्रबंधन एन.टी.पी.सी. के अधीन हो गया। परंतु अभी इसमें और सुधार की आवश्यकता है। कोयला-आधारित वाष्प-उत्पादन के बारे में उपलब्ध सूचनाओं से पता चलता है कि कुल प्लांट लोड फैक्टर अभी 70 प्रतिशत के आसपास है।

तेल-आधारित वाष्प संयंत्रों में विशेष तेल का उपभोग नब्बे के दौरान 7.8 मि.ली./KWh से घटकर 5.8 मि.ली./KWh हो गया। नाभिकीय ऊर्जा स्टेशनों में प्लांट लोड फैक्टर 1992-93 में 52 प्रतिशत से बढ़कर 1998-99 में 56 प्रतिशत हो गया।

पावर ग्रिड

चूँकि विद्युत-ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत असमान रूप से वितरित हैं, अतः उत्पादन संयंत्र भी असमान रूप से वितरित हैं। यह आवश्यक नहीं कि उपभोक्ता इन उत्पादक संयंत्रों के निकट ही हों। अतः अधिकतर विद्युत ऊर्जा को काफी दूर तक ले जाना पड़ता है। उत्पादन तथा संचरण का विकास साथ-साथ नहीं हो रहा था। संचरण-लाइनों पर अधिक भार था (कम भार वाले संयंत्रों के लिए भी) जिससे काफी खराबी आ जाती तथा राज्य में यदि कोई अधिशेष (Surplus) होता तो वह भी समाप्त हो जाता। ऐसा सुझाव दिया गया कि संचरण बढ़कर यदि उत्पादन के बराबर करना हो तो इसके लिए इसमें उत्पादन के निवेश के 50 प्रतिशत निवेश की आवश्यकता है। अस्सी के दशक के अंत तक यह केवल 20 प्रतिशत था।

1989 में एक पावर ग्रिड कारपोरेशन की स्थापना की गई। इसमें देश के ऊर्जा संचरण को पाँच क्षेत्रीय ग्रिड़ों में बाँट दिया, यह सभी आपस में समन्वित हैं। इसमें बचत और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय ग्रिड़ों की सहायता से एक राष्ट्रीय ग्रिड स्थापित करने की योजना बनाई गई। 'एक राष्ट्र एक ग्रिड' का सपना 2012 तक पूरा हो सकेगा।

संचरण व वितरण घाटे (T & D Losses)

एक प्रमुख समस्या जिसके विषय में हम प्रायः समाचार पत्रों में पढ़ते हैं, वे संचरण और वितरण के घाटे हैं। इस घाटे का राष्ट्रीय औसत 23 प्रतिशत है तथा कुछ राज्यों में इससे भी अधिक है। दिल्ली में यह 50 प्रतिशत है। घाटा कुल कमी से अधिक है। इस घाटे को यदि बचा लिया जाए तो इससे नई क्षमता पर कम बोझ पड़ेगा। संचरण व वितरण के घाटों का कुछ अंश तकनीकमूलक है तथा कुछ लाइन-कर्मचारियों की सहायता से की गई चोरी व उठाई गिरी। यह सुझाव दिया गया

है कि निजीकरण से वितरण की काफी चोरी रोकी जा सकती है।

बिजली के विभिन्न प्रयोगकर्त्ताओं से अलग-अलग दरों पर प्रशुल्क लिए जाने का प्रचलन है। रेलवे से अधिकतम प्रशुल्क लिए जाते हैं तथा कई राज्यों में किसानों से कुछ भी नहीं लिया जाता है।

ग्रामीण विद्युतीकरण

ग्रामीण विद्युतीकरण का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। मार्च 1996 के अंत तक 5, 87, 288 (सेन्सस 1991) के 85 प्रतिशत में बिजली प्रदान की जाती थी। 13 राज्यों में पूर्ण विद्युतीकरण की योजना थी। परंतु ग्रामीण-विद्युतीकरण को परिभाषित करना ही कठिन है। किसी गाँव को तभी विद्युतीकृत कहेंगे जब उस गाँव की राजस्व सीमा (Revenue boundary) के अंदर हर प्रकार के कार्य के लिए बिजली उपलब्ध हो। अतः गाँव की राजस्व-सीमा के भीतर एक ट्यूब-वेल का कनेक्शन भी गाँव को विद्युतीकृत गाँव का दर्जा दे देगा, भले ही एक भी घर में बिजली न हो या पारिवारिक उद्योग बिना बिजली के चलें। कई तथाकथित विद्युतीकृत गाँवों में ऊर्जा का कनेक्शन माँगे जाने पर उपलब्ध नहीं होता है। अतः अब ऐसा निश्चित किया गया है कि किसी गाँव को तभी विद्युतीकृत कहा जाएगा, जब 'गाँव की राजस्व सीमा के अंतर्गत, लोगों की बस्तियों में किसी भी उद्देश्य के लिए बिजली उपलब्ध हो।'

पम्पसेटों की कुल संख्या दो करोड़ हो गई है परंतु ऊर्जा से चलने वालों की अभी 1.2 करोड़ से अधिक नहीं होगी। जब सरकार को बिजली से चलने वाले पम्पसेटों की कमी है, वहीं यह भी अवश्य बता देती है कि इन पम्पसेटों में ऊर्जा की बहुत अधिक खपत होती है। ऐसा दो कारणों से होता है, एक तो यह कि किसानों से अल्प प्रशुल्क लिया जाता है तथा ऊर्जा द्वारा पम्पसेटों को आरंभ करने से धरती के नीचे के जल का अति शोषण हो सकता है।

हमारे शासकीय/सरकारी गाँव

आप जानते होंगे कि हमारे गाँव राजस्व ग्राम हैं जो कि ऐसे भूमि खण्ड हैं जिनके कुछ भागों में लोगों का निवास हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी गाँव में खेत या अन्य प्रकार की संस्थाएँ हो, परंतु कोई घर या परिवार न हो। ये गाँव बसे हुए नहीं होते हैं। ऐसे गाँवों की संख्या लगभग 50,000 है। एक गाँव में एक से अधिक बसे हुए क्षेत्र या खेड़े (Hamlets) हो सकते हैं, जो एक-दूसरे से सटे हुए न भी हों सकते हैं। खेड़ों की कुल संख्या 10,00,000 से अधिक है। गाँवों की संख्या छः लाख से ऊपर है।

परिवहन

रेल और सड़कें परिवहन के दो प्रकार हैं जिनके द्वारा अधिकांश माल और यात्रियों का यातायात होता है। तटीय नौ-परिवहन तथा अंतःस्थलीय/आंतरिक जल-परिवहन का कुल यातायात में योगदान केवल 2 प्रतिशत है। हमने पहले ही देखा है कि रेल-परिवहन पर्यावरण-संरक्षण हैं। इनमें ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता तथा अधिक सुरक्षित भी होते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय परिवहन-नीति समिति 1980 तथा हमारी योजनाओं में परिवहन क्षेत्र में रेलों की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई। हालांकि तथ्य यह है कि माल-परिवहन में रेलवे का अंश 1950-51 में 90 प्रतिशत से सीधे घटकर 1995-96 में 60 प्रतिशत तथा उसी अवधि में यात्री-परिवहन में 70 प्रतिशत से घटकर 20 प्रतिशत हो गया। अधिकांश विकसित देशों में ऐसा देखा गया है कि रेलवे से यातायात कम हो

रहा है तथा सड़कों और वायुयानों द्वारा यातायात बढ़ रहा है (क्योंकि इनकी स्थिति रेलवे से बेहतर हो गई थी)। परंतु यह परिवर्तन उतना आश्चर्यजनक नहीं था। परंतु महादेशीय आकार के देशों जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन, रूस आदि में रेलवे ने अपनी महत्ता बनाए रखी है।

भारत में रेलवे लाइनों की क्षमता बढ़ाकर इसकी माँग के बराबर करने में पर्याप्त वित्त की कमी का सामना करना पड़ा है। दूसरी ओर, वाहकों ने पूरे देश को सड़कों द्वारा भलीभाँति जोड़ दिया है, आर्थिक सहायता द्वारा डीजल को सस्ता बनाया गया, वाहनों की खरीददारी में बैंकों ने सुविधापूर्वक कर्ज प्रदान किए। प्रायः इसका कारण स्वामित्व बताया जाता है, रेलवे पूरी तरह सार्वजनिक स्वामित्व के अंतर्गत है जबकि सड़क परिवहन, विशेषकर माल परिवहन अधिकांशतः निजी उद्यमियों के हाथों में है। यह एक सापेक्ष दृश्य है, अन्यथा दोनों ही क्षेत्रों में पिछले पचास वर्षों में काफी सुधार हुआ है।

रेल

जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय रेल विश्व में सबसे बड़ा या दूसरा सबसे बड़ा रेल-तंत्र है। यह चारों ओर फैला हुआ एक विशाल तंत्र है जो 63,000 रूट कि.मी. है जिसमें से लगभग 45,000 में, ब्रोड गेज 15,000 कि.मी. में मीटर गेज तथा 3000 रूट कि.मी. में नैरो गेज है। कुल मार्ग का एक चौथाई (ब्रोड गेज का एक-तिहाई) विद्युतीकृत है। विद्युतीकृत मार्ग दो, तीन या कई स्थानों पर चार-चार एक साथ हैं अतः काफी अधिक माल और सवारियों का परिवहन करते हैं। यह कहा जा सकता है कि रेलवे ने देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में एकीकरण की भूमिका निभाई है।

इस तथ्य के बावजूद कि रेलवे कम ऊर्जा का कम उपभोग तथा पर्यावरण संरक्षण में अधिक योगदान देते हैं, परिवहन क्षेत्र में रेल का बाजार अंश कम हो रहा है। इस अंश को बढ़ाने के प्रयास चल रहे हैं। हाल के वर्षों में रेलवे द्वारा कुल निवल टन किलोमीटर 30,000 करोड़ से अधिक का माल तथा 45,000 करोड़ से अधिक यात्री किलोमीटर का परिवहन किया गया। परंतु अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि रेलवे परिवहन सभी भारी कच्चे माल/अयस्क (कोयले एवं पेट्रोल सहित) तथा आवश्यक वस्तुओं जैसे खाद, खाद्यान्न (जहाँ ये उपलब्ध हों) का परिवहन करती है। यह ज्ञातव्य है कि कुछ समय से भारतीय रेलें मीटर गेज लाइनों को बड़ी लाइनों ब्रोड गेज में परिवर्तित कर तथा महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के विद्युतीकरण द्वारा एकल गेज पद्धति नीति का अनुसरण कर रही है। आशा है, सुनहरे चतुर्भुज का विद्युतीकरण समाप्त हो जाए। नई लाइनों के निर्माण से अधिक व्यस्त क्षेत्रों, बहु-विधि लाइनें बनाने की योजना को अब महत्त्व दिया जा रहा है। रेलवे लाइनों की मरम्मत करना तथा उनमें सुधार लाना अति आवश्यक है क्योंकि हमारी लाइनें बहुत पुरानी और पुराने ढंग की हो गई हैं।

15.5 लाख कर्मचारियों के साथ भारतीय रेलवे सार्वजनिक उपक्रमों में सबसे बड़ा नियोजक हो गया है। परंतु यही (परिसम्पत्ति) अब भार स्वरूप प्रतीत हो रहा है क्योंकि मजदूरी बिल, पेंशन की जिम्मेदारियाँ परिचालन व्यय का एक प्रमुख अंग हो गई हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि रेलवे संगठन में कुछ उत्पादक इकाइयाँ भी हैं। ऐसा निश्चय किया गया कि परिचालन से संबंद्ध विभाग जैसे यातायात-व्यावसायिक तथा परिवहन, इंजीनियरिंग मेकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, स्टोर-लोको

सिगनैलिंग तथा टेलीकॉम और एकाउंट आदि) में उनकी क्षमताओं से 1.0 प्रतिशत से अधिक लोग नहीं लिए जाएंगे तथा उत्पादक इकाइयों (जैसे CLW, DLW, WAP, PCF, ICF, DCW आदि) को अपनी क्षमता से 0.5 प्रतिशत से अधिक लोगों को भर्ती करने की अनुमति नहीं मिलेगी।

रेलवे वस्तुतः एक व्यावसायिक उपक्रम है। हालाँकि ये सार्वजनिक क्षेत्रक में है और कोई भी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम से ऐसी आशा नहीं की जाती कि वे केवल लाभ-अभिप्रेरण के साथ ही कार्य करें। उन्हें कई सामाजिक दायित्व भी पूरे करने होते हैं। इन्हें कई प्रकार की आर्थिक सहायताएँ भी मिली हुई होती हैं। माल के परिवहन में, विभिन्न वर्गों के मालों के लिए आर्थिक प्रति-सहायता भी दी जाती है तथा यात्री-क्षेत्रक में, विभिन्न वर्गों के यात्रियों को तथा उपनगरीय व गैर-उपनगरीय क्षेत्रकों के विभिन्न वर्गों के यात्रियों को आर्थिक उप-सहायता दी जाती है। कुछ ऐसी गैर-आर्थिक सेवाएँ हैं जैसे शाखा-लाइनें तथा कुछ उप-नगरीय लाइनें जो सामाजिक हित की दृष्टि से आवश्यक हैं। ऐसे उत्तरदायित्वों की लागत का अनुमान लगभग 4000 करोड़ रु. है।

वित्त की कमी या पुराने ढंग की प्रक्रियाओं के कारण, रेल-सेवाओं की आपूर्ति, मात्रा तथा कोटि दोनों ही दृष्टि से, पीछे हैं। अपनी सीमित क्षमता के कारण, रेलवे ने मूलभूत क्षेत्र के भारी माल ढोने पर अधिक ध्यान दिया तथा अन्य क्षेत्रों (जो भारी नहीं हों) की उपेक्षा की जिससे इसे महत्त्वपूर्ण राजस्व की कमी रही। माल के परिवहन द्वारा यात्री-यातायात को दी गई आर्थिक प्रति-सहायता की सामान्य नीति के कारण माल-वाहन शुल्क काफी बढ़ गए और इसके कारण रेलों द्वारा माल-वहन में कमी आ गई।

रेलवे ने अब यह जान लिया है कि इतने वर्षों में माल-भाड़े को बढ़ाने तथा यात्री-भाड़े को घटाने के कारण माल-वाहन के क्षेत्र में यह काफी महँगा हो गया तथा इससे रेलवे को काफी घाटा उठाना पड़ा। अब यह अपनी भूल का सुधार आर्थिक प्रति-सहायता के स्तर को घटाकर करने का प्रयास कर रहा है। पत्तनों के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने के लिए रेलवे अब निजी-क्षेत्रक की भागीदारी को भी प्रोत्साहन दे रहा है। यह अपनी पार्सल-सेवाओं में भी सुधार का प्रयास कर रहा है।

संक्षिप्त रूपों का विस्तार और उनके कार्य

सी.एल.डब्ल्यू.	– चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, चित्तरंजन (प.बं.), जो विद्युत इंजन बनाती है।
डी.एल.डब्ल्यू.	– डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी (उ.प्र.), जो डीजल इंजन बनाती है।
डब्ल्यू.ए.पी.	– व्हील एण्ड एक्सल प्लांट, येलाहंका (कर्नाटक), जो व्हील और एक्सलें बनाती है।
आर.सी.एफ.	– रेल कोच फैक्टरी, कपूरथला (पंजाब) , जो सभी प्रकार के रेलों के डिब्बे बनाती है, ए.सी. III-टीयर के डिब्बों सहित।
आई.सी.एफ.	– इन्टेग्रल कोच फैक्टरी, चेन्नई (तमिलनाडु), जो ई.एफ.यू., डी.एम,यू. तथा सभी ट्रेनों के एयरकंडीशन कोचों का निर्माण करती है, पैलेस ऑफ व्हील सहित।
डी.सी.डब्ल्यू.	– डीजल कॉम्पोनेन्ट वर्क्स, पटियाला (पंजाब), जो डीजल लोकोमोटिव के पार्ट बनाता है।

रेल मंत्रालय ने 1998 के अंतिम दिन रेलवे पद्धति के अध्ययन तथा इसके पुनर्गठन पर सुझावों के लिए एक विशेषज्ञ दल का गठन किया। इसने रेलवे बोर्ड का निगमन भारतीय रेलवे निगम के रूप में करने का प्रस्ताव दिया है और शुल्क-संरचना को नियंत्रित करने के लिए भारतीय रेल नियमन प्राधिकार (इंडियन रेलवे रेगुलेटरी ऑथोरिटी) की स्थापना का सुझाव दिया।

सड़क व सड़क-परिवहन

भारत में 35 लाख किलोमीटर लंबी सड़कें निर्मित हैं जिनपर 5 लाख सवारी बसें तथा 20 लाख माल-वाहक गाड़ियाँ चलती हैं। यह विश्व के सबसे बड़े सड़क-मार्गों में से एक है परंतु आधुनिक तीव्र गति से चलने वाली गाड़ियों के यातायात की दृष्टि से इसकी गुणवत्ता निम्न कोटि की है। वस्तुतः 50 प्रतिशत से कुछ ही अधिक पक्की सड़कें हैं। प्रति एक करोड़ लोगों में केवल 0.15 कि.मी. पक्की सड़क ही उपलब्ध है। इस दृष्टि से ये ब्राज़ील, थाइलैंड तथा कोरिया के समान तथा बांग्लादेश, नेपाल व श्रीलंका से थोड़ी बेहतर हैं। ब्राजील में 30 प्रतिशत, थाइलैंड में 50 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया में 70 प्रतिशत, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 85 प्रतिशत तथा भारत

राकेश मोहन समिति

रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) ने 31 दिसंबर 1998 को एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया (अध्यक्ष, राकेश मोहन) जिसके निम्नलिखित उद्देश्य थे —

- भारतीय रेलवे के विस्तार तथा विकास कार्यक्रम की वित्तीय आवश्यकताओं का अनुमान लगाने के लिए रेलवे क्षेत्र का अध्ययन करना।
- 15 वर्ष की अवधि के दौरान अनुमानित निवेश के वित्त के लिए स्रोतों की पहचान करना।
- विकसित देशों में रेल-यातायात सुविधाओं की संरचना तथा स्वामित्व के निदर्शों का अध्ययन करना।
- सुव्यवस्थित विस्तार को आगे बढ़ाने, प्रतिस्पर्धा के वांछित स्तर को बढ़ावा देने तथा सुविधाओं की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिए उपयुक्त नियमों का निर्धारण करना। विशेषज्ञ-समूह ने यह पाया कि वास्तविक मजदूरी में वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि की तुलना में बहुत अधिक थी जो रेलवे की वित्तीय समस्या का मुख्य कारण था। इस समिति ने निम्न महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए :

  1. क्षमता में वृद्धि तथा सुविधाओं के आधुनिकीकरण तथा विकास द्वारा वृद्धि की ऊँची दरें प्राप्त करने के साथ ही लागत को कम करने के उपाय ढूंढ़ना।
  2. विकृतियों को दूर करने के लिए माल-भाड़े की संरचना का वैज्ञानिक पुनर्गठन तथा शुल्कों का पुनर्संतुलन करना।
  3. मालगाड़ियों की गति को बढ़ाना, ऊँचे दर्जे की क्षमताओं को बढ़ाना, पहले से चलने वाली गाड़ियों की स्थिति को सुधारना, सिगनल व संचार पद्धति को सुधारना।
  4. भारतीय रेलवे का पुनर्गठन होना चाहिए। भारत सरकार का कार्य केवल नीति-निर्धारण होना चाहिए। भारतीय रेलवे का निगमन भारतीय रेल निगम के रूप में होना चाहिए। शुल्कों के नियम हेतु भारतीय रेल प्राधिकरण की स्थापना होनी चाहिए।

में केवल 20 प्रतिशत पक्की सड़कें अच्छी दशा में हैं।

आधुनिक मोटर परिवहन के साधनों का वर्णन करने से पहले हम मोटरीकृत परिवहन के साधनों की चर्चा करें। हाथ-रिक्शे, साईकिल-रिक्शे, हाथ-गाड़ियाँ (माल व यात्री दोनों), ताँगा, बैलगाड़ी, भैंसे तथा ऊँट तथा माल-वाहक पशु आदि परिवहन के गैर-मोटरीकृत साधन हैं। हमारे यहाँ लगभग 50 लाख साईकिल-रिक्शे (5 लाख बसों और 20 लाख माल वाहक गाड़ियों की तुलना में) तथा 850 लाख भारवाहक पशु हैं जो पर्याप्त माल व यात्रियों का परिवहन कम दूरियों के लिए करते हैं। ये कम खर्चीले, पर्यावरण-संरक्षक तथा प्रौद्योगिकी के मामले में सरल होते हैं परंतु गैर-मोटरीकृत होने के कारण ये प्रौद्योगिकी की गतिहीनता तथा मनुष्यों की दुर्दशा के भी द्योतक हैं।

पिछले अध्याय में आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि हमने अपनी सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्य राजमार्गों तथा अन्य प्रकार के मार्गों में वर्गीकृत किया है। राष्ट्रीय राजमार्ग 58,000 कि.मी. में है तथा राजकीय राजमार्ग 1,58,000 कि.मी. में। राष्ट्रीय राजमार्ग मुख्य मार्ग हैं जो कुल पक्की सड़कों का 4-5 प्रतिशत भाग हैं तथा कुल सड़क-परिवहन की 45 प्रतिशत आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। कुछ वर्षों पहले तक (1996) राष्ट्रीय राजमार्गों की 3-4 प्रतिशत सड़कें, बहु-पथ (Multi-lanes) सड़कें, 75 प्रतिशत मानक द्वि-पद प्रतिशत मानक एकल-पथ (Single lanes) सड़कें थीं। राज्य राजमार्ग बिरले ही बहु-पथ थे और केवल 20 प्रतिशत राज्य राजमार्ग द्वि-पथ थे। केवल 36 प्रतिशत राज्य राजमार्ग एकल-पथ के तथा अन्य 36 प्रतिशत राज्य राजमार्ग निम्न स्तर के थे। कुछ राज्य राजमार्गों पर तो यातायात राष्ट्रीय राजमार्गों की तरह अधिक है। मार्गों को कई पथों में बाँटना या उन पर उपरिपुल बनाना इस बात पर निर्भर करता है कि प्रतिदिन वाहनों की कितनी संख्या (जिसे यात्री कार-इकाइयों के रूप में मापा जाता है) उन पर से होकर गुजरती है।

राष्ट्रीय राजमार्गों के बड़े खण्डों में तथा राज्य राजमार्गों के कुछ खण्डों में उनकी अनुमानित क्षमताओं का शत-प्रतिशत से अधिक प्रयोग हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप गति में कमी, उच्च वाहन-प्रचालन लागत, पर्यावरण-प्रदूषण तथा दुर्घटनाओं की अधिकता आदि दृष्टिगोचर हैं। हाल के कुछ वर्षों में छूटी हुई कड़ियों, उपमार्गों तथा पुलों का निर्माण, टूटी-फूटी सड़कों की मरम्मत, एकल-पक्ष सड़कों का द्वि-पथ में तथा द्वि-पथ का चार-पथ में परिवर्तन/विस्तार आदि हमारे मुख्य कार्यक्रम रहे हैं।

राष्ट्रीय राजमार्गों के दो प्रमुख हिस्से हैं जिन्हें चार-पथ मार्ग बनाने का लक्ष्य है। ये हैं- (i) चारों महानगरों दिल्ली, मुंबई, चेन्नई तथा कोलकाता को जोड़ती हुई 6000 कि.मी. लंबा सुनहरा चतुर्भुज, तथा (ii) उत्तर से दक्षिण में श्रीनगर को कन्या कुमारी से (दिल्ली, झाँसी, बंगलौर से होकर) तथा पूरब से पश्चिम में सिलचर को पोरबंदर से जोड़ने वाला (कानपुर, झाँसी तथा उदयपुर होकर) 7000 कि.मी. लंबा गलियारा। वर्ष 1998 में आरंभ की गई राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना द्वारा सुनहरे चतुर्भुज का कार्य वर्ष 2003 तक तथा दोनों गलियारों के कार्य वर्ष 2007 तक पूरे हो जाने की आशा है।

राष्ट्रीय राजमार्गों के उच्च सघनता वाले गलियारे

दिल्ली-मुंबई : जयपुर, अजमेर, उदयपुर, अहमदाबाद से होकर।

मुंबई-चेन्नई : पुणे, सतारा, बेलगाम, चित्रदुर्ग, बंगलौर से होकर।

चेन्नई-कोलकाता : चेन्नई, विजयवाड़ा, विशाखापट्टनम्, भुवनेश्वर, बंगड़ी पोसी से होकर।

दिल्ली-कोलकाता : आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, बरही से होकर।

ग्रामीण सड़कें

हमारे गाँव राष्ट्रीय/राज्य/जिला मार्गों से भली-भाँति जुड़े हुए नहीं हैं। धन की कमी के कारण सड़क विकास के कार्यों को एक-एक करके हम पहले अधिक जनसंख्या वाले, जैसे 1000/1500 से अधिक जनसंख्या सहित, गाँवों में प्रवेश-मार्गों का निर्माण करेंगे। इस पर आधारित संरचना को प्रोत्साहन देने के लिए, हाल ही में एक प्रधानमंत्री ग्राम सड़क परियोजना की घोषणा की गई है। इसका उद्देश्य 500 से ऊपर जनसंख्या वाले सभी गाँवों को एक अच्छी और हर मौसम के योग्य संयोजक सड़क प्रदान करना है।

जल-परिवहन

जल-परिवहन के तीन घटक हैं– विदेशी व्यापार का 90 प्रतिशत भाग का 11 प्रमुख तथा 139 लघु बंदरगाहों द्वारा नौवहन, कोयले, पेट्रोल, लौह-अयस्क आदि भारी माल का 5560 कि.मी. समुद्री तटीय नौवहन, 15,000 कि.मी. जहाज जाने योग्य जलमार्ग में अंतरदेशीय जल परिवहन जो कुल यातायात का केवल 1 प्रतिशत (टन कि.मी. के रूप में) है।

अंतरराष्ट्रीय नौवहन

हमारे जहाजों द्वारा 90 प्रतिशत से अधिक परिमाण तथा 80 प्रतिशत से अधिक मूल्य के अंतरराष्ट्रीय व्यापार किए जाते हैं, जिनका स्वामित्व 80 कंपनियाँ करती हैं। व्यापार की मुख्य मदें हैं– पेट्रोल, लौह-अयस्क, कोयला, खाद तथा कन्टेनर, जिनका कुल-वजन 200 मिलियन टन है।

तटीय नौवहन

यह लंबी दूरी तक भारी सामान पहुँचाने के लिए बहुत सस्ता तथा अल्प ऊर्जा वाला परिवहन साधन है क्योंकि नौवहन सहायक सामग्रियाँ तथा अंतिम स्टेशन पर उपलब्ध सुविधाओं के अतिरिक्त इनके लिए किसी अन्य अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता नहीं होती। इसके समांतर भूमि परिवहन का यह एक प्रभावशाली वैकल्पिक साधन है। अन्य साधनों की भीड़-भाड़ को कम करने और/या ईंधन-उपभोग की बचत करने के लिए, रेल/सड़क माल-वाहन को पूर्वी तट पर चेन्नई और विशाखापट्टनम के समुद्री मार्ग द्वारा भेजा जा सकता है। समुद्री नौवहन के अंतर्गत वाष्प, कोयले तथा पेट्रोल का व्यापार आता है। दुर्भाग्यवश सीमा-शुल्क की जटिल प्रक्रियाएँ, अंतरराष्ट्रीय स्तर का उच्च तथा छोटे बंदरगाहों पर निम्न कोटि की आधारिक संरचनाओं की उपलब्धता ने जहाजों के मालिकों को विस्तृत रूप से इस कार्य को करने से हतोत्साहित किया है, यद्यपि पूरा तटीय-नौवहन केवल भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित है।

अंतरदेशीय जल परिवहन

यह भारी सामग्रियों के लिए एक सस्ता और ऊर्जा की कम खपत वाला परिवहन साधन है, यदि यह

समुद्र में किसी विशेष स्थान तक ही आना-जाना करे। यद्यपि भारत के पास 14544 कि.मी. जहाज चलाने योग्य जल-मार्ग उपलब्ध है, परंतु केवल मशीनीकृत जहाजों के लिए मुख्य नदियों पर 5200 कि.मी. तथा नहरों पर 500 कि.मी. उपयुक्त हैं। शुष्क मौसम में पानी कम हो जाने से चौड़ाई भी कम हो जाती है। किनारों का कटाव, नदी की तलछटी में मिट्टी जमा होना (अपरदन), निम्न कोटि की अंतिम स्टेशन संबंधी सुविधाएँ तथा जहाज चलाने संबंधी सहायक सामग्रियों की कमी इसे और भी कठिन बना देती हैं।

1967 में इस क्षेत्रक की देख-भाल के लिए एक केंद्रीय अंतरदेशीय जल परिवहन कारपोरेशन लिमिटेड की स्थापना की गई। इसे हमेशा घाटे हो रहे हैं जबकि गोवा और कोलकाता में कुछ निजी परिचालकों ने इसमें महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। 1986 में भारतीय अंतरदेशीय जलमार्ग प्राधिकरण की स्थापना जल-मार्ग के विकास संबंधी विभिन्न केंद्रीय योजनाओं को कार्यान्वित व समन्वित करने के लिए की गई। इसके अंतर्गत तीन राष्ट्रीय जल-मार्गों की घोषणा के अतिरिक्त और कोई विशेष बात नहीं हुई। एक मत यह भी है कि अंतरदेशीय जल-यातायात को तटीय-नौवहन के साथ समन्वित कर दिया जाए। एक ओर पाँच बड़े बंदरगाहों को समुद्री नौवहन के साथ तथा दूसरी ओर अंतरदेशीय जलमार्गों के साथ आसानी से समन्वित किया जा सकता था।

नागरिक विमान उड्डयन

नागरिक विमान उड्डयन विभाग के तीन अंग हैं– संक्रियात्मक, आधारिक संरचनात्मक तथा विकासात्मक। पहला संक्रियात्मक है। देशीय वायु-सेवाएं इंडियन एयरलाइंस लिमिटेड के द्वारा प्रदान की जाती हैं। कुछ प्राइवेट एयरलाइंस भी हैं, जिनमें से कुछ अनुसूचित हैं (जैसे सहारा-इंडिया तथा जेट एयर लाइंस) तथा कुछ गैर-अनुसूचित (लगभग 35) जो इन सेवाओं को प्रदान करते हैं। लगभग 150 लाख यात्रियों के साथ घरेलू यातायात इंडियन एयरलाइंस तथा प्राइवेट परिचालकों के बीच समान रूप से विभाजित हैं। पवन हंस हेलीकॉप्टर्स लिमिटेड क्षेत्रों (ONGC तथा OIL) को राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों को, सर्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों को तथा निजी-क्षेत्र कंपनियों को हेलीकॉप्टर सहायता सेवाएँ प्रदान करती है तथा उत्तर-पूर्वी प्रदेशों के सुदूर स्थानों को जोड़ती है। अंतरराष्ट्रीय वायु सेवाएँ एयरइंडिया लिमिटेड तथा कई अन्य विदेशी एयर लाइनों के द्वारा चलाई जाती हैं। कुछ अंतरराष्ट्रीय सेवाएँ भी इंडियन एयरलाइंस द्वारा चलाई जाती हैं।

दूसरा आधारिक संरचनाओं से संबद्ध है। भारतीय एयरपोर्ट प्राधिकरण के अंतर्गत 92 एयर-पोर्ट हैं जिनमें से दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई तथा तिरुवनंतपुरम् स्थित पाँच अंतरराष्ट्रीय एयर-पोर्ट तथा सैनिक एयर पोर्ट के 28 सिविल एन्क्लेव भी शामिल हैं।

तीसरा नियामक तथा विकासात्मक कार्यों से संबंद्ध है। नागरिक उड्डयन विभाग, भारत सरकार, इसके लिए उत्तरदाई है। यह एक नई नागरिक उड्डयन-नीति की योजना बना रहा है। भारत सरकार इंडियन एयरलाइंस तथा एयर इंडिया के अपने कुछ शेयरों को बेच चुकी है। यह बंगलौर, हैदराबाद तथा गोवा में नए अंतरराष्ट्रीय एयर पोर्ट भी स्थापित करने की योजना बना रही है।

संचार

आधुनिक जीवन में संचार के महत्त्व को हम नहीं नकार सकते हैं। इसका महत्त्व तब से बढ़ने लगा जब से परिवार के सदस्य एक दूसरे से दूर अलग-अलग जगहों पर रहने लगे और विभिन्न उद्देश्यों के लिए विनिर्माण तथा बाजार केंद्र बन गए। संचार का प्रयोग लोगों तथा वस्तुओं के परिवहन के स्थान पर या इनके सहायक के रूप में किया जाता है। काफी समय से पैसे व संदेशों को भेजते हुए, सर्वव्यापक डाक व्यवस्था द्वारा यह कार्य किया गया। बाद में, भौतिक आवागमन की आवश्यकता कम हो गई और इसके स्थान पर टेली पद्धति द्वारा संचार सरल और द्रुत हो गया। टेलीग्राफ, टेलीफोन, टेलेक्स, टैलीफैक्स तथा ई-मेल में धीरे-धीरे विकास हो रहा है तथा महत्त्वपूर्ण तकनीकमूलक विकासों के कारण इनमें काफी सुधार भी हो रहा है। परंतु, टेलेक्स तथा टेलीग्राफ का चलन धीरे-धीरे कम हो रहा है।

डाक-संचार

संचार के नए माध्यमों के प्रचलन के बावजूद डाक-घरों के महत्त्व कम नहीं हुए। हमारी डाक-व्यवस्था संसार में सबसे बड़ी है। नई शताब्दी के आरंभ में हमारे देश में लगभग 1,55,000 डाक-घर हैं जिनमें से 1,40,000 छोटे हैं और ग्रामीण इलाकों में हैं। औसतन, हमारे प्रत्येक डाकघर 21 वर्ग कि.मी. में 5500 लोगों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। परंतु कुछ इलाकों में ये सेवाएँ अपर्याप्त हैं। हम नए डाकघरों, उप डाकघरों या शाखा डाकघरों को खोलना आवश्यक मानते हैं। वर्ष 2000-01 में लगभग 400 डाकघर खोले गए । लागत कम करने तथा लोगों को बेहतर सेवाएँ प्रदान करने के लिए, 2000 पंचायत संचार सेवा केंद्रों के शीघ्र खोले जाने की संभावना है।

काफी समय से डाक-सेवाओं का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। स्पीड-पोस्ट, बिजनेस पोस्ट, एक्सप्रेस पार्सल पोस्ट, मीडिया पोस्ट, बधाई पोस्ट, डाटा पोस्ट तथा स्पीड पोस्ट पासपोर्ट सेवाएँ शुरू की गईं। ग्रामीण सुदूर क्षेत्रों को शेष विश्व से जोड़ने के विचार से 2001 में पाँच राज्यों आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल तथा गोवा में ई-पोस्ट आरंभ किया गया। मनीऑर्डर भेजने की गति और मात्रा में सुधार लाने के विचार से डाक-विभाग द्वारा 1550 डाकघरों को जोड़ते हुए 140 वी.एस.ए.टी. स्थापित किए गए। ये एक महीने में एक मिलियन मनीऑर्डर से अधिक भेजते हैं।

दूर संचार

निस्संदेह आज दूर संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है तथा भविष्य में इसका महत्त्व और अधिक बढ़ेगा क्योंकि हम भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व-अर्थ व्यवस्था के साथ समन्वित करने का प्रयास कर रहे हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने दूर संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की स्थापना की है जिसके तीन विभाग हैं– दूर संचार, सूचना प्रौद्योगिकी एवं डाक।

नब्बे के दशक में तथा विशेष रूप से 1995 से दूर संचार के क्षेत्रक में काफी प्रगति हुई है। दूर-संचार विभाग में अंतर्गत दो निगमों, भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL) तथा महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड़ (MTNL) तथा दो दर्जन से अधिक निजी क्षेत्रक कंपनियों द्वारा कनेक्शन प्रदान किए जा रहे हैं। जहाँ महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, जो काफी दिनों से है, दो महानगरों

दिल्ली तथा मुंबई में सेवाएँ प्रदान करता है। भारत संचार निगम लिमिटेड अभी हाल ही में आरंभ हुआ है। इन दोनों निगमों के अंतर्गत 32500 से अधिक एक्सचेंज हैं जिनकी क्षमता 4.25 करोड़ लाइनों की है। सार्वजनिक क्षेत्रक निजी क्षेत्र दोनों ही स्थाई लाइनें तथा सेल्युलर लाइनें दोनों प्रदान करती हैं। वर्ष 2001 में अंत तक, कुल चार करोड़ कनेक्शन थे जिसमें से 55 लाख सेल्युलर (12-13 प्रतिशत) थे। 1400 नगरों/शहरों में ही सेल्युलर मोबाइल सुविधा उपलब्ध है। सूक्ष्म तरंग संरचना, 2 लाख किलोमीटर तथा प्रकाशीय फाइबर संरचना (2.5 लाख किलोमीटर) के प्रयोग बढ़ रहे हैं। हस्तचालित वायरलेस (WLL वायरलेस-लोकल-लूप) संरचना का प्रयोग भी बढ़ रहा है।

देश भर में 10 लाख पी.सी.ओ. कार्य कर रहे हैं। अतः प्रति 1000 जनसंख्या में एक पी.सी.ओ. है। शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात केवल 300 है। अभी देश के 6 लाख गाँवों में से 4.28 लाख गाँवों में प्रति गाँव एक सार्वजनिक टेलीफोन है। ऐसी आशा है कि निजी क्षेत्र की कंपनियों के सहयोग से दिसंबर 2002 तक प्रत्येक गाँव में एक टेलीफोन हो जाने की आशा है।

पहले 1994 की टेलीफोन नीति के अनुसार, निजी कंपनियों को निर्धारित शुल्क के आधार पर लाइसेंस दिए जाते थे। नई टेलीकॉम नीति 1999 के अनुसार, निजी कंपनियाँ राजस्व का बँटवारा कर इसे पहले ही भुगतान कर देंगी। उपभोक्ताओं को प्रचालन लागत में छूट की सुविधा देने के लिए, लंबी दूरी के कॉल के दरों में पर्याप्त कमी हो गई है।

टेलीफोन लाइनों तथा मॉडेल युक्त कम्प्यूटरों द्वारा इंटरनेट सेवाएँ, ई-मेल व वेब साइट की सुविधाएँ बढ़ी हैं।

शिक्षा

मानव संसाधन, जो हमारी आर्थिक एवं अन्य सामाजिक क्रियाओं के आवश्यक आगत हैं, के विकास में शिक्षा की भूमिका सर्वविदित है। जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ पोषण-स्तर में सुधार, बेहतर सफाई, शिशु मृत्यु-दर में कमी, जीवन-प्रत्याशा में सुधार, जन्म-नियंत्रण विधियों के अधिक प्रचलन द्वारा प्रकट होता है। यह उत्पादन तथा नवप्रवर्तनों (शोध एवं विकास क्रियाओं की सहायता से) से वृद्धि द्वारा आर्थिक विकास में भी योगदान देता है।

आप जानते होंगे कि हमारे संविधान ने राष्ट्र को 1960 तक 14 वर्ष से कम के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया था। आप यह भी जानते होंगे कि हम आज भी अपने सभी बच्चों का विद्यालयों में नामांकन नहीं करा पाए हैं। आप इसका भी हिसाब लगा सकते हैं कि जो लोग 1960 में बच्चे थे, अब वृद्ध हैं अर्थात् 55 वर्ष से ऊपर के । अतः 1950 तथा 1960 के दशक के काफी भोले-भाले बच्चे आज अशिक्षित माता-पिता या दादा-दादी/नाना-नानी बन चुके हैं। सरकार ने इन माता-पिताओं को वयस्क साक्षरता कार्यक्रम के माध्यम से भी शिक्षित करने की चेष्टा की, परंतु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

हमारी शिक्षा नीतियों ने जो 1966 तथा 1986 में बनी थी, शिक्षा के सभी क्षेत्रों में विकास एवं सुधार का पुनर्निर्देश तथा शिक्षा प्राप्त करने में ग्रामीण-शहरी या पुरुष-महिला विभेद को समाप्त करने का सुझाव दिया। इसका तात्पर्य था — (क) 6-14 आयु-वर्ग के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना, (ख) निरक्षरता का पूरा निवारण करना, (ग) शिक्षा का व्यावसायी-

करण करना, तथा (घ) महिलाओं, पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले का समर्थन करते हुए लोकसभा ने संविधान का 93वाँ संशोधन विधेयक पारित किया जिसके तहत 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को उनका मौलिक अधिकार बनाया गया तथा अपने बच्चों को अवसर प्रदान करना माता-पिता/अभिभावक का मौलिक कर्त्तव्य। परंतु, सरकार यह मानती है कि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा के एक सशक्त सामाजिक आन्दोलन के अभाव में इसकी सफलता सीमित होगी।

1993 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा संचालित छटे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार, 94 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 83 प्रतिशत ग्रामीण को 1 कि.मी. की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय तथा 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 76 प्रतिशत ग्रामीणों को उच्च-माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध हैं। ऐसा माना जाता है कि पिछले वर्षों में इनकी उपलब्धता में सुधार आया होगा। अभी हमारे यहाँ लगभग 6,50,000 प्राथमिक विद्यालय, लगभग 2,00,000 उच्चतर प्राथमिक विद्यालय तथा 1,16,000 माध्यमिक विद्यालय हैं, जो 1950-51 में 2,10,000 (प्राथमिक विद्यालय) 13,600 (उच्चतर प्राथमिक विद्यालय) तथा 7400 (माध्यमिक विद्यालय) थे। अभी हमारे यहाँ लगभग 300 विश्वविद्यालय हैं, 12,000 महाविद्यालय हैं, जिसमें से 1500 सिर्फ महिलाओं के लिए हैं तथा कई ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो मान्यता प्राप्त नहीं हैं, विशेषकर उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में।

अब हम विद्यार्थियों की कुल संख्या की थोड़ी जानकारी लें। इन दिनों प्राथमिक स्कूलों में नामांकित लड़के और लड़कियों की संख्या 11.0 करोड़ से ऊपर तथा उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में 4.2 करोड़ से ऊपर है। लगभग 2.8 करोड़ विद्यार्थी उच्च/उच्चतर माध्यमिक/इंटर/प्रीडिग्री विद्यालयों और महाविद्यालयों में नामांकित हैं। 18 करोड़

सारणी 11.1
सकल नामांकन अनुपात

(प्रतिशत में)

	प्राथमिक (I-V)		*उच्चतर प्राथमिक (VI-VIII)*		*प्रारंभिक (I-VIII)*	
वर्ष	*लड़के*	*लड़कियाँ*	*लड़के*	*लड़कियाँ*	*लड़के*	*लड़कियाँ*
1950-51	60.6	24.8	20.6	04.6	46.4	17.7
1960-61	82.6	41.4	33.2	11.3	65.2	30.9
1970-71	95.5	60.5	46.5	20.8	75.5	44.4
1980-81	95.8	64.1	54.3	28.6	82.2	52.1
1990-91	114.0	85.5	76.6	47.0	100.0	70.8
1999-00	104.1	85.2	67.2	49.7	90.1	72.0

स्रोत : *चयनित शैक्षिक आँकड़े, 1999-2000, शिक्षा-विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।*

विद्यार्थी विद्यालयी शिक्षा के किसी-न-किसी वर्ग/स्तर में पढ़ रहे हैं। आठवें वर्ग तक विद्यार्थियों की कुल संख्या 16 करोड़ है जबकि 6 से 14 आयु-वर्ग में 20 करोड़ की जनसंख्या है। अतः लगभग 80 प्रतिशत बच्चे 90 प्रतिशत लड़के तथा 70 प्रतिशत लड़कियाँ, विद्यालय जा रहे हैं। 1980-81 में विद्यालय छोड़ने वाले लड़कों की संख्या प्राथमिक स्तर पर 55 प्रतिशत तथा उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 68 प्रतिशत थी जो 1999-2000 में घटकर क्रमशः 40 प्रतिशत से कुछ कम तथा 50 प्रतिशत से कुछ अधिक हो गई। विद्यालय छोड़ने वाली लड़कियों की संख्या जो 1980-81 में प्राथमिक स्तर पर 65 प्रतिशत तथा उच्चतर प्राथमिक स्तर पर लगभग 80 प्रतिशत थी, घटकर 1999-2000 में क्रमशः 40 प्रतिशत तथा 55 प्रतिशत हो गई। अतः यद्यपि इनकी संख्या में कमी आई है, फिर भी अभी यह काफी अधिक है। वस्तुतः पहली कक्षा में नामांकित होने वाले विद्यार्थियों में मुश्किल से 60 प्रतिशत विद्यार्थी पाँचवीं कक्षा तक पहुँचते हैं।

महिलाओं का सकल नामांकन अनुपात उस आयु वर्ग के पुरुषों के नामांकन अनुपात की तुलना में काफी कम हैं परंतु पुरुषों तथा महिलाओं के नामांकन अनुपात के बीच अंतर में काफी कमी आई है (देखें सारणी 11.1)।

किसी भी प्रक्रिया में आगतों से अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम होते हैं, परंतु आगतों के महत्त्व को भी नकारा नहीं जा सकता। यह तो देखना ही है कि हमारी शिक्षा पद्धति हमें क्या दे रही है, परंतु साथ ही यह भी देखना है कि हम इस दिशा में कितना प्रयास कर रहे हैं? इन प्रयासों को हम शिक्षा में हुए मौद्रिक व्यय के रूप में माप सकते हैं। सरकार–केंद्र तथा राज्य दोनों 45,000 करोड़ रु. से अधिक व्यय कर रही है, जिसमें से लगभग 40,000 करोड़ योजनेत्तर राजस्व व्यय तथा 5,000-6,000 करोड़ योजना-व्यय। परंतु यह हमारे सकल देशीय उत्पाद के 3.8 प्रतिशत से अधिक नहीं है। यह काफी कम माना जाता है क्योंकि पिछले 35 वर्षों से भारत सरकार सकल देशीय उत्पाद का 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष खर्च करने के वायदे कर रही है। सभी सरकारों के कुल योजना व्यय में से शिक्षा पर व्यय जो तृतीय योजना में 7.0 प्रतिशत था छठी योजना में घटकर 2.7 प्रतिशत हो गया। नवीं योजना में बढ़कर लगभग छः प्रतिशत हो गया। राज्य सरकारों के प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए केंद्र सरकार निम्न प्रयास करती है– (i) विद्यालय आधारित संरचना में सुधार के लिए ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड का कार्यक्रम जिसमें अतिरिक्त शिक्षक भी शामिल हैं, (ii) पोषण सहायता के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यार्थियों को मध्य-दिवस भोजन प्रदान करने का कार्यक्रम, (iii) शिक्षा के न्यूनतम स्तर का कार्यक्रम, जिसमें भाषाओं, गणित तथा पर्यावरण-अध्ययन में योग्यता के विकास कार्यक्रम भी हैं, (iv) डी.पी.ई.पी./बी.ई.पी./यू.पी.ई.पी., (v) अनौपचारिक शिक्षा, (vi) महिला सशक्तिकरण के लिए महिला-समाख्या आदि।

स्वास्थ्य

पिछले पचास वर्षों में निःसंदेह स्वास्थ्य सुविधाओं में विकास हुआ है। मृत्यु-दर, जो 1951 में लगभग 25-27 थी, वर्ष 2000 में घटकर 9 से कम हो गई है। इसी अवधि में शिशु मृत्यु-दर 145 से घटकर आधी अर्थात् 70 तथा बच्चों की मृत्यु-दर 57 से घटकर 22 हो गई। परिणामस्वरूप, जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा उसी अवधि में लगभग 36-37 वर्षों से बढ़कर 61-62 वर्ष हो गई। अब

औसत रूप से महिलाएँ पहले की तुलना में तीन वर्ष अधिक जीवित रहने लगी हैं।

परंतु बीमारियों की समस्या अभी भी बनी हुई है। अभी भी काफी संक्रामक-बीमारियाँ फैलती हैं — तथा मृत्यु व रुग्णता का कारण बनती हैं, परंतु उनके प्रभाव-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कमी आई है।

जानपदिक रोगविज्ञान परिवर्तन

जब जनसंख्या की जीवन-प्रत्याशा में सुधार होता है तो संक्रामक और असंक्रामक बीमारियों के सापेक्ष प्रभाव-क्षेत्र में परिवर्तन होता है। पहले, इस परिवर्तन के आरंभिक काल में संक्रामक बीमारियाँ, मृत्यु और रोग का प्रमुख कारण थीं तथा परिवर्तन के बाद इनका कारण असंक्रामक बीमारियाँ हो गई हैं।

यह सत्य है कि शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधारिक संरचना का निर्माण किया गया है। परंतु इसमें तीन कमियाँ हैं। पहला, वर्तमान संस्थाओं और जनसाधनों का वितरण असमान है। दूसरा, कर्मचारियों की संख्या तथा आधारिक संरचनाएँ एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं। तीसरा, उपयुक्त परामर्श पद्धति की भी कमी है।

मलेरिया, कालाज़ार, तपेदिक, कुष्ठरोग, अंधापन तथा एच.आई.वी./एड्स आदि बीमारियों के उपचार के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम हैं। कुल योजना व्यय का 3 प्रतिशत चिकित्सा सहायता, जन स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन क्रियाओं में लगता है।

अभ्यास

1. विकास में आधारभूत संरचना का महत्त्व बताएँ।
2. हमें आधारभूत संरचना के लिए निजी, सार्वजनिक तथा विदेशी तीनों क्षेत्रों के सहयोग की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
3. आधारिक-संरचना के क्षेत्र में सेवा प्रदान करने वाले तथा सरकार के बीच हमें स्वतंत्र-नियंत्रक प्राधिकरणों की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
4. स्वतंत्रता के समय से भारत में ऊर्जा के कुल तथा प्रतिव्यक्ति उपभोग तथा ऊर्जा संगठन के संसाधनों में परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
5. अंतर स्पष्ट करें — (i) प्राथमिक तथा अंतिम संसाधन, (ii) व्यावसायिक तथा गैर-व्यावसायिक संसाधन, (iii) परंपरागत तथा गैर-परंपरागत संसाधन।
6. विद्युत की आपूर्ति के लिए आवश्यक तीन सेवाओं की भूमिका की व्याख्या कीजिए? क्या ये अलग-अलग हाथों में होनी चाहिए? अपने उत्तर की पुष्टि करें?
7. ऊर्जा सृजन के तीन मौलिक संसाधन क्या हैं?
8. प्लांट लोड फेक्टर (Plant load factor) से आप क्या समझते हैं? इसे किस प्रकार सुधारा जा सकता है?
9. विद्युत के संचालन के लिए हमें ग्रिड की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

10. संचालन तथा वितरण हानियों से आप क्या समझते हैं। इनको कैसे क्रय किया जा सकता है?
11. सड़क तथा रेल परिवहन के मध्य यातायात की चर्चा कीजिए? ,
12. सड़क क्षेत्र की उपलब्धियाँ रेलवे से अच्छी कैसे हैं?
13. रेल मार्गों के विद्युतीकरण तथा रेल पटरियों के समानीकरण (Gauge Unification Programme) कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए तथा बताएँ कि ये हमें किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?
14. रेलों द्वारा ढोई जाने वाली प्रमुख मदें क्या हैं?
15. रेलों में कार्यशील श्रम-शक्ति का आकार क्या है? ये एक उत्तरदायित्व कैसे बन गए हैं?
16. यह तर्क दिया जाता है कि माल यातायात यात्रियों के लिए, उच्च वर्ग के यात्री निम्न वर्ग के लिए तथा गैर-उपनगरीय यात्री उपनगरीय यात्रियों के लिए भुगतान कर रहे हैं। अपना दृष्टिकोण दीजिए?
17. रेलों को यातायात में अपनी प्रतिभागिता बढ़ाने के लिए क्या उपाय करने चाहिए?
18. भारत में रेलों का नया प्रारूप कैसा होना चाहिए?
19. भारत में सड़कों के जाल तथा इसकी दशा पर चर्चा कीजिए?
20. राष्ट्रीय राजमार्गों के महत्त्व का मूल्यांकन आप कैसे करेंगे?
21. ग्रामीण सड़क यातायात व्यवस्था के संबंध में आपका मूल्यांकन क्या है?
22. जल परिवहन के तीन साधन क्या हैं?
23. अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अंतःसमुद्रीय-जहाज़रानी के सहयोग का वर्णन करें?
24. अंतरदेशीय जल यातायात का भविष्य आपको कैसा दिखाई देता है?
25. तटीय जहाजरानी, सड़कों/रेलों के यातायात में भीड़-भाड़ को कम करने में क्या भूमिका निभा सकती है? एक उदाहरण दीजिए?
26. संचार तथा यातायात के बीच क्या संबंध हैं?
27. डाक-संचार व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए?
28. दूरभाष सेवा की मुख्य प्रवृत्तियों पर चर्चा कीजिए?
29. आर्थिक विकास में शिक्षा का क्या महत्त्व है?
30. प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में संवैधानिक प्रावधानों तथा हाल में इस संबंध में किए गए संवैधानिक संशोधनों की चर्चा कीजिए?
31. लिंग के आधार पर नामांकन की मात्रा तथा विद्यालय बीच में छोड़ने वालों की मात्रा का वर्णन करें?
32. प्रारंभिक शिक्षा के लिए प्राथमिक रूप से उत्तरदायी राज्यों की सहायता करने वाले संघ सरकार के प्रमुख कार्यक्रम क्या हैं?
33. स्वास्थ्य कार्यक्रमों में प्रगति की चर्चा कीजिए?

अध्याय 12

कुछ उभरते प्रश्न

परिचय

कुछ समय से कई प्रश्न मुख्य चुनौतियों के रूप में उभर रहे हैं। यहाँ हम उनमें से केवल तीन पर चर्चा करेंगे– पर्यावरण, लिंग और प्रवसन।

पर्यावरण

विकास का संबंध सामान्यतः प्राकृतिक संसाधनों के अवशोषण (Under-exploitation) से रहा है। यह नहीं समझा गया कि अवशोषण का भय अधिशोषण (Over-exploitation) में परिणित हो सकता है। हमने ऐसा मान लिया था कि प्राकृतिक संसाधनों का परिमाण यदि असीमित नहीं तो विशाल अवश्य है। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि वर्तमान प्रौद्योगिकी सुपरिणामों (जैसे बिजली, यातायात की सुविधाओं) के साथ इसके दुष्परिणाम (जैसे धुआँ) भी हैं। हम कई प्रकार की अवक्रमण-योग्य (Degradable) वस्तुओं का उत्पादन भी कर रहे हैं। संक्षेप में, हम प्रकृति पर इसकी उत्पादक व स्वांगीकारी (Assimilitative) क्षमता से अधिक दबाव डाल रहे हैं। इसका उत्तरदायित्व बढ़ती हुई जनसंख्या (अविकसित देशों में), प्रचुर मात्रा में किए गए उपभोग (विकसित देशों में), तथा प्रौद्योगिकी के दुरुपयोग (सभी जगहों पर) हैं। कुछ लोग पर्यावरण-संबंधी समस्याओं, जैसे वनों के कटाव की जिम्मेदारी गरीबों पर डालते हैं, न कि उनकी गरीबी पर। कुछ लोग इसके लिए विकास की दोषपूर्ण योजना को दोषी ठहराते हैं।

हम पर्यावरण संबंधी मुद्दों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं। पहले का संबंध अधिकांशतः शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्रों के पर्यावरण-संबंधी मुद्दों से है। दूसरे का संबंध संसाधनों जैसे कृषि, वानिकी, पशुधन तथा जैविक विविधता के साथ है। इन पर नीचे हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रदूषण संबंधी विषय

प्रदूषण का तात्पर्य भी माध्यम के उन तत्त्वों से है जिनमें वे वर्तमान होते हुए भी उनके लिए बाह्य होते हैं। इन तत्वों का पर्याप्त विलयन (Dissolve) नहीं हो पाता और ये प्राणि-जगत् म प्रदूषण पैदा करते हैं। ये वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं।

वायु-प्रदूषण

भारत में 35 नगर हैं जिनकी जनसंख्या एक मिलियन से अधिक है। उनमें से अधिकांश में चारों ओर व्याप्त रहने वाली वायु के प्रदूषण का स्तर **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (WHO) द्वारा निर्धारित स्तरों से अधिक हो गया है। बढ़ता हुआ ऊर्जा-उपभोग, औद्योगीकरण, यातायात के साधनों की बढ़ती

हुई संख्या तथा कूड़ों के ढ़ेर को जलाने से इन शहरों की वायु की गुणवत्ता और खराब होती जा रही है। अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर, कोलकाता, मुंबई तथा नागपुर आदि नगर प्रदूषण से अत्यधिक प्रभावित हैं।

कुछ गैसों की अत्यधिक उपस्थिति तथा हवा में अस्थिर दशा में टँगे हुए तत्वों के कण (एस.पी.एम.) वायु को प्रदूषित करते हैं। वायु ही मनुष्यों एवं सभी प्राणियों के लिए आक्सीजन पहुँचाने का स्रोत है, अतः दूषित वायु के कारण ये कई प्रकार की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं जिनसे उनके कार्यों पर तथा उनके खाली समय (Leisure) पर भी काफी बुरा असर पड़ता है। CO, CO_2, NO_2, SO_2 आदि गैस और ओज़ोन तथा हवा में अस्थिर दशा में टँगे हुए कण, जिसमें लीड कण भी शामिल हैं, प्रमुख प्रदूषक हैं जो बीमारियों और मृत्यु के कारण होते हैं। इन बीमारियों में प्रमुख हैं– श्वास-संबंधी रोग, हृदय की रक्त-वाहक नलियों से संबंधित बीमारियाँ, उच्च रक्तचाप, दमा, आँखों के कष्ट तथा मानसिक समस्याएँ।

इन बीमारियों के कारण अस्वस्थता हो जाती है जिससे व्यक्तियों के कार्य की क्षति होती है तथा समाज में कुल उत्पादन में कमी होती है और इसके अतिरिक्त इनके इलाज में व्यक्तिगत/सामाजिक व्यय तो होता ही है। अतः वे लोग, जो ब्रेड बनाने का कार्य कर सकते थे, 'चेम्प्राक्स' बनाने का कार्य करने लगते हैं (चेम्प्राक्स असली दवा नहीं है बल्कि यह शब्द उन बेकार क्रियाओं को दर्शाने के लिए बनाया गया है जिनमें हम अपनी गलत गतिविधियों के कारण या अपर्याप्त सावधानी के कारण फँस जाते हैं)। कई प्रकार की दवाएँ बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती यदि प्रदूषण के कारण कई तरह की बीमारियाँ न होतीं। मृत्यु ही एक बड़ी कीमत है। ये समस्याएँ भारत जैसे देश के लिए भयंकर हो जाती हैं जहाँ सामान्य पोषण-स्तर ही बहुत नीचे है। इनसे बचने की कीमत इनके परिणामों को भुगतने की कीमत से काफी कम होगी।

जल-प्रदूषण

ऐसा कहा जाता है कि शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में धरती की सतह के ऊपर और इसके नीचे का जल इतना दूषित है जो मनुष्यों के उपभोग की दृष्टि से अनुपयुक्त है। डायरिया ट्रैकोमा, पेट में कीड़े, पीलिया आदि पानी की गन्दगी, सफाई तथा स्वच्छता की कमी के कारण होते हैं। भारत में दस प्रतिशत बीमारियाँ तथा बीस प्रतिशत संक्रामक बीमारियाँ दूषित जल के कारण होती हैं। शिशु मृत्यु (Infant mortality) के अधिक प्रतिशत को भी इसी से जोड़ा जा सकता है।

जल-प्रदूषण के तीन प्रमुख कारण हैं — मनुष्यों के घरेलू प्रयोग द्वारा दूषित जल, उद्योगों द्वारा दूषित जल तथा खेतों से बहकर आने वाला दूषित जल। मनुष्यों द्वारा प्रदूषित जल सबसे अधिक हानिकारक होता है तथा जल के द्वारा फैलने वाली कई बीमारियों का कारण होता है। दूषित जल को साफ करके (जैसा कई नगरों में किया जाता है) प्रयोग में लाना अच्छा नहीं। कई बार सब्जियाँ इसी जल में धो दी जाती हैं और कई बार बिना धोए ही खा ली जाती हैं। नाले का जल, गंदे जल तथा उद्योगों द्वारा प्रदूषित जल, नदियों व तालाबों में उनकी स्वांगीकारी/पाचन क्षमता से काफी अधिक भर जाता है। मुख्य जल-प्रदूषक इकाइयाँ हैं– रसायन, फार्मास्युटिकल, वस्त्र, सीमेंट, बिजली व बिजली उपकरण, ग्लास व सेरामिक, अखबारी कागज तथा पेपर-बोर्ड, चर्म-शोधन, खाद्य-

संसाधन (Food proccssing) तथा पेट्रोल की सफाई। खेतों में खाद तथा कीटनाशक दवाओं का बिना सोचे समझे प्रयोग सतह के ऊपर के तथा सतह की नीचे के पानी दोनों को दूषित करते हैं।

जल की माँग में वृद्धि हो रही है तथा इसमें और अधिक वृद्धि होने की आशा है, खासकर शहरी इलाकों में जहाँ जनसंख्या में वृद्धि के कारण और उससे भी अधिक प्रतिव्यक्ति जल की माँग में वृद्धि के कारण जो आय में वृद्धि के कारण होती है। इसकी माँग को कुछ सीमा तक जल-आपूर्ति की बेहतर कीमत द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। उपभोक्ता-शुल्कों की उपयुक्त वसूली भी महत्त्वपूर्ण है। प्रदूषण के कारण जल को पहले साफ करने की आवश्यकता होती है जिससे जल-आपूर्ति की कीमत में वृद्धि होती जा रही है।

संसाधनों का अवक्रमण (Degradation)

संसाधनों का अवक्रमण उनकी उत्पादन क्षमता को कम कर देता है। अवक्रमण के कारण लंबी अवधि में उनकी उत्पादकता कम हो जाती है। इस प्रकार विकास का आधार ही सूख जाता है। यहाँ हम दो प्रकार के मुख्य अवक्रमणों पर विचार करेंगे– एक वनों से संबंद्ध है तथा दूसरा भूमि से, विशेषकर कृषि-योग्य भूमि से।

वन कटाई (Deforestation)

हमारी विकास-संबंधी क्रियाएँ तथा विलासितापूर्ण जीवन पद्धति ने वन-संपदा का शोषण इनकी पुनर्जनन क्षमता से बढ़कर किया है। यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि भारत ऐसे कुछ देशों में से है जहाँ वन-नीति 1854 से ही निर्धारित की जाती रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी पहली वन-नीति की घोषणा के समय अनुमान लगाया गया था कि 1854 से 1952 के बीच वन-आवरण 40 से घटकर 22 प्रतिशत हो गया था जिसका कारण निश्चित ही कच्चे माल, इमारतों के निर्माण तथा जलावन हेतु लकड़ियों के लिए किया गया वनों का अति-शोषण था। 1952 में हमारे पास लगभग 680 लाख हेक्टेयर वन थे।

वनों की उत्पादकता

जहाँ हमारी प्रति हेक्टेयर स्टॉक में वृद्धि 28 क्यूबिक मीटर है तथा वार्षिक वृद्धि केवल 0.5 क्यूबिक मीटर, वहीं विश्व की औसत प्रति हेक्टेयर स्टॉक वृद्धि 110 क्यूबिक मीटर तथा वार्षिक वृद्धि 2.0 क्यूबिक मीटर है।

तेजी से बढ़ने वाली बहुमूल्य लकड़ियों की किस्मों के उचित रख-रखाव तथा संरक्षण द्वारा वन-उत्पादों को हम 5.0 क्यूबिक मीटर प्रति हेक्टेयर तक बढ़ा सकते हैं।

1952 की वन-नीति में यह सुझाव दिया गया था कि हमारे यहाँ 1000 लाख हेक्टेयर अर्थात् कुल भूमि के 33 प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। इस 33 प्रतिशत में से लगभग 60 प्रतिशत वन पर्वतीय क्षेत्रों में होने चाहिए। वनों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए, वनरोपण (Afforestation) के प्रयत्न किए गए जिनमें तीन महत्त्वपूर्ण योजनाएँ शामिल थीं– (क) शीघ्र बढ़ने वाली किस्मों का रोपना, (ख) आर्थिक किस्मों (जैसे टीक, शीशम, साल आदि) का रोपण, तथा (ग) अवक्रमित वनों का पुनर्स्थापन (Rehabilitation)। परंतु इन सब उपायों के द्वारा भी पिछले पचास सालों में वनों का कुल क्षेत्र पचास लाख हेक्टेयर से अधिक नहीं बढ़ पाया। आजकल वन-क्षेत्र 750 लाख हेक्टेयर है। परंतु सर्वेक्षण की नई तकनीकों का प्रयोग कर **नेशलन रीमोट सेन्सिग**

एजेंसी ने संकेत दिया है कि हमारे यहाँ केवल 360 लाख हेक्टेयर भूमि के ऊपर हरियाली है, जिसका अर्थ है कि शेष क्षेत्र को वन घोषित कर दिया गया है, परंतु उनमें वृक्ष नहीं हैं। उपलब्ध सूचनाएँ यह जानकारी देती हैं कि हमारे सघन वन 1972-75 तथा 1980-82 के बीच ही कम हो गए थे। उसके बाद से हमारे सघन वन लगभग स्थिर हैं। देखें सारणी 12.1 ।

सारणी 12.1
भारत में सघन वन-आवरण
(लाख हेक्टेयर)

सर्वेक्षण वर्ष	*आवरण*	*सर्वेक्षण वर्ष*	*आवरण*
1972-75	46.42	1989-91	38.55
1980-82	36.14	1991-93	38.58
1985-87	37.85	1995-97	36.73
1987-89	38.50		

हम वन-उत्पादों के प्रयोग करने वालों को पूरी तरह मना तो नहीं कर सकते क्योंकि इससे अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है और हम वन-शोषण की वर्तमान व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों भी नहीं छोड़ सकते क्योंकि इससे भावी पीढ़ी का भविष्य खतरे में पड़ सकता है। अब तो ऐसे सुझाव भी दिए जा रहे हैं कि उद्योगों व शहरी उपभोक्ताओं के द्वारा शोषित होने के स्थान पर वनों के पर्यावरण-संबंधी कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त ये वन, **वन-जीवियों** की निर्वाह-आवश्यकताएँ भी पूरी करते हैं।

संक्षेप में, स्थिति को सुधारने के लिए उठाए गए कुछ कदमों का हम उल्लेख कर सकते हैं। भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) द्वारा दिए गए सुझावों को स्वीकार कर लिया है। सामाजिक-वानिकी (Social forestry) के तीन घटक हैं– कृषि-वानिकी, सार्वजनिक प्रयोग हेतु वानिकी, तथा सामुदायिक प्रयोग हेतु वानिकी। कृषि वानिकी की योजनाओं के अंतर्गत किसानों को अपने खेतों में राज्य वन-विभागों के द्वारा निःशुल्क या कम कीमत पर पौधे देकर वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सार्वजनिक प्रयोग हेतु वृक्षारोपण के अंतर्गत वन-विभाग ने सड़कों, नहरों तथा अन्य सार्वजनिक भूमि के किनारे शीघ्र बढ़ने वाले वृक्षों को उगाने का उत्तरदायित्व लिया है। सामुदायिक प्रयोग हेतु वृक्षारोपण के अंतर्गत स्थानीय समुदायों द्वारा गाँव की सामुदायिक भूमि (Village commons) पर वृक्षारोपण किया जाता है। इसके निम्न उद्देश्य हैं :

(i) हरित-आवरण को बढ़ाना,
(ii) कागज, नायलॉन तथा माचिस उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन,
(iii) गरीबों की जलावन/ईंधन तथा चारे की आवश्यकताओं को पूरा करना,
(iv) छोटी-छोटी लकड़ियाँ तथा लघु वन-उत्पादों की प्राप्ति, तथा
(v) ग्रामीण क्षेत्रों में वनारोपण द्वारा अधिक रोजगारों की व्यवस्था करना।

देश के कुछ भागों में इनमें से कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता तो मिली है, परंतु अभी और अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। कई ऐसे पेड़ जो जल-संरक्षण (Water conservation) के लिए उपयोगी नहीं होते हैं, अतः उन्हें जल-प्लावित (Water logging) क्षेत्रों में उगाया जाना चाहिए।

ऐसा देखा गया है कि उद्योगपतियों के अतिरिक्त, राज्य सरकारें भी इन समस्याओं की उपेक्षा करती रही थीं, क्योंकि उन्हें वनों द्वारा राजस्व प्राप्त होता था। यहाँ तक कि कई बार कई

उद्योगों को नाममात्र कीमत पर भी लकड़ियाँ उपलब्ध कराई गईं।

दिसंबर 1988 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा एक नई वन-नीति की घोषणा की गई। इस नीति के लक्ष्यों में कोई नयापन तो नहीं था, पर इसके मुख्य उद्देश्य तथा इसकी दिशा महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार वनों पर आधारित उद्योगों को वनों का शोषण करने तथा रियायती दरों पर वन उत्पादों को उपलब्ध न कराने का निर्णय किया गया। अतः उन्हें अपने कच्चेमाल के लिए कृषि वानिकी (Farm forestry) पर निर्भर करना होगा। इस नीति के अनुसार, उद्योगों द्वारा किसानों को कृषि वानिकी के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। निजी ठेकेदारों को इन कृषि उत्पादों को एकत्र करने की अनुमति नहीं दी जाएगी तथा इनका स्थान **सरकारी संस्थाएँ** एवं **जनजाति सहकारी समितियाँ** ले लेंगी। वन-भूमि को अन्य उत्पादों जैसे चाय, कॉफी, मसाले, रबर, खजूर, तेल-उत्पादक पौधों, बागवानी पौधों तथा औषधिदायक पौधों के लिए नहीं दिया जाएगा। फिर भी ऐसा समझा जाता है कि लकड़ी-व्यापारियों तथा वन-विभाग के अधिकारियों के बीच चोरी-छिपे ढंग से कई प्रकार की लेन-देन संबंधी क्रियाएँ होती हैं।

बहुद्देश्यीय बड़ी बाँध (Dams) परियोजनाएँ भी काफी वनों को निगल जाती हैं। गरीब लोग लकड़ी तथा अन्य छोटे-मोटे वन-उत्पादों को चुरा लेते हैं। हालाँकि हमारे विचार में वे केवल पुरानी और झड़कर गिरी हुई लकड़ियों को ही चुनते होंगे। इन झड़कर गिरी हुई लकड़ियों को तो ऐसे भी एकत्रित करने की आवश्यकता रहती है।

भूमि अवक्रमण (Land Degradation)

हमारी भूमि कई प्रकार के अवक्रमणों से ग्रसित है। ये अवक्रमण इसे कृषि की दृष्टि से अनुपयुक्त बना देते हैं। जल तथा वायु के कारण भूमि की ऊपरी सतह का कटाव (अपरदन) तथा समुद्री जल के आप्लावन से उत्पन्न क्षारता व खारापन हमारी दो सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। हमारी भूमि या तो बाढ़ की शिकार हो जाती है या अकाल की। यदि भूमि पर घास या वृक्ष न हों तो बाढ़ से भूमि का काफी कटाव हो जाता है। कटकर यह मिट्टी बाँधों, तालाबों, टैंकों, नदियों तथा सरिताओं की तलछटी में जमा हो जाती है। इससे नदियों की गहराई कम हो जाती है तथा इन नदियों का पानी पुनः आसपास के इलाकों में फैल जाता है और पूरे इलाके में जलप्लावन हो जाता है।

अतः एक दुश्चक्र-सा बन जाता है। घास अधिक चर ली जाती हैं और वृक्ष बिना प्रतिस्थापित किए काट दिए जाते हैं। कुछ इलाकों में खेतों को काटकर और जलाकर स्थांतरित खेती या झूम (Shifting cultivation) अभी भी प्रचलित है। ऐसी स्थिति में धरती के सूखा-ग्रस्त होने का भय रहता है। जिन क्षेत्रों में काफी समय से वृक्ष काट लिए गए हैं वहाँ नमी (Humus) की कमी हो जाती है। इनमें वृक्षों का आवरण न रहने से मिट्टी की ऊपरी सतह बह जाती है तथा हवा से उड़ भी जाती है। इस प्रक्रिया में, ऊपरी मिट्टी (Top soil) में से पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम आदि समाप्त हो जाते हैं।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि अत्यधिक जलप्लावन से मिट्टी की ऊपरी सतह पर खारापन और क्षारता आ जाती है। इस प्रकार की मिट्टी कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जो हमेशा जलमग्न रहते हैं। सारणी 12.2 में हम देख सकते हैं कि 50 प्रतिशत से अधिक भूमि गंभीर अवक्रमण-ग्रस्त है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक वर्ष बाढ़ से 80 लाख हेक्टेयर भूमि, जिसमें से 40 लाख हेक्टेयर भूमि में फसलें भी होती हैं, प्रभावित हो जाती हैं। 40 लाख हेक्टेयर भूमि पर स्थांतरित खेती या झूम का दुष्प्रभाव होता है। प्रतिवर्ष 8000 हेक्टेयर भूमि घाटियों/दर्रों (Ravines) के अतिक्रमण द्वारा प्रभावित होती है। समस्या को एक प्रामाणिक ढ़ंग से हम इस प्रकार रख सकते हैं, हमारी भूमि के एक-तिहाई भाग वन हैं तथा दो-तिहाई भाग में खेती होती है। कृषि योग्य समस्त बंजर भूमि तथा स्थायी चारागाहों में मृदा-संरक्षण (Soil conservation) अत्यावश्यक है। इसके बाद, संरक्षण की दिशा में कई कदम उठाए गए हैं जिससे ऐसा लगता है कि हम भविष्य में अवक्रमण को अधिक नहीं बढ़ने देंगे।

लिंग

दो लिंगों के बीच जैविक अंतर होता है। इन दोनों लिंगों की भूमिकाएँ स्वाभाविक रूप से विभाजित हैं। उदाहरण के लिए, केवल महिलाएँ ही संतान उत्पन्न कर सकती हैं। संभवतः वे ही उनका बेहतर पालन भी कर सकती हैं।

हालाँकि सभी समाजों में कई अन्य प्रकार के अंतर पाए जाते हैं, जो जैविक अंतर से संबद्ध नहीं हैं। मानव समाज बरसों से दो लिंगों के बीच विभेद करता आ रहा है तथा यह पुरुषों का पक्षधर भी रहा है। हमारे समाज में पक्षपात का स्तर बहुत अधिक रहा है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हम इस दृष्टि से सबसे बुरे लोग हैं।

पश्चिम में राजनैतिक विभेदीकरण

तथाकथित विकसित देशों में महिलाओं को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही संयुक्त राष्ट्र (1920), इंग्लैण्ड (1928), स्पेन (1931) तथा फ्रांस (1944) ने महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया जबकि वहाँ पुरुषों को ये अधिकार बहुत पहले से दिए गए थे। यह आश्चर्यजनक है कि स्विट्ज़रलैंड ने, जो प्राचीनतम प्रजातंत्रों में से एक है, महिलाओं को 1971 तक इस अधिकार से वंचित रखा। कई देशों में तो आज तक महिलाओं पर कानूनी तौर पर शिक्षा-संबंधी प्रतिबंध लगे हुए हैं।

क्या इसका अर्थ यह है कि हमें अपने देश में इस दिशा में सुधार लाने की कोई आवश्यकता है हीं नहीं? ऐसी बात नहीं। कई शताब्दियों से हम

सारणी 12.2
विभिन्न प्रकार के अवक्रमणों से ग्रस्त क्षेत्रों के विवरण

कुल भौगोलिक क्षेत्र	3290 लाख हेक्टेयर
गम्भीर अवक्रमण ग्रस्त क्षेत्र	1750 लाख हेक्टेयर
जल/वायु अवक्रमण ग्रस्त क्षेत्र	1400 लाख हेक्टेयर
क्षारित/खारापन युक्त/ जल-आप्लावित/कटाव ग्रस्त क्षेत्र	350 लाख हेक्टेयर
बाढ़ द्वारा कटाव ग्रस्त क्षेत्र	200 लाख हेक्टेयर
खारापन ग्रस्त क्षेत्र	55 लाख हेक्टेयर
क्षारित भूमि	25 लाख हेक्टेयर
जल आप्लावित भूमि	60 लाख हेक्टेयर
सूखा ग्रस्त भूमि	2500 लाख हेक्टेयर

स्थिति में सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। विधवा विवाह, सती प्रथा का बहिष्कार तथा बाल-विवाह पर रोक इस दिशा में किए गए प्रयास हैं। स्वतंत्रता के तुरंत बाद जब हम अपना संविधान बना रहे थे, हमने लगभग सभी लोगों को सारे राजनैतिक अधिकार प्रदान करने का निश्चय किया। हमने लिंग के आधार पर सभी प्रकार के विभेद का निषेध किया। परंतु सिर्फ कानूनन समानता पर्याप्त नहीं थी। अतः हमने स्पष्ट विभेद को दूर करने के लिए भी व्यवस्था की। परिणामस्वरूप, कुछ मामलों में तो स्पष्ट सुधार हुए हैं। उदाहरण के लिए, बालिकाओं की जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा बालकों की तुलना में बढ़ गई है।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि महिलाओं को आर्थिक अवसरों से वंचित रखा जाता है, और यदि उन्हें नौकरी मिलती भी है तो उन्हें समान कार्य के लिए पुरुषों से कम मजदूरी दी जाती है। परिवार में भी उनके साथ व्यवहार में पक्षपात होता है तथा नौकरी के क्षेत्र में भी। इन विषयों के अंतर्गत हम लिंग-अनुपात, साक्षरता, श्रम-भागीदारी तथा मजदूरी पर विस्तार से चर्चा कर सकते हैं।

लिंग-अनुपात

किसी भी समाज के लिए बहुत अधिक स्त्रियाँ या बहुत कम स्त्रियाँ वांछनीय नहीं हैं। उनकी संख्या लगभग बराबर होनी चाहिए। पुरुषों की संख्या कुछ अधिक हो सकती है क्योंकि माना जाता है, प्रकृति बालकों के जन्म की पक्षधर रही है। अधिकांश समाजों में प्रति 1000 महिला-जन्मों में पुरुष जन्मों की संख्या 1050-1060 रही है। परंतु समान स्तर के जीवन-अवसर प्राप्त होने पर पुरुषों की तुलना में अधिक लंबी आयु तक जीवित रहती हैं। परिणामस्वरूप, ऐसे समाजों में जहाँ पुरुषों और महिलाओं के बीच जीवन की सुविधाओं के मामले में समानता रहती है, तो लिंग-अनुपात महिलाओं के पक्ष में रहता है– ब्राजील 1025, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 1030, जापान 1040, तथा रूस राष्ट्रसंघ 1140। हमारे देश में केरल एक ऐसा प्रदेश है जहाँ लिंग-अनुपात 1060 है, जो जापान से अधिक है। पूरे देश के लिए, बीसवीं शताब्दी में लिंग-अनुपात नीचे सारणी 12.3 में दिया गया है। यह दुःखद प्रसंग है कि जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि के साथ लिंग-अनुपात में लगातार गिरावट होती रही तथा सबसे अधिक गिरावट साठ के दशक में हुई। यह अब लगभग 930 के आसपास है।

सारणी 12.3
पिछली शताब्दी में भारत की जनसंख्या का लिंग-अनुपात (1901-2001)

वर्ष	*लिंग-अनुपात*	*वर्ष*	*लिंग-अनुपात*
1901	972	1951	946
1911	964	1961	941
1921	955	1971	930
1931	950	1981	934
1941	945	1991	927
		2001	933

स्रोत : *भारत की जनगणना 2001, अनंतिम जनसंख्या सारणियाँ, रजिस्ट्रार व सेन्सस कमिश्नर, भारत।*

पहले हम जनसंख्या की आयु के आँकड़े विभिन्न आयु वर्गों जैसे 0-4, 5-9 आदि के लिए एकत्रित करते थे। पिछली दो जनगणनाओं से हमारे पास 7 वर्ष की जनसंख्या से कम और 7 वर्ष से अधिक के लिए सूचनाएँ उपलब्ध हैं। 0-6 आयु-वर्ग का लिंग-अनुपात दो बातों पर निर्भर है– जन्म के समय लिंग-अनुपात तथा 0-6 आयु-वर्ग में विभेदी शिशु मृत्यु दर। 7+ आयु के लिए

लिंग-अनुपात, 7 वर्ष की आयु के लिंग-अनुपात तथा 7 वर्ष से ऊपर विभेदी मृत्यु दरों (या आयु संभावना) पर निर्भर करती है। पूरे देश के लिए, लिंग-अनुपात में सुधार का कारण 0-6 के लिए नहीं परंतु 7+ के लिए लिंग अनुपात है जो महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा में अधिक सुधार दर्शाता है। देखें सारणी 12.4 ।

सारणी 12.4
1991 तथा 2001 में 0-6 तथा 7+ आयु-वर्गों के लिए लिंग-अनुपात

वर्ष	*0-6 के लिए लिंग अनुपात*	*7+ के लिए लिंग अनुपात*	*सभी के लिए लिंग-अनुपात*
1991	945	923	927
2001	927	935	933

स्रोत : *भारत की जनगणना 2001 श्रेणी 1 भारत, अनंतिम जनसंख्या योग, रजिस्ट्रार व सेंसस कमिश्नर, भारत।*

0-6 आयु-वर्ग में लिंग-अनुपात में कमी बालिका-भ्रूण या बालिका या दोनों के साथ हमारे व्यवहार पर प्रकाश डालती है। यदि हम 1991 में 0-6 के लिए लिंग-अनुपात को 'सामान्य' मानें तो भी नब्बे के दशक में इसका अचानक कम हो जाना लज्जाजनक है। यदि 2001 में उतना ही लिंग-अनुपात होता जितना 1991 में, तो कुल लिंग-अनुपात 940 के आस पास होता। इसका भी कोई कारण नहीं है कि जहाँ 0-6 के लिए पंजाब का लिंग-अनुपात 1991 में 875 से घटकर 2001 में 793 तथा हरियाणा का 1991 में 879 से घटकर 2001 में 820 हो गया, वहीं केरल में 0-6 के लिए लिंग-अनुपात 958 से बढ़कर 963 हो गया (केरल देश का एक प्रदेश है जिसमें यह सुधार हुआ है तथा पंजाब व हरियाणा में हमेशा लिंग-अनुपात बहुत कम रहा है)।

सेन्सस जन्म के समय लिंग-अनुपात के आँकड़ों पर प्रकाश नहीं डालता। सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम के अनुसार 1982-98 में जन्म के समय लिंग-अनुपात 800 से 915 के बीच रहा जो जन्म के समय 'प्राकृतिक' लिंग-अनुपात 940-960 से तुलना करने पर काफी है। जन्म के समय लगभग 900 लिंग-अनुपात एक राष्ट्रीय औसत है, जो यह संकेत देता है कि कुछ राज्यों में स्थिति बहुत खराब है। ऐसा संदेह होता है कि किसी न किसी अवस्था में स्त्री भ्रूण का नाश हो जाता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री-जन्म की रिपोर्टें कम दर्ज कराई जाती हैं। आज के आधुनिक युग में भी स्त्री-भ्रूण हत्या काफी प्रचलित है।

जहाँ तक हमारी स्त्री-जनसंख्या का प्रश्न है यह एक घृणित तथ्य है कि हम बालिकाओं के जन्म को कम कर रहे हैं, कभी-कभी छोटे परिवार के नाम पर। महिलाओं की जनसंख्या की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक हो चुकी है। स्त्री-पुरुष शिशु मृत्यु दरों में नाममात्र का अंतर है। विवाह की आयु 1951 में 15 वर्ष से बढ़कर शताब्दी के अंत तक लगभग बीस वर्ष हो गई।

साक्षरता दर

साक्षरता के क्षेत्र में एक आश्चर्यजनक उपलब्धि यह हुई है कि कई प्रकार के अंतर तेजी से कम हो रहे हैं। देखें सारणी 12.5। पिछले पचास वर्षों में, जबकि कुल महिला साक्षरता दर 9 प्रतिशत से बढ़कर 54 प्रतिशत हो गई है, ग्रामीण क्षेत्रों में यह 5 प्रतिशत से भी कम से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गई। 1951 में यह अंतर 9 प्रतिशत महिला साक्षरता में 18 प्रतिशत प्वांइट था जो 2001 में बढ़कर 54 प्रतिशत साक्षरता पर 21 प्रतिशत प्वांइट हो गया।

सारणी 12.5
ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार पुरुष-स्त्री साक्षरता दर

(प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रामीण पुरुष	ग्रामीण स्त्री	शहरी पुरुष	शहरी स्त्री	पुरुष	स्त्री
1951	19.02	04.87	45.60	22.33	27.10	08.86
1961	34.30	10.10	66.00	40.50	40.40	15.35
1971	48.60	15.50	69.80	48.80	45.96	21.97
1981	49.60	21.70	76.70	56.30	56.38	29.76
1991	57.90	30.60	81.10	64.00	64.13	39.29
2001	71.40	46.70	86.70	73.20	75.85	54.16

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

परंतु इस विषय में संतोष करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह एक ऐसा पक्ष है जहाँ लिंगों द्वारा शत-प्रतिशत साक्षरता का लाभ उठाया जाना चाहिए। वस्तुतः महिला-साक्षरता की दृष्टि से ग्रामीण-शहरी विभेद हर प्रकार से चौंकाने वाला है। कुल जनसंख्या में ग्रामीण महिलाओं का वर्ग ही ऐसा वर्ग है जिसमें साक्षरता 50 प्रतिशत से कम है।

राजनैतिक सशक्तिकरण

राजनीति में स्थानीय स्तरों के राजनैतिक निकायों में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई हैं तथा महिला पंचों की संख्या 10 लाख से अधिक है। यह महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से एक मुख्यतः कदम है। हालाँकि जिन कानूनों ने महिलाओं के लिए इन स्थानीय निकायों में सीटें सुरक्षित की हैं, उनकी अपनी सीटों में इनके लिए कोई आरक्षण नहीं है। देखें, सारणी 12.6 ।

इस सारणी से हम देख सकते हैं कि लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अस्थिर परंतु बढ़ता रहा है। राज्य सभा में यह स्थिर रहा है। वहाँ यह प्रतिनिधित्व कम है। राज्य-सभाओं में भी ऐसा ही होना चाहिए।

श्रम-भागीदारी तथा मजदूरी

महिलाओं से घर के अंदर तथा बाहर दोनों स्थानों पर अधिक कार्य लिए जाते हैं। उनके घरेलू कार्यों को कार्य नहीं माना जाता है। यदि हम जनसंख्या में श्रमिकों के अनुपात पर विचार करें तो हम देखते हैं कि शहरों और गाँवों दोनों स्थानों पर पुरुषों की श्रम-भगीदारी दर लगभग 55 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की भागीदारी दर शहरी क्षेत्रों में 12 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 25 प्रतिशत है। बहुत लोग तो यह सोचते हैं कि ऐसा इसलिए है कि समाज में लोग महिलाओं का कार्य करना पसंद नहीं करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि सामान्यतः महिलाएँ जो घर से बाहर कार्य करती हैं, व पैसे कमाती हैं तथा घरेलू महिलाओं की तुलना में अधिक स्वाधीन होती हैं। अतः कई लोग ऐसी सलाह देते हैं कि उनकी भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए ऐसे लोग जो भारतीय परिस्थिति से परिचित हैं वे इस बात से सहमत होंगे कि ग्रामीण स्त्रियों की घर के बाहर भागीदारी, शहरी स्त्रियों की भाँति उनकी बेहतर स्थिति का द्योतक नहीं है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि क्या महिलाएँ घर से बाहर कार्य, विशेषकर खेतों में, गरीबी दूर

सारणी 12.6
राज्य सभा तथा लोक सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

	लोक सभा				राज्य सभा			
वर्ष	लोक सभा	सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत	वर्ष	सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत
1952	I	499	22	4.4	1952	216	15	6.9
1957	II	500	27	5.4	1984	233	24	10.3
1962	III	503	34	6.8	1990	245	24	9.8
1967	IV	523	31	5.9	1992	245	17	6.9
1971	V	521	22	4.2	1994	245	20	8.2
1977	VI	544	19	3.5	1996	245	18	7.3
1980	VII	544	28	5.1	1997	245	18	7.3
1984	VIII	544	44	8.1	1998	245	19	7.8
1989	IX	517	27	5.2	1999	245	19	7.8
1991	X	544	39	7.2	2000	245	22	9.0
1996	XI	544	40	7.4				
1998	XII	543	43	7.9				
1999	XIII	543	49	9.0				

स्रोत : *भारतीय योजना अनुभव : एक सांख्यिकीय प्रोफाइल, प्लानिंग कमीशन, भारत सरकार, 2001 तथा इण्डिया इयरबुक 2001 मैनपावर प्रोफाइल, इन्स्टिच्यूट ऑफ मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।*

करने के लिए करती हैं या अपने परिवार की आय को बढ़ाने के लिए।

ऐसा देखा गया है कि महिलाओं को अक्सर कम पैसे मिलते हैं। यहाँ पर उनके साथ विभेद होता है। यहाँ हम समान योग्यता वाले पुरुषों व महिलाओं को दिए जाने वाले पारिश्रमिक की जानकारी दे रहे हैं। देखें सारणी 12.7। ग्रामीण क्षेत्रों में आठवीं कक्षा पास श्रमिकों तथा शहरी क्षेत्र में सभी श्रमिकों को छोड़कर अन्य स्थानों पर हम देखते हैं कि महिलाओं को प्राप्त होने वाली औसत आय कम है। शहरी क्षेत्रों में सभी श्रमिक-वर्ग में महिलाओं को कम मजदूरी मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आठवें वर्ग तक शिक्षित महिलाओं की स्थिति बेहतर प्रतीत होती है, जो लगभग शहर की तृतीय कोटि के कर्मचारियों के बराबर है (गाँवों में नियमित नौकरियाँ केवल सरकारी नौकरियाँ ही होती हैं)। अनियमित मजदूरों में, महिलाओं की मजदूरी पुरुषों की मजदूरी का दो-तिहाई होती है।

नियोजनकर्त्ता यह तर्क दे सकते हैं कि महिलाएँ अलग प्रकार की नौकरियाँ करती हैं जिनमें अपेक्षाकृत कम कुशलता की आवश्यकता होती है अन्यथा यदि उनके कार्य समान होते तो उन्हें समान वेतन भी उपलब्ध होता। कई विद्वानों के मत भी ऐसे ही हैं। उदाहरण के लिए, चिकित्सा के पेशे को लें। नर्सों में महिलाओं की संख्या अधिक है तथा डाक्टरों में पुरुषों की।

प्रवसन (Migration)

लोग विभिन्न कारणों से तथा विभिन्न अवधियों के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, जैसे

सारणी 12.7
कर्मचारियों द्वारा 1999-2000 में प्राप्त प्रतिदिन औसत मजदूरी/वेतन

(रुपयों में)

	ग्रामीण			शहरी	
नियमित	*पुरुष*	*महिलाएँ*	*नियमित*	*पुरुष*	*महिलाएँ*
निरक्षर	71.23	40.32	निरक्षर	87.63	51.83
आठवीं तक शिक्षित	91.63	161.48	आठवीं तक शिक्षित	105.08	64.41
माध्यमिक	148.23	126.09	माध्यमिक	168.16	145.73
स्नातक+	220.93	159.92	स्नातक+	261.55	234.74
कुल	127.32	114.01	कुल	169.71	295.00
अनियमित	44.84	29.01	अनियमित	62.26	37.71

***स्रोत :** इंडिया इयरबुक 2001, मैनपावर प्रोफाइल, जनसाधन शोध संस्थान, नई दिल्ली।*

सामाजिक दायित्वों (शादी-ब्याह आदि) में शामिल होने के लिए, कच्चे माल की खरीददारी के लिए, परिवार के साथ छुट्टियाँ मनाने, विवाह के कारण (महिलाओं के लिए), उच्च शिक्षा के लिए (गाँवों से शहरों में), एक नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी करने के लिए। जब कोई व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र वापस न लौटने के इरादे से जाता है तो इसे प्रवसन कहते हैं और उस व्यक्ति को प्रवासी (Migrant)। वह स्थान जहाँ से व्यक्ति जाता है उसे उसके मूल-स्थान के रूप में जाना जाता है तथा वह स्थान जहाँ वह जाता है उसे उसके गंतव्य के रूप में। यदि मूल-स्थान और गंतव्य दो देशों में हों तो प्रवसन (International migration) को अंतरराष्ट्रीय प्रवसन कहते हैं अन्यथा इसे आंतरिक प्रवसन (Internal migration) कहते हैं।

प्रवसन शब्दावली

आंतरिक प्रवसन में जो आगमन (In-migration) है, वही अंतरराष्ट्रीय प्रवसन में आप्रवास (Immigration) है। आंतरिक प्रवसन में जो निर्गमन (Out-migration) है, वही अंतरराष्ट्रीय प्रवसन में उत्प्रवास (Emigration) है।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि आंतरिक प्रवसन के अंतर्गत जिले के अंदर, एक जिले से दूसरे जिले तथा एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच प्रवसन हो सकते हैं। प्रत्येक वर्ग में तथा इन वर्गों के बाहर भी एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच, गाँव से शहर के बीच, शहर से गाँव के बीच तथा एक शहर से दूसरे शहर के बीच प्रवसन होते रहते हैं। ये ऐसे वर्ग हैं, जिनके लिए अधिकांश प्रवसन के आँकड़े एकत्र किए जाते हैं तथा उनका विश्लेषण किया जाता है।

आंतरिक प्रवसन

प्रवसन को कारण या प्रयोजन के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– सामाजिक या आर्थिक। अधिकांश महिलाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर विवाह के बाद जाती हैं। अधिकांश समाजों में अभी भी एक ही गाँव के लड़के-लड़कियों के विवाह की प्रथा नहीं है। आर्थिक प्रवसन का संबंध किसी व्यक्ति के लिए उनके वर्तमान निवास से दूर आर्थिक अवसर की उपलब्धता के साथ है। इस प्रक्रिया को श्रम का प्रवसन कहते हैं। जो लोग किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान या फैक्टरी की स्थापना

करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं उन्हें सामान्य श्रमिक कहते हैं जिनमें नियोजक, नियोजित एवं स्वनियोजित शामिल हैं।

लोग केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ही नहीं, बल्कि एक पेशे से दूसरे पेशे में भी जाते हैं। एक ही स्थान पर एक पेशे से दूसरे पेशे के बीच परिवर्तन को प्रवसन नहीं कहते हैं। परंतु ऐसा होता है कि कई स्थानों पर सिर्फ एक विशेष प्रकार की ही नौकरियाँ उपलब्ध हों। उदाहरणस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि मुख्य क्रिया है, जबकि विनिर्माण या बैंकिंग आदि सेवाएँ शहरों में ही उपलब्ध होती हैं। आदम स्मिथ ने कहा भी है कि **कृषि गाँवों का उद्योग है तथा विनिर्माण शहरों का।**

आर्थिक प्रवसन मूल रूप से विकर्णी (तिरछा) होता है अर्थात् स्थानों के बीच तथा व्यवसायों/आर्थिक क्रियाओं के बीच। यूरोप में, औद्योगीकरण के समय, कृषि की उत्पादकता बढ़ रही थी जिससे कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की आवश्यकता कम हो गई थी। उद्योगों में अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता हो गई थी। कृषि से निकले हुए लोग उद्योगों में लिए जा रहे थे। इस तथ्य के बावजूद कि कृषि की उत्पादकता तथा मजदूरी दोनों बढ़ रही थी, कृषि अपने श्रमिकों की छँटनी कर रही थी तथा जनसंख्या की वृद्धि के कारण होने वाली श्रमिकों की वृद्धि को आत्मसात नहीं कर रही थी। उद्योगों में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हो रही थी तथा इनमें काफी श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होने की संभावना बढ़ रही थी।

उद्योग में निश्चय ही कृषि की तुलना में प्रतिव्यक्ति अधिक मशीनों का प्रयोग हो रहा था। 'विनिर्माण' शब्द का अर्थ है हाथ से किसी वस्तु का निर्माण करना। विनिर्माण में उत्पादन प्रक्रिया में हाथ का प्रयोग होता है। चूँकि अधिकांश विनिर्माण इकाइयाँ शहरों में स्थित थीं या स्थापित की जा रही थीं, अतः श्रम का प्रवाह गाँवों से शहरों की ओर था। आज हम इसे ग्रामीण-से-शहरी क्षेत्र में प्रवसन या ग्रामीण-शहरी प्रवसन कह सकते हैं। अधिक-से-अधिक लोग अपने परिवार के साथ ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जा रहे हैं। पुराने शहरों का विस्तार हो रहा है तथा नए बन रहे हैं। जनसंख्या तथा समृद्धि बढ़ने के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का अनुपात भी बढ़ रहा है।

आज प्रवसन शहरी क्षेत्रों में आर्थिक और शैक्षिक अवसरों के आकर्षण के कारण तथा गाँवों में ऐसे अवसरों की कमी या असुरक्षा के कारण हो रहा है। यह प्रवसन भी कुछ विशेष स्थानों पर ही अधिक हो रहा है। लोग महानगरों में जा रहे हैं जहाँ बहुत भीड़-भाड़ हो गई है जिसके कारण ये गंदी बस्तियों के समूह की भाँति हो गए हैं। लोगों को इन महानगरों में जाने से रोकने वाली योजनाएँ बहुत सफल नहीं हुईं। उपग्रह शहरों (Satellite towns) को नए केंद्रों (Counter magnates) के रूप में विकसित करने की योजनाओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं हो पाया।

हमारी जनगणनाओं में, प्रवसन के प्रकारों का वर्गीकरण उन कारणों के आधार पर किया जाता है जिनके कारण प्रवसन होते हैं। ये कारण हैं– रोजगार, शिक्षा, परिवार का स्थानांतरण, विवाह तथा अन्य कारण। इस संबंध में 1981 तथा 1919 के लिए कुछ जानकारी हम सारणी 12.8 में दे रहे हैं।

उपर्युक्त सारणी से यह पता चलता है कि अधिकांश महिलाएँ रोजगार या शिक्षा के लिए नहीं वरन् वैवाहिक कारणों से स्थान परिवर्तन करती हैं। उन्हें अपने परिवार के साथ स्थान परिवर्तित करना ही पड़ता है। अतः महिलाएँ पूरी तरह

सारणी 12.8
कारणों के आधार पर प्रवसन का वितरण

(प्रतिशत)

	1981		1991	
कारण	*महिलाएँ*	*पुरुष*	*महिलाएँ*	*पुरुष*
रोजगार	1.9	31.8	1.8	27.0
शिक्षा	1.0	5.1	0.8	4.8
पारिवारिक स्थानांतरण	14.3	30.3	11.0	26.6
विवाह	73.4	3.3	76.1	4.0
अन्य	9.4	29.5	10.3	37.6
कुल प्रवसन (करोड़)	14.52	62.5	16.78	64.3

***स्रोत :** इंडिया इयर बुक मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीच्यूट ऑफ एप्लाएड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।*

सामाजिक कारणों से स्थान परिवर्तित करती हैं। दूसरी ओर, पुरुष अधिकतर रोजगार के लिए, कभी-कभी शिक्षा के लिए तथा कभी परिवार के स्थानांतरण के कारण भी स्थान परिवर्तित करते हैं।

अंतरराष्ट्रीय प्रवसन

एक देश से दूसरे देश में प्रवसन अंतरराष्ट्रीय प्रवसन के रूप में जाना जाता है। यूरोप से लोग मुक्त नागरिक के रूप में एशिया से अनुबंधित श्रमिक के रूप में यूरोप के उपनिवेशों से उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में दासों की तरह गए थे। एक ओर जनसंख्या का बोझ तथा दूसरी ओर नई दुनिया के आकर्षण के कारण यह स्थान-परिवर्तन संभव हो सका। परंतु आज की दुनिया तो अलग ही प्रकार की है।

अब हम पूँजी वित्त की मुक्त गतिशीलता की बात करते हैं न कि श्रमिक की। बहुत गिने-चुने लोगों को ही अब आने-जाने की अनुमति मिलती है। एक समय ऐसा था जब हम कुशल जनसाधन के अल्प-विकसित देशों से विकसित देशों में जाने को 'ब्रेन-ड्रेन' कहते थे। जो लोग अपने देश को छोड़कर जाते हैं, वे इसका कारण अपने देश में अपनी योग्यता के अनुरूप नौकरी न मिल पाना बताते हैं।

कुछ क्षेत्रकों में, तथाकथित अल्पविकसित देशों से व्यक्तियों की बहुत अधिक माँग है क्योंकि ये कम-वय के, फुर्तीले और आवश्यक कुशलता से युक्त होते हैं। अधिकांश यूरोपीय देशों में जनसंख्या का स्टॉक वृद्ध है, अतः उन्हें भारत जैसे देश से कम उम्र के लोगों की आवश्यकता होती है। भारत में इसे शिक्षा-उद्योग का निर्यात मानते हैं। परंतु विश्व में पुरुषों तथा श्रमिकों का मुक्त आवागमन अभी भी दूर है।

निष्कर्ष

हमने इस अध्याय में तीन विषयों पर चर्चा की– पर्यावरण, लिंग तथा प्रवसन। पर्यावरण का संबंध वानिकी, प्रदूषण-निवारण, संरक्षण, जैविक-विविधता आदि से है। हमने यहाँ अपनी चर्चा वायु व जल के

प्रदूषण, मृदा (मिट्टी) के अवक्रमण तथा वानिकी तक सीमित रखी है।

लिंग के मामले में, लिंग-समानता की अपनी प्रतिबद्धता से आरंभ कर हमने यह समझने का प्रयास किया कि हम कितने दूर तक सफल हुए हैं और कितने असफल। हमने लिंग-अनुपात, विशेषकर 0-6 आयु वर्ग में, साक्षरता, राजनैतिक व आर्थिक भागीदारी (श्रम बल के लिए) तथा मजदूरी के विश्लेषण द्वारा ऐसा किया।

प्रवसन के इतिहास तथा सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद हमने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय दोनों प्रकार के प्रवसनों का वर्णन किया। प्रवसन के कारणों का भी उल्लेख किया गया।

अभ्यास

1. प्रकृति और विकास के संबंध की दृष्टि से प्राचीन और वर्तमान चिंतन में अंतर के विरोधाभास को वर्णित करें।
2. आपका ध्यान आकर्षित करने वाले मुख्य पर्यावरण संबंधी मुद्दे कौन से हैं?
3. वायु-प्रदूषण के प्रमुख कारण क्या हैं?
4. आप प्रदूषण को रोकने/निवारण करने की लागत का औचित्य कैसे बताएँगे?
5. जल-प्रदूषण के मुख्य कारणों का वर्णन करें।
6. संसाधनों के अवक्रमण से आप क्या समझते हैं?
7. भूमि का कितना अनुपात वनों के अंतर्गत होना चाहिए? पर्वतीय क्षेत्रों के लिए क्या सुझाव है?
8. सामाजिक-वानिकी के कार्यक्रम का वर्णन करें।
9. 1988 की वन-नीति प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।
10. भारत में भूमि-अवक्रमण का क्या स्तर है?
11. भारत में भूमि-अवक्रमण के क्या कारण हैं?
12. लिंग-संबंधी विषयों से आप क्या समझते हैं?
13. पूरी शताब्दी के दौरान लिंग-अनुपात की प्रवृत्ति का उल्लेख करें।
14. लिंग-अनुपात निर्धारित करने वाले कारण बताएँ।
15. नब्बे के दशक में शिशु-लिंग-अनुपात में कमी क्यों हुई?
16. पिछले पचास वर्षों में महिला-साक्षरता तथा पुरुष साक्षरता के क्षेत्र में हुई प्रगति पर प्रकाश डालें।
17. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के नियम क्या हैं? संसद तथा विधान सभाओं में ऐसे नियम क्यों नहीं हैं?

18. श्रम-भागीदारी की स्थिति तथा महिला श्रमिकों की औसत-मजदूरी की अवस्था का वर्णन करें।
19. नई दुनिया की ओर होने वाले प्रवसन का ऐतिहासिक विवरण दें।
20. आर्थिक प्रवसन से आप क्या समझते हैं?
21. प्रवसन संबंधी आकर्षणों व विकर्षणों का उल्लेख करें।
22. कारणों के आधार पर महिलाओं की प्रवसन प्रवृत्ति कैसी है?
23. कारणों के आधार पर पुरुषों के प्रवसन की प्रवृत्ति कैसी है?
24. 'ब्रेन-ड्रेन' से आप क्या समझते हैं?
25. शिक्षा एक उद्योग है और हमें इसके उत्पादों का निर्यात करना चाहिए, इस नई विचारधारा के पक्ष व विपक्ष में तर्क दें।

पारिभाषिक शब्द कोष

- **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product):** यह किसी अर्थव्यवस्था में एक दी हुई समयावधि में (जो सामान्यतया एक वर्ष होता है), उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के परिमाण का (बिना दोहरी गणना के) मौद्रिक माप है। वस्तुओं के उत्पादन की विभिन्न इकाइयों (टनों, मीटरों, तथा लीटरों) तथा सेवाओं के विभिन्न मापों (हड्डियों की शल्य चिकित्साओं की संख्या, रंगमंच कार्यक्रमों की संख्या, टन-किलोमीटर में परिवहन) को जोड़ा नहीं जा सकता। अतः वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण की माप मूल्य-रूप में की जानी चाहिए। उत्पादन के सभी क्रियाकलापों के योगदान को, चाहे वह वस्तुएँ हों या सेवाएँ, जोड़ते हैं। किसी विशिष्ट क्रियाकलाप के योगदान को मापने के लिए हमें निर्गतों के मूल्य में से आगतों के मूल्य को घटाना चाहिए, जिससे कि दूसरी क्रियाओं के उत्पादन में आगत के रूप में प्रयुक्त बहुत-सी वस्तुओं और सेवाओं की दो बार गणना (दोहरी गणना) न हो। विभिन्न समयों में बहुत-सी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें भिन्न-भिन्न होती हैं। दो विभिन्न समयावधियों में समस्त क्रियाकलापों (गतिविधियों) के परिमाण में होने वाले वास्तविक परिवर्तन को मापने के लिए स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद का प्रयोग करने की सावधानी बरतनी चाहिए। मान लें किसी अर्थव्यवस्था में जो भी उत्पादित होता है किलोग्राम में मापा जा सकता है (सेब, गेहूँ, अंडे तथा मोती)। क्या हमें उन्हें जोड़ना चाहिए यदि नहीं, तो क्यों, सोचिए।

- **केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन (C.S.O.) तथा राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (N.A.S.):** सांख्यिकीय संगठन, मई 1951 में मंत्री परिषद् सचिवालय में स्थापित किया गया था, परंतु अब यह सांख्यिकी-विभाग का एक हिस्सा है। देश में सांख्यिकीय गतिविधियों के समन्वयन के उत्तरदायित्व को संभालना; परिभाषाओं, कार्यप्रणाली एवं अवधारणाओं के संबंध में मानक निर्धारित करना; अन्य सांख्यिकीय एजेन्सियों को परामर्श तथा सलाह की सहायता देना तथा अंतरराष्ट्रीय सांख्यिकीय एजेन्सियों (अभिकर्त्ताओं) के साथ ताल-मेल रखना इसका उत्तरदायित्व है। 1954 में वित्त मंत्रालय से राष्ट्रीय आय के अनुमान के कार्य के हस्तांतरण के बाद, इसे समष्टिगत आर्थिक सम्मुच्चयों के साथ राष्ट्रीय आय के लेखे, सार्वजनिक क्षेत्र के लेखे तथा राष्ट्र के समेकीकृत लेखे तैयार करने का अधिकार सौंपा गया। राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (N.A.S.), केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन का वार्षिक प्रकाशन है, जो विभिन्न क्रियाकलापों के विभिन्न मापों को सविस्तार प्रस्तुत करता है।

- **विकास अर्थशास्त्र (Development Economics):** विकास अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है, जो विकासशील देशों में निर्धन व्यक्तियों की समूह की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से, विकास के सिद्धांत तथा विकास की नीतियों से संबंधित है।

- **संसाधन (Resources):** मानव समाज में प्रयोग किए जाने वाले द्रव्य, माल तथा वस्तुएँ संसाधन के नाम से जानी जाती हैं। समय के साथ प्रौद्योगिकी या रुचि में परिवर्तन से संसाधनों का सापेक्ष महत्त्व बदल सकता है। ऊर्जा संसाधन के रूप में लकड़ी का स्थान कोयला, कोयले का तेल या विद्युत ले सकता है। कुछ प्रक्रियाओं में अपशिष्ट उत्पाद दूसरी प्रक्रियाओं के संसाधन बन सकते हैं। संसाधनों को विशिष्ट रूप से नहीं परंतु मोटे तौर पर निम्न चार वर्गों में बाँटा जा सकता है :

- **सर्वकालिक संसाधन (Purpetual Resources) :** ऐसे संसाधन जिनकी आपूर्ति सापेक्ष रूप से निरंतर बनी रहेगी, चाहे उनका कैसे और कितना भी उपयोग क्यों न हो। सौर-उर्जा इसका एक उदाहरण है। शायद भू-तापीय ऊर्जा और वायु ऊर्जा इसके दूसरे उदाहरण बन सकते हैं।

- **पुनर्नवीनीकरण योग्य संसाधन (Renewable Resources):** ये वे संसाधन हैं जिनका एक बार प्रयोग के बाद प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा आसानी से नवीनीकरण किया जा सकता है। वन, पशु, तथा मत्स्य का यदि अत्यधिक अवशोषण नहीं किया जाए तो आसानी से नवीनीकृत हो जाते हैं। जल भी इसी श्रेणी में आता है।

- **अनवीनीकरण योग्य संसाधन (Non-renewable Resources) :** अनवीनीकरण योग्य संसाधन वे हैं जिन्हें सरलता से नवीनीकृत नहीं किया जा सकता। ये सीमित हैं, यद्यपि इनके विशाल भण्डार हैं। जीवाश्म तेलों के भण्डार (तेल एवं कोयला) तथा खनिज संसाधन (लोहा, लीड, एल्यूमीनियम, यूरेनियम) आज भी उतने ही हैं, जितने करोड़ों वर्ष पूर्व थे। कार्बन डाईआक्साइड (Co_2) तथा हाइड्रोजन आक्साइड (H_2o) को पुनः जीवाश्म तेलों में परिवर्तित करने में उतनी ही अधिक ऊर्जा लगेगी जितनी हम उनसे प्राप्त करते हैं।

- **संभावित साधन (Potential Resources):** बहुत से संसाधन जिन्हें आज हम जानते हैं, एक समय संसाधन नहीं समझे जाते थे। या तो हमें समुद्री भोजन के प्रति अभिरुचि नहीं थी, या पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के प्रयोग के लिए प्रौद्योगिकी परिपक्व नहीं थी। किसी समाज में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा प्रौद्योगिकीय स्थितियाँ उपलब्ध पदार्थों का प्रयोग जान सकती हैं या प्रयोग के लिए नए पदार्थ खोज सकती हैं। अपशिष्ट जल तथा केचुवे अब संसाधन माने जाते हैं।

- **नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार (Civic and Political Rights) :** राजनैतिक अधिकारों का संबंध नागरिकों के उन अधिकारों से है जो यह निर्धारित करने में भूमिका निभाते हैं

कि उनके सार्वजनिक हित से संबद्ध मामलों में कौन शासन करता है और वे कैसे शासित किए जाते हैं। नागरिक अधिकार राज्य के तथा व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित हैं।

- **लेखा-अवधि (Accounting Period):** यह साधारणतया एक वर्ष की होती है। कैलेंडर वर्ष के अलावा हमारे पास एक राजस्व वर्ष या वित्त वर्ष, शिक्षा वर्ष (सत्र), कृषि वर्ष आदि होते हैं। कैलेंडर वर्ष वास्तव में एक जनवरी से 31 दिसंबर तक होता है। हमारे देश में राजस्व वर्ष एक कैलेंडर वर्ष की पहली अप्रैल से दूसरे कैलेंडर वर्ष के 31 मार्च तक होता है, जब कि शिक्षा-वर्ष (सत्र) एक कैलेंडर वर्ष की एक जुलाई से दूसरे कैलेंडर वर्ष के 30 जून तक होता है। कृषि वर्ष, शिक्षा वर्ष की भाँति ही होता है। कैलेंडर वर्ष को 2001 के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जबकि राजस्व वर्ष और शिक्षा वर्ष को 2000-2001 के रूप में लिखा जाता है। हमारे समिष्टिगत आर्थिक समुच्चय राजस्व वर्ष से संबंधित हैं, जबकि विद्यालयों के नामांकन का संबंध शैक्षिक वर्ष से है। कुछ व्यापारी व्यापार वर्ष को दिवाली से दिवाली तक भी मानते हैं।

- **सामान्यीकरण या अवस्फीति (Normalisation or Deflation) :** यह एक आधुनिक पद (अवधारणा) है जिसका प्रयोग वितरण के ऐसे तत्व से होता है जो अंश को तुलनात्मक बनाता है। कभी-कभी अंश को भी इसमें से कुछ घटाकर या इसे किसी से घटाकर संशोधित (परिवर्तित) किया जाता है। किसी सामान्य वितरित चर के लिए सामान्यीकरण एवं प्रमापीकरण समानता देखी जा सकती है।

- **जीवन-प्रत्याशा (Life Expectancy):** आयु पर जीवन प्रत्याशा को लोगों के जीवित रहने के औसत प्रत्याशित वर्षों (एक निश्चित समय बिन्दु पर) के रूप में मापा जाता है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा एक दिए वर्ष में जन्मे शिशुओं के जीवित रहने के औसत वर्षों की संख्या है। एक वर्ष की आयु में जीवन प्रत्याशा (साधारणतया) स्वाभाविक रूप से उन शिशुओं के द्वारा प्रत्याशित जीए गए वर्षों की संख्या है जो, अपने जीवन के प्रथम वर्ष में जीवित रह पाए।

- **शिशु मृत्यु दर (Infant Mortaliy Rate):** एक वर्ष की आयु से पहले मृत्यु शिशु-मृत्यु कहलाती है। शिशु-मृत्यु दर प्रतिवर्ष प्रति हज़ार जीवित जन्मे शिशुओं की मृत्यु की संख्या है (जीवित जन्म की गणना में मृत जन्म, अकाल प्रसव तथा प्रेरित गर्भपात को निकाल दिया जाता है)। ऐसी स्थितियों में जहाँ शिशु मृत्यु दर विस्तृत रूप से वर्ष-दर-वर्ष उच्चावचित हो रही है, जनसांख्यक इस तथ्य को ध्यान में रखें कि किसी विशिष्ट वर्ष के शिशु मृत्यु में अगले वर्ष की शिशु मृत्यु की संख्या शामिल हैं, क्योंकि इस वर्ष जन्मे बच्चों की अगले वर्ष शिशु के रूप में मृत्यु हो सकती है।

- **मौलिक साक्षरता दर (Basic Literacy Rate):** किसी समाज में 15 वर्ष की आयु की कुल जनसंख्या में 15 वर्ष से ऊपर के साक्षर लोगों की संख्या के प्रतिशत को मौलिक

साक्षरता दर के रूप में जाना है। इसे मूल (मौलिक) इसलिए कहते हैं क्योंकि साक्षर होने के लिए कम से कम किसी भी एक भाषा में पढ़ने और लिखने में सक्षम होने की आवश्यकता है। यह हमारे देश में प्रौढ़ शिक्षा दर की तरह है।

- **विद्यालयी शिक्षा का औसत वर्ष (Mean Year of Schooling) :** विद्यालयी शिक्षा के दिए गए वर्षों को उन लोगों की संख्या से गुणा करें जिन्हें यह प्राप्त हुई है। ऐसे सब प्राप्तांकों को जोड़ें। कुल जोड़ को कुल व्यक्तियों की संख्या से भाग दें। प्राथमिक शिक्षा पाने वाले सभी व्यक्तियों को पाँच वर्ष की विद्यालयी शिक्षा पाने वाला माना जा सकता है। अतः व्यक्तियों की संख्या को (प्राथमिक शिक्षा प्राप्त) 5 से गुणा करें। अन्य स्तरों के लिए भी ऐसा ही करें।

- **संयुक्त नामांकन दर (Combined Enrollment Rate) :** शिक्षा के किसी दिए हुए स्तर पर संयुक्त नामांकन दर को प्राप्त करने के लिए नामांकन के आकार को उस आयु वर्ग में जनसंख्या के आकार से विभाजित कर ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत में प्राथमिक स्तर पर नामांकन की दर, प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन के आकार (संख्या) को जनसंख्या के 6 से 11 वर्ष की आयु-वर्ग के आकार (संख्या) से विभाजित कर प्राप्त किया जा सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर नामांकन दर की गणना इसी भाँति की जाती है। संयुक्त नामांकन दर के लिए हमें जनसंख्या के 6 से 23 वर्ष की आयु वर्ग की संख्या से कुल विद्यार्थियों की संख्या को विभाजित कर निकालना चाहिए।

- **क्रय शक्ति समानता विनिमय दर (Purchasing Power Parity Exchange Rate):** एक अमेरिकी डालर प्राप्त करने के लिए हमें बाजार विनिमय दर पर आपको लगभग 50 रुपए देने की आवश्यकता होगी। अब हम एक ब्रेड के एक सामान्य पैकेट का उदाहरण लेते हैं जो एक अति-आवश्यक वस्तु है। मान लीजिए यह भारत में 15 रुपए में मिलता है तथा अमेरिका में 3 अमेरिकी डालर में, तो ब्रेड के संबंध में एक अमेरिकन डालर पाँच रुपए के बराबर है। ऐसा ही उस स्थिति में भी होगा जब हम समान आकार व स्तर वाले एक आवासीय फ्लैट को दो तुलना-योग्य शहरों में किराए पर लेते हैं। बहुत से अल्प-विकसित देशों में जहाँ बाजार (विनिमय के मूल्य से किया गया माप वास्तविक परिमाप से कम होता है तो बहुत सी आवश्यक वस्तुएँ घर में बनी होती हैं)। जब क्रय शक्ति समानताओं का प्रयोग होता है तो भारत का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) चार गुना बढ़ जाता है, चीन का पाँच गुना तथा जापान का केवल 0.6 गुना। बाजार विनिमय दरों पर 1994 में जापान और चीन का सकल घरेलू उत्पाद क्रमशः 4600 अमेरिकी डालर तथा 520 अमेरिकी डालर था, परंतु क्रय-शक्ति समानताओं के संदर्भ में यह 2800 PPP$ क्रय शक्ति समानता डालर तथा PPP$ 2475 क्रय शक्ति समानता डालर था।

- **राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Survey):** देश में अधिकांश उच्च-स्तरीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के उत्तरदायित्व का वहन राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा किया जाता है। एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए यह एक नियमित अन्तराल के उपभोग-व्यय सर्वेक्षण, रोजगार-बेरोजगारी सर्वेक्षण-ऋण तथा निवेश सर्वेक्षण के आँकड़े एकत्र करता है। यह इसके अतिरिक्त विभिन्न अन्य विषयों पर भी आँकड़े एकत्र करता है।

- **पंजीकृत विनिर्माण इकाइयाँ (Registered Manufacturing Units):** फैक्टरी अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक विनिर्माण संस्थान (मरम्मत तथा रख-रखाव की गति-विधियों सहित) को पंजीकृत कराना पड़ता है, यदि इसमें 10 या अधिक नियोजित व्यक्ति हों तथा यह ऊर्जा का उपयोग करता है या बीस से अधिक नियोजित व्यक्ति हों परंतु यह ऊर्जा का उपभोग न करता हो।

- **संगठित क्षेत्र (Organised Sector):** सार्वजनिक संस्थानों सहित सभी निजी संस्थान भी किसी कानून के अंतर्गत पंजीकृत हैं– फैक्टरी अधिनियम, कम्पनी अधिनियम/निगम अधिनियम संगठित क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के सभी संस्थानों के साथ-साथ इनकी सामान्य विशेषता है कि ये सभी लेखों का रख-रखाव करते हैं।

- **रोजगार का व्यावसायिक वर्गीकरण (Occupational Classification of Employment):** आप कहाँ नियुक्त हैं, यह आपके औद्योगिक स्तर को परिभाषित करता है तथा आप कैसे नियुक्त हैं यह आप के व्यावसायिक स्तर को परिभाषित करता है। व्यावसायिक वर्गीकरण व्यावसायिक श्रमिकों, प्रशासकीय/प्रबंधकर्त्ता श्रमिक, क्लर्क/ स्टेनोग्राफर, विक्रय कार्यकर्त्ता, नौकरीपेशा श्रमिक, किसान, ड्राईवर, श्रमिक आदि के रूप में किए जाते हैं।

- **मिलियन टन तेल तुल्यमान (Million Tonne of Oil Equivalent):** लकड़ी, कोयला, तेल, गैस और विद्युत ऊर्जा के विविध स्रोत हैं। इनमें से एक रूप को दूसरे रूप से आसानी से प्रतिस्थापित किया जा सकता है, जैसे लकड़ी को कोयले द्वारा। कुछ रूपों को दूसरे रूपों में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कोयला, तेल तथा गैस को विद्युत में। ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों का प्रयोग इसके उपयोग तथा प्रौद्योगिकी (तकनीकी) के विकास पर निर्भर करता है। विभिन्न विधाओं के सापेक्ष योगदान के महत्त्व को जानने के लिए इनको एक सामान्य इकाई में परिवर्तित करना होगा। ब्रिटिश तापीय इकाई जूल (JOULE) तथा कैलोरी, ऊर्जा की इकाइयाँ हैं, क्योंकि तेल को अब बहुत से प्रचालनों में सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है। इसलिए प्रत्येक के ऊर्जा की मात्रा को मापने के लिए तेल तुल्यमान को वर्तमान रूप में स्वीकार कर लिया गया है। बड़ी संख्याओं के लिए मिलियन अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत इकाई है।

- **मार्ग तथा पटरी किलोमीटर (Route and Track Kilometres):** दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को मार्ग दूरी (Route Distance) के द्वारा मापते हैं चाहे यह एक पटरी से मापी जाए या दो पटरी से या तीन/चार से। जब सभी पटरियों को मापा जाता है (दोहरे को दो तथा तिहरे को तीन) तो यह कुल पटरियों की संख्या है। फिर भी, तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ इधर-उधर और यार्ड तक जाने वाली अतिरिक्त पटरियाँ होती हैं। जब इन अतिरिक्त लाईनों को घटा देते हैं, तो हमें चालू ट्रैक प्राप्त होता है।

- **यात्री किलोमीटर/टन किलोमीटर (Passenger Kilometre / Tonne Kilometre):** एक व्यक्ति (एक टन सामान) को एक किलोमीटर तक पहुँचाना एक यात्री किलोमीटर (टन किलो मीटर) है।

- **पंजीकृत टन (Registered Tonne):** 100 घनाकार फीट की घनाकार क्षमता को पंजीकृत टन कहते हैं।

- **डाक सेवाएँ (Postal Services):** डाक सेवाओं को मौलिक डाक सेवा के रूप में विभाजित किया जा सकता है। मौलिक डाक सेवा का संबंध टिकटों तथा स्टेशनरी की बिक्री, पंजीकृत तथा बीमाकृत सामग्रियों की तथा पार्सलों की स्वीकृति, मूल्य का भुगतान करने योग्य सामग्री, पार्सल मनीऑर्डर तथा पोस्टल-आर्डर से है। दूसरी डाक सेवाओं में शीघ्रगामी डाक (स्पीड पोस्ट), व्यावसायिक डाक, डाक संचार, डाक लेखन सामग्री (पोस्टल स्टेशनरी पर सार्वजनिक व निजी निगमित क्षेत्र के विज्ञापन) सैटेलाइट डाक, त्वरित डाक, खुदरा डाक (टेलीफोन तथा बिजली के बिलों को स्वीकार करना) आदि आती हैं।

- **प्रतिशत बिंदु (Percent Points):** दो प्रतिशतों के बीच की निरपेक्ष दूरी को प्रतिशत बिंदु के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए 50 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत के मध्य की निरपेक्ष दूरी (60 प्रतिशत-50 प्रतिशत) = 10 है जबकि सापेक्ष दूरी [{(60 प्रतिशत) 50 प्रतिशत) / 50 प्रतिशत} × 100] = 20%।

- **सकल नामांकन दर (Gross Enrollment Ratio):** शिक्षा के एक विशिष्ट स्तर पर, उदाहरण के लिए, प्राथमिक स्तर पर अनुपात को सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। उस आयु-वर्ग (अर्थात् 6-11 आयु वर्ग में) के बच्चों की जनसंख्या के आकार में नामांकित छात्रों की संख्या के अनुपात को सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। इस दर को प्रायः प्रतिशत के रूप में व्यक्त करते हैं। फिर भी हम जानते हैं, बहुत सी प्राथमिक कक्षाओं (कक्षा I-V) नामांकित छात्र वस्तुतः 6-11 आयु वर्ग में नहीं आते। ऐसे बच्चे भी हैं जिसकी आयु 6 वर्ष से कम है या 11 वर्ष से अधिक है। कुछ राज्यों के संदर्भ में इस प्रकार सकल नामांकन अनुपात (दर) 100 प्रतिशत से अधिक हो सकती है। परंतु कुछ राज्यों में यह 150 भी हो गई। यदि हम निर्धारित आयु से अधिक आयु तथा इससे कम

आयु के बच्चों की गणना अलग कर दें, तो नामांकन अनुपात को निवल नामांकन अनुपात कहा जाएगा।

- **जीवन-मरण संबंधी आँकडे (Vital Statistics):** ये जन्म तथा मृत्यु से संबन्धित आँकड़े हैं। जन्म तथा मृत्यु संबंधित तथ्यों का वर्णन करने के लिए कई प्रकार के अनुपात हैं। शिशु मृत्यु दर या बाल मृत्यु दर को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। जीवन प्रत्याशा एक महत्त्वपूर्ण जीवन-मृत्यु सांख्यिकी है।
- **जीवित जन्म (Live Birth):** ऐसे बच्चों का जन्म जो प्रसव के समय जीवित हों (मृत जन्म, अकाल जन्म तथा प्रेरित गर्भपात को जन्म में नहीं गिना जाता है क्योंकि गर्भ से निकलने वाले ऐसे बच्चे पहले ही से मृत हैं)।
- **कोहर्ट (COHORT):** लोगों का कोई समूह जिनका आरम्भ किसी विशिष्ट घटना से एक ही समय में एक ही साथ होता है COHORT के नाम से जाना जाता है। यह एक पीढ़ी की तरह है। फर्क केवल यह है कि पीढ़ी में संबंध के किसी विशिष्ट घटना के घटित होने का अंतराल निश्चित नहीं होता। इस स्थिति में अंतराल निश्चित है। साधारणतया यह एक वर्ष होता है। एक विशिष्ट वर्ष में जैसे 2001 में पैदा हुए लोग इस वर्ष के कोहर्ट का निर्माण करते हैं। इस प्रकार एक विवाह COHORT या भर्ती COHORT भी हो सकता है। इस विश्लेषण का मूल महत्त्व है कि इस अवधारणा द्वारा हम जान सकते हैं कि विशेष समूहों में किस प्रकार गतिविधियाँ होती हैं।
- **प्रतिदर्श पंजीकरण प्रणाली (Sample Registration System):** हमारे पास जन्म, मृत्यु तथा विवाह के प्रतिवेदनों के लिए नागरिक पंजीकरण प्रणाली है। इन घटनाओं को ग्रामीण क्षेत्र में पंचायत एजेंसियाँ, पुलिस एजेंसियाँ तथा शहरी क्षेत्र में नगरपालिका प्राधिकरण के द्वारा रेकार्ड किया जाता है। यद्यपि कानून द्वारा जन्म तथा मृत्यु का पंजीकरण अनिवार्य है, फिर भी कई जन्म तथा मृत्यु अपंजीकृत रह जाते हैं। अतः नागरिक पंजीकरण प्रणाली पर आधारित जीवन मरण संबंधित आँकड़े विश्वसनीय नहीं हैं। भारत के रजिस्ट्रार जनरल के कार्यालय द्वारा प्रतिदर्श पर आधारित एक विशिष्ट पंजीकरण प्रणाली आरम्भ की गई। 1964-65 में प्रयोग करने के लिए जो प्रतिदर्श पंजीकरण प्रणाली आरंभ की गई, वह 1969-70 तक पूरी तरह प्रचलित हो गई। अब अधिकांश जीवन-मरण के आँकड़े नागरिक पंजीकरण प्रणाली (एस.आर.एस.) पर आधारित हैं।
- **व्यापक विकास आयोजन (Comprehensive Development Planning):** आयोजन जिसका तात्पर्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के सभी स्तरों से है, विकास आयोजन कहलाता है। यह केवल सार्वजनिक क्षेत्र या आर्थिक स्तर तक सीमित नहीं होता।
- **प्राकृतिक एकाधिकार (Natural Monopoly):** इसका तात्पर्य उस एकाधिकार से है जिसका प्रादुर्भाव प्रौद्योगिकीय कारणों से होता है न कि प्रवेश में रुकावट के कारण।

प्रौद्योगिकी ही किसी उत्पादक को उत्पादन करने या सम्पूर्ण बाजार को सेवाएँ प्रदान करने की लागत को कम करती है। संसाधन लागत के मामले में यह समाज के लिए भी सस्ती है। यदि दो संयंत्र एक ही प्रौद्योगिकी से एक ही बाजार के लिए मिलकर माँग को पूरा करना चाहते हैं, तो संसाधन लागत बढ़ जाएगी क्योंकि वे पैमाने की अर्थव्यवस्था का अवशोषण नहीं कर रहे होते हैं। इन फर्मों को नियमितता की आवश्यकता है, अन्यथा ये अत्यधिक लाभ कमाने लगेंगे।

- **परिदृश्य योजना (Perspective Plan):** परिदृश्य योजना एक दीर्घावधि योजना है जो मध्यावधि योजना के लिए पृष्ठभूमि बनाती है। जबकि मध्यावधि योजनाएँ चार/पाँच/छः वर्ष के लिए (हमारे देश में पाँच वर्ष के लिए) बनाई जाती हैं, दीर्घावधि परिदृश्य योजना प्रायः दस/पन्द्रह/बीस वर्षों के लिए होती हैं। दीर्घकालिक परिदृश्य योजना में दीर्घकालिक-लक्ष्यों जैसे दस वर्षों बाद की माँग वृद्धि को पूरा करने लायक क्षमता में वृद्धि; गरीबी, बेरोजगारी याँ निरक्षरता आदि मौलिक समस्याओं के समाधान या वैकल्पिक प्रौद्योगिक सम्भावनाओं आदि पर विचार किया जाता है। मध्यावधि योजना वर्तमान प्रौद्योगिकी के प्रयोग, गरीबी-निवारण, भुगतान-संतुलन में सुधार तथा मुद्रास्फीति-नियंत्रण पर ध्यान देती है। अल्पकालिक या वार्षिक योजनाएँ वे हैं, जो तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देती हैं। आयोजन सही दिशा में प्रगति में सहायता करता है। यदि मार्ग से दिशाभ्रमित होना भी पड़े, तो भी यह मालूम होता है कि दीर्घकालिक मार्ग पर ही वापिस आना है।
- **दीर्घकालिक/अल्पकालिक उद्देश्य (Long Term / Short Term Objective):** दीर्घकालिक उद्देश्य इस पर निर्भर करते हैं कि हमें किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। अल्पकालिक उद्देश्य समय की माँग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, पर्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त करने के कई अच्छे उद्देश्य हो सकते हैं, परंतु विदेशी विनिमय का संचयन हमारा दीर्घकालिक उद्देश्य नहीं हो सकता । मुद्रास्फीति को कम रखना एक अल्पकालिक उद्देश्य हो सकता है, परंतु आय की असमानता को कम करना एक दीर्घकालिक उद्देश्य है।
- **हरित क्रान्ति (Green Revolution):** वैज्ञानिक रूप से विकसित उन्नत बीज, उर्वरक, कीटाणुनाशक, तथा नियंत्रित सिंचाई की सहायता से कृषि क्षेत्र के उत्पादन की मात्रा में वृद्धि को हरित क्रान्ति कहते हैं। यह किसी फसल विशेष के उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने के साथ-साथ किसी प्लाट विशेष में एक वर्ष में कई फसलें उगाने की सुविधा प्रदान करता है।
- **व्यक्ति-दिन (Person-day):** एक व्यक्ति का एक दिन का कार्य एक व्यक्ति-दिन होता है। दो व्यक्ति आधे दिन काम करें तो प्रत्येक के काम की मात्रा एक व्यक्ति-दिन है। व्यक्तियों की संख्या को दिनों की संख्या से गुणा कर, प्राप्त गुणात्मक उत्पादों के कुल योग द्वारा कुल व्यक्ति-दिवसों की जानकारी मिलती है।

- **नियोजन/अनियोजन का स्वाभाविक स्तर (Usual Status of Employment/Unemployment):** एक व्यक्ति आज नियोजित हो सकता है और कल अनियोजित। यद्यपि कोई स्त्री/पुरुष इस आधार पर नियोजित/अनियोजित माना जाता है कि वह वर्ष के अधिकांश भाग में नियोजित/अनियोजित था। साधारणतया नियोजित/अनियोजित व्यक्तियों की संख्या जाँच वर्ष में नियोजन के स्तर को दर्शाती है। इस संख्या को नियोजित व्यक्तियों की या कार्य की तलाश करने वाले व्यक्तियों की संख्या से भाग देने पर अनियोजन की स्वाभाविक दर प्राप्त होती है।

- **नियोजन/अनियोजन का वर्तमान दैनिक स्तर (Current Daily Status Employment):** इसमें प्रत्येक सप्ताह के व्यक्ति दिवसों में नियोजितों/अनियोजितों की संख्या को सात से विभाजित कर श्रम शक्ति के दैनिक नियोजन/अनियोजन स्तर की जाँच होती है। इस संख्या को श्रम शक्ति (कार्यशील अथवा कार्य के लिए उपलब्ध) की कुल मात्रा से भाग देकर वर्तमान दैनिक स्तर प्राप्त होता है।

- **एम.आर.टी.पी.ए. तथा एम.आर.टी.पी.सी. (M.R.T.P.A. and M.R.T.P.C.):** एकाधिकार जाँच समिति (1965) के सुझावों का पालन करते हुए 1970 में एक अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम को एकाधिकार और नियंत्रित व्यापार अभ्यास अधिनियम (MRTPA) कहा गया। इस अधिनियम के अंतर्गत एकाधिकार तथा नियंत्रित व्यापार अभ्यास समिति (MRTPC) का गठन अलग-अलग स्तर में यह जाँच करने के लिए किया गया कि क्या कोई दी हुई फर्म या फर्मो का समूह इस प्रकार की गतिविधियों का अभ्यास कर रहे हैं, जैसे अपने उत्पादों के लिए ग्राहकों से अधिक कीमतें वसूल करना आदि। इस न्यायिक प्रणाली के अंतर्गत ऐसे निगम रखे गए जिनकी प्रदत्त-पूँजी 20 करोड़ रुपए हो। 1985 में इस सीमा को 100 करोड़ रुपए तक बढ़ा दिया गया। यहाँ हम इन दोनों के बीच के सूक्ष्म अंतर तथा उनकी परिभाषा के कानूनी पहलुओं पर विचार नहीं करेंगे।

- **पूँजी पलायन (Flight of Capital):** स्थितियों के अस्थिर होने के कारण, विशेषकर जब सरकार वित्तीय कठिनाइयों में हो, या चरमस्थिति में जब मुद्रा में गम्भीर अवमूल्यन का भाव हो, तो बड़ी संख्या में निवेशक जिन्होंने उस देश में निवेश किया है, अपने निवेश को कहीं और स्थानान्तरित करना चाहेंगें। यदि ऐसा बड़े पैमाने पर होता है तो इसे पूँजी के पलायन के रूप में जाना जाता है। इसके कारण वास्तव में उस देश की समस्याओं में वृद्धि होती है, जहाँ से पूँजी का पलायन होता है।

- **कोटा (Quota):** कोटा का तात्पर्य एक वस्तु की मात्रा को प्रतिबंधित करना है, जिसे एक दिए हुए समय बिंदु पर आयात किया जा सकता है। यद्यपि यह कई देशों द्वारा अपने सीमित विदेशी विनिमय को सुरक्षित रखने के लिए अपनाया जाता है, फिर भी इसे

विदेशी प्रतियोगिता से घरेलू उद्योगों को संरक्षित करने की एक विधि के रूप में भी माना जा सकता है।

- **प्रशुल्क (Tariff):** देश में आयातित वस्तु की प्रत्येक इकाई पर लगाए गए कर या लेवी को प्रशुल्क कहते हैं।
- **फेरा और फेमा (FERA and FEMA):** विदेशी नियंत्रित कम्पनियों को नियमित करने के लिए 1947 में एक अधिनियम बनाया गया जिसे भारतीय विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम (FERA) के नाम से जाना जाता है। 1973 में जब हमारे विदेशी विनिमय संसाधन एक बिलियन डालर से कम हो गए तो महत्त्वपूर्ण विदेशी विनिमय कोष को सुरक्षित रखने के लिए अधिनियम में संशोधन किए गए। परंतु इसमें विदेशी निवेशकों को दिशा निर्देश देने के प्रावधान हैं। वे अपने कोषों को सुधारी हुई प्रौद्योगिकी की ओर परिवर्तित कर सकते हैं। इसके कारण परेशानियाँ बढ़ गईं अतः इसमें 1976 में पुनः संशोधन हुए। अंततः हम विदेशी विनिमय के स्तर में संतोषजनक स्थिति में हैं। हमने विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम (FEMA) बनाया जो विदेशी विनिमय तथा विदेशी प्रतिभूति मुद्दों से संबद्ध है।
- **गैर-निवासी भारतीय (NRI):** गैर-निवासी भारतीय वे भारतीय हैं जो सामान्यतः भारत में नहीं अपितु किसी दूसरे देश में रहते और कार्य करते हैं। उनके पास भारतीय नागरिकता व भारतीय पासपोर्ट होता है।
- **विदेशी विनिमय कोष (Foreign Reserve):** विदेशी विनिमय-कोष के अंतर्गत रिजर्व बैंक के पास सुरक्षित कोष, विदेशी मुद्रा, परिसंपत्तियाँ, एस.डी.आर तथा स्वर्ण-कोष आते हैं। ये आयात के लिए एक छत्र-छाया प्रदान करते हैं। विदेशी निवेश, विदेशी सहायता, विदेशी ऋण, विदेशी अनुदान द्वारा एकत्र होते हैं, जिसमें अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिए गए अनुदान के साथ गैर-निवासी नागरिकों (NRI) द्वारा प्रेषित राशि भी शामिल है।
- **राजस्व घाटे (Revenue Deficit):** राजस्व घाटे सरकार के राजस्व व्यय तथा राजस्व आय के बीच के आधिक्य को कहते हैं। राजस्व आय में करों और दूसरे शुल्क जैसे व्यय और सरकारी निवेशों पर लाभांश-शुल्क तथा सरकार द्वारा प्रदान की गई दूसरी सेवाओं से प्राप्तियाँ शामिल हैं। साधारण कामकाज तथा विविध सेवाओं, सरकारी ऋण पर ब्याज, अनुदान आदि पर होने वाले व्यय, राजस्व व्यय (आवर्ती व्यय) हैं। साधारणतया राजस्व व्यय परिसंपत्तियों का निर्माण नहीं करते, परंतु केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए अनुदान (जिन्हें राजस्व व्यय माना जाता है) का प्रयोग परिसंपत्तियों के निर्माण में हो सकता है।
- **राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit):** राजकोषीय घाटा कुल व्यय (राजस्व व्यय एवं पूँजी व्यय, ऋण सहित) में से राजस्व प्राप्तियों तथा अन्य प्राप्तियों (जो ऋण भुगतान के लिए

सरकार को बाध्य नहीं करती) को घटाने के बाद प्राप्त होता है। अन्य प्राप्तियों में सरकारी सम्पत्ति, अंशपत्रों की बिक्री तथा विनिवेश लाभ सम्मिलित है।

- **चालू खाता घाटा (Current Account Deficit):** भुगतान-शेष खाते में किसी अर्थव्यवस्था के अंतरराष्ट्रीय सौदों का एक विवरण होता है। इसके दो भाग हैं– चालू खाता एवं पूँजी खाता। चालू खाते में वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार के साथ-साथ अंतरण भुगतानों का विवरण भी होता है। पूँजी खाते में सम्पत्तियों (जैसे स्टाक, बॉण्ड/अनुबंध-पत्र एवं भूमि आदि) के क्रय-विक्रय तथा बैंकों की जमा-राशि का विवरण होता है। वस्तुओं के व्यापार का तात्पर्य वस्तुओं (जैसे तेल, कबाड़ तथा पटसन) के क्रय और विक्रय से है तथा सेवाओं के व्यापार से माल परिवहन के भाड़े, रायल्टी एवं ब्याज के भुगतान से है। हुँडी, उपहार एवं अनुदान के लिए दिए गए अथवा प्राप्त किए गए भुगतानों को, जिन्हें अंतरण भुगतान के नाम से जाना जाता है, चालू खातों में सम्मिलित किया जाता है। यदि, चालू खाता शीर्षक के अंतर्गत (वस्तुओं का व्यापार, सेवाओं का व्यापार और अंतरण भुगतान) कुल भुगतान, कुल प्राप्तियों से अधिक हो जाता है तो वहाँ चालू खाता घटा माना जाता है। यदि ऐसा न हो तो इसे एक अधिशेष (Surplus) समझा जाता है।

- **अहस्तक्षेप नीति/व्यापार स्वतंत्रता (Laissez faire):** यह नीति एक फ्रैन्च मुहावरा 'हमें अकेला छोड़ दो' की पुष्टि करती है। यह सूचित करती है कि सरकार को आर्थिक क्रिया में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए तथा निर्णयों को बाजार पर छोड़ देना चाहिए। इस दृष्टि से, सरकार की भूमिका कानून और व्यवस्था के रख-रखाव, राष्ट्रीय सुरक्षा, अनिवार्य लोक-हित जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रबंध तक सीमित होनी चाहिए, जिनका उत्तरदायित्व निजी उद्योग नहीं लेंगे।

- **विदेशी निवेश (Foreign Investment):** विदेशी निवेश दो प्रकार का होता है, पहला, विदेशी पूँजी का नई उत्पादक क्रिया में निवेश, जिसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहा जाता है। दूसरा, वह विदेशी पूँजी जो भारतीय कम्पनियों के शेयरों का क्रय करती है। इसे पोर्टफोलियो निवेश कहा जाता है। ये दोनों दूसरे देश को विदेशी मुद्रा देते हैं। जहाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अतिरिक्त सामर्थ्य/सक्षमता का निर्माण करता है और अतिरिक्त उत्पादन में योग देता है, पोर्टफोलियो निवेश ऐसा नहीं करता। हालाँकि दोनों ही लाभ अर्जित करते हैं। प्रत्यक्ष निवेश से अर्जित लाभ उस उत्पादन की प्रकृति पर निर्भर करता है, जिसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश किया जाए। ऐसे निवेश से होने वाले उत्पाद का निर्यात कर राष्ट्र के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। पोर्टफोलियो निवेश का लाभ पर थोड़ा अधिकार और उत्पादन पर थोड़ा नियंत्रण होगा।

- **विश्व व्यापार संगठन (WTO):** विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1995 में, व्यापार में शुल्कों और अन्य बाधाओं में कमी करके, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और अंतरराष्ट्रीय

व्यवसाय में भेदमूलक व्यवहार के उन्मूलन के उद्देश्य से की गई। यह गैट करार (GATT) का उत्तराधिकारी है। सात वर्षों की लंबी बातचीत के पश्चात्, सदस्य राष्ट्र प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य उरुग्वे राउण्ड में विश्व व्यापार संगठन को स्थापित करने के लिए सहमत हुए। विश्व व्यापार संगठन ने बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार से संबंधित व्यापार एवं निवेश मापों से संबंधित व्यापार को सम्मिलित करके अपने कार्य क्षेत्र में वृद्धि की है।

- **बौद्धिक संपत्ति अधिकार (Intellectual Property Rights):** ये वे नियम हैं जो पेटेन्ट, स्वत्वाधिकारों (कॉपी राइट), व्यापार संबंधी गोपनीय बातों, विद्युत साधनों एवं अन्य वस्तुओं (जिनमें मुख्य रूप से सूचना का समावेश हो) का संचालन करते हैं। ये नियम, सामान्यतया मूल निर्माताओं को नियंत्रण का अधिकार और कार्य के पुनरुत्पादन के लिए मुआवजा देते हैं।

- **जन्म-दर और मृत्यु-दर (Birth Rate and Death Rate):** जन्म का तात्पर्य माता के गर्भाशय से एक मानवीय बच्चे के जीवित प्रसव से है। मृत प्रसव, गर्भपात एवं भ्रूणहत्या (जीवित) जन्म के अंतर्गत नहीं गिने जाते। जन्म-दर को एक दिए गए वर्ष में, जनसंख्या में प्रति हजार, जीवित जन्मों की संख्या से परिभाषित किया जाता है। मृत्यु-दर को, एक दिए गए वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या पर मृत व्यक्तियों की संख्या द्वारा परिभाषित किया जाता है। यद्यपि जुड़वां बच्चों का जन्म एक साथ होता है, उनकी मृत्यु पृथक होती है। उनके जन्मों को एक गिना जाता है जबकि उनकी मृत्यु को दो मृत्यु माना जाता है।

- **प्राकृतिक वृद्धि/संवृद्धि दर (Rate of Natural Increase/Growth):** जन्म-दर और मृत्यु-दर में अंतर को प्राकृतिक वृद्धि-दर अथवा प्राकृतिक संवृद्धि दर के रूप में जाना जाता है। यह (सकल) संवृद्धि दर के विपरीत है, जो अपने लेन-देन की गणना में निवल प्रवसन को भी मानती है।

- **अंतः और बाह्य-प्रवसन (In-migration and Out-migration):** शीघ्र वापिस आने की इच्छा के साथ किसी स्थान पर जाने को अंतः प्रवसन कहते हैं और शीघ्र ही वापिस न जाने की इच्छा से किसी स्थान पर जाने को बाह्य-प्रवसन कहते हैं। जब यह आवागमन दो देशों के बीच होता है, तब यह प्राप्त करने वाले देश के लिए आप्रवास तथा निर्वासन करने वाले देश के लिए उत्प्रवास होता है।

- **जनांकिकीय निवेश (Demographic Investment):** जब तक बच्चे श्रमिकों की श्रेणी में प्रवेश नहीं करते, उनकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर (सार्वजनिक-स्वास्थ्य) किया गया निवेश जनांकिकीय निवेश कहलाता है। इसके 'सार्वजनिक' अधिस्वर हैं और यह विद्यालयों, अध्यापकों, अस्पतालों और डाक्टरों पर निवेश का सुझाव देता है। ऐसा माना जाता है कि यह विकास-निवेश का निर्गम है।

- **निर्भरता भार (Dependency Burden):** बच्चों पर (जबकि वे अनुत्पादक होते हैं), उनके पालन-पोषण, शिक्षा एवं चिकित्सा पर किया गया व्यय निर्भरता भार कहलाता है। इसके 'पैतृक' अधिस्वर होते हैं।
- **मानव पूँजी-निर्माण (Human Capital Formation):** भौतिक पूँजी के विपरीत (जो एक मशीन, एक इमारत, एक सड़क आदि होती है) जब मानव जाति को, शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सहायता से तथा सर्वोतम चिकित्सा एवं आहार सुविधाओं की सहायता से, एक अच्छा उत्पादक बनाया जाता है, तो यह पूँजी निर्माण मानव रूप में होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उत्पादकता में इसका विशाल योगदान है।
- **आयु-विशेष जनन-क्षमता (Age Specific Fertility):** किसी दिए वर्ष में, एक विशेष वर्ग में महिलाओं द्वारा दिए गए जन्मों की संख्या को उस आयु-वर्ग में आने वाले महिलाओं की संख्या से विभाजित करके जब 1000 से गुणा किया जाता है, तो इसे उस विशेष वर्ष में उस आयु-वर्ग की आयु-विशिष्ट जनन-क्षमता कहते हैं।
- **सकल जनन-क्षमता दर (Total Fertility Rate):** मोटे तौर पर कहा जाए तो यह महिलाओं के किसी एक समूह-विशेष (जिनका चुनाव उनकी आयु-विशेष जनन-क्षमताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है) से जन्मे बच्चों की कुल औसत संख्या है।
- **प्रति हजार बिंदु (Per Thousand Points):** दो दरों के स्तर में अंतर को, सामान्यतः प्रति हजार के रूप में व्यक्त किया जाता है। यदि इसे प्रति हजार बिंदुओं से व्यक्त किया जाए तो यह प्रतिशत बिंदुओं के समरूप हो जाता है। बहुत-सी दरें जनांकिकीय में प्रति हजार के रूप में व्यक्त की जाती हैं, अतः इन्हें स्मरण/याद रखना आवश्यक हो जाता है।
- **प्रतिशत बिंदु (Percentage Point):** जब हम दो प्रतिशत आँकड़ों जैसे 50 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत, की तुलना करते हैं, तो निरपेक्ष अंतर को 10 प्रतिशत पढ़ा जाता है तथा सापेक्ष अंतर को 20 प्रतिशत कहा जाता है, जो आरम्भिक आँकड़ों द्वारा निरपेक्ष अंतर के प्रतिशत से प्राप्त किया किया जाता है।
- **आर्थिक सहायता और आर्थिक प्रति-सहायता (Subsidisation and Cross-subsidisation):** जब वसूली के लागत से कम होने के कारण हुई हानि को सामान्य राजस्व द्वारा पूरा किया जाता है, तो इसे आर्थिक सहायता के नाम से जाना जाता है। जब एक उत्पाद के मूल्य को किसी अन्य उत्पाद मूल्य से कम करने के लिए बढ़ाया जाए, तो इसे आर्थिक प्रति-सहायता के नाम से जाना जाता है।

परिशिष्ट

- **अर्थव्यवस्था :** हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र अर्थव्यवस्था है। परंतु अर्थव्यवस्था क्या है? चारों ओर दृष्टि डालने पर ऐसा प्रतीत होता है कि एक अर्थव्यवस्था, खेतों, कारखानों, कार्यशालाओं, खानों, दुकानों, रेलों, जलयानों, वायुयानों, पाइपलाइनों (जो गैस, तेल अथवा जल को उपभोक्ता तक पहुँचाती है), कार्यालयों, बैंकों, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों, सिनेमा-चित्रपटों, नाट्य-शालाओं एवं नाट्य गृहों, औषधालयों और अस्पतालों का संग्रह है। ये उन सद्बभी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करते हैं, जिनका आर्थिक मूल्य होता है और जिनका लोगों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग किया जाता है। अर्थव्यवस्था का यह दृष्टिकोण सरल, विवरणात्मक तथा स्पष्ट है। यह स्वीकार्य होना चाहिए।

  फिर भी, ऐसे भी लोग हैं जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न उपयोगों की ओर संकेत करते हैं, जैसे– राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था; ग्राम अर्थव्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं शहरी अर्थव्यवस्था; गुलाम, सामन्तवादी, पूंजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था; घरेलू अर्थव्यवस्था। अर्थव्यवस्था की इन सभी परिभाषाओं की सामान्य विशेषता क्या है? विद्वानों के अनुसार वास्तव में यह संबंधों का एक समुच्चय है जिसे कुछ हद तक, अन्य सामाजिक संबंधों के रूप में पृथक किया जा सकता है। ये संबंध श्रम शक्ति के प्रयोग में और भौतिक आवश्यकताओं के प्रबंध में प्रकट होते हैं।

  अर्थव्यवस्था को एक और प्रकार से भी परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। यह व्यक्तियों के समूह के बीच संबंधों का एक ऐसा ढाँचा है जो संसाधनों के प्रयोग, साधनों के उपयोग, वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन पर होने वाले परिश्रम और उत्पादन पर सदस्यों के अधिकार को निर्धारित करता है।

- **आधुनिक आर्थिक विकास (Modern Economic Growth):** प्राकृतिक साधनों के अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक प्रयोग, उत्पादन तकनीकों में सुधार, अधिक से अधिक उत्पादन, अधिक भिन्नता वाली वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन तथा उत्तम जीवन निर्वाह– इन सभी के द्वारा मानव-समाज उत्पादन को बढ़ाता है। परंतु कुछ संस्थाओं का वास्तविक पतन होने से इसमें एक लंबा समय लग सकता है। ऐसा भी समय हो सकता है जब जनसंख्या में वृद्धि का परिमाण वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि से अधिक हो जाए (बहुत समय पहले वस्तुओं का आशय, खाद्य-पदार्थ, खाद्यान्न और अन्य खाद्य पदार्थों से होता होगा। प्रति व्यक्ति उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि नहीं होती होगी तथा जनसंख्या में भी दीर्घ-कालीन वृद्धि नहीं होती होगी)।

पश्चिम में पिछले 200 वर्ष का इतिहास, असाधारण माना जाता है। यह वह समय था जब जनसंख्या में दीर्घकालीन वृद्धि हो रही थी। परंतु वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि से अधिक थी। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति उत्पाद (तथा प्रतिश्रमिक निर्गत) में दीर्घकालीन वृद्धि हो रही थी।

यही बात विकासशील देशों के पिछले 50 वर्षों के बारे में कही जा सकती है। यहाँ भी जनसंख्या पिछले 50 वर्षों के दौरान पश्चिम से अधिक तेजी से बढ़ी। परंतु सकल वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि फिर भी तीव्र थी। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि हुई।

- **संवृद्धि-दर शृखला का स्वरूप/व्यवहार (Character of Growth Rate Series):** समय-परिवर्तन के साथ, यदि संवृद्धि-दर अपरिवर्तित रहती है, तो हम इसे नियमित संवृद्धि कहते हैं। 100, 110, 121, 133.1, 146.41...............की शृंखला में 10 प्रतिशत की वृद्धि स्थिर वृद्धि दर्शाती है। इसके स्थान पर यदि हमें ज्ञात हो कि, जैसे-जैसे समय गुजरता है, यह बढ़ती जाती है, तो हम इसे तीव्र संवृद्धि की स्थिति कह सकते हैं। 100, 110, 122, 135 और 150......की शृंखला तीव्र संवृद्धि की स्थिति को चित्रित करती है। दूसरी ओर समय बीतने के साथ यदि वृद्धि-दर कम हो जाती है, हम इसे मन्द वृद्धि की स्थिति कह सकते हैं। परंतु वास्तव में, कोई भी अर्थव्यवस्था ऐसा स्पष्ट प्रतिरूप नहीं दर्शाती। इसमें कभी-कभी बहुत व्यापक उतार-चढ़ाव होते हैं। इसमें यह संभावना रहती है कि इन उतार-चढ़ावों में बढ़ने, घटने या स्थिर रहने की प्रवृत्ति होती है। परंतु जब लंबी अवधि, जैसे दशक-दर दशक, पर विचार किया जाए तो प्रतीत होता है कि सकल घरेलू उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि हुई है।
- **भारत के लिए 1999 के लिए मानव विकास सूचकांक का परिकलन (Computation of HDI for 1991):** मान लें हमें भारत के लिए वर्ष 1999 के लिए निम्नलिखित आँकड़े दिए गए हैं:

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	62.9 वर्ष
प्रौढ़ साक्षरता अनुपात	56.5 प्रतिशत
संयुक्त नामांकन अनुपात	65.0 प्रतिशत
प्रतिव्यक्ति आय	PPP$ 2248

आइए, पहले हम प्रौढ साक्षरता अनुपात और संयुक्त नामांकन अनुपात को शैक्षिक उपलब्धि के साथ मिलाएँ। प्रौढ़ शिक्षा अनुपात को 2/3 भार तथा संयुक्त नामांकन अनुपात को 1/3 भार देने पर हम निम्नलिखित प्राप्त करते हैं :

शैक्षिक उपलब्धि (ई.ए.) = (2/3) = 56.5 प्रतिशत × (1/3)√ 56.0 प्रतिशत + 56.13 प्रतिशत

आइए, अब हम जीवन-स्तर (SL) को प्रतिबिम्बित करने के लिए प्रतिव्यक्ति आय का लघु-गुणक ज्ञात करें।

जीवन-स्तर (एस.एल) = log (PPP$ 2284) = 3.352

आइए, अब घटक सूचकांक (सी.आई.) के लिए सूत्र ज्ञात करें।

$$\text{घटक सूचकांक} = \frac{\text{घटकों का वास्तविक मूल्य - घटकों का न्यूनतम मूल्य}}{\text{घटकों का अधिकतम मूल्य - घटकों का न्यूनतम मूल्य}}$$

आइए, ऊपर दिए गए वास्तविक मूल्यों का और सारणी 2 से अधिकतम एवं न्यूनतम मूल्यों का प्रयोग करें और निम्नलिखित प्राप्त करें :

$$\text{जीवन प्रत्याशा सूचकांक (एल.ई.आई.)} = \frac{62.9 - 25.0}{85.0 - 25.0} = \frac{37.9}{0.632}$$

$$\text{शैक्षिक उपलब्धि सूचकांक (ई.ए.आई.)} = \frac{56.13 - 0.0}{100.0 - 0.0} = 0.561$$

$$\text{जीवन स्तर सूचकांक (एस.एल.आई.)} = \frac{3.352 - 2.0}{4.602 - 2.0} = \frac{1.352}{2.602} = 0.520$$

सरल अंकगणित के प्रयोग से तीनों घटक सूचकों का औसत करके मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) का परिकलन करना आसान होता है। इन आँकड़ों को स्थापित करके, हम निम्नलिखित ज्ञात करते हैं :

मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) = 1/3 (LEI + EAI + SLI) = 1/3 (0.632 + 0.561 + 0.520) = 0.571

- **भारत में समष्टिगत आर्थिक समूहों का अनुमान (Estimation of Macro-economic Aggregates in India):** भारत में समष्टिगत आर्थिक समूहों को स्वतंत्रता के पश्चात् ही तैयार किया गया है। राष्ट्रीय आय के अनुमानों के पहले समुच्चयों को राष्ट्रीय आय समिति, जिसमें पी.सी. महालनाविस, डी.आर. गाडगिल तथा वी.के.आर.वी. राव शामिल हैं, द्वारा तैयार किया गया था। यह शृंखला वर्ष 1948-49 में आरम्भ होकर 1967 तक सतत् रही जब इसे 1960-61 के आधार-वर्ष वाली एक अन्य शृंखला से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस शृंखला को भी 1977 में वर्ष 1970-71 आधार वर्ष वाली शृंखला से प्रतिस्थापित कर दिया गया। 1988 में वर्ष 1980-81 के आधार-वर्ष के साथ एक अन्य शृंखला आरम्भ की गई, जिसे 1999 में वर्ष 1993-94 के आधार-वर्ष वाली एक नवीनतम शृंखला द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। चूँकि स्वतंत्र देश के लिए, 1948-49 सबसे पहला पूर्ण वित्तीय वर्ष था, अतः इसे आधार वर्ष चुने जाने में कोई समस्या नहीं हुई। नवीनतम शृंखला के लिए 1990-91 के स्थान पर 1993-94 को आधार वर्ष चुनने का क्या औचित्य है? वर्ष 1993-94 को अंशतः आधार-वर्ष इसलिए चुना गया क्योंकि

1990-91 एवं 1992-93 के वर्ष सामान्य नहीं माने गए तथा अंशतः इसलिए क्योंकि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अतिविशाल आँकड़े 1993-94 में संचालित सिंहावलोकन से उपलब्ध थे। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (सी.एस.ओ.) ने, जिसने अपने निर्णायक प्रतिवेदन 1954 में प्रस्तुत किए, इन अनुमानों को तैयार करने का कार्य-भार राष्ट्रीय आय समिति से ले लिया। हर बार आधार वर्ष के संशोधन के साथ-साथ सी.एस.ओ. अपने समूहों की सूची को बढ़ाता गया।

- **संवृद्धि दर के परिकलन की विधियाँ (Methods of Computation of Growth Rate):** किसी दिए गए समय में वृद्धि-दर का परिकलन करने के तीन तरीके हैं। पहले, आरम्भिक और अंतिम (F) संख्याएँ/आँकड़े लें और चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र का (ब्याज की दर (r) और समय (t) का प्रयोग करें, जो $F = P(1+r)^t$ है। F,P और के मूल्यों को प्रतिस्थापित करके, r निकाला जा सकता है, जिसे हम प्रति अवधि वृद्धि की दर कहते हैं। अधिकतर समय को वर्ष के रूप में गिना जाता है। इस आँकड़े (r) को 100 से गुणा किया जाता है, और वृद्धि-दर को वार्षिक प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस विधि में, हम मध्यवर्ती वर्षों में इस प्रयोग की उपेक्षा कर देते हैं। यदि अंतिम अथवा आरम्भिक वर्ष, रूपरेखा से बाहर हैं तो वृद्धि-दर समय का द्योतक नहीं होगी। इस दर को वार्षिक चक्रवृद्धि वृद्धि-दर कहते हैं।

दूसरा, युग्म के रूप में वर्ष प्रति-वर्ष वृद्धि-दरों की परिकल्पना करते हैं और इन दरों के योग को, दरों की संख्या द्वारा औसत किया जाता है। इसे वार्षिक औसत वृद्धि-दर

सारणी 'क'

1993-94 की स्थिर कीमतों पर 1950-51 से 1999-2000 तक सकल घरेलू उत्पाद

(करोड़ रु.)

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद
1950-51	140466	1960-61	206103	1970-71	296278	1980-81	401128	1990-91	692871
1951-52	143745	1961-62	212499	1971-72	299269	1981-82	425073	1991-92	701863
1952-53	147824	1962-63	216994	1972-73	298316	1982-83	438079	1992-93	737792
1953-54	156822	1963-64	227980	1973-74	311894	1983-84	471742	1993-94	781345
1954-55	163479	1964-65	245270	1974-75	315514	1984-85	492077	1994-95	838031
1955-56	167667	1965-66	236306	1975-76	343924	1985-86	513990	1995-96	899563
1956-57	177211	1966-67	238710	1976-77	348223	1986-87	536257	1996-97	970083
1957-58	175068	1967-68	258137	1977-78	374235	1987-88	556778	1997-98	1016266
1958-59	188354	1968-69	264873	1978-79	394828	1988-89	615098	1998-99	1083047
1959-60	192476	1969-70	282134	1979-80	374291	1989-90	656331	1999-00	1151991

सारणी 'ख'

1993-94 की स्थिर कीमतों पर 1950-51 से 1999-2000 तक प्रतिव्यक्ति आय

वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय
1950-51	3687	1960-61	4429	1970-71	5002	1980-81	5352	1990-91	7321
1951-52	3714	1961-62	4449	1971-72	4914	1981-82	5555	1991-92	7212
1952-53	3747	1962-63	4425	1972-73	4763	1982-83	5548	1992-93	7433
1953-54	3909	1963-64	4546	1973-74	4880	1983-84	5854	1993-94	7698
1954-55	3994	1964-65	4781	1974-75	4830	1984-85	5956	1994-95	8088
1955-56	4020	1965-66	4459	1975-76	5167	1985-86	6082	1995-96	8498
1956-57	4159	1966-67	4392	1976-77	5103	1986-87	6189	1996-97	9036
1957-58	4007	1967-68	4653	1977-78	5375	1987-88	6260	1997-98	9288
1958-59	4222	1968-69	4657	1978-79	5551	1988-89	6777	1998-99	9733
1959-60	4216	1969-70	4865	1979-80	5092	1989-90	7087	1999-00	10204

(AAGR) के नाम से जाना जाता है। यह विधि सभी आँकड़ों का प्रयोग करती है परंतु यह विधि ज्यामितीय एवं अंकगणितीय विधियों का सम्मिश्रण है, क्योंकि वृद्धि-दर मूल रूप से एक ज्यामितीय धारणा है जबकि औसत निकालना अंकगणित।

तीसरा, अर्ध लघु फलन का प्रयोग करते हुए प्रतिगमन विधि के द्वारा (सांख्यिकीय विधि) हम पूरे समय के लिए एक प्रतिनिधि r का अनुमान लगा सकते हैं।

सभी विधियाँ पुरानी हैं। बहुत से विद्वान पाठकों को अपने द्वारा प्रयुक्त की गई विधि के बारे में पर्याप्त चेतावनी नहीं देते। इसलिए यदि कोई ठोस तुलना करना चाहता है तो उसे वास्तव में प्रयोग की गई विधि को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

आप सारणी 2 और विशेष रूप से सारणी 4 में यह देख सकते हैं कि 70 के दशक में CAGR बहुत ही निम्न आँकड़ें प्रस्तुत करता है। चक्रवृद्धि वार्षिक संवृद्धि दर, औसत वार्षिक संवृद्धि दर का एक-तिहाई भी नहीं है।

- **1950-51 से स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product at Constant Prices Since 1950-51)**: जैसा कि आप देख सकते हैं कि 1957-58, 1965-66, 1972-73 तथा 1979-80 में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि नहीं हो सकी। हालाँकि कुछ ऐसे वर्ष थे जब वृद्धि-दर लगभग एक प्रतिशत वार्षिक के निकट थी, जो कि जनसंख्या की वृद्धि-दर से बहुत कम थी।

हम देख सकते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय पचास में से कम से कम बारह वर्षों तक गिरती रहीं जबकि सकल घरेलू उत्पाद केवल चार वर्षों तक गिरा। इसका सरल आशय है कि, अन्य 8 वर्षों में, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की दर जनसंख्या की वृद्धि की दर से कम थी। आर्थिक क्रिया में वृद्धि की दर बढ़ रही है जबकि जनसंख्या की वृद्धि की दर ने 80 के दशक और 90 के दशक में गिरना आरंभ कर दिया था।

- **स्वतंत्रता के पहले भारत सरकार को प्रस्तुत की गई तीन योजनाएँ (Three Plans Submitted to Government Before Independence):** देश के आठ उद्योगपतियों के द्वारा भारत के लिए आर्थिक विकास की योजना (बॉम्बे प्लान), प्रस्तुत की गई जिसने राज्य की भूमिका को पूँजीवादी ढांचे के साथ स्वीकार कर लिया। भारत के आर्थिक-विकास के लिए बी.एन. बैनर्जी, ज़ी.डी. पारेख और वी.एम. तारकुण्डे द्वारा एक योजना बनाई गई तथा जिसे 'पीपुल्स प्लान' के नाम से जाना जाता है। इसे इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर के सचिव श्री एम.एन. राय ने प्रकाशित किया। इसमें राज्य-पूँजीवाद की रचना का परामर्श दिया गया।

भारत के लिए आर्थिक विकास की योजना, जो श्रीमान नारायण अग्रवाल द्वारा बनाई गई, गाँधी-योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें एक आत्मावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना का परामर्श दिया गया था।

बाम्बे योजना ने, प्रारम्भिक समय, (3-5 वर्ष) को छोड़कर 15 वर्ष के अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए– प्रतिव्यक्ति आय को दोगुना करना, दी गई जनसंख्या वृद्धि की दर पर राष्ट्रीय आय को तिगुना करना (जो कृषि उत्पादन को दोगुना करने पर बाध्य कर देगा), औद्योगिक उत्पादन को 5 गुना करना, शक्ति और पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए उद्योगों का निर्माण करना (आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन को लघु और कुटीर उद्योगों तक सीमित रख कर) । इन सबके लिए (15 वर्ष के अंतर्गत) 10,000 करोड़ रुपयों की आवश्यकता थी, जिसे सम्भव माना गया। दूसरी तरफ पीपुल्स प्लान ने 15,000 करोड़ रुपयों के व्यय का प्रस्ताव रखा, जिसे 10 वर्षों के लिए उचित समझा गया। इसके अंतर्गत कृषि में चार गुनी तथा उद्योगों में छः गुनी वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। गाँधी-योजना ने ग्रामीण-अर्थव्यवस्था के सुधार द्वारा (इसकी तत्कालीन मौलिक संरचना को स्वीकार करते हुए) दस वर्षों में प्रतिव्यक्ति आय को दोगुना करने का प्रस्ताव रखा। यह आश्चर्यजनक है कि, सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी इन योजनाओं में कई मुद्दों पर मतैक्य था– जैसे मूलभूत उद्योगों को विकसित तथा नियंत्रित करना, विनिर्माण इकाइयों के अनुरूप विद्युत का उत्पादन, भूमिगत निहित स्वार्थों को समाप्त करना तथा प्रत्येक नागरिक को संतुलित भोजन उपलब्ध कराना, आदि।

योजना	निवेश (करोड़ रुपए)	वर्ष	कृषि	उद्योग	प्रतिव्यक्ति आय
बॉम्बे योजना	10,000	15	दो गुना	पांच गुना	तीन गुना
जन-योजना	15,000	10	चौगुना	छः गुना	
गांधी योजना	3,500	10			चौगुना

- **योजना आयोग को गठित करने का प्रस्ताव (Resolution Constituting Planning Commission):** योजना आयोग ने प्रत्येक भारतीय नागरिक को कुछ मौलिक अधिकार दिए तथा कुछ निदेशात्मक "राज्य की सैद्धांतिक नीतियों" को आरम्भ किया, विशेषकर उन नीतियों को जिनके तहत राज्य अपने नागरिकों के कल्याण को बढ़ावा देने तथा उनकी रक्षा करने का कुशलतापूर्वक उतना प्रयास करेगा जितना समाज में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के लिए आवश्यक हो। इसका उद्देश्य था कि राज्य अपनी नीतियों का निर्धारण इस प्रकार करे ताकि सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को परिभाषित करे तथा अपनी नीतियों को अन्य बातों के अतिरिक्त निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का निर्देश दे :

  (क) सभी नागरिकों: महिलाओं तथा पुरुषों– का पर्याप्त आजीविका पर समान अधिकार हो,

  (ख) समाज के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण का इस प्रकार वितरण हो, ताकि सबकी भलाई का लक्ष्य प्राप्त हो,

  (ग) आर्थिक प्रणाली का इस प्रकार प्रचालन हो कि संपत्ति तथा उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण नहीं हो।

  इन अधिकारों का आदर करते हुए तथा लोगों के रहन-सहन के स्तर को शीघ्र ऊपर उठाने के लिए सरकार ने अपने घोषित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुछ उपाय सुझाए। वे हैं– देश के संसाधनों का कुशलतापूर्ण शोषण, उत्पादन में वृद्धि तथा समाज की सेवा के लिए सभी को रोजगार के अवसर प्रदान करना।

योजना आयोग के निम्नलिखित उत्तरदायित्व होंगे :

(1) तकनीकी अधिकारियों सहित, देश के भौतिक, पूँजी व मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना तथा देश की जरूरतों के अनुसार उन संसाधनों की, जो मानव आवश्यकता की अपेक्षा कम मात्रा में उपलब्ध हैं, बढ़ोतरी की संभावनाओं का पता लगाना,

(2) देश के संसाधनों का अत्यधिक प्रभावशाली तथा संतुलित तरीकों से उपयोग करने की योजना बनाना,

(3) प्राथमिकताओं के निर्धारित होने के बाद योजना को कार्यान्वित करने की स्थितियों को परिभाषित करना तथा प्रत्येक स्थिति को पूरा करने के लिए संसाधनों का उद्देश्यपूर्ण आवंटन करना,

(4) आर्थिक विकास कम करने वाले कारणों को इंगित करना तथा वर्तमान सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर योजनाओं के सफलतापूर्ण क्रियान्वयन की दशाओं का निर्धारण करना,

(5) सभी वस्तु-स्थितियों में योजनाओं को सफलतापूर्ण क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक उपकरणों के प्रकारों का भी निर्धारण करना,

(6) समय-समय पर योजना के क्रियान्वयन की प्रगति के बारे में अवगत कराना तथा आवश्यक नीतियों तथा उपायों के सामंजस्य की अनुशंसा करना,

(7) अपने कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक पालन करने के लिए अंतरिम अनुशंसाओं को प्रस्तुत करना अथवा प्रचलित आर्थिक स्थितियों को ध्यान में रखकर नीतियों, उपायों तथा विकास के कार्यक्रमों के बारे में सलाह देना अथवा केन्द्र या राज्य सरकारों की विशेष समस्याओं के समाधान के बारे में सलाह देना।

सारणी 6.3
योजना आयोग द्वारा बनाई गई योजनाएँ

योजना	*समयावधि*	*परिप्रेक्ष्य योजना*	*टिप्पणी*
प्रथम पंचवर्षीय योजना	1951-56	1951-1981(30)	
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	1956-61	1956-1976(20)	
तृतीय पंचवर्षीय योजना	1961-66	1961-1976(15)	
तीन वार्षिक योजनाएं	1966-69		चौथी योजना वापिस ले ली गयी
चौथी पंचवर्षीय योजना	1969-74	1968-1981(12)	
पांचवीं पंचवर्षीय योजना	1974-79	1974-1986(12)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर 15 वर्ष किया गया
वार्षिक योजना	1979-80		
छठी पंचवर्षीय योजना	1980-85	1978-1988(10)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर 15 किया गया
सातवीं पंचवर्षीय योजना	1985-90	1985-2000(15)	
दो वार्षिक योजनाएं	1990-92		
आठवीं पंचवर्षीय योजना	1992-97	1992-2007(15)	
नौवीं पंचवर्षीय योजना	1997-02	1997-2012(15)	
दसवीं पंचवर्षीय योजना	2002-07	2002-2012(10)	
चौथी पंचवर्षीय योजना	1966-71	1961-1976(15)	जून 1966 में समाप्त कर दी गयी
(छठी) पंचवर्षीय योजना।	1978-83	1978-1983(10)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर (15) किया गया

तुरंत समाप्त कर दी गयी* ***टिप्पणी* *: कोष्ठ में दिए गए अंक वर्षों को दर्शाते हैं।*

योजना दस्तावेज में दर्शाए गए योजना उद्देश्य (Plan Objectives from Plan Documents)

प्रथम योजना

- अधिकतम उत्पादन,
- पूर्ण रोजगार तथा आर्थिक विषमता को दूर करना।

द्वितीय योजना

- देश में लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारने के लिए राष्ट्रीय आय के आकार में बढ़ोतरी,
- मौलिक तथा भारी उद्योगों पर विशेष बल देते हुए शीघ्र औद्योगीकरण,
- रोजगार के अवसरों में व्यापक विस्तार,
- आय तथा संपत्ति की विषमताओं को कम करना तथा आर्थिक शक्तियों का अधिक समान वितरण।

तृतीय योजना

- समान अवसर (रोजगार के),
- आर्थिक शक्तियों का वितरण,
- आय में विषमता को घटाना।

चतुर्थ योजना

- लोगों के रहन-सहन के स्तर में अत्यधिक सुधार,
- आय व संपत्ति में अधिक समानता,
- आय, संपत्ति तथा आर्थिक शक्ति में विषमता में उत्तरोत्तर कमी,
- सापेक्ष रूप से अविकसित वर्गों को अधिक लाभ।

पाँचवीं योजना

- गरीबी निवारण,
- आत्मनिर्भरता की प्राप्ति,
- 5.5 प्रतिशत की वृद्धि दर।

छठी योजना (1978-80)

- बेरोजगारी तथा विशिष्ट बेरोजगारी को मिटाना,
- गरीब वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना,
- मूलभूत आवश्यकताओं, जैसे, स्वच्छ पेयजल, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रौढ़-साक्षरता, ग्रामीण सड़कें, भूमिहीनों के लिए ग्रामीण आवास, शहरी गंदी बस्तियों को आवश्यक सेवाएँ, प्रदान करना, तथा

- पुरानी वृद्धिदर से अधिक वृद्धि दर प्राप्त करना,
- आय तथा संपत्ति में वर्तमान विषमताओं में पर्याप्त कमी करना,
- आत्मनिर्भरता की ओर लगातार बढ़ना,
- वृद्धि दर में पर्याप्त बढ़ोतरी, संसाधनों के प्रयोग तथा उत्पादकता में कुशलता को बढ़ाना,
- आर्थिक तथा तकनीकी आत्मनिर्भरता के लिए आधुनिकीकरण को सुदृढ़ बनाना,
- गरीबी-आपात को लगातार घटाना तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करना,
- ऊर्जा-प्रयोग में कुशलता तथा ऊर्जा बचत पर बल देते हुए ऊर्जा के घरेलू साधनों का विकास करना,
- निश्चित समयावधि तथा स्वीकृत मानकों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक तथा सामाजिक विकलांग जनसंख्या के जीवन के स्तर में 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' द्वारा सुधार लाना,
- आय तथा संपत्ति की विषमताओं को कम करने के उद्देश्य से सरकारी नीतियों तथा सेवाओं के पुनर्वितरण को गरीबों के पक्ष में करना,
- विकास की गति तथा तकनीकी लाभ के लिए क्षेत्रीय विषमता में लगातार कमी करना,
- छोटे परिवार के आदर्श को स्वेच्छा से स्वीकृत कराकर जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण की नीतियों को बढ़ावा देना,
- परिस्थितिकी तथा पर्यावरण संबंधी परिसंपत्तियों का संरक्षण तथा सुधार द्वारा लघुकालिक तथा दीर्घकालिक विकास के लक्ष्यों में सामंजस्य करना,
- विकास प्रक्रिया में उपयुक्त शिक्षा, संचार तथा संस्थागत नीतियों द्वारा सभी वर्गों का सक्रिय सहयोग।

सातवीं योजना

- खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि,
- रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी,
- उत्पादकता में बढ़ोतरी,
- वृद्धि,
- आधुनिकीकरण,
- आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय।

आठवीं योजना

- शताब्दी के अंत तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य के निकट पहुंचने के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करना,
- लोगों के सहयोग, प्रोत्साहन तथा हतोत्साहन के कार्यक्रमों द्वारा जनसंख्या वृद्धि में कमी करना,

- 15-35 आयु वर्ग के लोगों के लिए साक्षरता को मिटाने एवं प्राथमिक शिक्षा का विश्वीकरण करना,
- अछूतों का उद्धार करना, प्राथमिक सुविधाओं तथा स्वच्छ पेयजल प्रदान करना,
- निर्यात करने के उद्देश्य से खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता तथा इनके अधिशेष के लिए कृषि में प्रगति तथा विस्तार,
- सततता के आधार पर आधारिक संरचनाओं को वृद्धि-प्रक्रिया में सहायता प्रदान करने के लिए सुदृढ़ बनाना।

नवीं योजना

- गरीबी मिटाने तथा पर्याप्त उत्पादक रोजगार पैदा करने के लिए कृषि तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता,
- स्थिर कीमतों पर वृद्धि दर में बढ़ोतरी,
- सभी के लिए, विशेषकर असुरक्षित वर्गों के लिए खाद्यान्न तथा पौष्टिक आहार की सुरक्षा,
- एक निश्चित समयावधि के अंतर्गत सभी को स्वच्छ पेयजल की सुविधाएँ, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की सुविधाएँ, उच्च प्राथमिक शिक्षा तथा आवास की सुविधाएँ उपलब्ध कराना,
- जनसंख्या वृद्धि में कमी,
- सभी वर्गों के लोगों की भागीदारी तथा सामाजिक संगठन द्वारा विकास की प्रक्रिया को पर्यावरण की दृष्टि से सतत बनाना,
- परिवर्तन तथा विकास के ऐजेन्टों के रूप में महिलाओं तथा समाज के पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ी जाति तथा अल्पसंख्यकों) को ज्यादा अधिकार देना,
- लोगों की भागीदारी में चलने वाली संस्थाओं जैसे पंचायती राज संस्थाएँ (PRIs), सहकारिता (Cooperatives) तथा स्वयं-सहायता समूहों (SHGs) के विकास को बढ़ावा देना,
- आत्म निर्भर बनाने के प्रयासों को सुदृढ़ करना।

दसवीं योजना

- 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का सांकेतिक लक्ष्य,
- कल्याण को प्रोत्साहन,
- खाद्यान्न तथा अन्य उपभोग की वस्तुओं की उपलब्धता,
- मूलभूत सामाजिक सेवाओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा सफाई सुविधाओं को उपलब्ध कराना,
- सभी व्यक्तियों तथा समूहों के सामाजिक तथा आर्थिक अवसरों का विस्तार,

- विषमता में कमी,
- निर्णय निर्धारण में भागीदारी,
- सामाजिक क्षेत्र के लिए उचित संसाधनों का आवंटन,
- संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग के लिए प्रशासन में सुधार,
- ऐसे राज्यों में जहाँ वृद्धि दर कम हो, वृद्धि-दर को बढ़ाना,
- वर्ष 2007 तक गरीबी को घटाकर 15 प्रतिशत, तथा वर्ष 2012 तक 5 प्रतिशत करना,
- योजना के दौरान अतिरिक्त श्रम बल को अच्छे रोजगार उपलब्ध कराना,
- वर्ष 2003 तक सभी बच्चों का स्कूल में होना तथा वर्ष 2007 तक सभी बच्चों द्वारा कक्षा पाँच पूरा करना,
- वर्ष 2007 तक साक्षरता तथा मजदूरी दर में लिंग-भेद को 50 प्रतिशत तक घटाना,
- वर्ष 2001-2011 के दौरान जनसंख्या वृद्धि को घटाकर 16.2 प्रतिशत करना,
- वर्ष 2007 तक साक्षरता-दर 75 प्रतिशत तक बढ़ाना,
- वर्ष 2007 तक शिशु मृत्यु दर घटाकर 45 करना तथा वर्ष 2012 तक 28 करना,
- वर्ष 2007 तक माताओं की मृत्यु दर को घटाकर 2 तथा वर्ष 2012 तक एक (1) करना,
- वर्ष 2007 तक वानिकी के विस्तार को बढ़ाकर 25 प्रतिशत तथा वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत करना,
- वर्ष 2007 तक सभी गाँवों में सतत पेयजल सुविधा देना,
- वर्ष 2007 तक सभी मुख्य प्रदूषित नदियों की तथा वर्ष 2012 तक दूसरी ऐसी छोटी नदियों की सफाई करना।

- **औद्योगिक नीति (Industrial Policy):** हम स्मरण करें कि देश के विभाजन के समय स्थितियाँ अस्पष्ट थीं। किंतु उस समय औद्योगिक नीति के बारे में विशेषकर इसकी दिशा के बारे में, एक स्पष्ट वक्तव्य की आवश्यकता थी। सरकार की अप्रैल 1948 में औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में इसे स्पष्ट किया गया। शास्त्र/आयुध, परमाणु-ऊर्जा, रेलवे-परिवहन, आदि ही भारत सरकार के नियंत्रण में थे तथा जोखिम वाले नए क्षेत्र, जैसे, कोयला, लौह व इस्पात, हवाई जहाज, जहाज निर्माण, दूरभाष के लिए उपकरण तार तथा बेतार प्रणाली, राज्य-क्षेत्र के अधीन थी। इसका तात्पर्य यह है कि इन क्षेत्रों में विद्यमान इकाइयों को निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिया था तथा इन इकाइयों के राष्ट्रीयकरण का कोई प्रस्ताव नहीं था। अन्य सभी मूलभत तथा भारी उद्योग (खनन, धातु, सीमेंट), पूँजीगत वस्तुएँ (मशीनरी, परिवहन, विद्युत), रासायनिक (उर्वरक तथा अन्य भारी रसायनिक) तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों (वस्त्र, खाद्य-संशोधन) को सहकारिता इकाइयों सहित निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया था।

अप्रैल 1956 में अपनाई गई उद्योग-नीति प्रस्ताव ने 17 उद्योगों को केवल राज्य के एकाधिकार के अंतर्गत करके एक व्यूह फैला दिया। उनमें से 12 उद्योगों का स्वामित्व प्रगतिशील राज्यों को दिया तथा अन्य उद्योगों पर पैमाने, मात्रा, तकनीकी तथा विदेशी पूँजी के संबंध में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर रोक लगा दी। इस प्रस्ताव को संसद के भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के प्रस्ताव को ध्यान में रखकर अपनाया गया। संविधान में भी मौलिक अधिकार का प्रावधान करते हुए, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार, के लिए सहकारिता क्षेत्र को सुददृढ़ बनाना तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों को संरक्षण देना, ये तीन मुख्य घोषणाएँ कीं। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के दो कारण थे। एक, आगे बढ़ने में निजी क्षेत्र की अयोग्यता तथा दूसरा, निजी क्षेत्र पर सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं को प्रदान करने में अविश्वास होना। तथापि इन दोनों क्षेत्रों के संबंध विवादास्पद थे। लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों से स्पर्धा के कारण भेद-मूलक कर प्रणाली, आर्थिक सहायता तथा मात्रा-नियंत्रण जैसे उपायों को लागू करना पड़ा। ऐसा माना गया कि विकेंद्रित क्षेत्रों द्वारा रोजगार को बढ़ावा मिलेगा, संसाधन गतिशील होंगे, वितरण में समानता बढ़ेगी तथा शहरीकरण की बेतरतीब प्रवृत्ति पर रोक लग सकेगी। इस नीति ने (अप्रैल 1949 में घोषित) विदेशी पूँजी के प्रवाह को भी नियमित करने पर बल दिया।

वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति के अनुसार कुछ उद्योगों को छोड़कर, शेष सभी परियोजनाओं पर से लाइसेंस हटा लिया जाएगा। ये उद्योग निम्नलिखित विषयों से संबद्ध हैं– (i) सुरक्षा तथा नीतिगत विषयों से, (ii) सामाजिक कारणों से, तथा (iii) हानिकारक रसायन तथा पर्यावरण को नष्ट करने वाले कारणों से (iv) उच्च वर्गों के उपभोग की वस्तुओं से। इनके विस्तार के लिए भी अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी। किंतु लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योग उनके लिए सुरक्षित रहेंगे, तथा ये उद्योग यदि सीमित सूची वाले उद्योगों में सम्मिलित होना चाहते हैं तो उन्हें लाइसेंस की आवश्यकता नहीं होगी। यदि विदेशी पूँजी (इक्विटी) की भागीदारी सुनिश्चित होती है तो पूँजीगत वस्तुओं के आयात का रास्ता स्वतः ही खुल जाएगा। विद्यमान इकाइयों की विविधता के विस्तार के लिए बिना किसी अवरोध के अनुमति दी जाएगी।

सार्वजनिक क्षेत्र आवश्यक आधारिक संरचनात्मक वस्तुओं एवं सेवाओं तथा सामरिक महत्त्व संबंधी उत्पादों के क्षेत्र में कार्य करेगा जैसे, रक्षा उपकरण, तेल तथा खनिज संसाधनों की खोज तथा दोहन, तकनीकी विकास तथा अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों तथा ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ निजी क्षेत्र निवेश अपर्याप्त हैं।

- **किसी औद्योगिक नीति से हमें क्या आशाएँ होनी चाहिए? (What We Expect in an Industrial Policy?):**
  - उद्योगों का विभाजन-सार्वजनिक, निजी, संयुक्त दोनों के अनुसार,
  - कुटीर, लघु, मध्यम तथा बड़े उद्योगों के पैमाने के स्तर के अनुसार आरक्षण,
  - तकनीकी का प्रयोग : पारम्परिक/ग्रामीण, आधुनिक,
  - विदेशी पूँजी का प्रयोग : कहाँ, कैसे, तथा कितना,
  - किसी व्यक्तिगत इकाई की क्षमता की सीमा का निर्धारण,
  - संवेदनशील विषयों में राज्य की जिम्मेदारी,
  - केन्द्रीयकरण पर रोक,
  - परम्परागत उद्योगों पर निर्भर रहने वालों की जीविका का संरक्षण।

- **सतत घातीय वृद्धि की शक्ति (Power of Continuous Exponential Growth):** मानव जनसंख्या आरंभ से ही संवृद्धि दर के साथ-साथ नहीं बढ़ रही है। यह निम्नलिखित विधि से स्पष्ट होती है।

  युग के आरंभ से एक करोड़ जनसंख्या यदि 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष दर से भी वृद्धि करती तो यह 44,00,00,000 करोड़ हो जाती। यहाँ तक की 1/2 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर से भी 2000 वर्षों की अवधि में जनसंख्या में 21,000 गुणा वृद्धि हो जाती।

  मानव इतिहास इससे बहुत प्राचीन है। इसका सरल तात्पर्य यह है कि जनसंख्या बढ़ी तथा घटी, सभ्यताएँ विकसित हुईं; इनके पतन/विनाश हुए। भारत की स्थिति भी वैसी ही रही।

- **शिशु मृत्यु दर में गिरावट का महत्त्व (Importance of Infant Mortality Reduction):** आप अपने परिवार, संबंधियों के परिवारों, पड़ोस के मित्रों के परिवारों में बच्चों की शिशु अवस्था में मृत्यु के बारे में जानकारी करें। अपने माता-पिता तथा चाचाओं से उनके भाई बहिनों के बारे में बात करें, जिनकी मृत्यु शिशु-अवस्था में हो गई थी। अपने दादा-दादी/नाना-नानी से भी उनके भाई-बहिन तथा बच्चों की मृत्यु के बारे में पूछें। आप यह पाएँगे कि बच्चों की शिशु-अवस्था में मृत्यु में पीढी-दर-पीढी गिरावट हुई है। यह भी जानने का प्रयास करें कि आपके दादा-दादी की पीढ़ी में तथा माता-पिता की पीढ़ी में महिलाओं ने कितने बच्चों को जन्म दिया। इसकी तुलना अपने तथा अपने मित्रों के भाई-बहिनों की संख्या से करें। आप पाएँगे कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी बच्चों की संख्या कम हुई है।

  इसका क्या प्रभाव किधर हुआ? शिशु मृत्यु दर में गिरावट से आने वाली पीढ़ी को कम बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

- **अमर्त्य सेन का योगदान (Contribution of Amartya Sen):** मान लें कि गरीबी रेखा 50 इकाई है। मान लें कि दो समाज हैं तथा प्रत्येक समाज में 10 लोग हैं। मान लें कि

एक समाज में 5 व्यक्तियों में प्रत्येक के पास 20 इकाइयाँ हैं तथा 5 लोगों के पास 50 से ज्यादा इकाइयाँ हैं। दूसरे समाज में, 5 व्यक्तियों में प्रत्येक के पास 45 इकाई हैं तथा 5 लोगों के पास 50 से अधिक इकाइयाँ हैं। यदि आप से पूछा जाए तो आप बताएँगे कि प्रत्येक समाज में 50 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। कुछ लोग इसे गरीबी का आपात कहेंगे। किंतु आप शायद इससे संतुष्ट हों क्योंकि आप देखेंगे कि एक समाज में गरीबी अधिक है क्योंकि वे दूसरे समाज की तुलना में गरीबी रेखा से बहुत दूर हैं।

पहली स्थिति में गरीबी रेखा से औसतन दूरी 30 इकाई है जबकि दूसरी स्थिति में यह केवल पाँच (5) इकाई है। अतः आप इस दूरी को औसत गरीबी अंतर (poverty gap) कह सकते हैं तथा किसी भी गरीबी के अच्छे माप के लिए इसके प्रयोग का सुझाव दे सकते हैं। गरीबी की गहनता जानने के लिए इस निरपेक्ष अंतर को गरीबी-रेखा से विभाजित कर सकते हैं।

एक बार फिर मान लें कि, दो समाज हैं, तथा प्रत्येक में 10 में से 5 लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं तथा प्रत्येक समाज में गरीबी अंतर 30 इकाई है। एक समाज में पांचों गरीब व्यक्तियों के पास समान इकाई अर्थात 20 है तथा दूसरे समाज में इसका वितरण 10, 10, 20, 30, 30 है। क्या हम अभी भी यह कहेंगे कि दोनों समाजों में गरीबी की स्थिति समान है। नहीं, शायद हम यह कहेंगे कि हमें गरीबों के बीच असमानता के स्तर का प्रयोग करना चाहिए।

अतः हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए– (i) आपात, जिसका तात्पर्य है गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का जनसंख्या का अनुपात, (ii) गहनता, जिसका आशय है कि गरीब लोग, गरीबी रेखा से कितने नीचे हैं, (iii) गरीबों के समकक्ष समूह में असमानता। यदि आप अर्थपूर्ण तरीके से तीनों आयामों को सम्मिलित कर लेंगे तो आप अमर्त्य सेन हो जाएँगे तथा नोबल पुरस्कार जीत लेंगे! बुरा विचार नहीं है।

- **विद्युत शक्ति : उत्पादन संचारण, परिवहन तथा वितरण (Electric Power : Generation, Transmission and Distribution):** विद्युत का उत्पादन प्लान्ट में होता है, चाहे वह तापीय हो या वाष्पीय या नाभिकीय या गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत। यदि अधिक मात्रा में उत्पादन होता है तो उसके उपभोग स्थानीय नहीं होते। यह उच्च वोल्टेज के रूप में संचरण-तारों द्वारा उत्पादक संयंत्रों से पावर-स्टेशनों अथवा उप-स्टेशनों तक ले जाई जाती है। आपने लोहे के ऊँचे स्तम्भ भारी तारों से जुड़े हुए देखें होंगे। यह संचरण-नेटवर्क है।

  इसका वितरण विद्युत स्टेशन अथवा उप-स्टेशन से अंतिम उपभोक्ता-उद्योग, कृषि, वाणिज्यिक संस्थाएँ, घरों तथा रेलवे तक होता है। शहरों के खम्भे तथा शहरों में तारों का जाल मिलकर शहरों के वितरण नेटवर्क बनाते हैं। पैमाने के अंतर में यही स्थिति ग्रामीण क्षेत्र की है।

वर्ष	पुरुष	महिला	कुल	वर्ष	पुरुष	महिला	कुल
1951				1981			
ग्रामीण शहरी कुल	19.02 45.60 27.10	04.87 22.33 08.86	12.10 34.59 18.33	ग्रामीण शहरी कुल	49.60 76.70 56.38	21.70 56.30 29.76	36.00 67.20 43.57
1961				1991			
ग्रामीण शहरी कुल	34.30 66.00 40.40	10.10 40.50 15.35	22.50 54.40 28.30	ग्रामीण शहरी कुल	57.90 81.10 64.13	30.60 64.00 39.29	44.70 73.10 52.21
1971				2001			
ग्रामीण शहरी कुल	48.60 69.80 45.96	15.50 48.80 21.97	27.90 60.20 34.45	ग्रामीण शहरी कुल	71.40 86.70 75.85	46.70 73.20 54.16	59.40 80.30 65.38

***टिप्पणी** : वर्ष 1951, 1961 तथा 1971 के लिए जनसंख्या समूह 5 वर्ष से अधिक आयु के लिए है जबकि वर्ष 1981, 1991 तथा 2001 के लिए यह 7 वर्ष से अधिक आयु के लिए है।*

***स्रोत** : भारत की जनगणना, सीरीज-1, भारत, अनंतिम जनसंख्या योग, पेपर-1, 2001।*

समग्र आपूर्ति तथा समग्र माँग को मिलाने के लिए ग्रिड-मेकेनिज्म को विकसित किया गया। यह विवरण पूरे नेटवर्क का सही दृश्य नहीं हैं। इसका उद्देश्य बस समस्या की जानकारी देना है।

- **साक्षरता में ग्रामीण-शहरी विषमता (Rural Urban Disparities in Literacy):** महिला-पुरुष साक्षरता दर (प्रतिशत में) का ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों के अनुसार विभाजन।

5. Intellectual honesty—the ability or willingness to stick to exact factual material regardless of the strength of previously presented views or ideas. Don't rely upon emotional arguments. Don't appeal to prejudices
6. Suspended judgment. Be willing to hold off your final judgment on a problem—or some aspect of it—if more facts are known to exist.

4. Fundamental Principles

Dangers to Be Avoided.—Whatever type of socialized class procedure is to be employed, certain cautions should be observed. Successful socialization is no task to be attempted by a weak teacher. Teachers without good qualities of leadership, ingenuity, and industry should be satisfied with other methods of teaching. Among the cautions which may well be kept in mind are the following:

1. Avoid the practice of merely turning the class over to bright pupils. This does not develop cooperativeness and does not challenge the other learners.
2. Be careful that the timid or lazy learner does not become a mere listener; draw all learners into the discussion.
3. Avoid overemphasis upon excessive formality and technical parliamentary procedure.
4. Avoid monopoly of class time by a few learners.
5. Do not permit excessive rambling discussions and pointless digression.
6. Controversy in the class is frequently desirable, but do not permit it to result in fixed attitudes or prejudices.
7. Above all, guard against excessive supervision and teacher domination.
8. Be careful that the major items or points in the course are not omitted or neglected.
9. Do not worry if matters of minor importance are not all covered in class discussions.
10. Avoid at all times superficial or ineffective socialization which serves in no way to facilitate dealing with the work at hand.
11. Avoid the development on the part of learners, by reason of their authority while in office or of participation in controversy, of unsocial habits, manners, or attitudes.
12. Insist upon the growth of the students toward self-discipline; socialization is not anarchy.

Some of these points which merit special consideration are discussed in the following paragraphs.

Avoid Monopoly by a Few Learners. In all socialized or group discussions there is a danger that the more intelligent and aggressive

pupils will do all the talking. Whenever human beings gather in groups for any purpose, it is not long before one or two have assumed leadership and pushed others more or less into the background. This is readily noticeable in adult business, civic, and social groups, as well as among children. The traditional recitation suffers from the tendency of a few pupils to monopolize the class hour. If not carefully managed, the socialized recitation may easily make matters worse, since the teacher is no longer in a position to encourage all members of the class to participate. This situation has frequently been encountered where socialized procedures have been employed. Domineering and officious pupils may cause such a situation, and even conscientious pupils who have their minds set on the success of the procedure may disrupt the plan.

If the situation is created by a domineering pupil who fails to respond to ordinary strategy in the routine of the class, he should probably be handled like the occasional pupil who is a clown or a humorist. A frank private conference should be arranged. The pupil who will not "socialize" after such procedure has been resorted to and appeal has been made for cooperation and fair play should be subjected to such measures as are commonly employed for disciplinary problems where the usual recitation plan is being followed.

The slow or temperamental pupil should not be discouraged. Where the formal plan of procedure is employed, special coaching of the student leader along this line is often necessary.

Avoid Irrelevant and Ineffective Discussion. There is a need for guidance by one who has a sense of values and proportion. Careful coaching of student leaders will operate to reduce the amount of pointless discussion. It will become necessary for the teacher at times to participate in the discussion long enough to direct the thinking back into more profitable channels. Of course this must be skilfully though firmly done, with no evidence of irritation. If learners were highly skilled in discussion there would be much less need for socialized procedures. Much superficial discussion can be avoided if it is preceded by a careful and thorough examination and study of the facts pertaining to the topic.

Avoid the Dangers to Which Controversy Is Susceptible. Controversy leads often to emotionalism, clouded thinking, and premature and fixed conclusions. It may serve to fix definite attitudes on questions upon participants and even upon listeners, and to blind them to those considerations which do not contribute to their point of view. Often a controversy reaches a point where no new material is de-

veloped, and continues as a reiteration of previously considered points and arguments. Also, if not managed well, it tends at times to transcend the bounds of polite discussion and to engender individualistic acts and feelings which contribute nothing to the development of that social spirit which should characterize all socialized procedure.

Avoid Dominating the Discussion. The teacher should constantly restrain herself from a natural but unfortunate tendency to monopolize the discussion. Many instructors are unable to stand by and see the work apparently "go to pot." It is natural for the teacher to overestimate the importance of and need for her own contributions. It is difficult to realize that the shortest way may not, in the long run, prove to be the most economical way. The learners must participate, even though they do make mistakes. Even the most scholarly presentation and explanation by the instructor often do not result in the most satisfactory learning. The values over and above subject matter of the socialized recitation are important and should not be lost sight of. The development of initiative, thinking power, right habits, power of expression, ideals of polite conversation, cooperativeness, and similar special outcomes of the socialized procedure should not be lost in the process of acquiring a better grasp of information. The teacher must studiously avoid cooling student interest and depriving students of their opportunities to think for themselves and to develop initiative and capacity for judgment

Exercise Care to Obtain Adequate Selection and Organization of Subject Matter and Proportionate Emphasis on Important Points. While following the text or course of study closely is not essential or even highly desirable, it is essential not to omit or neglect the items and sections which contribute most materially to the objectives of teaching or studying the subject. The teacher must assist students in achieving adequate and proportionate emphasis.

In many classes where socialized methods have been used, a "summarizer" is appointed who at the close of the period organizes and sums up the discussion, giving emphasis to points needing class attention. A student, the leader, or the teacher may serve as "summarizer."

Thoroughness in important matters must be achieved. Drill is necessary many times in a socialized recitation. It can be made more interesting by suggesting that students drill each other by means of games, as a preparation for a group contest, or in order to reach a certain standard or pass a certain test.

Avoid Superficial and Nominal Socialization. There is no merit in the mere form of socialization. Merely turning a class over to student representatives or permitting students to conduct recitations does not in any sense of the word constitute socialization. There is always the tendency to emphasize the showy, the spectacular, the unusual, and the material phase of any new movement in teaching. Neither the real objectives of the socialized recitation nor the subject being taught can be disregarded. Where this is done the "socialized recitation" will soon degenerate into a type of activity of less value than the conventional recitation, the activity consisting largely of mechanical and trivial corrections of students by one another.

This caution applies particularly to the use of some formal pattern of organization for socialization. Where the mere form is imitated, little understanding of the real spirit and fundamental principles of the movement result. The educational results prove unsatisfactory, causing parents and teachers soon to lose faith, regard the procedure as only another fad, and thus fail to realize its true social and educational significance.

Certainly a discussion which consists chiefly of following parliamentary procedure, heckling, or arguing over trivialities is not socialized procedure. Its net outcome may be antisocialization. If true socialization is to be accomplished, care must be taken to see that cliques, inner circles, and groups of friends among the students do not operate to control the selection of officers or to interfere with normal democratic discussions.

Problems of Discipline.—The problems of maintaining conditions favorable to effective learning are not eliminated in socialized procedure. Socialized procedure does not mean disorder. It means, rather, an orderly program carried on in an orderly manner by orderly students. Socialization does not contemplate permitting the class to follow its own devices and whims. Of course there will often be confusion, when socialized methods are introduced, while new procedures and new responsibilities are being learned. This is a usual characteristic of any new plan of procedure, and final judgment should await a fair trial, one which will give the teacher and student time to develop proficiency in the method.

Provision must be made at the very outset for training the group in proper methods of procedure. Not more than one student should talk at once, each being permitted to conclude his remarks without interruption or interference. The time element for worth-while discussion should be remembered. Courtesy, kindliness, and fairness

must be observed. Scolding or sarcasm should not be resorted to; a smile or a look of disapproval may serve much better than words. The integrity of the group must be preserved—the group spirit—the "we" spirit. All this requires skilful and tactful management, even more so than in the traditional recitation.

Teacher-Pupil-Leader Conferences.—If at any time the teacher is to transfer part of her responsibility for leadership activities to student leaders, there will usually be need for special planning with the students. There will be need of discussing with the chairman or student leader such points as the following:

1. Nature of the activities to be undertaken
2. Relative emphasis upon various topics and important points
3. Procedure contributing to an equalization of opportunities and responsibilities within the class
4. Plans for obtaining and retaining the cooperation of indifferent members
5. Advisability of the use of visual and auditory aids
6. Procedures for fixing facts and developing skills
7. Procedures for summaries and diagnosis of difficulties
8. Adaptation of activities to the needs, abilities, and interests of individuals

Certainly at the outset, and to a limited extent later on, it is wise for the chairman and the teacher to work out a fairly detailed plan of procedure, much like a lesson plan. As soon as possible the chairman should take the initiative in such plans, work them out, and then present them to the teacher for approval and suggestion. The detail and the frequency of these conferences will vary with the maturity of the class, with the resourcefulness and personality of the officers, and with the nature of the work to be done.

Distribution of Leadership Opportunities.—The opportunities and responsibilities of leadership should be widely distributed. Even the least promising and indifferent children should have some part in it. In order to avoid the pitfall of monotony and ineffectiveness, officers should be changed frequently and whenever there is a natural break in the plan.

There may be occasions on which it will seem advisable to employ a more or less formal plan for merely a portion of a class period or for one or two class periods. The formal plan may be employed in current events, radio program, assembly program, a culmination of a unit.

The teacher needs to give some thought and attention in advance to each day's class period. Careful daily planning and knowledge of subject matter are requisite for the instructor. It is necessary that she acquire skill in directing the trend of the discussion by raising, defining, and modifying questions and problems and by keeping the class as much as possible in a problem-solving attitude. She should refrain from settling questions by authority; rather she should lead the class to think them through. She must give attention to developing a truly socialized situation.

One evidence of a truly socialized class is that members of the group address themselves to the group rather than to the instructor. The teacher-individual relation must give way to a project-group relation. Until this result is accomplished at least in part, no truly socialized atmosphere can be obtained; it is often difficult to accomplish, and the instructor must be aware of this need from the start. The socialized group relation is not brought about so much by precept as by making the discussion of such a nature that it will be natural for each pupil to address his fellows. A favorable seating arrangement, such as around a table or in a circle, is very useful and is very common in the primary grades today.

Teachers will need to experiment with the new method and gradually to perfect their skill in its use. Pupils too will require some time to perfect the use of their privileges of initiative and to grow into their responsibilities. In many instances the use of a socialized method will mean a temporary loss in "discipline," and possibly in subject-matter learning as well. However, this is only the first step toward an ultimate gain of the powers of independent study and of permanent interests, which will continue to function long after the special subject matter has sunk below the power of recall.

Questions, Problems, and Exercises

1. List in the order of their importance the weaknesses of the traditional "recitation."
2. List in order of their importance the values of "socialized" procedure
3. What do you think of the statement that "discussion takes too much time," so that only part of the "lesson" can be covered in class?
4. Indicate how you would avoid the main difficulties which may be expected in group discussion.
5. Prepare a ten-minute talk on "Characteristics of a socialized classroom situation."
6. In what way does the teacher's personality affect the socialized procedure in a classroom?

7. Describe children's activities in a socialized class activity.
8. Describe the teacher's activities in a socialized class activity.
9. Discuss the effect of informal grouping or seating in a socialized procedure.
10. Plan a panel discussion for some elementary school subject.

Chapter 12

FUNCTIONAL UNITS FOR TEACHING AND LEARNING

The method used in directing the learning of children should be determined by the nature of the learner and the conditions in the community of which he is a member. Whatever is learned is acquired because the individual himself does something about it and, as a result of the doing, the individual acquires certain behavior patterns. Purposeful learning is integrated learning; facts, skills, attitudes, appreciations are developed not as separate entities, but as parts of a whole experience. Children also vary in rate of learning, in their needs, and in their aspirations. Children learn most effectively if what they are doing has meaning for them and they understand the significance of it. The society in which the children live requires that they acquire those attitudes, appreciations, and work habits which will enable them to solve problems as they face them. In order to assist children to establish behavior patterns which are essential to satisfying living with themselves, their friends, their immediate neighbors, and their world neighbors, it is imperative that every school assume the responsibility of providing those learning experiences in which children will learn how to meet the problems of today, how to follow directions and how to make choices, and how to make contributions to society.

The modern school of today guides the child in experiences basic to the acquisition of behavior patterns characteristic of a democratic society.

1. Concepts of Learning Units

The Emergence of the Unit Concept.—Cognizant of unsatisfactory learning resulting from prevailing classroom practices, various leaders of educational thought have formulated plans for the organizing and the teaching of learning units which are more comprehensive in scope than those utilized in the daily recitation. Prominent among the earlier unit plans were those outlined by Charles A. McMurry and Frank McMurry,[1] Harry L. Miller,[2] Henry C. Morrison, William

[1] Frank McMurry and Charles A. McMurry, *The Method of the Recitation.*
[2] Harry L Miller, *Creative Learning and Teaching*

H. Kilpatrick, and Helen Parkhurst (originator of the Dalton Plan). These proponents of teaching procedures based upon the organization of learning into larger units were influenced by some of the educational philosophies which prevailed at that time. Two of these were (1) Herbart's "sequence of learning" plan, starting with the child's experiences and observations of everyday phenomena and leading to a general concept and its application, and (2) Dewey's analysis of a complete act of thought (or complete learning experience) into (a) a felt difficulty, (b) its location and definition, (c) suggestion of a possible solution, (d) development by reasoning of the bearings of the suggestion, and (e) further observation and experience leading to acceptance or rejection of the suggested solution.

The inherent unity of the human personality as revealed by modern science has also given impetus to the endeavors of educators to promote unity in the learning process. Some of the evolving concepts of human development are: [3]

1. *The child is a unit biologically:* Evidence is that from the moment of conception the organism is a whole, from which parts emerge by a process of differentiation or individuation. With the whole organism as a frame of reference, the various organs including the brain come into existence. The child is an integrated unit from the beginning. Education faces the task of conserving or preserving the original unity from the forces which tend to alter it, as it grows by differentiation.

2. *The child is a psychological unit:* Mental development is not a matter of putting bits of experience together to form knowledge. Experiences emerge from the mind by a process of differentiation. Experiences do not make the mind; the mind makes its experiences. The total thought pattern is a function of the whole rather than the parts. The learning bonds are the relationships between parts and their wholes.

3. *The child is a sociological unit:* The child and his social environment are the interacting parts of an organic unit. The welfare of each part is derived from the welfare of the whole. Social progress is dependent upon the maintenance of ethical relationships among all the parts. No one segment of humanity can be suppressed without jeopardizing the total pattern of social behavior.

Some of the early unit plans of teaching attracted considerable attention, and the Morrison plan won fairly wide acceptance. They failed to become the predominant classroom practice because of the prevailing stimulus-response concept of learning, with its emphasis upon the mastery of isolated bits of knowledge rather than upon total patterns of learning.

[3] *Cooperation, Principles and Practices,* Eleventh Yearbook, Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, pp. 52-60.

As consequence of acceptance of the Gestalt concept of the nature of learning, the unit idea grew in favor as a guide in the organization of curricular materials, even though methods of teaching were not greatly different from those used in textbook teaching.

The concepts of Gestalt psychology which served to bring about refinements in the unit method of teaching were (1) that the nature of the total learning situation is determined not merely by the sum of the elements which comprise it, but rather by the relationships which exist among the different parts; (2) that the parts of a learning situation have meaning only in terms of their relations to each other and to the whole; and (3) that the unifying factor in organizing the elements of a learning situation is the purpose of the learner.

Another factor which contributed to acceptance of the unit method of teaching was growing recognition of the need for more adequate provisions for individual differences. The failure of various administrative plans, such as ability grouping, to provide satisfactory means of individualizing instruction caused many leaders of educational thought to fix upon the classroom teacher as the proper person to meet the needs of individual pupils. As a result directed study, differentiated assignments, enriched curricula, and the unit method became the vogue. One of the main arguments advanced for use of the unit method of teaching was its value in providing for individual differences. The possibilities of the unit in this respect have too seldom been realized. The opportunity for different pupils to work on different aspects of a unit presents an excellent method of providing for the individual abilities, interests, and needs of pupils. More significant, however, is the demonstrated value of individual projects in making adequate provision for individual differences.

Different Concepts of the Unit.—A superficial analysis of the various unit plans of teaching may lead to the conclusion that they are essentially alike, except for terminology. The unit plans do possess a certain similarity in that all of them recognize larger units of learning than those of the daily recitation and are therefore characterized by the long-term assignment. The different plans, however, are identified with different educational philosophies and psychologies of learning. For example, the McMurrys and Morrison regarded the unifying factor of a unit as residing within the body of the subject matter, while Kilpatrick's project plan recognized the purpose of the learner as the integrating factor in the organization of learning materials.

Definitions of Unit.—A review of a few statements of the meaning of a unit as conceived by various writers may serve to reveal some of the fundamental characteristics of the unit concept.

The definition of the unit by Morrison [4] reveals the *subject-matter emphasis.* He states: "A learning unit is a comprehensive and significant aspect of the environment of an organized science, of an art, or of conduct which being learned results in an adaptation of personality."

The teachers [5] of the Lincoln School of Teachers College, Columbia University, formulated a definition of the unit which represents the *child interest* point of view as follows. "A unit of work is a series of worth-while experiences bound together around some central theme of child interest."

Grinstead [6] makes a useful *distinction between the learning unit and the teaching unit,* as follows: "When the individual desires to become master of some type of situation, rather than to meet a particular situation, and centers his energies upon the attainment of that mastery—the enterprise becomes a unit of learning. When the learner, in order to attain the goal of a unit of learning, accepts the direction of a teacher, to whom he looks for help in the selection of his activities, the clarification of his objectives, and the appropriation of success, the unit of learning becomes also a teaching unit."

The characteristics of a unit are well stated by Mursell,[7] who says: "Learning should be organized in terms of undertakings which seem real and compelling and valuable to the learner, which engage his active purpose, which confront him with a significant challenge, and which lead to deeper and wider insights, more discriminating attitudes, and more adequate skills."

Reference to the size of the unit is made in the following definition: [8] "A unit of instruction may be thought of as a set of activities through an entire semester (or even a year), or it may be thought of as a set of activities and experiences around a very small problem of living and life which will occupy a much shorter period of time. Neither size nor time is an important characteristic of a unit of instruction, however."

---

[4] Henry C Morrison, *The Practice of Teaching in the Secondary Schools,* 2nd ed., pp. 24-25.

[5] Katherine L. Keeler and Mayme Sweet, *Units of Work,* p. 1

[6] Wren Jones Grinstead, "The Unit of Learning: Its Meaning and Principles," *Educational Outlook,* Vol 7, 9-20

[7] James L. Mursell, *Successful Teaching,* p. 37.

[8] F. C. Wooton, "The Theoretical Basis of the Unit of Instruction" (mimeographed), p. 2.

Jones, Grizzell, and Grinstead[9] emphasize the learning product in their statement of a unit as follows: "The unit of learning consists of a group or chain of planned coordinated activities undertaken by the learner in order to obtain control over a type of life situation. The unifying principle is not the logical organization of the activities themselves, often thought of as subject matter, nor a center of child interest, but the learning product to be achieved. Thus learning production is not merely a skill, a habit, an attitude, etc., but such an integrated combination of these as will result in an adjustment of the individual to a life situation."

2. Types of Units

There is no one unit procedure which can be considered *The Method* which should be followed. Today many creative teachers with the help of the children combine various techniques of several unit methods and thus provide for different conditions as they exist in the schools. Several different types of plans have been formulated and will be discussed in order to emphasize characteristics which have proved their practicality in a learning experience.

Subject Matter Units.—The word "subjects" in the curriculum represents knowledge that has been organized logically and systematically, such as geography, arithmetic, and natural science. In a subject-matter unit all information is centered around a division of a certain subject-matter field. The learning experiences are formal. Textbooks are the main source of information. The time devoted to the unit is relatively short. The teacher plans the unit and directs the work of the children accordingly. For example, in a unit on *Safety* all information is based on *Safety* and is obtained by reading a basic textbook on *Safety* in the hope that through transfer of learning children will apply the understanding and the habits of safety to real life situations. In a topical unit on *Birds*, children learn facts presented in their readers or science books and disregard the common birds of their own community which are not mentioned in the particular book used.

Experience Units.—Experience units are based upon life experiences in which the children are interested. First graders are interested in the care of their pets. Fathers of three fourth grade children worked in coal mines and as a result of their immediate interest, the

[9] From *Principles of Unit Construction*, p. 19, by Arthur J. Jones, E. D. Grizzell, and Wren Jones Grinstead, 1939. Courtesy of McGraw-Hill Book Co., Inc.

class wished to learn about the mines. A group of sixth graders decided that they wanted to landscape the school grounds. In experience units children and teacher cooperate in planning the experiences. The plans are flexible so that changes may be made from day to day Information is obtained by cutting across subject-matter lines. The amount of time devoted to the unit will vary with groups and the type of experience which is being pursued.

Since the core of the curriculum is based upon interests of children, the development of the tools of learning is incidental and depends upon the utilization of those skills in the learnings which come out of the units. However, the teacher is concerned about the realization of the objectives of education and guides the children in the selection of their units so that the activities in which they will engage will provide for the utilization of those skills and habits so essential in acquiring information and in the ability to communicate with others.

Projects as Units.—The term *project* was originally used in connection with the teaching of agriculture and home economics in the high schools. Teachers of these courses, realizing the need for extending the scope of their subjects beyond the textbook and the usually meager laboratory equipment and materials, assigned supplementary exercises for students to do on their farms and in their homes The work on these projects was carried on in a natural physical environment. The student saw the project as the challenge of a real task, which gave unity to the activity. Aside from the limited supervision which could be given by the teacher the student made his own work plans, marshaled his energies, and evaluated his own efforts in achieving his goal, namely the construction of a material product. Because of (1) its self-motivating nature and its (2) increased student interest and (3) training value in more lifelike situations, the project method has more recently been employed widely in all subjects and at all grade levels as well.

In an endeavor to implement Dewey's philosophy for use in the classroom, Kilpatrick suggested that the essence of a project was the purpose which dominated the learner. He conceived the possibility of developing a purposeful attitude in connection with an intellectual task in a social environment and resulting in a material product. Thus he proposed a broadening of the original concept of the project to mean "a whole-hearted, purposeful activity proceeding in a social environment."

The use of projects does not represent the only effective method of motivating students. However, the project method does satisfy

numerous requirements of a good learning situation, particularly the freedom of students to suggest learning goals, to consider the relative merits of different goals, to choose one goal, to formulate their own plans to attain their chosen goal, and to pursue the plans to completion.

In an effort to make the project method a technique of teaching, rather than a philosophy which should permeate all teaching, one of the authors of this text in an earlier volume formulated the following statement of the meaning of *project:* "The project is a unit of activity carried on by the learner in a natural and lifelike manner and in a spirit of purpose to accomplish a definite, attractive, and seemingly attainable goal."

Characteristics of a Project.—An analysis of the literature on the project reveals that this kind of activity possesses the following characteristics:

1. The project is a learning unit. Its unity depends upon pupil purpose rather than upon the logical arrangement of subject matter.
2. The project is a self-imposed or willingly accepted task growing out of an awareness on the part of the pupil of its significance. Along with the acceptance of the challenge of the task goes the acceptance of responsibility for "following through" until its completion.
3. The project grows out of the pupil's experiential background, thus enabling him to discover clues for planning and organizing his own activities.
4. The project retains its identity only as long as the pupil has freedom to pursue his purpose unrestrained by the barriers of subject-matter boundaries or teacher domination.
5. The project invokes a whole-hearted effort on the part of the pupil to achieve an attainable and desirable goal.
6. The project leads to goals which are recognizable by the pupil, thereby enabling him to evaluate his own progress in achieving his objectives.

An Appraisal of the Project Method of Teaching.—There is little objective evidence which reveals the superiority of the project over other methods of teaching. The use of projects does not automatically insure that optimum learning will be achieved. It appears clear, however, that the philosophy and psychology underlying the project method are related more closely to the conditions essential for effective learning than are those of many other widely used methods of teaching. Properly used, the project method possesses the following values:

1. The relationship between the pupil and the teacher is conducive to effective learning, in that provision is made for guided self-activity on the part of the learner.
2. The attitude of the pupil is more favorable for learning as the result of the pupil's responsible participation in establishing and planning the goals of the learning activity.
3. The participation of pupils in learning activities which they have accepted as vital and significant to themselves tends to reduce the causes of pupil misbehavior.
4. In the group project the child becomes a helpful co-worker in a common and significant social task.
5. The use of the individual project is one of the most effective means of providing for individual differences. The group project also provides learning activities of many kinds suited to different capacities and interests.
6. The similiarity of the technique of problem solving utilized in the project method to that involved in dealing with problem situations in life facilitates the application of school learning to life situations.
7. The possibilities of achieving desirable concomitant learning are enhanced by the project method. Among the attitudes which may be developed are open-mindedness and tolerance. More ample provision is also made for the acquisition of certain skills, such as study and work habits, techniques of cooperative effort, etc.

Examples of Good Learning Projects:

1. Writing a song to be sung by the class
2. Writing and staging a play by the class
3. Writing letters to local newspapers presenting viewpoints on current issues
4. Carrying on correspondence with students in other states or countries
5. Studying ways in which the local community attempts to protect the health of its citizens
6. Making a study of local housing conditions
7. Making a survey of the provisions for traffic safety in the local community
8. Making a mural portraying the history of transportation
9. Getting out a school newspaper
10. Planning a girl's wardrobe
11. Caring for a small brother or sister after school for a period of one month
12. Making posters for school events
13. Designing and making book ends, book covers, Christmas cards, billfolds, etc.

14. Presenting an operetta or oratorio
15. Keeping a confidential record of personal income and expenditures
16. Making a survey of business enterprises in the local community
17. Studying special days celebrated in the community
18. Studying the influence of spring on plant and animal life
19. Studying transportation by airplane
20. Studying and planning a spring garden
21. Building a school store
22. Learning how inventions have influenced recreation
23. Reading about homes of different kinds of animals
24. Studying the ways in which the pioneers in the local community provided the necessities of life

Activity Unit.—The activity unit, not greatly different from a project, is based upon the interests, needs, and capacities of the children. Activities are selected from areas of human living in which there are problems that all men must face. In the elementary grades the activities are limited to the interests, needs and abilities of each group of children. The following list illustrates types of units which represent basic needs and interests of maturing children:

GRADE ONE

Area: Life at Home and School

1. Living happily together at home and at school
2. Safety at home and at school
3. Helpers who prepare our food at home and at school

GRADE TWO

1. Community helpers in securing food, clothing
2. Having fun in our community
3. Safety community helpers

GRADE THREE

1. Means of bringing food into our community
2. Controlling traffic in our community
3. Controlling spread of colds and diseases

GRADE FOUR

1. Natural community resources that supply our needs, such as coal, oil, etc.
2. Elimination of hazards in our community
3. Cultural contributions of various national groups in our community

GRADE FIVE

1. Providing for the basic needs of people of other countries
2. Being friendly with our neighbors, Canada, Mexico
3. Strengthening interdependence with other countries

GRADE SIX

1. *Maintaining health and safety among world neighbors*
2. *Considering our privileges and responsibilities in a democracy, as world citizens*
3. *Developing world unity based on scientific discoveries and inventions*

In an activity unit subject-matter lines may be abandoned and children may draw on any source for information, such as books, experiences, community resources, creative arts. The teacher recognizes that the skills in the Three R's are not sufficiently developed incidentally and provides periods in which the skills and abilities are presented and developed through practice and drill and perfected through use in the unit. Teacher and pupils cooperate in planning procedures to be used in solving problems, in setting up standards of accomplishment, and in evaluating results.

Teacher Planning in Teacher-Pupil Planning.—Teacher-pupil planning does not imply that preplanning by the teacher is nonessential. Effective teacher-pupil planning is a result of reflective preparation on the part of the teacher. The teacher should anticipate and study the needs and the interests of the children in the light of opportunities for cooperative learning, thus making it possible for her to guide children to higher levels of accomplishment. She has thought through the activities that will aid in the development of objectives which are important for various levels of accomplishment in her group. She should evaluate available sources of information. Her plans should be flexible so that they can be adjusted to fit the plans which the children may set up for themselves.

With young children much of the planning depends upon the teacher's ability to guide their participation in planning. As children become more mature they should be able to assume more of the responsibilities of establishing the goals to be achieved for the good of all. At any level of the pupils' development, it is the responsibility of the teacher to be able to evaluate the goals set up by children and to

give guidance when needed. If children are capable of doing the job, then the teacher should refrain from giving too much help.

Comparison of Units.—Some of the differences and likenesses of the units presented may be clarified by presenting major characteristics of each as follows:

Types of Characteristics	Subject Matter	Activity
Selected by	Teacher	Teacher and Child
Purposes are	Based upon textbook or course of study	Teacher's and child's
Plans are developed	According to textbook	By teacher preplanning and children and teacher filling in details as unit grows
Source of content for unit is	Textbook	Life experiences and content areas, such as social studies, etc.
Source of information is	Textbook	Books, periodicals, community, experiences, etc.
Learning is directed toward	Mastery of facts	Needs and interests of children and well-adjusted child
Learning experiences are	Formal	Varied and many
Tools of learning are mastered	Through relatively meaningless drill	Through meaningful drill and through use in solving significant problems

Selection of Units by Teacher Committee.—The basic needs and interests of children at the various levels of development are known. We also know what the various patterns of behavior are that should be developed as the children mature By using this information as a guide, many schools through teacher committees have set up a flexible program of sequential units for all elementary grades which provides for continuity and prevents repetition from grade to grade. Frequently teachers are furnished with a course of study or an outline of several units which are to be developed during the year and from this list the teacher and children cooperatively select the unit or units which they wish to pursue.

Teacher-Pupil Selected Units.—In other schools the teacher and children cooperatively choose the units out of their own areas of

experience. This type of activity to be effective requires expert guidance on the part of the teacher. Because of immaturity children may decide upon units which are too comprehensive, units which are limited in providing for the goals to be achieved, or they may wish to repeat a unit of the preceding year and thus omit an experience needed for the development of skills, attitudes, and understandings which are needed for that period of maturity.

Commercial Units.—Many units may be selected from magazines, collections in books, logs of units which have been recorded and published in books. Since these units have been developed by children and teachers in different communities, it is doubtful if they can be adapted successfully by a group of children whose needs and interests differ from the original group. Commercial units are good reference sources for informational background pertaining to the content, activities, visual aids, and bibliographies for teachers and children.

3. Teaching a Unit: Preparatory Activities

Information Needed for Preplanning.—In order to develop a working plan for unit teaching, it is necessary for the teacher to have information pertaining to the children, to the content to be covered, to the materials on hand, and to available community resources. The following outlines are suggestive of the type of information needed and some of the ways in which the information may be obtained:

1. Discover interests of children
    - a. Observe them at their play, in the classroom, on the streets, in their homes
    - b. Listen to their conversations, discussions, suggestions
    - c. Check books read during free time
    - d. Check on hobbies, leisure time activities
    - e. Study their drawings and paintings
    - f. Note materials which they bring to school on their own initiative
2. Ascertain the needs and abilities of children
    - a. Observe them at their play, at their work, in the classroom, on the playground
    - b. Listen to their conversations, discussions, suggestions
    - c. Study their drawings and paintings
    - d. Study cumulative records
    - e. Hold conferences with parents
    - f. Diagnose basic skills

3. Determine the activities and interests of the community
   a. Make a survey of the community
   b. Converse with citizens
   c. Attend civic functions, such as forums, concerts
   d. Observe community activities
   e. Take part in a community group or organization, such as church activities
   f. Study major occupations
   g. Study local newspapers
4. Locate natural resources, community resources, human resources as sources for profitable experiences for children
   a. Make a survey of the community
   b. Note industries
   c. Note museums
   d. Note libraries
   e. Note parks, playgrounds, swimming pools
   f. Keep a file of newspaper clippings pertaining to persons who have visited other countries, etc.
   g. Make a survey of homes for materials, such as pictures, models, exhibits
5. Source materials available in school
   a. Books, children's encyclopedias, magazines, bulletins
   b. Audio-visual aids
   c. Construction materials and art materials, such as clay, paints, paper, saws, nails, scissors, etc.
   d. Microscopes, magnets, electric plate, work bench, easels, etc.
6. Teacher's informational background based on content needed in various units
   a. Read authentic materials
   b. Interview key persons in industries
   c. Attend workshops
   d. Join an educational tour
   e. Attend illustrated lectures

Selecting Units.—The effectiveness of the unit method of teaching is determined in no small part by the selection of appropriate learning units. The suitability of a unit is dependent upon various factors which operate in a given learning situation. The most significant factors are the characteristics of children, particularly their abilities, educational statuses, interests, and social maturities Other considerations in selecting a unit are (1) its contribution to important educational outcomes (these outcomes should be expressed in terms of basic understandings, attitudes, appreciations, and skills), (2) its appeal to the interests of the children, and (3) the possibilities of developing desirable concomitant learnings.

The individual teacher's responsibility for choosing units varies from one school system to another. She may be expected to make her selection from a list in the official course of study, or at least to adapt the units chosen from the course of study. In a few schools, teachers cooperate in the preparation of resource units. Ordinarily the individual teacher is not required to teach any unit unless she believes that it serves the needs of the children, and in some schools she assumes full responsibility for the selection of units which she will teach. In an increasing number of schools, however, the choice of the unit represents the combined judgment of the teacher and children.

In the process of selection, a careful analysis should be made to ascertain whether or not a unit possesses good teaching qualities. The teachers of a junior high school [10] recently formulated the following list of desirable characteristics:

1. The teaching unit should have a useful purpose
2. It should reproduce actual life situations as nearly as possible.
3. It should utilize materials as they occur in life.
4. It should involve a variety of direct sense experiences.
5. It should provide a considerable amount of pupil activity.
6. It should provide for some free, informal association of the pupils.
7. It should provide a good opportunity for the pupil to originate, plan, and direct activity.
8. It should make an opportunity for manipulative or physical activity
9. It should provide opportunities to judge, choose, and evaluate
10. It should contain accurate information.
11. It should be possible to complete within the time available for the unit.
12. The exposition should be clear enough for a new teacher to reproduce the experience.
13 It should state exactly where materials may be obtained.
14. When references are given, they should be complete and exact.

If the teacher is free to make selections of units for her class, she should prepare a list of tentative units, from which one unit should be selected by the children under teacher guidance. Each of the units should possess the characteristics of a good teaching unit and should be based upon the teacher's knowledge of the needs of the class.

Anticipating Outcomes.—The teacher should formulate a list of the outcomes which may be achieved by the study of each of the units. Taking for example a unit on "Conservation of Our Forests as a Source of Lumber," a few of the desired outcomes might include:

[10] Simmons Junior High School, Aberdeen, South Dakota, *Suggestions on Unit Planning*, Aberdeen Public Schools, mimeographed.

1. Attitudes and appreciations: To develop
   a. Appreciation for our natural resources
   b. Appreciation for the benefits derived through conservation projects
   c. Appreciation for the efforts of our leaders in science and in the government who were and who are interested in lumbering and in conservation of our forests
   d. Appreciation for the needs of future generations
   e. Appreciation of our independence
2. Understandings: To gain better understandings of
   a. The necessity to conserve our forests
   b. The effects of one industry upon daily living of many persons
   c. Best measures to use in lumbering and in conservation of our forests
   d. The life of lumber men
   e. Our responsibilities in cooperating with government and with private organizations interested in conservation
   f. Responsibilities of those who are in charge of the conservation of our forests
3. Abilities in using tools of learning: To develop increased ability to
   a. Locate and organize information
   b. Use reference materials
   c. Read and interpret maps and graphs
   d. Read critically and analytically
   e. Creative work, such as writing, self-expression, and art
4. Habits and skills: Learn to
   a. Plan before executing
   b. Stick to the job until it is completed
   c. Listen to learn
   d. Practice neatness and accuracy
   e. Learn cooperation
   f. Practice courtesy in classroom and while on trips
   g. Use reference material intelligently

4. Teaching a Unit: Initiatory Activities

Goals of Initiatory Activities.—The tone and quality of the work of a unit are established in the introductory phase. The first impression the child receives of the unit largely determines his attitude toward all his subsequent work on it.

In instituting a unit, the teacher should seek to achieve the following purposes: (1) to create pupil interest in the unit, (2) to reveal the significance of the unit to the pupils, (3) to reveal the main features of

the unit, and (4) to assist the children in formulating their objectives of the unit.

Creating an Interest in the Unit.—It is not unusual to find a small percentage of children in a group who will admit that they are not interested in the unit. These children frequently have a limited background of experiences and when they begin to realize what is in store for them their attitude may change If children have been motivated previously for the unit by means of another unit or through experiences, it is advisable to move immediately into the exploration and problem-stating period. In organizing the approach period of a unit the teacher must take into consideration the purposes of the unit and the interests, capacities, and needs of the children.

The major techniques that are employed in introducing a unit are experiencing situations that are real to the children or experiencing situations in vicarious ways and then sharing those experiences in a discussion period. Following are a number of ways of conducting an approach period:

Planned Classroom Environment. It is very important that the teacher create the proper classroom climate for stimulating an interest in the unit. This may be accomplished by directing the children's attention to interesting incidents or situations of the unit by means of materials which are displayed in the classroom, such as a display of pictures, graphs, and charts on the bulletin board; an exhibit of products, models, specimens; and books on the reading table.

Motion Pictures, Slides, Excursion or Field Trip. Motion pictures and slides which are shown in the classroom are very effective in motivating children for study of a unit, as indeed is an excursion or field trip somewhere in the community. Occasionally a movie (that is if it comes at the psychological time) and the reviews of the movie in magazines may be used.

Radio. The radio is an effective technique to use in arousing the interest of children in the intermediate grades. News broadcasts, dramatizations of historical events, round table discussions of controversial issues, speeches by prominent leaders in economics, and science and musical programs may be used. The major problems in using the radio are that the desired program is not on the air during school hours; in the home there are many interruptions, or probably another member of the family prefers to listen to another program; and often the radio program does not come at the time of year when it is needed for the unit. In order to overcome these difficulties.

teachers may make wire recordings of the programs and then use them when they are needed.

Reading a Story or a Book. Frequently a story or book that is read during the story hour or during the literature period becomes the motivation for a unit. For example, a fourth grade class that had listened to a story about a child who lived in a jungle asked if they might have a unit based on "Life in the Jungle." Several books based on a specific unit may be placed on the reading table after the teacher has read selected passages to the children. If this reading is interspersed with remarks by the teacher and children, the children will read the books on their own initiative and during a free discussion period will comment on the story or stories which may serve as a lead into the exploration period.

Exploration Period. The main purposes of the exploration are:

a. To discover what the children know and do not know about the unit
b. To discover incorrect concepts
c. To discover particular needs of children
d. To extend the interest of the children in the unit

Exploratory Discussion Period. Exploratory discussion periods are intended to reveal what the children know and do not know about the unit. During these periods the teacher and children ask general questions which give direction to the discussions. While the children are discussing issues, offering explanations, and giving information, the teacher evaluates each contribution and records understandings and concepts which are not clear to the children, skills that must be developed, attitudes that must be strengthened, and those which must be developed. This information is used as a guide throughout the study of the unit. Pretests of the essay type are not recommended for elementary grade children. If a teacher desires to use a test, it is recommended that she prepare her own materials.

Stating the Problems.—After the interests of the children have been aroused and after the children have learned what the unit holds for them, the formulation of problems becomes the main issue. These problems should be in the form of clear statements of the purposes or goals to be achieved in order to give the children a definite aim toward which to direct their efforts.

The discussions of the exploration period should lead into the problem-stating period. Often these periods overlap to such a degree that each loses its identity. The problem-solving period is introduced

by the teacher asking the children what they should like to learn about the unit. As the children present their questions, the teacher writes them on the blackboard. Since the children do not have the background out of which all important problems should be developed, it is the teacher's responsibility to suggest and recommend those that the children omit. The teacher should mention these problems at the time when the children are making their suggestions. After the questions have been listed, the children and teacher evaluate them in order to discover relationships, to avoid duplications, to eliminate irrelevant material, and to organize the problems so that there will be a sequential pattern of attack. Often it is necessary to restate questions, particularly if two are closely related and may be integrated so as to eliminate one question.

Questions based on the unit "Conservation of Our Forests as a Source of Lumber" might include the following:

1. Where are the forest regions of the United States?
2. What will we learn when we study this problem?
3. What are the enemies of our forests?
4. Mr. Brown worked in a saw mill. Could we ask him to tell us about a saw mill?
5. Is there a movie about lumbering or our forests?
6. Could we go to the lumber yard and see the different kinds of lumber?
7. How do we make use of our forests?

During this period it is the responsibility of the teacher to see that all problems which are to be studied meet the following standards:

a. Should be paced to the needs, interests, abilities, and experiences of the children
b. Should be stated in the child's terminology
c. Should be limited so that problems can be completed in a reasonable length of time
d. Should challenge the children and at the same time it should be possible for the children to achieve the goal
e. Should be possible to use several activities in solving the problem
f. Should make a contribution to the major theme of the unit

5. Teaching a Unit: Developmental and Evaluative Activities

Teacher Planning.—Although the formulation of the problem and the planning of pupil activities should involve pupil-teacher cooperation, it is necessary for the teacher to make a thorough preliminary

plan for the conduct of activities in order that she may be able to guide the pupils in their study of the problem. The plan should include a formulation of the chief problems, a brief summary of the facts and principles involved, and suggested pupil activities, together with sources of information. This plan should, of course, be subject to change as the unit progresses and new pupil interests become evident.

Teacher-Pupil Planning.—This planning period is a natural outgrowth of preceding periods. Frequently at this point the culminating activity is determined; it often is a factor in determining problems to be solved and activities to be used in solving the problems. As the children re-evaluate the orientation activities they make decisions in regard to (1) finding ways for solving the problems; (2) making provisions for solving the problems; (3) organizing committees for various activities; (4) noting those activities for which individuals may be responsible. Following are suggestions for solving two problems out of eight that were presented by sixth grade pupils who worked on the unit "Conservation of Our Forests as a Source of Lumber":

Problem: Who owns and manages the forests? What are the specific problems of each type of ownership?

1. Locate the information in various sources by evaluating the titles of books and by using tables of contents, indexes.
2. Write to Forest Service of United States Department of Agriculture for information pertaining to the problem.
3. Appoint committees to solve specific problems.
4. Committees are to report their finding to the class.
5. Make a map of our state showing the National Parks of the state.
6. Make a graph showing the comparison of public and private ownership of forest lands.

Problem: How may we conserve our forests?

1. Locate information in various sources.
2. Take notes on materials read.
3. Report information to class during a discussion period.
4. Ask a member of conservation agency in local community to speak to the class about the problem.
5. Make a frieze showing how our forests may be conserved.
6. Use motion picture "Forests and Men."

Directed Study.—In the directed study period the children and teacher put into effect plans on developmental activities which were made in the planning period. It is at this time that the problems are

solved one at a time and in the sequence that seems feasible to the group. The real purposes are:

a. To put plans into effect.
b. To evaluate the work as it progresses.
c. To modify plans if it is necessary.
d. To develop in a functional way abilities and skills needed to solve the problems.
e. To provide opportunities in which children will learn to communicate their ideas to others.
f. To give children an opportunity to share information.
g. To develop attitudes and appreciations.
h. To develop cooperation and a sense of responsibility to the entire group.
i. To give children an opportunity to test results.
j. To summarize frequently and to draw conclusions.

During this period activities will vary from day to day. There will be days when every child will be locating information, reading and writing for materials. There will be periods in which groups of children will be working on various activities, such as clay modeling, weaving, painting, while on another day the class may go on an excursion. At another time one child may read to a group of children for whom the reading material is too difficult but who can understand the ideas and generalizations discussed in the reading materials During the study period specific plans may be made for excursions, for construction work, for an excursion, for an experiment, and for the culminating activity.

As the children progress in the solution of the problems, they will feel the need from time to time of adding new elements and of subtracting those elements which do not make a contribution at that particular time. During discussion periods they will present to the class work which they wish to have criticized, and will ask for help also. Activities of the study period should not be hurried. Children must think carefully and critically and evaluate the activities from time to time.

Evaluation Activities.—Evaluation is an important factor in every learning situation. It is important to know whether the objectives have been achieved, how the child is progressing, and how the environment and the teaching techniques are affecting the child. In a unit of work evaluation cannot be accomplished at a specific time. It is a continuous process and is going on during the planning period, problem-stating period, and study period.

In organizing an evaluation program, the objectives should be stated in behavior patterns and the instruments used in securing the information should be valid and reliable. Data for evaluative purposes may be obtained by means of tests, interviews, recorded accomplishments of children and of the group, and observations. Opportunities should be provided for each child to check his own progress, either individually or by presenting the results of his work to the group for criticism. This information is very valuable and should aid the teacher in:

1. Stimulating the children to do better work
2. Discovering weak places in their work
3. Pointing out better ways of doing the work
4. Making it possible for the teacher to know what has not been accomplished
5. Evaluating the worth-whileness of the activities
6. Making home reports
7. Preparing for individual conferences with parent and/or child

Culmination.—The culmination of a unit is very important since it becomes the guidepost for many of the activities which are used in solving problems. Frequently during the planning period children decide upon the type of culminating activities; if they do not have enough background to do it at that time, the decision may be made later. Details of the culmination are planned as the unit progresses. The purposes of a culminating activity are as follows:

a. To provide a way of sharing experiences with others
b. To provide group motivation for solving problems
c. To appreciate the efforts of every individual who has made a contribution to a group project

The major characteristics of a culminating activity are:

a. Making it possible for each child to participate
b. Making it possible for each child to identify himself with the activity
c. Making it possible for each child to achieve
d. Providing an audience situation
e. Providing for the presentation of many understandings acquired during the study of the unit
f. Bringing the unit to a satisfactory close

In the elementary grades, culminating activities usually take the form of assembly programs, exhibits, or plays. A good culmination for a garden unit in a primary grade is a party. The room may be decorated for the party with the children's posters and pictures. At the party the children might serve a vegetable salad (lettuce and

radishes from the garden, and crackers). The favor for the mothers may be a garden story which had been developed as a group project or a creative piece of work of each child. A short program of garden songs or a movie showing the progressive steps of the gardening project as recorded in drawings by the children may be the closing feature.

The culminating activity for the unit on "Conservation of Our Forests as a Source of Lumber" consisted of the following activities:

1. A film on conservation of our forests showed to the parents; the children answered the questions raised by the parents.
2. An exhibit of products and by-products of lumber, posters and frieze on conservation by the children, and pictures representing various facts which had been presented during the study of the unit were on display in the classroom. Each child was responsible for his guest at the exhibit and answered any questions that he asked.

Bibliographies as Resource Materials.—The bibliography for the teacher serves the purpose of indicating the content which the teacher has at her command. The bibliography for the children indicates the content which the children will cover and also is an indication of the varied experiences that the children will have in locating information. Sources of information which appear in bibliographies are as follows:

BOOKS

1. Bruere, Martha G. *What Forests Give Us* Washington: Forest Service, United States Department of Agriculture.
2. Deen, J. L. *Colorado's Forest Resources.* Fort Collins, Colo.: Colorado A. & M. College.
3. Hamlin, John. *Tales of an Old Lumber Camp* Boston D. C. Heath and Co
4. Hanna, P. R, and Others. *Building the House We Live In.* Chicago; Scott, Foresman & Co.
5. Meader, S. W. *Lumberjack.* New York: Harcourt, Brace & Co
6. Norlin, J. & Norlin, E. *Pop's House—The Story of Lumber.* New York. Henry Holt and Co.
7. Pack, C. L. & Gill, *Forest Facts for Schools.* New York· The Macmillan Co.
8. Rounde, Glen. *Lumbering.* New York: Holiday House.
9. Stevens, James. *The Way of Life in Lumber Camps.* Chicago: Row, Peterson & Co.

BULLETINS

(Forest Service, United States Department of Agriculture, Washington.)

New Forest Frontiers
How a Tree Grows
What We Get From Trees
Cut Wolf Trees for Fuel
Proper Harvesting Pays
Need Marketing Advice?
Know Your Timber
Thin Your Crowded Trees
Cut Low Stumps
The American Land of Promise

Encyclopedias

1. Compton's Pictured Encyclopedia Chicago: F. E. Compton and Co.
2. The Worldbook Encyclopedia Chicago: The Quarrie Corp.

Pictures for Bulletin Board

The Lumber Industry. *Our World in Picture Series* Denver, Colorado; Centennial School Supply Co

Lindsjo, Eleanor. *Lumber and Its Use* The Instructor Series of Illustrated Units, Dansville, New York; F. A. Owen Pub. Co

Coca-Cola. *Lumber, Trees, Timber, Wood Products.* Obtained through Coca-Cola local distributor.

American Forest Industries Inc, 1317-18 St, N. W., Washington

Products of American Forests — *Trees for Tomorrow*
Where We Grow Our Trees (map) — *Taming Our Forests*

Motion Pictures

(University of Colorado, Extension Division, Bureau of Visual Instruction, Boulder, Colorado)

The Forests and Health (el, jh, sh) 1 reel, sound
Forests and Men (jh, sh) 1 reel, sound (conservation)
The Forest and Water (el, jh, sh) 1 reel
Forest Fires or Game (el, jh, sh) 1 reel, silent
Forest Fires or Game (el, jh, sh) 1 reel, sound
The Forest Ranger (el, sh, jh) 3 reels, sound

Questions, Problems, and Exercises

1. Defend the statement, "Elementary school children are capable of carrying on effective research activities."
2. Does preplanning by the teacher preclude teacher-pupil planning? Defend your answer.
3. Prepare a ten-minute talk on advantages and disadvantages of teacher preplanning.
4. Show how democratic teaching procedures function in a unit of work.
5. Construct a list of democratic procedures that function during teacher-pupil planning.
6. List and evaluate the chief objections to unit teaching.
7. How can a teacher know whether the objectives of a unit have been attained?
8. How may the objectives of a given unit of learning be interrelated?
9. Present various means of appraising the outcomes of a unit of learning.
10. What does educational research reveal in regard to the values of unit teaching?

Chapter 13

DRILL AND REVIEW; TELLING AND EXPLAINING

1. The Function of Repetition in Learning

The value of drill in learning and teaching has been the subject of much controversy in recent years. Drill was once regarded as a most valuable approach to learning, and a considerable portion of the activities of the classroom was of the nature of drill, individual and group, oral and written, physical and mental. In the 1930's and 1940's less time and attention were given to drill and more reliance was placed upon incidental learning and learning through use and application. Recently teachers have been more and more convinced that desired results cannot be obtained without drilling on significant factual materials, and on specific elements of habits and drills.

There was early acceptance of the theory that learning is facilitated by repetition of what it is desired to learn. To commit passages, dates, names, or facts to memory called for repetition. To acquire a habit of action, speech, or thought, one must repeatedly act, speak, or think in a certain particular manner. To develop a physical or mental skill, one must repeat an act or mental procedure many times, each time attempting performance similar to the pattern of skill desired Conversely the less frequently one repeated or used the thing learned (or partly learned) the more it tended to be forgotten or to decrease in quality and speed of performance.

The Laws of Use and Disuse.—These two principles of learning were referred to as the law of use or repetition and the law of disuse. For generations they constituted together the fundamental and most important basic principle of learning. As concepts of learning have been clarified, it has become obvious that practice, repetition, use, or drill is only one, though an essential one, of the important factors of learning. Other principles such as those of attention or interest, of recency, of understanding, and of readiness have come to be understood and utilized in teaching.

Mere repetition without regard to the degree of attention or motivation, to the degree of understanding of what is to be learned, or

to the degree to which the learner is ready by reason of maturity or adequate apperceptive background is not very efficient. Sentences of many words, if they are well understood and if they concern matters in which the learner is interested and with which he is well acquainted, may be memorized with a few repetitions. On the other hand, sentences of little meaning and interest to the learner usually require many repetitions. One memorizes nonsense words with great difficulty and only after many repetitions. Likewise, if the unmotivated learner goes listlessly through motions of physical learning aimed at the acquisition of a particular habit or skill, many more repetitions will be required and a high degree of perfection or certainty of response is unlikely.

2. Knowing When to Employ Drill

Types of Situations Which Call For Drill.—It is important that the teacher know when to employ drill procedures. The general types of learning in which drill procedures may be useful are as follows:

1. Developing skills and abilities in reading
2. Learning specific facts, such as addition facts, multiplication facts, spelling words, etc.
3. Developing abilities to use various processes in arithmetic
4. Developing ability to solve problems
5. Developing skills, such as handwriting, locating words in dictionary, etc.
6. Developing physical skills, e.g., playing an instrument, batting a ball, handling paint brush
7. Developing a habit or unified set of habits, e.g., putting away toys, arriving at school on time, acknowledging a greeting or a favor (The development of an attitude is much like the development of a habit, being really a more or less habitual way of responding mentally or emotionally to a given idea or situation.)

The teacher must know what facts are sufficiently important for the children to remember, what skills are required and to what degree the children can master them, what habits should be acquired, to what degree of fixation, and when is the best time to develop them. These decisions can be made partly in advance and partly from day to day as learning proceeds based on the child's readiness. Likewise the teacher is responsible for discovering or assisting each individual child to discover what particular elements of a skill or set of facts need special attention in the form of drill

Drill, Diagnosis, and Individualization.—Drill should follow diagnosis and consequently to a considerable extent is an individual

matter. For example, to improve skill in handwriting it is not only necessary to have drill in general; but after some skill has been developed, further development will result only if attention is focused upon weaknesses, and drill upon the correct forms is employed as a means to substitute them for errors.

Because individuals vary in their need for drill or practice, particularly after the initial stage, drill should be used in connection with diagnostic procedures which will disclose the particular place or element requiring drill. Without diagnosis much time is wasted in drill which is not needed. With diagnosis, drill becomes somewhat an individual matter. Superior teachers, therefore, have developed drill materials or have adopted commercially published ones. They also use procedures which can be employed by the learner without the continued presence of the teacher. Drill materials, and often diagnostic tests or procedures, are provided in many textbooks, especially those in arithmetic.

Drill in Study Experiences.—More and more teachers are becoming teachers of children rather than of subject matter and in consequence are alert to the opportunities for contributing to the growth of children. The better teachers are quick to seize an opportunity to provide drill now and then for the development of desirable skills and habits of action and thought, habits of suspended judgment, speech habits, writing habits, habits of self-criticism of one's own ideas, habits of social manners, and skills in analysis. In every study experience, drill should be closely correlated with diagnostic testing and observation which will bring into relief the necessity of drill to bolster weak spots and to develop the skills, habits, or ability to recall to the desired level.

For drill in study experiences there are available workbooks, drill pads, and other materials of various sorts. In addition, many texts include drill materials in various forms, e.g., vocabulary lists, problems, and many different types of tests which serve the purpose of drill. Teachers should develop lists of materials for the purpose of variety of content.

Drill and the Unit of Work.—Success in teaching a unit of work in social studies or in natural science depends upon the child's ability to make use of needed skills in the tool subjects, such as reading, writing, spelling, and arithmetic. The use of the skills in the unit is not usually sufficient for the child to become efficient in the use of them. Therefore, children should at some time other than during the work on the unit drill on or practice those skills needed to carry on

their unit work. Children must, for example, understand how to use the encyclopedia in locating information on a lumbering unit, how to read maps and graphs; they must know when and how to skim in reading, and when and how to read critically. To take time for drill while children are working on the unit will kill their interest in the unit and will delay progress in solving problems for which they are motivated. After the children have learned the patterns of the various skills during drill periods, the skill may be perfected through functional use in solving the problems of the unit.

Self-Drill.—Self-drill needs to be well motivated, and progress must be noted by the teacher. The teacher should make children understand that the skill, habit, or ability to recall is really essential. Teachers frequently attempt to teach too much material, and children learn too superficially.

3. Principles and Procedures

Commonly Recognized Principles.—There are some fairly well recognized procedures of drill which apply universally, regardless of whether the objective is acquisition of information, development of skills, or formations of habits. Among those commonly recognized are the following:

1. A desire to learn should be developed.
2. The drill should be a cheerful activity.
3. Drill should be discontinued if boredom appears, attention is lost, or interest wanes.
4. There should be freedom from distractions such as noises or other stimuli likely to divert attention in part.
5. Drill situations involving novelty are relatively more effective than those which have grown stale through repetition.
6. There should be a physical and mental attitude of attention and alertness.
7. Repetition should become focused more and more upon the weak spots.
8. Care should be taken to notice errors and omissions, which should be corrected at the first appearance.
9. Drill exercises for a given set of materials, skills, or habits should not be too infrequent. On important new material drill should be repeated daily at first, then at intervals of increasing length or in progressively briefer drill periods. If possible, drill on new material should be conducted two or three times a day in the initial stages.

10. Class drill must be supplemented or replaced by individual drill devised to meet the particular needs of the individual learner.
11. Artificial situations and "crutches" should be used sparingly, since they must eventually be discarded; but there are some situations in which, because of the learner's relative immaturity, they are almost indispensable.
12. The drill period should be followed by an unrelated activity.
13. The skill should be used in functional situations as soon as practical.
14. Provision must be made for review or maintenance drill unless use is made of the new acquisition.

Devices for Motivating Drill and Holding Adequate Attention.—Perhaps the principal problem in drill is that of keeping attention at a high level and keeping the children interested both in making progress and in participating wholeheartedly in the drill. Among the devices which may be employed to advantage are:

1. Cause learners to see need for the skill
2. Keep graphic records of individual progress
3. Employ a brisk procedure to keep learners at their maximum performance
4. Use visual devices, such as flash cards
5. Devise schemes of competition, preferably individual
6. Use rhythmic music

Suggestions for Directing Drill.—The assignment is a very important part of an effective drill period. Children must know definitely on what they are to drill, how they should proceed during their study period, and what the reaction pattern is to be. They must have a means of knowing whether or not their reaction patterns are correct and, if they are not correct, how to go about making the correction.

Workbooks and textbooks contain instructions concerning how children are to proceed and can be understood by the children providing they have had previous experience. Children should not be expected to learn new procedures from workbooks or textbooks without any guidance from the teacher. New processes or operations should be developed in class; often it is essential that the teacher demonstrate with explanations how to proceed, and also guide children as they demonstrate for the class.

Following the orientation, all children work as individuals, the teacher observing them at their work—making corrections, giving suggestions, and encouraging those who need it. After the children understand what they are to do, the teacher should expect them to work independently for a time and inspect their work at a later time.

Skills which have been broken down for specific drill also must be put together and practiced in a normal situation. For example, if the children have been practicing on headings for a business letter apart from writing a letter, it will be necessary to write a business letter for a specific purpose. All skills should be practiced in situations in which they function in a normal way.

How effective the drill has been can be determined by the extent to which improved habits of work are observed in functional situations.

Suggestions for Drill for Development of Skills or Habits.—In addition to the general suggestions given earlier in this chapter, the following apply to the development of skills or habits:

1. The learner should have in mind a clear idea of the response expected of him.
2. In the case of complex responses or activities, the learner should be furnished with an explanation or demonstration of the pattern of behavior.
3. Knowledge of the goal and of progress toward it are favorable to interest and rapid learning, except where the progress is so slow as to discourage or confuse the learner.
4. Habits and skills should be acquired in situations as nearly as possible like those in which they will be used.
5. Adjust the pace of drill to circumstances, the maturity and development of the learner, and the complexity of the response. Drill should be brisk and quick, but not so fast as to encourage errors or to discourage the learner.
6. The teacher should determine what degree of thoroughness is desirable for the habit or skill, that time be not wasted in continuing drill after the determined level has been reached. On the other hand, it is desirable to continue drill in some skills to the point of overlearning as a means of insuring permanency.
7. Always subordinate speed to accuracy in the early stages. The fact that rapid performers are accurate performers does not mean that, for a given individual, the more rapidly he works the more accurate he will become.
8. Where there is a choice as to sequence, the initial procedure to be developed as a skill should be relatively interesting and not too difficult. Naturally, care should be exercised to see that prerequisite elements come first. Sometimes drill should first be upon two or more similar skills, which then are combined into a more complex one.
9. Drill performance should be carefully scrutinized for deviation from the desired pattern. Error should be eliminated as early as possible so that incorrect elements do not become fixed.

10. After preliminary drill revealing errors, remedial drill should be focused upon the incorrect or weaker elements. When accuracy in these is achieved, they may then be integrated with the other elements.

The most important points in developing skills and habits are: (1) that the learner shall have a clear picture of what he is to do and do it correctly the first time, and (2) that his performance be analyzed and diagnosed for errors or omissions. Demonstrations give a clearer picture than verbal directions of what movements or elements are involved in what the learner is learning. In the demonstration, attention should be called to important elements and those likely to be overlooked by the child.

Suggestions for Memory Drill.—The following suggestions apply to drill for remembering as opposed to drill for the development of skills or habits:

1. The meaning of the material to be memorized or remembered should be understood by the learner.
2. Any definite sequence in the items to be memorized, as in a poem, a description, or a narrative, should be set before the pupil as a framework. Outlines are very helpful in this connection.
3. An artificial sequence which will be helpful can often be worked out if there is no natural sequence of organization.
4. Search should be made for other types of associations which will assist memory, such as peculiarities, resemblances, contrasts, and alliterations.
5. Attempts to recall parts should be made soon after understanding has been reasonably well achieved and after a few repetitions.
6. Units for recall practice should be units with respect to meaning or with respect to rhythm and punctuation, preferably both where they coincide.
7. Avoid discouragement on the learner's part—especially on the part of self-conscious individuals.

The most important aids to memorizing are (1) a sound basis of understanding of the meaning of the materials, (2) the early use of recall, and (3) the establishment of associations (a) between various parts of the material and (b) with other ideas, words, and objects.

Oral Quiz as Drill.—A rather effective method of drill is the oral quiz. Many teachers of mathematics and of history start class periods with a brisk oral quiz, asking questions at random of members of the class and covering the most important of such items of the day's work as may be recited briefly. This learning exercise, which should

not occupy more than ten or twelve minutes, not only serves the purpose of providing class drill but also acts as an incentive to preparation. It is particularly appropriate for such items as important specific facts in science and history and mental mathematics, i.e., without pencil and paper.

It should be remembered that, in an oral quiz of this sort, a response, though not spoken, is given to each question by all or practically all members of the class, and that attention is focused upon the correct answers.

4. The Review Procedure

Place of Review in Teaching.—The value of review exercises in the development of ideals, attitudes, and interests is difficult to evaluate. Perhaps ideals may be renewed, attitudes reinforced, and interests revived by review exercises; but more likely than not, better progress can be made, in so far as these outcomes of teaching are concerned, by going on into new materials.

On the other hand, when a body of information has been considered, even though it consists of but a few items, a review in the way of summary is both desirable and effective. Where acquisition of information is the goal, it is better to review than to be satisfied with half-mastery.

Even after drills have made the response automatic and accurate in acquiring skills and habits, it is necessary to repeat them occasionally to offset the possibility of forgetting.

Reviews should not be considered as synonymous with drill, however similar in some instances the two learning activities may be. The drill exercise is concerned with repetition for the sake of rendering the response automatic and accurate. A review serves to assist in these matters but it has distinctly different ends and aims. Review implies a recall or a renewing of learned skills, habits, and facts *in a new situation.*

Purposes of Review.—Review differs from drill in respect both to the purposes and to the procedures involved. The distinctive purposes of the review are:

1. To assist the child in perceiving significant relationships among various elements in a body of content or informational materials.
2. To give emphasis to the important concepts in a daily lesson or unit of work.
3. To promote greater permanence of learning.

4. To serve as the basis for diagnosis of a pupil's difficulties in the reorganization of learning materials, which is essential to the development of new meanings.
5. To provide a more satisfactory basis of apperception for new types of units.
6. To furnish an additional clue to evaluation of the pupil's achievement.

Occasions for Review.—In order to achieve the purposes stated in the preceding list, reviews should be conducted at various times In schools in which the more traditional type of daily recitation is in vogue, the review of the preceding day's work may properly come at the beginning of the class period in the intermediate grades. This type of review serves to reinforce the knowledge acquired in the class the previous day. It also assists children in seeing the materials of instruction in their proper sequence. The daily review also may be in the form of a summary at the close of the class period.

In the conventional course, the review may likewise encompass the material covered in a week or month. Teachers devote part of the class period in some subjects one day each week (usually Monday or Friday) to a review of the work of the week concluded. The weekly review can be justified in that it contributes to more complete understanding and retention of the most significant material studied the previous week. The weekly reviews should usually be brief and well planned.

The review is also essential in the unit method of teaching. In the presentation phase of unit teaching, considerable attention should be given to information relating to the unit of work. Since new learning experiences are built upon previous experiences, the review serves as a necessary foundation for the study of the new unit. The review may be one of the culminating activities of a unit. In this connection the review may take the form of a summary of the main outcomes of the unit by the children or the teacher.

The Problem Review.—The materials to be included in a review may be grouped around a problem. A social studies class might work on the problem, "Why do so many persons spend their summers in Colorado?" This constitutes an excellent review problem. To answer it requires not only application of the pupil's knowledge of the influence of altitude and humidity upon temperature, but an understanding of differences in topography, scenic beauty, mountain recreation, and density of population.

A consideration of problems of these types involves the seeking of answers to problems such as the following:

1. Cause and effect, e.g., why are the summer nights so much cooler in Colorado than they are in St. Louis?
2. Comparison, e.g., compare the mountains to the seashore as a desirable place for a vacation.
3. Selective recall, e.g., name all evergreen trees in our state.
4. Summary questions, e.g., give the ways in which our forests may be preserved

Assignments Based on Review.—An assignment having review as the major objective must be based on a reorganization of materials previously studied and the application of skills in new learning situations. Great care must be exercised in planning a review of this type so that instructions are stated in such a way that the children can understand what is expected of them, that the procedure suggested varies from previous work, and that the ability of the groups has been considered. Assignments may be based on summaries, answering questions, making outlines on work covered, making graphs and maps, drawing pictures.

The Socialized Review.—Some of the techniques of socialized procedure can be adapted to the review. Various devices have been used to encourage children to participate One of the most widely used plans is to ask a child to formulate a question based on the topic and designate another member of the class to answer it. The child who gives the answer formulates and asks another question. The questioning continues until each child has participated or until the content is covered. The questions of the different children may not be too closely related, so that the result is the recitation of a series of isolated facts. This disadvantage however, is usually offset by increased pupil interest in comparison with other methods. Perhaps it is advisable to utilize this method only occasionally to add variety to teaching procedures.

Characteristics of Good Review Procedures.—Because of the nature of their purpose reviews should be selective. It is neither practical nor desirable to attempt review of all the learning experiences. A great deal of detail is included in learning materials as background to the understanding of the more important points and is not in itself of much importance. Naturally the review will not be focused upon those details.

Second, the review should usually be such as to stimulate or to provide reorganization of learnings, to coordinate and to connect materials and learnings which were acquired on different days and at different periods. One of its purposes is to train children (particu-

larly in the intermediate grades) in organizing their learnings and in getting overviews and perspectives of large amounts of material.

The review should also furnish a basis for locating weaknesses of learners relative to the more important expected outcomes of the learning experiences and materials being reviewed as the basis of a final reteaching or relearning.

One of the greatest limitations of the review is the possibility that verbatim recitation will be accepted as learning. This is particularly true if material is reviewed in too great quantity or too minutely. Review should be concentrated upon a small number of large and important ideas and their subdivisions. Care should be taken, therefore, to be certain that materials recited by the children are adequately understood.

Times for Review.—Occasionally it is wise to review the discussion of a preceding class period for the purposes of (1) giving the children some idea of the degree to which they have mastered it, and hence of the further amount of study they should give to what has been covered; (2) pulling together and coordinating the ideas of the discussion; and (3) furnishing a summary. Quite frequently it is wise to begin a class period with a brief account of what has just been covered, as a means of setting the stage for an assignment to show how the new work grows out of and extends the old.

In order to counteract forgetting, provision should be made for frequent systematic review. The first review should follow soon after a knowledge or skill has been presented. As time progresses the time between reviews increases and the practice period of each review becomes shorter and shorter. The pattern of review should vary with different children, as some children forget more rapidly than others.

Effectiveness of Review.—The method used in the review determines whether the review has been good or bad. A good program will result in recall of the learned materials in new situations, in perfecting skills in varying learning situations, and in acquisition of deeper understandings. A program which reviews the learnings in the same way in which they were acquired does not provide for a deeper insight of things learned and skills acquired.

5. Telling and Explaining

Need for Oral Presentation by the Teacher.—Frequently during the progress of a learning experience there is a definite need for the

teacher to give oral explanations or interpretations to a class. A number of examples of appropriate occasions are noted in the following paragraphs.

When a new topic or unit is introduced the teacher should

1. Reveal how the new learnings are related to previous learnings.
2. Devise a way of motivating the children for a unit of work.
3. Present possible approaches for working out the unit.
4. Motivate children to "tell."

As the work proceeds, the children may ask questions which are sufficiently significant to deserve discussion and clarification by the teacher. If a common difficulty is encountered by the group, it is well for the teacher to assist them by an explanation in overcoming it. Often a child's question provides an opportunity for the teacher to emphasize an important point, thereby developing new insights and understandings. If skillfully done, the teacher's elaboration and supplementation of materials create greater pupil interest and favorable attitudes for study.

Relation of Telling to Outcomes of Learning.—As a means of imparting information, telling is more effective than having children read the same information, since meaning may be better expressed in emphasis, expression, and inflection of the voice than in print, and attention is more easily maintained. Also, opportunity is available for questioning by the children and for the clearing up of misunderstandings by the teacher. Telling has another advantage in that it permits the use of more visual and concrete devices for explanation and emphasis.

In the development of skills and habits, telling has its principal functions in arousing interest, explaining the details of the skill or habit, and calling attention to incomplete or inaccurate responses. In explaining many processes, telling is very frequently more effective than the written instruction in the textbook or workbook, especially if the telling includes demonstration.

Advantages of Telling.—The most significant advantages of telling may be summarized as follows. Telling

1. Supplements the materials of the textbook.
2. Vitalizes ideas which too often appear cold and impersonal when printed in the pages of a book.
3. Provides better opportunity for clarification of and emphasis upon important meanings.
4. Can be adapted to the abilities, interests, previous knowledge, and needs of the children.

5. Can be organized in accordance with the principles of educational psychology rather than the logical organization of textbook materials.
6. Results in economy of time in that pupils are not required to search for relevant materials.
7. Permits the judicious selection and use of materials for the unit.
8. Can be synchronized with questions by children in regard to matters of interest or difficulty, thus giving children the opportunity to raise questions at the time when the answer appears significant to them rather than postponing questions which may arise in the course of reading.
9. Serves as a pattern of good oral expression which may tend to counteract the influences of careless, incorrect word usage.

The Limitations of Telling.—Many objections to telling have been mentioned by students of teaching methods. Among the more important objections the following should be mentioned:

It is difficult to obtain and keep the attention of children. It should be observed that it is also difficult—usually more difficult—for the learner to keep his attention at a high level while reading assignments. The degree of attention learners give to telling depends upon such factors as (1) the intrinsically interesting character of the materials, (2) the way materials are organized for presentation, (3) the skill and personality of the teacher as an explainer or teller, (4) the use of illustration, (5) the nature of the child's preparation and the nature of the expected follow-up.

The learner or listener is not active but passive. To some extent this is another way of saying that the listener has a low level of attention. In addition, however, it carries the implication that the learner is not getting experience in application, in initiative, in organizing learning material, in finding things for himself, or in problem solving.

Probably the greatest limitations of teachers as tellers or explainers are (1) lack of skill, which can be gained only by continued careful practice with a determination to improve, (2) and the lack of background of teachers in preparation, in life experiences, and in ability to correlate and organize materials from sources other than a few textbooks.

Judicious Use of Telling and Explaining.—The teacher must develop the capacity to decide wisely when to tell or to explain. The teacher must constantly think of the possibility that a little telling or explaining might help, and at the same time be mindful that the child must be deprived as little as possible of self-activity and self-

direction. The teacher must also be prepared to make explanations at any time when it may seem necessary, to refer children to sources where they can find the answers to their questions, and to encourage them by questioning to think through the answers to their questions.

In planning, the teacher should always be on the alert for places where an explanation should be made, where some inspiration should be given, or where a summary of learnings seems to be needed. In all these decisions, a great deal of common sense must be employed in applying the principle that the best teaching is that which provides the best learning environment for the child at all times.

Careful Preparation is Essential.—Careful planning for telling and explaining is very important, especially for the younger teacher. Careful planning involves in every instance some if not all the following elements:

1. Deciding how much time may be devoted to the explanation in terms of
   a. The time available
   b. The importance of that which is to be told or explained
   c. The amount of time necessary to do a good job.
2. Familiarizing one's self with the materials or processes to be explained.
3. Thinking through what critical questions children are likely to ask and how they should be answered.
4. Deciding what are the more important purposes and objectives of the explanation in terms of understanding, skills, appreciations, interests, etc.
5. Planning the sequence of the explanation.
6. Considering the backgrounds of the children, what they can understand, what will interest them.
7. Thinking through explanation to discover where examples or illustrations seem to be called for and planning these (this includes the blackboard).
8. Thinking of occasions where the speaker may profitably be interrupted briefly for a question to a child or to the group.
9. Planning appropriate places to raise questions or to interest the children in problems which the material following will answer.
10. Planning an assignment of checks based on the explanation.
11. Testing in advance all films and apparatus to be used.
12. Making brief, easily read notes that will insure sequence and guarantee against forgetting.
13. Familiarizing one's self with notes in advance of the telling.

The Technique of the Teller.—The procedures used in giving explanations are not all alike, nor are the techniques of a given

explanation the same on all occasions. Suggested procedures are, therefore, not intended to be followed slavishly, but as techniques which usually are appropriate and effective and more often than not may safely be followed. Among those which are of most importance and which are most commonly employed by successful teachers in school are the following:

1. Make sure that any charts, diagrams, pictures, exhibits, models, books, etc., to be used are on hand.
2. Survey the room quickly for possible distractions, noises, and bad seating arrangements and make appropriate adjustments.
3. Review quickly, just before beginning the major objectives or the explanation.
4. Begin by rousing some curiosity or developing a problem-solving attitude by means of a question or problem.
5. Adapt the pace of your presentation to the
   a. Ability of the class to follow you
   b. Relative necessity for their reflecting upon what you have presented. (With respect to pacing, teachers usually make two mistakes:
      (1). Talking too rapidly
      (2). Employing the same pace throughout—too slow at times, too rapid at other times. Adjust pace to difficulties of the material presented and to the ability of the group.)
6. Keep the group in a problem-solving and expectant attitude; raise questions and problems along the way; stop now and then to ask a question of an individual or the entire group.
7. Employ interested, earnest, conversational tones and a natural, personal, conversational manner. Look into the faces of your children, if you are talking to them.
8. Check up on your audience occasionally with a question or exercise to see if it is following you with understanding.
9. Pause occasionally for questions and reactions, but do not permit too much digression. Do not stop to teach one child at the expense of the group.
10. Don't lecture: Talk to your audience as individuals in so far as that is possible.
11. Intersperse the telling with questions, developing the theme, encouraging the children to think along with you and to cooperate in the telling or explanation.
12. Do not forget to use illustrations (diagrams, maps, stories, demonstrations, etc.).
13. Cultivate a good time sense. Avoid digressions; they often serve as distractions rather than illustrations. Above all, always keep in

mind these important points: (1) the objectives of the explanation; (2) the necessity that the children shall understand your explanation.

14. Do not be self-conscious while you are talking. Beginning teachers are far too much inclined to regard all lapses in obvious attention as personal affronts.

In the intermediate and upper grades the following additional suggestions are useful:

15. Exhibit a sense of humor in some way other than by using funny stories as illustrations. Phrase your remarks where possible in an interesting manner.
16. Train children to take useful notes intelligently in some subjects. Illustrate occasionally by making notes on your own talk on the board. Encourage the children to "write up" notes at the conclusion of the talk, and allow time for such an exercise. A good device is to permit children to work in pairs, or to consult each other while writing.
17. Hold your children definitely responsible for the content of talks.
18. Ascertain, as a means of diagnosis and as an aid in remedial teaching, what the pupils have learned from your talks. A short test immediately, either at the close of the talk or at the beginning of the next period, may be used for this purpose and may serve also as an inducement to careful attention.
19. Avoid becoming too attentive to your notes or failing to follow them.
20. Emphasize beginnings of divisions of your talk by giving cues to topic sentences and the like.

Illustrative Material.—Among the most valuable types of illustrative materials to be used in making explanations when presenting new ideas are the following:

1. Still pictures and slides in practically all learning experiences
2. Motion pictures, particularly to show action
3. Objects, specimens, models
4. Charts and diagrams to show relationship
5. Graphs of size
6. Demonstrations of processes, skills, etc.
7. Drawings and diagrams on the blackboard
8. Verbal illustration

Types of Verbal Illustration.—1. *The Anecdote or Story.* Some teachers are inclined to excessive use and misuse of verbal illustration. In the use of anecdote it is wise to emphasize very definitely what the anecdote illustrates. The "moral" must be put into clear focus. The

teacher who misuses anecdotes often has the discouraging experience of learning that her students remember the anecdotes well but forget the points they illustrated.

Anecdotes may be used to particular advantage in teaching history, the social studies, geography, and appreciation of music, art, and literature. Teachers may well keep a card file of good stories and anecdotes, with references to them in their textbooks or files of lesson plans. They should be constantly on the lookout for appropriate new anecdotes for use in their teaching.

2. *Examples.* It is necessary at this point to stress the importance of employing well-chosen illustrative examples to make clear the meaning of important new words, phrases, ideas, procedures, movements, and other things being learned.

In planning for the explanations to be made in class the teacher should take time to think of good illustrative examples. (*Examples* here are not problems or exercises for the learners, but individual instances that exemplify the idea, rule, word, or abstraction.) These examples should be of several varieties and should be selected from those likely to be familiar to the learners.

3. *Analogies.* Completely valid analogies are very rare. Almost always there are material differences between the statement to be illustrated and the analogous statement. Sometimes the analogy is misleading unless these differences are clearly pointed out. Because of its capacity for clarity and also because of its power to mislead subtly, the analogy is used frequently by advertisers, political speakers, and other propagandists to influence the thinking of untrained people to an extent and in a manner not possible with honest logic.

Using verbal illustration is to explain and narrate in terms of the child's previous experience. If he is to understand and to be interested, the telling must serve to call into his consciousness mental images of his previous experience, though perhaps in somewhat different organization and combination. In the application of this principle, common sense must be constantly and intelligently applied in telling, with particular attention to the following suggestions.

1. Decide what statements need amplification, illustration, and particularization
2. Decide which important words or phrases you are certain to use will be new or only slightly familiar to the children.
3. Select the explanation materials (words, examples, objects, movements, or experiences) from those already well understood by the children.

4. Ask the listener to give an example or attempt an explanation occasionally, if in doubt about his understanding.
5. Be sure that the explanation is not misleading.

Learners' Participation in Telling.—While there are many short tellings for which no advance preparation of the child is necessary, there are also many times when the explanation should be preceded by some sort of preparation of the children by the teacher. The most useful and most commonly used types or preparations are (1) developing a felt need for the explanation (2) directing the attention of the children to the more important things to be gained from it.

Children's Reactions During the Explanation.—The children must be encouraged to listen to the explanation in an attentive manner. It is feasible for the teacher to check on her listeners in order (1) to see if they are attentive, (2) to arouse and stimulate interest and attention, (3) to learn to what extent the explanation is being understood and what supplementation or amplification is needed. This may be done in a number of ways, including

1. Asking a child for a restatement of what has just been said.
2. Asking for criticism or expression of doubt.
3. Calling for an application of what has been said.
4. Providing an opportunity for anyone to ask a question.

The beginning teacher may be surprised, if not a little discouraged, to discover in checking up that children's actual impressions and understandings fall short of what the teacher had planned and hoped.

The Follow-Up.—The follow-up is important after a lengthy telling and should ordinarily be planned to carry out one or more of the following purposes: (1) to discover misunderstandings and needs for remedial or supplementary explanations, (2) to motivate attention and mental activity during the explanation, (3) to cause children to react to the explanation (4) to increase understanding and insight relative to the explanations.

There are several types of follow-up activities appropriate with explanations and telling, such as the open discussion, the oral quiz, the written quiz, the assignment of written exercises or of rewriting notes taken, and further reading on the topic. After most explanations and tellings, as well as after the use of visual materials requiring more than a few minutes, it is wise to make definite provision for some sort of follow-up which will serve at least the following purposes: (1) to see if there has been failure in understanding essential and important points, (2) to connect and relate parts or points, (3) to

discover the degree to which a sound basis has been established for further progress, and (4) to stimulate further interest and activity. What type of follow-up is best depends upon the nature of the material and other circumstances.

Questions, Problems, and Exercises

1. From the commonly recognized principles of drill select the five most important and give reasons for your selection.
2. What are the principal differences in drill for learning facts and drill for learning skills or habits?
3. What is the relationship between review and diagnostic remedial procedures? Between review and drill?
4. Discuss the relationship between spacing of review and forgetting, between drill and forgetting.
5. Discuss drill and functional problems; review and functional problems.
6. How may a graph be used in a review?
7. What, if any, is the place of telling in the teaching of habits? Of ideals? Of skills?
8. Of the various methods suggested in this chapter for making an explanation effective, select six which you think are the most effective and be able to tell why you think they are the most effective.

Chapter 14

USING QUESTIONS AND PROBLEMS

1. Type of Questions

The natural technique used by a young child in attempting to learn about his environment is that of asking questions. He knows that by asking a question he is making known to a listener the information which he desires to have, and that through an answer of the listener he will obtain what he desires to know. He constantly wants to know the *what,* the *why,* and the *how* about his environment. He wants to know why the kitty purrs, how the kitty makes the purring sound, why the rabbit wiggles its nose, where the stars go during the daytime, and so on. Very few children escape the questions, "Why did you do that?" "Did you hear me?" Practically every child has tried to make an agreement with a friend by saying, "If I give you a cookie, will you play with me?" A five-year-old at an airport who was asking, "Why does the plane need wheels?" "Can the plane go through the clouds?" was interested in finding out something about a plane; and the fifth grade child who said, "Teachers ask so many foolish questions," realized that he was not being challenged by worth-while questions. Teachers who use the technique of questioning when seeking wanted information are using a device fully understood by children.

Questions are used by the traditional teacher and are being used by the modern teacher, but for somewhat different purposes. The questions used most by the traditional teacher are designed to test the learning of facts. The modern teacher employs questions more often for guiding children in critical thinking, in interpreting facts, in developing ideals, and attitudes, and in developing generalizations.

Practical Principles.—Even though the question is an effective device to use in teaching, a high degree of skill in its use requires much planning and practice in preparing thought-provoking questions. It is essential that the teacher understand and employ intelligently the following principles. She should

1. Appreciate the fact that the question is a medium of guidance in instruction.
2. Have an understanding of child growth and development so that individual differences in capabilities, backgrounds, and interests are taken into consideration.
3. Understand how learning takes place; the thought question of today may be the memory question of tomorrow and a memory question for one child may be a thought question for another child.
4. Understand the aims and goals to be achieved.
5. Be able to think clearly and quickly as mental adjustments are being made to the child's pattern of thought.
6. Be able to detect quickly when children do not understand questions.
7. Be able quickly to diagnose reasons for not understanding questions.
8. Possess a vocabulary from which thought-provoking questions may be formulated.
9. Understand the principles basic to the techniques of questioning.
10. Have a background of meaningful information.
11. Understand the value of formulating before teaching key questions that will serve as the framework around which and out of which will grow understandings and the formulation of more questions.
12. Feel at ease when admitting that she does not know the answer and ask the children to assist in finding the answer.
13. Understand that unsolicited questions on the part of the children are an indication that the teacher has done a good job in arousing the interest and enthusiasm of the children in the learning situation.

It is within the power of every teacher to develop an understanding of these readiness factors and to develop the ability to ask thought-provoking questions. It is essential that she should have an understanding of the purposes of the various types of questions and of the mental activity initiated through the questions.

Teacher's Purposes in Asking Questions.—One of the more important purposes of questions and questioning by teachers is to get from the children information and opinions which will be useful to the teacher or to others in the class as stimuli to further thinking It is unfortunate that many teachers use questions for this purpose less often than keener and more effective teachers.

Specific Purposes of Questions and Questioning in the Classroom

1. To stimulate thinking on the part of the children
2. To learn how much the child has remembered

3. To check upon the degree of the child's understanding of important facts and concepts
4. To discover any lack of the information needed for thinking about a problem
5. To see if pupil possesses background of experience for learning situation
6. To motivate the learning
7. To discover children's interests
8. To give the child an opportunity to express his ideas
9. To give direction in the organization of materials
10. To give the children opportunities to establish human relationships
11. To help child in concentrating on pertinent materials
12. To stress important facts
13. To help children to ignore irrelevant materials
14. To provide for drill in the mastery of facts having high social utility
15. To review or maintain information
16. To measure progress
17. To develop an understanding in the use of materials
18. To gain the attention of children
19. To develop background of mental set or to develop a problem-solving attitude toward subsequent discussion

Children's Questions.—Children should be given every opportunity to participate in discussions and in group work by asking sincere questions. If children should ask questions which are not within the general field of knowledge of the teacher, such as questions pertaining to astronomy, geology, etc., the teacher should be intellectually honest and admit the fact that she does not know the answers. As the children grow older, they should be trained to find the answers to their questions by consulting source books or by reflective thinking. Instances in which the teacher is unable to answer questions covering essentials or important details of the work at hand, or outstanding points in that field of knowledge, should rarely occur. If her previous knowledge has been somewhat incomplete or partially forgotten, she should make very careful daily preparation. Children's questions are guides in detecting the following:

1. Needs of the child
2. Interests of the child
3. Matters which are disturbing them
4. Points on which they wish to obtain information or understanding

Types of Questions.—There are two general classifications of questions, with several subdivisions, which may be used in directing

the learning of the child. The teacher who aspires to be successful in guiding children in solving problems should have in her repertory and should understand and be efficient in using the various types of questions.

Memory Questions. Memory questions are those which do not require reflective thinking and are based on rote memorization. The use of the question in oral quizzes in class has its purposes, but it does not adapt itself to reflective thinking. However, it is possible to emphasize important parts of the material, to direct attention to phases which might otherwise be overlooked, and to motivate the child to careful study.

Thought Questions. Reflective thinking is demanded by some questions, referred to as *thought* questions, which also result in other important types of mental activity. They are of great value in the development of problem-solving ability. Thought questions may be considered usually to be in one of the two following classes:

1. Those necessitating recall, and in addition some mental task or reaction with respect to the material recalled
2. Those in which a large part of the necessary facts is furnished the student and in answering which the task involved is very little recall, but largely reaction

Thought questions may also be classified as shown in the following paragraphs:

1. *Comparison.* Questions of comparison cover a great area. Children may be asked to compare pictures, objects, and word forms in order to note likenesses and differences. This involves the ability to comprehend similar and dissimilar characteristics. Definitions, ideas, and quantitative expressions are compared which may call for evaluations, inferences, and generalizations. In long division we say to the child "Did you compare your remainder with the divisor?" In this case the thinking process is one of judgment in noting whether the remainder is smaller or larger than the divisor.

2. *Judgment and evaluation.* The judgment and evaluation question is concerned with values or relationships. Whenever children are asked to criticize their work or the contributions of other children they are making judgments by comparing or evaluating results or ideas on the basis of some standard or observation. They also are organizing and probably reorganizing their ideas.

3. *Interpretation.* An interpretive question is a thought-provoking question which requires the child to draw a conclusion from known facts, the meaning of which must be explained. Many "Why" questions require an interpretation for the answer; for example, "Why does dew condense on plants?"

4. *Analysis.* An analytical question demands of the thinker the mental process of breaking a whole into its parts and considering each part in relation to the whole. For example, in solving a problem in arithmetic, we ask the child "What is given?" "What facts must we have?" "What are you trying to find?"

5. *Experiential.* The experiential question aims to have the child recall an experience in order to solve problems, to develop attitudes and appreciations, or to think in a certain direction. "What did you see when you were in the zoo?"

6. *Summary.* During discussion periods facts and ideas should be pulled together frequently so the children may evaluate major issues in terms of a problem under discussion. A summary also is an aid in directing the attention to those points which should be remembered.

7. *Diagnostic.* Any questions which aid in locating difficulties, in noting interests of children, in determining readiness for the introduction of skills and of various types of materials are diagnostic questions.

8. *Review.* Review questions, which are both memory and thought questions, are used in order to maintain learning and to recall crucial items. They also serve as diagnostic measures in discovering those children who do not understand or who have forgotten.

Form of a Question.—It should be possible for the child to understand what is asked of him. In the schools of today, children are in contact with many different teachers; since the vocabulary varies from teacher to teacher, it is the responsibility of each teacher to identify and to develop the meaning of those words which she uses in asking questions. For example, several of the many words which children may not understand are illustrate, explain, summarize, discuss, contrast, or compare.

Characteristics of a Good Question.—A basic consideration in respect to what constitutes a good question is the extent to which it is adapted to the aims and purposes of the learning activities. Teachers are inclined to ask trivial and insignificant questions because they are definite, while the big and vital problems seem to escape them. Following are some important characteristics of good questioning:

1. *The wording of the question should be clear.* In order to avoid the use of questions which may be involved and confusing, the teacher should formulate in advance a number of questions which are clear. Brevity and directness are qualities of a good question. If the questions asked are involved or confusing, the teacher should reword them and give the children such assistance as will help them to understand all the conditions of the question.

2. *The question should be adapted to the age and maturity of the children, and to their previous training in the subject before them* The abilities of children vary greatly within a class. Teachers should be careful in their estimates of the capacities of children and should so word their questions that at least the majority of the class may be expected to grasp their full significance.

3. *The question should definitely describe the task of the respondent.* Questions which do not clearly define the problem should be avoided. "What about" questions should be used very rarely.

4. *Questions should conform to the immediate purpose of the teacher.* The wording of the question will vary, depending on whether it is to be used to stimulate discussion, to provoke opinion, to test for facts, or to help establish a frame of mind receptive to other points. "Yes or no" questions may upon occasion be useful as a means of approach, but are undesirable as a means of testing because of the probability of successful guessing.

5. *Questions should avoid the wording and organization of the textbook.* Those which are in the words of the teacher or of the child will stimulate independence of thought and study and not place a premium on memorization of facts and the possible repetition of phrases that are not understood.

6. *Questions involving thought and organization are usually preferable.* For rapid memory drill questions requiring recall only may be employed, but ordinarily it is preferable to use those which in addition to recall require evaluation, organization, or thought comparison.

2. Learning Situations in Which Questions Are Important

Discussion Periods.—Discussions should be encouraged in every learning situation, such as social studies, reading, arithmetic, story telling, art classes, etc. A cooperative work-type discussion period

should be informal and children and teacher should be free to ask of each other questions pertaining to the learnings to be acquired During this period every child should be thinking about the questions that are asked and should be listening critically to answers that are given by children and teacher. Children also should understand that the needs and difficulties which they meet in reading, in locating information, and so on, should be made known through their own questions as well as through the answers to written questions asked by the teacher.

The problems which a teacher presents to children before they study should be thought provoking. Questions to which the answers are obvious and which can be answered by "Yes" or "No" without any critical thinking will not develop effective readers By presenting questions which will require the children to think while they read, to evaluate what they read, and to make use of what they read, the teacher will produce effective reading habits and skills and a favorable attitude toward reading. To construct thought questions requires an understanding of materials upon which the questions are based. What kinds of questions should the teacher ask? The following questions based on the story, *The Silver Penny,* in the fifth-grade Basic Reader, *Days and Deeds,*[1] will clarify the issue.

In this story two boys plan to give a show for the benefit of the Red Cross. Howard handles the advertising and acts as master of ceremonies. Ted is the performer at the show, with several good magic tricks up his sleeve. Jason is the "villain" of the piece and tries to break up the show because he thinks, quite wrongly, that Howard and Ted made off with his bicycle last Hallowe'en. Quick thinking by Howard and Ted saves the day.

What questions might a teacher ask about this story? Not uncommon would be questions like the following:

When was the show to be given?
What was the price of admission?
Who was the magician?
How many persons came to the show?
What was the first trick?

These questions test recall of certain isolated facts in the story. They could be evolved quickly and answered briefly. But it is clear that answering them will require little thought on the part of the pupils and little practice in grasping essential meanings. Now suppose the teacher asked such questions as:

What is the first hint in the story that Jason is not friendly toward Howard and Ted?

[1] *The Supervisor's Notebook,* "Helping Teachers Ask Genuine Thought Questions," Vol. 10, No. 2, p 360.

Why was Jason unfriendly?

What happened to show Jason he had been mistaken in blaming Howard and Ted?

How did the boys save their show?

How do we know Jason was sorry about taking the mercury?

These questions cannot be answered by recourse to the exact words of the book. Pupils must think and relate the meanings of many sentences to answer them. Also, these questions do not ask for isolated details in the story, but instead keep the children's attention directed to essential meanings of the selection, significant relationships in the plot, and important points in the portrayal of characters. If isolated facts have been seriously misinterpreted, that will come out as children answer the broader questions.

QUESTIONS WHICH LEAD CHILDREN TO REACT TO AND APPLY WHAT THEY READ. In leading a child to react to and apply what he reads, the teacher must take him beyond a consideration of "What does the author say?" to consideration of "What does this material mean to me?"

It is at this point that reading has its greatest value for pupils—when they stop reading apathetically and start making what they have read their own, or reject it because it does not meet their standards or their needs It is only in so far as a child reacts to, evaluates, and applies what he reads that reading has any effect on his development as a person

We must emphasize with teachers the importance of not stopping with comprehension questions only, but of going on to such questions as:

What do you thing of Jason's attitude toward the show?

What do you think of his idea of getting even?

In what way did Howard help Ted? What does this tell you about the kind of boy Howard was?

What do you think Jason learned from his experiences in this story? How might this help him in getting along with others in the future?

Were you ever in a "tight spot" like the one Howard and Ted were in? How did you get out of your difficulty?

Did this story give you any ideas you could use with your friends? Could we use any of the ideas in this story for advertising the next show we give or in planning our next assembly program?

As is evident, questions such as these get the children to think in new ways about what they have read, to make inferences, to reflect on the actions of characters, and above all to relate what they are reading to their own lives. Teachers must be cautioned to remember that children's answers will not be identical on questions like these; there is not necessarily just one right answer. A child's responses must be evaluated in terms of his past experiences and his present standards of judgment. Much growth will be stimulated by give-and-take discussions among pupils, as all learn to respect the opinions of others and become willing to stand up for, or modify, their own.

Questioning About Pictures.—In early primary grades pictures serve a definite purpose in the reading program. By studying the pictures experiences are broadened, meanings are clarified, oral expression is stimulated. At first the child enumerates that which is familiar to him in the picture. By means of questions, the teacher guides him in understanding the main idea; for example, "What are the children doing?" The next question naturally would lead to observing some of the details. If children do not draw upon their own experiences in interpreting the picture, it is the teacher's responsibility to ask questions which will direct the child's thinking to recall similar experiences and tell about them. Other questions which could be asked are imaginative questions.

Film strips, movies, illustrations in books frequently must be clarified through the use of questions and answers

Questions and Textbooks.—In most textbooks questions are placed at the close of the reading assignment or at the end of a unit of work. These questions serve as an aid in determining the child's understanding of material studied and also may be used as a guide in the discussion which may follow an unsupervised study period. In either case, at the time when the teacher makes the assignment, motivating questions should indicate to the children the type of reading skills which they will use in reading the materials. If the questions call for details, then the children must read slowly and carefully in order to isolate and to remember specific details. If they are reading to get the general significance of the problem, then the act of reading will be in line with the type of reading done while reading a story. If children should use interest-type reading skills and then try to answer questions dealing with details, they will find that they will not have the information with which to answer the questions. It also may be necessary for the teacher to clarify terms which are used in the questions

Materials Prepared by Teacher.—Many teachers must prepare their own supplementary materials, such as study guides, checks, and tests. Great care should be exercised in constructing the questions as they should involve more than the reproduction of obvious items; questions of this type do not demand the best thinking of the child and the child who reads carelessly does as well as the child who reads conscientiously. Typical questions appearing in teacher-made materials are the "Yes" and "No" or true and false statements and multiple choice. In constructing materials the teacher should definitely under-

stand the abilities that are functioning in the various types of responses she is exacting from the children.

3. Questioning Techniques

In the modern school, the method of questioning has become much more complex than formerly, with emphasis being placed upon the ability of the child to generalize, to interpret facts, and to do more than merely repeat facts learned from a text. It is apparent that there are many possibilities for the use of the question, but the method is too often poorly employed.

Reasons for this failure of teachers to be more adept at questioning are obvious. The teacher-training period is of necessity short, and there is little opportunity for the student either to develop the technique or to observe those who are proficient. Beginners have a tendency to imitate the methods of their high school or college professors. Since the beginning teacher is also highly dependent upon the textbook for information and guidance, it is natural to use textbook material previously assigned for classroom questioning. The question may be extensively utilized as a stimulus to learning, and it is essential that the teacher become skilful in its use.

The manner in which questions are asked should be determined by the type of lesson, by the personnel of those participating in the activity, and by the size of the group.

Specific Techniques of Questioning.—Specific techniques which should help a teacher to develop effectiveness in questioning are as follows:

1. Questions should be fairly well distributed among the different members of the group. Assigning a disproportionate number of questions to the slow will tend to hamper the progress of instruction, while a disproportionate assignment to the brighter children will encourage delinquency of the slow.
2. No special order should be observed in the distribution of questions. This practice encourages children to become inattentive.
3. The child who is to respond to the question should be designated after the question has been asked and time has been allowed for formulating the answer. This technique will encourage more children to think through the answer.
4. The rate for questioning should be adjusted to the nature and purpose of the questioning and the relative familiarity of the group with the material covered in the question. Drill questions may be asked rapidly, but with thought-provoking questions sufficient time should be allowed for a carefully considered answer.

5. Individual differences of ability and individual differences in special knowledges and interests should be taken into consideration in the assignment of questions. By giving the more difficult questions to the abler and the less difficult to the less able, the better students are stimulated to exert themselves, and the poorer students have an opportunity for success instead of failure.
6. Questions should occasionally be assigned to inattentive children.
7. Questions should ordinarily be asked in a manner such as not to suggest the correct answer.
8. Repetition of a question in most instances is not advisable. But if the children have been attentive and do not understand, the question should be restated and probably reworded in order to clarify the meaning.
9. A natural, interested, and conversational tone should be used rather than one which asks or demands in a formal, artificial, schoolroom manner.
10. Questions should be asked in a manner which indicates confidence in the child.
11. Pivot questions, which have been thought out in advance, should be employed in the development of the lesson
12. Freedom on the part of the teacher from textbook or lesson plan will enable her to ask questions in a natural, conversational manner and to give the class the benefit of her personality and expression.

Outcomes of Questioning.—The questioning procedure can be used to advantage in the development of the various outcomes of teaching. While questioning may contribute more directly to the development of information and appreciations, it can also facilitate the development of habits and skills of all sorts. Through skilful use of the question it is possible to give training in critical evaluation, in problem solving, and in generalizing. Since ordinarily the primary function of the question is to stimulate thought, it should be widely utilized as a technique of problem solving. Questioning can indicate the necessary steps for meeting and attacking problems, that is, to see clearly and definitely the problem and its exact nature, to plan the attack, to guide the procedure, and to discourage premature conclusions.

Suggestion is a more effective method in the development of such outcomes as desirable attitudes, ideals, and interests than are more direct means. The question lends itself very well to this art when it is skillfully applied. At present it is realized that these outcomes are very much to be desired and that every possible means should be used to attain them. Ideals cannot be taught as may the addition and

subtraction facts in arithmetic. They come as a result of experience which has suggested the emotionalization of standards. Skilful use of the questioning procedure is effective in stimulating thought and feeling on these matters. In order to develop tastes, it is necessary to give the children experiences which they can analyze for points of merit, beauty, and enjoyment. These they must "discover" for themselves and not have them thrust upon them.

A much desired outcome of education is the development of persons who can think deliberately and systematically. Good questioning procedure can help to develop the habits of thinking twice before speaking, of restraining oneself when in doubt, of considering alternate possibilities, and many others. It should also aid in keeping children from succumbing to emotions and prejudices. Skilful questioning on the part of the teacher is undoubtedly of assistance in attaining these desired ends.

Questions from Pupils.—Teachers should try to keep alive in all grades that questioning tendency of pupils which is so prominent in their earlier years. Following are suggestions which should be of service in stimulating and handling questions by members of the class:

1. All sincere questions by any member of the class should be treated with appropriate consideration.
2. Determine the importance of considering the pupil's question and the time to be given to it by the value of the question and the percentage of the class that will profit by discussion of it.
3. Not every question should be answered. Stimulate the questioner to some effort on his own behalf and refer questions to others in the class in a manner which will not reflect on the questioner.
4. Students should be dealt with on a basis of logic and reason in situations where they question authority, and patience must be exercised.
5. The formulation of questions as an exercise should be used sparingly and is not necessary when spontaneous questioning already exists.
6. In those situations where opinions differ, the student should not be deprived of the privilege of stating his own opinion. Even if he is apparently wrong, care should be taken not to antagonize or discourage him unduly by "strong-arm" methods.
7. Care should be taken to be courteous and tactful in refusing to answer questions which are irrelevant.
8. The suggestion that the questioner consult references for his answer should be made occasionally. However, consideration should be given to the possibility that the questioner will forget to do so.

4. Dealing with Answers

During a group discussion or group instruction period each child should feel that it is his responsibility to consider every question that is asked and that it also is his responsibility to evaluate answers that are given in order to accept or reject the reply and to modify his own answer on the basis of answers presented by other members in the group. Even though only part of the answer may be correct, children should be encouraged to answer. If the child misses the point of the question, it is the responsibility of the teacher to help him understand why his answer is not acceptable. This procedure will encourage children to think and to take an active part in the learning activity.

Weaknesses in Children's Answers.—Children must be guided in developing the habits of deliberate thinking, suspended judgment, and self-criticism before submitting an answer. Many children formulate answers immediately without analyzing the question critically. Others are satisfied when they have made a contribution by presenting only a minor point. Answers often are based on the opinions of children rather than on authentic information. Frequently a child will try to conceal the fact that he does not know by talking around the point. By analyzing the answers of the children the teacher may detect a source of weakness in her questions or her standards in accepting answers. Such an analysis leads to improvement in setting up a remedial approach to better class management.

Handling of Answers.—The following suggestions for the handling of answers have grown out of much observation of successful teaching.

Repetition of answers by teachers should be avoided except in rare cases in which for emphasis it is desirable to repeat the answer. If children know that the teacher will repeat the answer, they will not pay attention to the child who is speaking, and the child who is answering will not be concerned about the children who should be listening, and therefore, will not feel the necessity of formulating his answers so that he will be understood by all the children The repetition of answers also is very uneconomical since it consumes so much time. Repeated answers and the overuse of the mechanical "All right" become boresome. At best, they seem to call attention to the catechising nature of the questioning. Incorrect answers should frequently be modified by the teacher.

The amount and nature of commendation or disapproval by the

teacher should be determined by the probable nature of the response and the effect upon the class as a whole and upon the individual. Encouragement and approval are necessary to some individuals but spoil others. Frank criticism stimulates some, while such a procedure discourages or antagonizes others. When in doubt the best policy in the upper grades is to say nothing. In the lower grades frequent mild encouragement is wise.

Circumstances must determine the employment of "advance" assent or disapproval. Advance encouragement can be used if the child is timid, or if the material is new and difficult. When the question is being used for testing purposes, care must be taken not to give the child clues to the correct answer.

Answers should be in good English and in complete thought units. Since good English is largely a matter of training and habit, the cooperation of all teachers in this matter is desirable.

Teaching procedures characterized by hand-waving should be discouraged. Courtesy, fair play, and reasonable dignity must be preserved, even in the most enthusiastic class.

Questions, Problems, and Exercises

1. What criteria would you apply in testing the questions which you ask your class?
2. What are the advantages and disadvantages of using oral questions as a means of testing children?
3. Write one question of each of the eight principal types which demand thinking upon some topic which you plan to teach.
4. Discuss the following statements: "The greater the number of questions, the more thinking the child will do." "An evidence of quick, clear thinking is the prompt reply."
5. Prepare a five-minute talk on "Values of being sympathetic with children's questions and answers."
6. Select a picture and prepare five different types of thought-provoking questions based on it for instructional purposes at the primary level and at the intermediate grade level.

Chapter 15

SELECTING AND ORGANIZING LEARNING MATERIALS

1. The Teacher's Role in Curriculum Construction

The character of the curriculum is largely determined by the teacher. The manner in which teacher control is exercised varies considerably from school to school. In some situations, the whole curriculum is a teacher product, constructed cooperatively. In her capacity as an official member of the curriculum committee, the teacher assists in determining the scope of the curriculum for the entire school, or she may participate in the preparation of source units and other suggestive instructional materials within a given area of the curriculum. In other schools, the curriculum is largely predetermined by state legislative enactments, state department of education requirements, or local school administrative and supervisory regulations. Governmental agencies usually indicate the broad outlines of the curriculum in terms of subjects, grade placement, and time allotment. They also attempt to implement these requirements by means of written courses of study.

A course of study is the teacher's guide in using the curriculum. It contains suggested objectives, content, teaching procedures, and methods of evaluating pupil achievement within a particular area of the curriculum. It may be either mimeographed or in printed form. Whether the course of study is teacher-inspired or dictated by outside agencies, the classroom teacher is its final arbiter. In the last analysis it is dependent upon the emphasis placed on various items of content and manner of presentation by the teacher. Even when the course of study was regarded as the "directions and specifications" having the force of law in respect to required subjects, grade placement, sequence of topics, and time allotment, the qualitative aspects of the curriculum were in the hands of the teacher.

The modern concept of the suggestive function of the course of study, however, places a much greater premium upon the teacher's initiative and resourcefulness. Regardless of its origin or degree of completeness, the official course of study can merely indicate general

guiding principles. Source units can do little more. They are designed to serve as blueprints, subject to modification by individual teachers. Their use with different classes requires many alterations and much supplementation. Many important decisions in regard to details must be made by the teacher Valuable as the official guides may be, adaptions and refinements must be made in terms of the students involved These changes are so far-reaching in scope and significance that the resulting product is sometimes referred to, not as a course of study, but rather as a *course of instruction.*

Teachers Should Make Courses of Study.—In this chapter we are not concerned with the teacher as a member of an official curriculum committee, but rather as the designer of courses of study for her own teaching. Among the reasons for adapting the official course of study to meet the requirements of particular classes are:

1. The curriculum assumes its truly dynamic character through the constant adaptation of the course of study by the individual teacher. Official curriculum committees may produce courses of study at given intervals. The day-by-day adjustment made by the teacher is the factor that makes the curriculum program continuous.
2. Most courses of study are prepared in terms of the student of average ability. Hence, modifications are necessary to provide for the needs of the slow-learning and superior students.
3. It is necessary to enrich the course of study by the inclusion of curricular materials designed to serve the special interests and needs of each student.
4. More appropriate and timely approaches to the teaching of a topic than those suggested by the course of study may frequently be made.
5. Modification of the suggested time allotment may be desirable because of the differences in the experiential background of various classes.
6. Suggested learning activities may need to be modified because of available facilities, such as building space and equipment.
7. The suggested organization of instructional materials may be adjusted in terms of available library materials. For example, the effective use of the unit plan is dependent upon the availability of a wide variety of books and other supplementary reading materials.

In the absence of an official course of study or source units, the foregoing list of considerations is equally applicable to course of study construction by the individual teacher.

2. Concepts Essential to Course of Study Construction

Whether a teacher prepares a course of study in advance or develops it as the teaching proceeds, she should have three concepts clearly in mind, namely *the nature and development of the curriculum, the relation of the course of study to the curriculum,* and *the relation of the general (official) course of study to that prepared by the teacher for use in a particular course.*

The Nature and Development of the Curriculum.—The curriculum is as broad and varied as the child's school environment. Broadly conceived, the curriculum embraces not only subject matter but also various aspects of the physical and social environment. The school brings the child with his impelling flow of experiences into an environment consisting of school facilities, subject matter, other children, and teachers. *The interaction of the child with these elements constitutes learning.* Not only is the learner an ever-changing personality resulting from a continuous series of new experiences, but the constituent elements of his environment are constantly evolving and unfolding. The interactions between the two factors which comprise the learning situation, therefore, are manifold and varied. The inherent character of the learner and the environment give learning its dynamic quality.

The one element in the situation that has been considered static is the subject matter. It also has been the one foreign element in the learning situation. Until recently subject matter was suggested, if not actually imposed, by individuals or agencies outside the school. These individuals were in most cases subject matter specialists. They assumed that the chief function of the school was to transmit from one generation to another the culture of the race *in the form of subject matter.* They also believe that the organizing principle for school activities lies within the body of subject matter itself. Many of them accepted the theory of formal discipline, and justified the retention of much obsolete material on the ground that these materials were difficult for children to learn and therefore were of value to them in *training their minds.* The chief difficulty, however, arose from the fact that these specialists were unfamiliar with the interests and needs of elementary school students.

Elementary School Teachers as Curriculum Makers.—In comparison with those of a generation ago, teachers today are much better qualified to construct courses of study to meet the individual and social needs of their pupils. The opportunities of classroom teachers to obtain firsthand pertinent knowledge of the abilities, interests, and

needs of children place them in a strategic position to build a curriculum. The one problem in regard to curriculum-making by teachers which has not been solved satisfactorily is the matter of providing sufficient time in the daily schedules for teacher participation.

The objectives of a general curriculum revision program in which the teacher participates are *to provide better experiences for children* and *to promote growth of teachers in service.* The teacher does not have to await the arrival of an elaborate curriculum revision program in her school to make revisions in her own courses. If the program of revision suggested in this chapter appears too ambitious for the individual teacher to undertake, it should be remembered that the suggestions mainly involve adaptation and enrichment of the official course of study in a systematic manner.

Relation of the Course of Study to the Curriculum.—The terms *course of study* and *curriculum* are often regarded as synonymous. This confusion has resulted from failure to recognize their respective purposes and scopes. The curriculum consists of all the features of the school environment to which the student reacts. The course of study is the instrument designed to guide the teacher in selecting and arranging the elements of the curriculum so that the student's experiences with various aspects of the school environment will result in desirable learning. The curriculum is the means utilized to attain the objectives of education. The course of study is intended to assist the teacher in the effective use of the curriculum to achieve the desired outcomes of education. Their functional relationship can be indicated by a consideration of the purposes of a course of study. Among the most important purposes are: [1]

To provide teachers with aims and objectives of education in general and in every subject.

To provide a guide to local resources and approaches and to content and pupil activities in order to realize the aims and objectives.

To indicate methods and procedures, and proofs of their success.

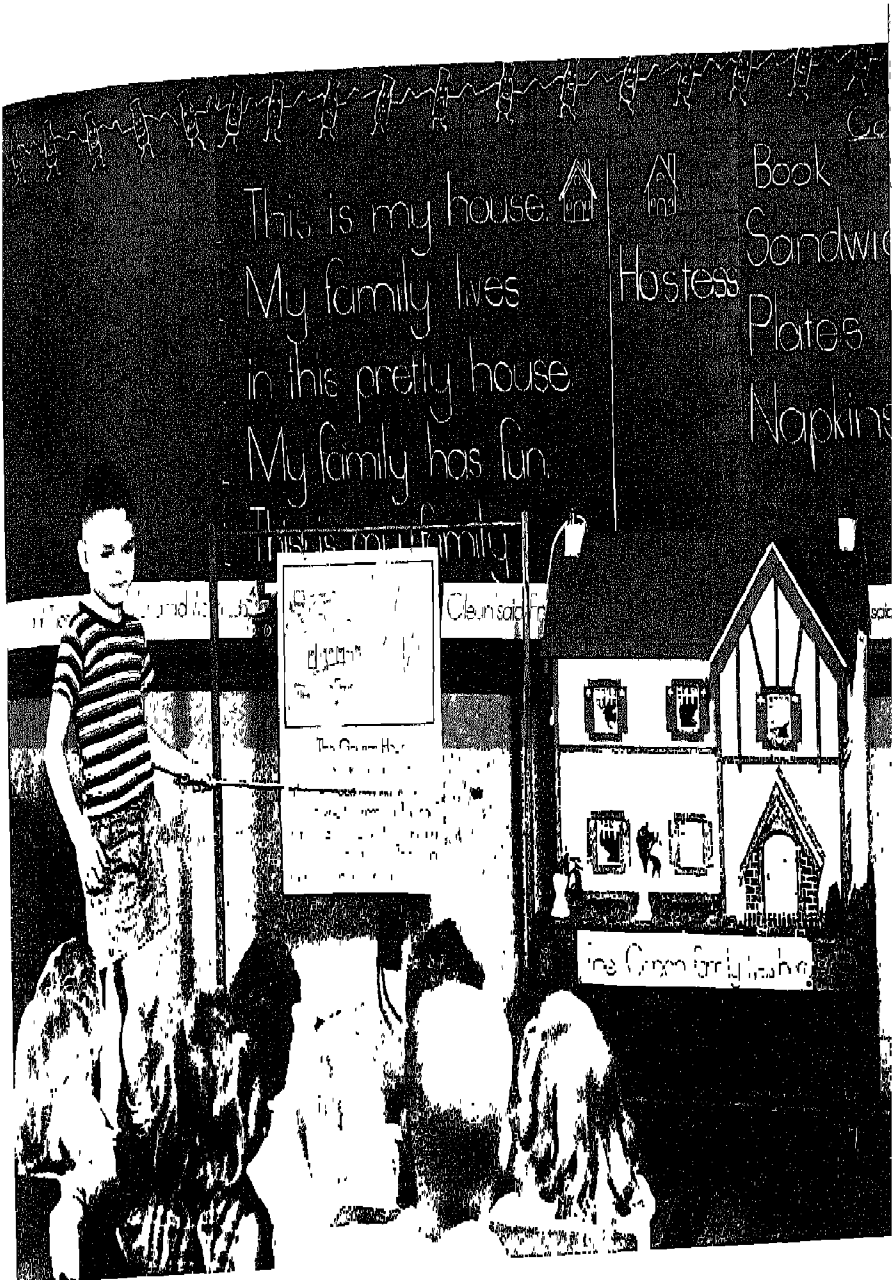
To set up standards of attainment.

To orient the course in relation to instructional materials of other grade levels.

To coordinate the efforts of the school system.

The Relation of the Official Course to That Made by the Teacher.—The official course of study and that designed by the teacher

[1] *Keeping Pace with the Advancing Curriculum*, Research Bulletin of the National Education Association, Vol. III, Nos. 4 and 5, p. 179.



Reading materials for beginners grow out of their firsthand experiences
(Topeka, Kansas, Public Schools)

for use in a particular grade differ in several important respects. The main differences may be summarized as follows:

Official Course of Study	Teacher Adapted Course
Purpose	
To serve as a general guide for a typical teacher in a typical situation	To serve as a specific guide in teaching a particular class in a particular situation
Origin	
Teacher committee or outside authority	Adapted from official course of study by individual teacher
Educational Aims	
General aims of subject outlined	Specific aims of course listed in terms of changes in children's behavior
Content	
Suggested content of considerable variety and scope	Content selected in terms of abilities, maturity, and previous experiences of students to attain specific objectives of the course
Methods	
Variety of teaching procedures suggested which are suitable for typical students	Teaching procedures based upon teacher's knowledge of students in class and relative degree of success experienced with alternative procedures
Time Allotment	
In terms of average student and relative values of many elements	In terms of individual students and relative values of a selected list of topics
Evaluation	
Suggested evaluation in terms of general objectives of course	Evaluation of specific outcomes sought for a particular group of students

3. Making the Course of Study

Course of study construction involves numerous important decisions. Judgments are required in regard to the most urgent needs of pupils and the relative values of different learning activities and materials in meeting these needs. Decisions on the inclusion or omission of certain items of content as well as their optimum time allotment and grade placement demand intelligent discrimination.

The teacher occupies an advantageous position in respect to many of these matters. Her close proximity to students in the process of learning, in addition to her familiarity with the subject matter, provides her with invaluable insights into the problems of course of study construction. Many programs of curriculum reconstruction have failed of fruition because of the lack of firsthand knowledge of actual classroom conditions by the participants. Mere proximity to a problem, however, does not insure adequate comprehension of its implication.

In adapting a course of study to meet the needs of a particular group of students, the following steps are suggested.

1. *Obtain firsthand information in regard to the pupils and the social scene of which they are a part.* The most significant types of data are in regard to

- a. The children to be taught, with particular reference to their
    1. Needs—intellectual, physical, and social
    2. General experiential background, including the level of school achievement or previous preparation and out-of-school experiences
    3. General intelligence
    4. Individual and group concerns
    5. General and special interests
    6. Home conditions
    7. Community background
- b. The local community with particular reference to its
    1. Resources—cultural, educational, recreational, and natural
    2. Population—characteristics, nationality, etc.
    3. Attitudes and mores—economic, political, and religious
    4. Adult vocational activities
    5. Recreational facilities for adults and youth
    6. Welfare and youth-serving agencies
- c. The social order, with particular reference to its
    1. Characteristics
    2. Ideals
    3. Deficiencies
    4. Possibilities for improvement
    5. Trends

Firsthand information on the subjects listed above should be obtained in advance, or as the teaching proceeds. Data concerning students may be revealed by an examination of school records, testing, interest questionnaires, interviews, and various observational techniques. Active participation in community affairs provides the

teacher with the best primary source of knowledge in regard to community life. This may be supplemented by informal surveys of community conditions. A thorough knowledge of the local community, augmented by analyses and studies of the general social order, furnishes a basis for the understanding of the problems of society.

2. *Supplement these primary sources of information about individual and social needs with data from various other sources.* Teachers usually do not have sufficient time or facilities at their disposal to acquire at first hand all the data necessary for building a course of study. Hence they have to rely upon secondary sources of information. Some of the readily available sources are

a. Scientific educational research on curriculum problems by individuals and educational institutions.
b. Studies of contemporary life by committees of national and regional organizations.
c. Studies of child growth and development.
d. Courses of study from other schools, representing the combined judgment of teachers who have given considerable study to curriculum problems. These courses of study may suggest techniques of obtaining data, as well as instructional materials, which may be adapted for use in a particular school. Too great reliance upon material from other schools should, however, be avoided. Without proper adaptation and modification, the inherent evils of the scissors-and-paste method of course-of-study construction manifest themselves.
e. The opinions of competent persons on economic, educational, and social problems. The considered judgments of "juries of experts" are usually more valid than the superficial opinions of large numbers of persons who have given little time or thought to the issues involved.

3. *Consider which educational needs are met by the home and other agencies.* The school is only one of several educational agencies in our society. The needs of children are so diversified and numerous that no one agency can serve all of them. The school can hardly be expected to assume exclusive responsibility for the total education of children unless it is given supervision over them for a much larger proportion of their time. Recent extensions of educational services downward and upward, as well as the trend toward a longer school day, week, and year, have increased the opportunities of the school to serve more of the needs of children.

The assertion is frequently made that the school should limit its activities to the intellectual development of the child. To accept this

area of child development as the major responsibility of the school does not change its supplementary character. All aspects of the child's growth are so interrelated that his needs cannot adequately be provided for in any single area to the exclusion of needs in other areas.

There is no disposition on the part of thoughtful teachers to usurp the prerogatives of the home and the church in the important areas of education in which they are peculiarly fitted to serve. The limited resources of the school also make it imperative that the latter confine its activities to those matters which are neglected by other institutions.

4. *Ascertain the interests of the pupils who are to be taught.* A knowledge of children's interests can be acquired in informal conversations with them, classroom discussions, observation of their spontaneous activities, simple questionnaires, and conversations with parents.

A list of the observed interests of intermediate elementary grades (4, 5, 6) with suggested activities was recently reported as follows:[2]

Some Interests Observed in Children of 9-10-11 Years	Provisions for Using These Interests
Small gangs	Group activity, clubs, scouts, etc.
Comics	Literature, language, arts, social studies, and science
Hero worship	Biographies, science, history, sports
Radio, movies	Radio, music, movies
Sports	Physical education, sports, biographies, games, recreational activities
Camping and outdoor life	Nature study, elementary science, hobbies, camping, hikes, trips
Hobbies and collections	Science, reading, social studies, sports, crafts, stamps, etc.
Modern world, politics, and foreign languages	Model crafts, reading, science, letter writing to foreign children, current news and personalities, foreign language—simple approach to or books written for children's use
Science experiments, and animal pets	Science experiments and science collections, photography, care of aquariums and terrariums, insect and animal life, library reading

[2] John K. Price, "Professional Preparation for Upper Elementary Teaching" in *The Education of Teachers,* National Education Association, p. 192.

Personal consciousness and sex consciousness	Physical education, health (grooming and personal health)
Excitement and adventure, physical restlessness	Sports, library reading, dramatics, creative play and expression, manipulation, good school movies
Sense of growth (rivalry, competition)	Good sportsmanship through games, contests (musical, etc., garden shows, etc.) pride in another's accomplishments
Prankishness (crude sense of humor)	Appreciation of humor in literature, and dramatics, creative dramatics

5. Consider the areas of human experience from which the content of the curriculum should be selected. The major experience areas which determine the scope of the elementary school curriculum may be classified as follows:

a. Social relationships—social studies, geography, history
b. Biological and physical science—nature study, animals, plants, rocks, soil, and other geological formations in local community, elementary concepts in general science
c. The Arts
   Practical Arts—woodwork, cooking, and sewing
   Language Arts—reading, writing, art of communication, or speech
d. The Aesthetics—fine arts, crafts, music, literature
e. Physical and mental health—physical education, health instruction
f. Computational experiences

It is essential that the elementary school child acquire basic understandings and skills in each of these areas In some schools it may be feasible to break the broad areas into smaller divisions or subject areas such as social studies, etc.

6. Formulate objectives of divisions or subjects in terms of desirable child behavior, such as: attitudes, appreciations, understandings, habits, and skills.

A good illustration of the type of objectives for a subject is found in the course of study in the social studies for the primary grades in the Louisville, Kentucky, Public Schools.[3] The objectives stated for the social studies in the second grade are as follows:

[3] *Tentative Course of Study*, Social Studies, Primary Grades, Curriculum Bulletin 8, Part 1, Louisville Public Schools, Louisville, Kentucky, 1947 (printed insert).

Second Grade

The Child and His Relationships in His Community

Through This Content the Social Studies Program in the Elementary School Can Help the Child to Develop and Grow in

I. Persons who guard life and property (the policeman, the fireman)
II. Persons who bring us news (the postman, the newspaper boy)
III. Persons who supply us with food (the grocer, the baker, the milkman)
IV. Persons who work to keep us in good health (the doctor, the druggist, the dentist, the school nurse)
V. Places where we enjoy ourselves (the park, the theatre, the circus)
VI. Places to which we may go to learn (the school, the church, the library)

Understandings and Concepts

The social studies program in the second grade should provide opportunities for the child to understand

Who his neighbors are
Many aspects of home and business life in his neighborhood
The purposes of neighborhood institutions, public and private
The natural influences upon life in the community
Man's efforts to lighten his work
The results of man's attempts to spend his leisure time in pleasant and satisfying ways
The need for health and safety regulations

Habits and Skills

The social studies program in the second grade should provide opportunities for the child to grow in the ability to

Use those skills begun in the first grade
Use the public library and its resources
Select and handle books
Use the beginning techniques of research reading
Travel about his neighborhood in safety
Give directions clearly and certainly
Welcome visitors in his home and in his classroom

The Child and His Relationships in His Community

ATTITUDES, APPRECIATIONS, AND INTERESTS	The social studies program in the second grade should provide opportunities for the child to develop An appreciation of his own worth to the community A respect for public and private property A desire to cooperate in community enterprise An appreciation of the contributions made to his welfare through the industry and efforts of his neighbors A desire to express his appreciation of courtesies shown and services rendered A desire to acquaint others with the benefits and pleasures his neighborhood affords

7. *Establish the validity of the objectives of the course by relating them to the educational philosophy of the school.* The kind of philosophy of education that most influences school practice is one developed cooperatively and democratically by the teachers within the school. In the formulation of an adequate basic philosophy of elementary education, consideration should be given to

a. The ideals of the culture out of which the school grows
b. The role of elementary education in that culture
c. The characteristics of the local community served by the school
d. The unique characteristics of the children to be educated
e. The nature of the learning process
f. The educational philosophy formulated by teachers in other schools
g. Concepts of the function and nature of elementary education as formulated by recognized leaders in the fields of education, philosophy, psychology, and sociology, e.g., the theory of experimentation and Gestalt psychology

8. *Consider what modifications are necessary because of limitations of time, equipment, and building facilities.* In some situations, one or more of these factors may impose serious restrictions upon the inclusion of many desirable learning materials and experiences. For example, the number and variety of field trips in connection with science instruction or school excursions by social studies classes will be limited by the proximity of the school to places of educational interest.

9. *Review the grade placement of activities and learning exercises suggested in the official course of study.* Recommendations of grade

placement of materials in courses of study are usually made on the basis of experimentation or the judgments of teachers and experts in regard to the difficulty of the material and the interests of children at different grade levels. The logical arrangement of subject matter has been the deciding factor in allocating many materials of instruction to different grade levels. These recommendations require the careful scrutiny of the teacher in adapting the course to her pupils. Many teachers report that a considerable amount of reading material recommended for certain grade levels is too difficult and does not appeal to the interests of students of those grades. The common learnings needed by all pupils have not been given sufficient consideration in many instances. Content of great social significance for all pupils should be introduced at grade levels early enough so that large numbers of pupils will not have been eliminated.

The teacher should ascertain the mental and social maturity of the students in the class and not forget it when he selects materials. Since the vocabulary used is often the source of students' difficulty in the comprehension of learning exercises, "stepping down" or "stepping up" may be necessary.

10. *Make a time allotment for the subjects included in the curriculum.* A suggested weekly time schedule in the elementary school is as shown on page 283.[4]

11. *Organize the content into units of instruction.* The crucial issue in respect to the organization of material is the question as to what constitutes the proper unifying element. In most subject-matter-centered courses of study, the unifying principle lies within the body of subject matter itself. The chronological sequence of topics in a history course illustrates the type of organization which results from the use of this principle. An increasing number of teachers believe that the student's past experiences and present interests provide the proper integrating basis. With these present elements as a beginning point, the learning activities and experiences should flow out to encompass learning materials more remote in time and space. Thus the history of social organizations would evolve from a study of the present social situation, of which the student himself is a part. An analysis and understanding of the current social scene would be the first phase of study of society.

These two approaches represent the extremes of two points of view. There are many degrees of variation between the two extremes.

[4] *Manual for Elementary Teachers New to the Denver Public Schools*, Denver, Colorado, 1948, p. 32.

SUGGESTED DISTRIBUTION OF TIME FOR SUBJECTS IN THE ELEMENTARY SCHOOL*

Subjects	Minutes per Week						
	1B	1A	2	3	4	5	6
Arithmetic	150	150	150	250	250	250	250
Art (including choice days), Language, Elementary Science, and Social Science	225	225	225	350	350	350	350
Daily Orientation Period—Health and Hygiene**	100	100	100	75	75	75	75
Music (including Music Appreciation)	75	75	75	75	75	75	75
Penmanship	100	75	75	75	75	75	75
Physical Education	150	150	150	150	150	150	150
Reading Activities	625	550	550	350	350	350	350
Spelling	0	100	100	100	100	100	100
Recess	75	75	75	75	75	75	75
TOTAL	1,500	1,500	1,500	1,500	1,500	1,500	1,500

* This suggested time distribution is on the basis of two groups in the room in a unit-type school. Some adaptations will need to be made in platoon and modified platoon schools In grades one and two it is desirable to have one instructional period in reading in the morning and another in the afternoon for each group.
** Health education is to be a vital part of all activities.

Whichever approach to organization of content is made, sufficient flexibility should be provided to allow for the special interests and needs of students. In any form of organization, a distinction should be made between materials designed to meet the common needs of all pupils and those intended to serve individual needs. Another factor in organizing materials is the advisability of correlating them with materials from other fields. The relative value of the topic, the availability of instructional materials, and the possibilities of leading on into related topics should determine the size of the unit of instruction.

12. *Make a tentative time allotment to each unit on the basis of its relative significance in achieving the objectives of the course.* In making decisions in regard to the optimum time allotment for each

phase of a subject, the teacher is confronted with a mass of important material and a very limited amount of time in which to present it. The teacher should therefore recognize the implications of each decision he makes in regard to time allotment. The time allotment cannot, however, be made solely on the basis of the content involved. The abilities and experiential backgrounds of the students are of paramount importance in every case where the element of time is involved.

13. *Select from the teaching procedures suggested in the official course of study those which appear to be best adapted to the pupils concerned.* Consideration should be given to the manner in which the factors in the learning process operate in a given situation. Problems of pupil interest, motivation, recognition of the significance of various topics, and emotional factors which influence learning all vary considerably from one group of pupils to another. Teaching procedures should be governed by the principles of effective learning. This can be illustrated by reference to the principles of apperception and self-activity in learning. A student's reaction to a learning situation is greatly influenced by his past experiences of learning. According to the law of apperception new learning has to be built on previous learning. In other words, teachers must begin with children where they actually are. Their present stock of knowledge, prejudices, and skills may be assets or liabilities, but these are the foundations on which present and future learnings must be built.

Progressive educators may seldom refer to apperception, but many of their practices in curriculum construction and methods are based upon it. In the experience curriculum, for example, the point of departure is the past and present experiences of students. In fact this method of approach represents one of the main differences between the experience and the subject-matter types of curricula, both of which utilize subject matter.

Since self-activity is essential in learning, provision should be made for pupils to become active participants in every learning situation. In the acquisition of skills, the need for self-activity is obvious. The principle of self-activity, however, is equally applicable to the higher mental processes such as analysis, organization, and reasoning. In most school subjects, many opportunities can be provided for self-expression in the form of discussions, planning study procedures, conversation, drawing, and writing.

14. *Evaluate outcomes in terms of the stated objectives.* Evaluation should be continuous throughout the course, but a summary of the outcomes achieved should be made in the final phases. Measure-

ment provides one basis for evaluation. Until recently measurement was confined to the more tangible outcomes of instruction, such as mastery of factual material. In Chapter 19 of this volume there are descriptions of instruments for measuring some of the important outcomes, such as ability to apply knowledge, reasoning, etc. For purposes of evaluation, the data obtained from test scores should be supplemented by anecdotal records, examination of written and other original work, and the various observational techniques mentioned in Chapters 18 and 19.

15. *On the basis of the results achieved, make a tentative revision of the course of study.* Notations can be made of needed changes for future reference. The final revision should await the time when the teacher has had the opportunity to know the students in the new class.

The Block Program.—The daily schedule of activities should be sufficiently flexible to provide for the inclusion of unexpected topics which offer possibilities for valuable learning experiences. The block program represents a variation from the formal schedule which has been found to be useful in many elementary schools. The main features of a block program are as follows:

BLOCK PROGRAM [5]

The block program provides for long periods of time during which related subjects may be treated, briefly or in detail, as pupil needs indicate.

Planning Period

On-going activities may be surveyed and plans made on paper or the blackboard, for carrying through old and new problems. Plans for activities on which groups or individuals are to work while the teacher is occupied with other groups may also be recorded. The children may plan to keep records of room temperature, collect pictures, illustrate topics, construct models in relation to planned work, practice reading, writing, and number skills.

Since the primary children are in the process of making many new adjustments, plans especially for them should include. Ways to move around and get materials without disturbing others, reminders to talk quietly in consideration of others, ways to share, and procedures for asking help from older persons.

Upper grades may have special responsibilities to help younger children by setting an example and giving courteous aid when necessary. They may also plan and assume responsibility for daily activities, the physical education period, or the lunch hour. A teacher may guide the planning toward work in social studies, language arts, or any area where enthusiasm is high and new

[5] *Better Schools for Kansas Children, A Handbook for Teachers.* Issued by Adel F. Throckmorton, State Superintendent of Public Instruction, Topeka, Kansas, July, 1949, pp 39-42.

ideas have evolved since the day before. In these groups boys and girls show much originality and their discussions give them strong purpose for the day's work.

Block Program for Elementary School

Schedule for Grades 1-2-3

TEACHING-LEARNING EXPERIENCES

Periods	Monday Tuesday Wednesday Thursday Friday
9:00- 9:15	Exchange of greetings; disposal of wraps; news and interesting experiences; care of room; songs; and announcements
9:15-10:15	Social Studies Area Planning for the day.* Units of work from the social content area which combine subject matter in history, geography, and science with reading, discussion, and many types of firsthand experiences
10:15-10:30	Rest, recreation, supervised play, attention to health habits
10:30-11:30	Reading Groups Supervised individual reading; remedial work with individuals and small groups, drill on basic skills, library books. Use of basic and supplementary readers
11:30-12:00	Language Arts Oral and written expression; speech correction; spelling; handwriting
12:00- 1:00	Noon intermission—directed playground activities
1:00- 1:30	Music Rhythms; poetry appreciation; story telling; dramatization
1:30- 2:00	Arithmetic Problem solving, drill on fundamental skill; emphasis upon understanding number concepts and application to daily living and other school activities. Informal arithmetic only in first grade
2:00- 2:30	Recreation, health guidance
2:30- 3:30	Guidance in free reading; remedial instruction; creative expression; demonstration; oral language activities; art; evaluation of the day's work

Schedule for Grades 4-5-6

TEACHING-LEARNING EXPERIENCES

Periods	Monday Tuesday Wednesday Thursday Friday
9:00- 9:15	Miscellaneous duties—announcements, attendance, care of room and equipment, special activities

* Pupils and teacher together should plan the work of each period so that each child understands a reason for what he is to do.

9:15-10:15 Social Studies Area
Planning for the day.† Discussion of mutual problems. Units of work in history, geography, science. Reading from textbooks, and supplementary materials. Introduction to use reference books. Use of visual aids

10:15-10:45 Recreation; safety education; health education

10:45-12:00 Language Arts
Oral and written expression, spelling, handwriting
Group and individual work upon basic skills

12:00- 1:00 Noon intermission

1:00- 1:40 Mathematics
Understanding new arithmetic processes; practical application of arithmetic concepts; drill upon skills; problem solving

1:40- 2:30 Reading
Introduction to literature; reading for fun; library period; reading activities for individuals and small groups

2:30- 3:00 Safety education; guidance in health; recreation

3:00- 4:00 Appreciation
Music, vocal and instrumental, fine arts; crafts; exhibits; demonstrations; reports; stories; dramatizations; summary and evaluation

Schedule for Grades 7-8

TEACHING-LEARNING EXPERIENCES

Periods Monday Tuesday Wednesday Thursday Friday
Pupil-teacher planning of day's work.*

9:00-10:00 Literature
Reading activities for groups and individuals. Special assistance to remedial cases. Use of library. Introduction to reading materials of all types

10:00-10:45 Health and physical education; safety; physiology; personal hygiene; recreation

10:45-12:00 Social Studies Area
History, geography, science, citizenship, international relations

12:00- 1:00 Noon intermission

1:00- 1:40 Mathematics

† Pupils and teachers together should plan the work of each period. The teacher should determine whether planning by periods or for the whole day gets the best results.

* This may be done for the day or for a longer period. If children in these grades have had practice in planning, they will be ready to plan for larger blocks of time.

1:40- 2:30 Language Arts
Oral and written expression, discussions; compositions, reports, spelling, speech correction

2:30- 2:45 Recreation

2:45- 4:00 Appreciation
Music, vocal and instrumental; fine arts; crafts, assemblies, reports, demonstrations, evaluation of work

Schedule for Grades 1-8

(Particularly recommended for one-teacher school)

TEACHING-LEARNING EXPERIENCES

Periods Monday Tuesday Wednesday Thursday Friday

9:00- 9:15 Preparing for the day.* Health, disposal of wraps, exchange of news, care of room, songs, announcements

9:15-10:15 Reading
Group reading, individual aid, remedial work, work-type activities and drill on basic skills, library books, and supplementary readers, science. (Supplementary reading in grades 1-4)

10:15-10:45 Health education, safety, personal hygiene, and recreation

10:45-12.00 Social Studies Area
Planning period. Development of study units from areas of geography, history, government, Kansas history, science, and international relations

12·00- 1·00 Noon intermission

1:00- 1:40 Mathematics
Work-type activities to develop meanings. Drill upon fundamentals

1:40- 2:30 Language Arts
Usage, composition, oral expression, writing and spelling

2:30- 2:45 Planned recreation

2:45- 4:00 Appreciation
Reading for fun, music, art, stories, dramatizations, oral language activities, exhibits, experiments, reports. Evaluation of day's work

4. The Selection of Instructional Materials

In the modern elementary school the curriculum consists of a great variety of learning materials. One of the resources of learning ex-

* Pupils and teachers together should plan the work of each period. The teacher should determine whether planning by periods or for the whole day gets the best results. Plans should be written and an evaluation made before children go home.

periences is represented by printed materials in the form of textbooks, supplementary books, pamphlets, magazines, and newspapers. Elementary school pupils should be taught to use these materials effectively. Equally important is the establishment of strong interests in reading these materials. The acquisition of these interests is largely dependent upon the intelligent selection and effective presentation of reading materials by the teacher. It is essential, therefore, that the teacher be familiar with the available reading materials which are suitable for children of her age group. In some schools, the teacher is provided with suggested lists of books, from which she may select those which appear to be most appropriate in terms of the concerns and needs of her class. Intelligent decisions by the teacher in regard to reading materials for use in her class demand an understanding of the relative values of these materials. A knowledge of the criteria for evaluating the materials and the best procedures for selecting the materials is also essential.

Overemphasis Upon Textbooks.—The unfortunate effects of overdependence upon textbooks are numerous and far-reaching. Most important of all, the reciting of words is considered as the index of understanding. It results in temporary, superficial results instead of permanent mastery. It is a deadening procedure devoid of interest for the great majority of pupils. It robs most school subjects of their richness and value. It does not result in abilities to apply the subject to a variety of life situations. It does not encourage the teacher constantly to learn more about her subject and to plan better methods of teaching. It encourages verbalism—the learning of words without understanding—and finally it results in concentration upon information and the neglect of ideals, attitudes, interests, concepts, and tastes as objectives of learning.

In addition to these limitations, dependence upon *one* textbook possesses other dangers. The course of study is then limited largely to one author's theory of education and his abilities to devise effective learning materials. The class and the teacher are committed to the author's emphasis, improper or otherwise. They are also dependent upon various divisions or types of material in the subject as well as the author's ideas of the selection and arrangement of materials regardless of the needs, backgrounds, and interest of the pupils of a given class or the needs of a given community.

Textbooks are restricted not only in point of view but also in scope. Because of price limitations they are small, condensed, and hence too often artificial and uninteresting. This is especially unfortunate in

history, the sciences, and the social studies, where it is better to assign twenty or thirty pages a day of interesting material than four or five pages of material written in the encyclopedia style. Textbooks are also written so as to be "teachable" by mediocre teachers rather than to exercise the full powers of superior teachers and are hence not of the highest type of learning materials. They are frequently censored, distorted, and incomplete so that they will not offend ignorant or selfish groups of laymen who would prevent their use in the schools. Furthermore, textbooks get out of date in a few years and are commonly used for five to ten years after they should have been discarded.

Values of Textbooks.—Textbooks are not without values. Many teachers would be practically helpless without textbooks, particularly beginning teachers and older ones whose knowledge of the subject is no longer adequate to the needs of modern life. The experienced teacher of good preparation and superior abilities may employ the textbook to advantage along with other aids—supplementary readings, discussions, and visual and auditory aids. This is particularly true if a very superior textbook is employed.

Among the more important values of the textbook the following may be mentioned:

1. It furnishes an outline which the teacher may use in planning the work of the semester or the year.
2. It brings together in one volume a great deal of the more important information in a given field.
3. It usually contains some serviceable teaching aids, such as pictures, charts, diagrams, questions, problems, maps, summaries, outlines, headings, exercises, and table of contents.
4. It serves as a permanent record for future exercises later in the course, e.g., reviews.
5. It saves the teacher much time in presenting material or finding material for students to read in the library.
6. It enables the learner to take home with him in convenient form some of the more important materials for study.
7. It facilitates the making of assignments—though often assignments of inferior grade.
8. It provides a uniformity in the learning materials of pupils which is desirable to some degree, particularly for the purposes of class discussion and testing.
9. It provides a logical organization, though by so doing it deprives the learner of the responsibility for organizing and hence of the educational training involved.
10. It relieves the teacher of responsibility for evaluating much of the material of the course; more time is thus made available in

class for discussions, explanations, assignments, the use of visual aids, and other activities.

11. It unifies the study of the class around a definite specific topic.
12. It avoids the confusion which may result from the attempts of pupils to organize a mass of facts from various sources.

Using the Textbook.—Many suggestions for the effective use of textbooks may be drawn from the foregoing list of values. Among the more important suggestions are the following:

1. Select the best available textbook. (See later pages for suggestions on selecting textbooks.)
2. Supplement its use by discussions, collateral readings, and pupil activities of a wide variety.
3. Avoid "recitation" of textual materials. Make assignments which call for understanding, evaluation, criticism, interpretation, application, and supplementation.
4. Teach pupils how to read the textbook critically and understandingly.
5. Teach pupils how to use the various aids included in the textbook, e.g., the table of contents, the index, marginal and other headings, study questions, visual material, etc.
6. Avoid asking pupils to recite details. Instead call for main thoughts, applications, and the like.
7. In some classes, particularly in history, an introductory survey or rapid reading of the text is useful, to be followed by a more thorough, slower study of the text and collateral material.
8. Adapt the textbook and other materials to the individual and to the various levels of ability of the class.

There are certain practices in the use of textbooks which should be avoided in classes in history, the sciences, the social studies, and other content subjects. The one-book teacher in these subjects cannot possibly be a superior teacher. By relying exclusively upon one textbook, she is failing to train pupils in the skills of comparison and of synthesis of materials from more than one source. The students will also lack training in library skills and habits and other important educational results which will remain long after most of the textbook content has been forgotten. The citizen of tomorrow must read current materials not only in books but in periodicals and newspapers and must know where to look for and how to interpret such materials.

The teacher in the content subjects should avoid overemphasis upon "recitation" of textbook materials. She should instead encourage the organization of material from textbooks and other sources around problems and questions, particularly those of current importance and

interest. She should avoid using too much of the class period for oral testing over the textbook material and instead leave the majority of the time for socialized discussions, telling by the teacher, pupil reports, supervised study, and other effective learning activities.

In all subjects the teacher should subordinate "textbook covering" to efforts to achieve the objectives of the course in terms of learning or child growth. She should not make the error of having pupils "learn" the textbook, trusting thereby to achieve the objectives. She should at all times keep in mind that the textbook is not the course itself but only one valuable instrument for teaching and that it must be used intelligently. It must also be supplemented daily by one or more of a wide variety of teaching and learning materials and devices.

Selection of Textbooks.—While theoretically the classroom teacher makes the course of study for the subjects she teaches, in many instances her principal role in making the course consists of selecting the textbook. Once the textbook is selected the general pattern of the course is determined, at least to the extent that the textbook is emphasized. This is true whether the textbook is the student's only aid or is used as a reference book along with other textbooks, references, and collateral readings or is supplemented with workbooks, field trips, visual aids, and other instructional materials and methods.

Because of the degree to which the textbook determines or constitutes the course of study, great care and intelligence should be exercised in selecting it. On the basis of replies to a questionnaire sent to 465 teachers in regard to the criteria which should be used in selecting elementary school textbooks, Underwood [6] compiled the following list:

I. Author

1. Training
2. Experience
3. Can write for children
4. Reputation
5. Authority in field
6. Familiarity with scientific investigations
7. Participation in scientific investigations
8. Previous publications
9. Present activity
10. Unclassified

II. Content and Organization

1. In harmony with educational aims
2. Teachable organization
3. Scientific basis for
4. Consistent point of view
5. Adequately covered field
6. Modern character of situations

[6] Willis O. Underwood, *The Analysis and Selection of Elementary School Textbooks*, unpublished thesis—University of Colorado Library, pp. 45-47.

7. Balance of content
8. Accuracy
9. Psychological approach (present concepts of learning)
10. Organized around large themes
11. Tested in classroom
12. Correlated with other subjects
13. Meet needs of pupils
14. Meet needs of community (social aspect)
15. Unity of material
16. Sequence of material (sound)
17. Adaptation to specific needs
18. Adaptability to needs of schools
19. Suitable to both rural and graded school
20. Material addressed to pupils
21. Develop proper attitudes, habits, skills
22. Obsolete topics eliminated
23. Material not biased
24. Possible omission of material without destroying sequence
25. Organized within selections
26. Material suited to age of child
27. Length of stories, units, etc.
28. Adaptable to Mastery-unit technique
29. Adequate details
30. Ideals of high grade human living
31. Vision of man's relation to his environment
32. Correct standards and ideals in use of English

III. Vocabulary and Readability

1. Controlled vocabulary (word lists)
2. Concepts on level of child
3. Technical words defined before used
4. Style clear and lucid
5. Good sentence structure
6. Provision for vocabulary enrichment
7. Not too many new words introduced per assignment

IV. Method and Motivation

1. Interesting material
2. Introductions, previews, questions
3. Activity programs
4. Standards and self-appraisals
5. Emphasis on thinking-creative work
6. Well illustrated
7. Rich and varied experiences
8. Develop permanent interest in reading
9. Provision for supervised study
10. Flexibility of method
11. Sincerity of approach
12. Develop general principles
13. Apply general principles

V. Teaching and Study Aids

1. Teachers' manuals and guides, etc.
2. Tests to accompany book
3. Testing program within book (norms)
4. Workbook to accompany book
5. Index
6. Appendix
7. Glossary
8. Table of contents
9. Preface
10. Summaries
11. Marginal notes

12. References
13. Title page
14. Charts, maps, tables, statistics
15. Pronunciation aids
16. Reviews (simple and cumulative)
17. Remedial material
18. Examples and explanations
19. Provision for individual differences
20. Questions, exercises and drills
21. Norms to recognize ability groupings
22. Adequate accompanying forms
23. Biography

VI. Mechanical Makeup

1. Print (type)
2. Spacing of words and letters
3. Paper
4. Width of margins
5. Binding
6. Shape
7. Washable backs
8. Attractiveness and color of book
9. Weight of book
10. Durability
11. Length of line
12. Paragraphing
13. Open, block page (page arrangement)
14. Size of book

VII. Miscellaneous

1. Copyright date
2. Students' opinions
3. Price
4. Demands of economy
5. Number of pages in relation to cost
6. Exchange value
7. Fit course of study
8. Publisher
9. Availability of book
10. Opinions of others (number of adoptions)
11. Special features
12. Series in which book belongs
13. General merit
14. Type of book
15. Demands of teachers for certain changes

Textbook Improvement.—There is strong evidence that textbook publishers are becoming increasingly aware of the need for better textbooks. Some of the aims of the publishers for improvement of textbooks are as follows:

1. To print more vigorous and vital texts of greater human interest, permitting more illustration and graphical explanations
2. To present greater resources of materials in the way of type, paper, illustration, binding, etc.
3. To use several different printing processes
4. To promote a greater use of color
5. To present more beautiful bindings [7]

[7] W. A. Kittredge, "Five Years' Progress in School Book Design," *Publishers' Weekly*, CXXXIX, 1937.

5. The Selection and Use of Workbooks and Supplementary Reading Materials

The Use of Workbooks.—The limitations of textbooks, of the number and variety of exercises provided by teachers, and of the quality of assignments made by teachers led to the development and use of workbooks. The workbook is so called because it provides "work" for the student to do—questions to answer, problems to solve, projects to undertake, drill and practice materials, tests, and remedial assignments. It has in recent years come to be rather widely used.

Although controlled experimentation in the use of workbooks has not definitely established the degree of their value, some of the experiments have indicated that pupils' performance on written tests was more satisfactory in classes in which workbooks were used than in those where they were not used. The experiments, however, throw little light on the matter of how much time of teachers was saved for other work by the use of workbooks. Most of the experiments were conducted years ago when the workbooks available were not generally of superior quality and often not coordinated with the textbook and other phases of the course.

Values of Workbooks.—Among the values of the workbook the following may be mentioned:

1. Provides definite assignment of supplementary material
2. Makes practice and review materials readily available
3. Provides wider variety of learning activities
4. Supplies student with copy of assignments
5. Provides for individual differences by.
    a. Variety of tasks for different interests
    b. Diagnostic tests—some for self-diagnosis
    c. Remedial materials keyed to diagnostic tests
6. Furnishes study materials for home work and study halls
7. Saves time in class period ordinarily used in copying exercises
8. Provides training in self-direction and independent study
9. Provides a simple means by which pupils can study while absent from school and thus make up work missed
10. Saves time of teacher for other work

Not all these advantages apply to all workbooks. Some workbooks do not possess qualities or contain materials contributing to one or more of the above advantages.

It should be evident that the workbook does not relieve the teacher of the responsibility of planning the daily work, including use of the

workbook. She must plan to use the workbook as a supplement to the textbook, coordinating the two. She must plan assignments in advance in terms of differences among the learners in ability, interest, and need. Most workbooks should not be followed closely. The teacher will unquestionably lack skill at first in the use of the workbook. Skill will have to be developed through study and experience.

Weaknesses and Dangers.—The lack of positive experimental results markedly favorable to the use of the workbook is indicative of the limitations inherent in their use. The following limitations should be recognized and kept to a minimum by careful planning:

1. Lack of coordination with the textbook
2. Some material not adapted to interests or abilities of class with which workbook is used
3. Materials not well graded
4. Failure of some materials to contribute much to the objectives of the course ("busy-work," blank-filling, petty questions, etc)
5. Lack of sufficient choice in the references to books and periodicals to take care of lack of library materials in the local school
6. Failure to provide materials especially for bright pupils and for slow or dull pupils
7. Abuses in use of workbooks:
    a. Lack of careful planning by teacher
    b. Acceptance as self-teaching devices
    c. Lack of adaptation and correlation with course
    d. Overemphasis upon nonessential outcomes

Criteria for Judging and Selecting Workbooks.—In selecting workbooks for use in elementary school classes the following criteria should be kept in mind:

1. The workbook should be used as a supplement to and not as a substitute for the textbook.
2. The workbook should provide amply for reading of references on each of the topics and units.
3. The readings, problems, exercises, and other materials should be systematically correlated with the textbook and should supplement it intelligently. For this purpose a workbook especially constructed for use with the adopted textbook is preferable.
4. The vocabulary and style of writing of the workbook and the references included in it should be appropriate for the pupils who will use it.
5. The learning activities included should be adapted to the interests, the abilities, and the previous background of the students.
6. The learning activities should include some adapted to the interests and abilities of weaker students and some which are appro-

priate for the abler ones. Variation in interests should be provided for.

7. The learning activities should be appropriately distributed with respect to the different objectives of the course, including ideals, attitudes, interests, and tastes as well as information and skills.
8. There should be ample provision for diagnostic checking on possible failure of individual pupils in any of the more important outcomes of the course.
9. There should be optional material (in most subjects) for drill upon weak points of individual pupils as discovered by the diagnostic devices.
10. If checking or grading by the teacher is contemplated, it should be provided for in such a way as to be economical of the teacher's time.
11. The learning activities should for the most part be self-explanatory or sufficiently explained to require a minimum of explanation by the teacher.
12. There should be some "shutoff" device to avoid the continuance of study and learning activities far beyond the point of adequate learning.
13. The contents should be in attractive form.
14. The workbook should be mechanically sound, that is,
    a. Sufficiently well bound to last through the course.
    b. Printed in a type size appropriate for its users.
15. Where materials are to be handed in or checked by the teacher, the pages involved should be readily detachable and should provide a blank for the student's name.

Elementary School Library.—One of the most significant developments in elementary education within recent years has been the development of the school library. The need for adequate libraries for high schools was recognized many years ago. In the case of high schools, considerable impetus was given by accrediting agencies. In elementary schools the development has been largely the result of the recognition by teachers of the need for enriching the school and other life experiences of the elementary school pupil. In the better elementary schools of today the school library is considered one of the main resources in the education of pupils.

The classroom teacher in one of those schools has the opportunity and responsibility of recommending books for the use of her class. She may wish also to supplement the central library collection with books for her classroom library. Thus it is essential that the elementary teacher know the books which are available for children and formulate methods for their wide and intelligent use.

Many schools make booklists available to teachers. These lists can be supplemented by those from book publishers, and book sections of magazines and newspapers.

Numbers of interesting and valuable children's books are available for use in elementary schools. Many of these books can be used to supplement textbooks in the content subjects; however, they have important values other than merely *supplementing* textbooks. Because of their wide variety and interesting style, these books can serve to broaden and enrich children's experiences. New interests may be developed and old ones reinforced by wide reading of properly chosen books. The teacher's efforts in stimulating and guiding her pupils is a rich and rewarding activity. Some of the methods which teachers have found useful in stimulating and extending children's interests in books are as follows:

1. Arranging book displays
2. Making trips with children (beginning in third grade) to public libraries
3. Discussing favorite books of individual pupils with class
4. Organizing informal book clubs in class
5. Having book talks by persons interested in children's books
6. Having class illustrate and dramatize stories in books
7. Discussing stories in class
8. Making scrapbooks of favorite books

The teacher can obtain information in regard to children's books by reading the reviews in such publications as:

The Booklist published regularly by the American Library Association
Childhood Education
Saturday Review of Literature

Books as Collateral and Supplementary Reading.—Since most textbooks contain only a limited amount of material, highly condensed, there is a need for additional reading materials, especially in the content subjects. Among the most important types are the following:

1. Materials which develop more intensively and thoroughly one or more phases or units briefly treated in the textbook
2. Materials relating to topics omitted from the textbook which the teacher may think best to assign to one or more of the students
3. Materials which differ in point of view from those in the textbook
4. Materials written in a different and perhaps more interesting or attractive style

While it is frequently useful to assign *collateral* readings in other textbooks, they are usually not sufficient. Supplementary readings are also needed. Supplementary readings are materials which fall into the first three categories mentioned above—materials which do not merely parallel the textbook but extend beyond its scope They treat topics much more intensively and in much more detail than the textbook. They may contain materials which relate to topics perhaps not even mentioned in the textbook.

Using Collateral Readings.—Among the ways in which collateral readings may be used to advantage are the following:

1. The class may be given definite assignments by title and page for which all are to be held responsible. This is simply an extension of textbook teaching but is often useful in widening the scope of material and in introducing new or different viewpoints or treatments.
2. The class may be given, from time to time, a list of supplementary materials from which they may select what they wish, being responsible not for pages but for the mastery of topics, problems, or questions. This plan is very much to be commended in instances where the subject is of sufficient interest to insure that a considerable portion of the class will search in the extra-text materials. The value of the contribution of material not found by others and the pride engendered in the contributor add greatly to the interest and life of the class.
3. Individual reports should be used much more widely than is commonly done. In this fashion the brighter individuals may be given additional opportunity, and often the uninterested student may be roused to take interest in the work if an assignment of a particularly attractive type is given to him.
4. Collateral reading may be employed in planning flexible or differentiated assignments.
5. Where the problem or project method of teaching is employed, collateral reading in connection with the problem or project is not only desirable but essential.

Magazines and Newspapers.—There is considerable evidence to indicate that children in the upper elementary grades read magazines and certain sections of newspapers. Among the most popular magazines are: *American Boy, Boy's Life, American Girl, Young America,* and *Popular Mechanics.* These should be made available to pupils in each school. The stories and articles may serve as a point of departure for certain units of instruction or other class activities. Some of the materials in magazines and newspapers may serve as sources of in-

formation for pupils who are studying problems of present-day life. In the use of these materials in the classroom, the basis of discriminating reading may be established. Perhaps if teachers and parents, who object to children reading only the comic and sport pages, would devote some time to guiding children's reading, the children would acquire broader interests in their newspaper reading.

Questions, Problems, and Exercises

1. What factors should be considered by a teacher in the selection of learning activities for a given age group of children?
2. Formulate a list of objectives which should serve as guideposts in the construction of a course of study.
3. How may the classroom teacher assist in the selection of textbooks?
4. What supplementary materials may be used to supplement textbooks in the grade you plan to teach?
5. What changes in the use of textbooks have resulted from changes in classroom methods and curricular reorganization?
6. Select the three criteria which are of the greatest importance in selecting a textbook. Justify your selection.
7. Evaluate two standard textbooks of recent publication upon the basis of the suggested criteria.
8. Outline a plan for the effective use of textbooks in one of the subjects you plan to teach.
9. Discuss the advantages and disadvantages of free textbooks.
10. What factors should be considered by the teacher in making a decision to use a workbook in her course?

Chapter 16

AUDIO-VISUAL AIDS TO LEARNING

The building of accurate concepts is essential to learning Unless the learner can associate the written or spoken word with some past or present experience, the resulting concept most likely will be vague and meaningless. The effective use of books is dependent upon numerous rich and meaningful experiences of elementary school children in their natural and social environment. The multiple approach through ear, eye, and touch contributes to more effective initial learning and greater retention.

In order to assist pupils in acquiring an experiential background for reading and vocabulary, elementary school teachers utilize many types of audio-visual aids. Recent research reveals that, with the exception of films, more extensive use of audio-visual aids is made in the elementary school than in either the high school or college.

In many elementary schools objects are brought into the classroom, identified, and used. Elementary science laboratories have been established. Dramatizations and construction projects represent important pupil activities. Firsthand acquaintance with the children's immediate environment is acquired by observing individuals at work, talking with the postman and fireman, and by making trips to gardens, parks, and stores.

While firsthand experiences provide, no doubt, the soundest foundation for learning, the practical limitations upon the scope and variety of these experiences make it necessary for the teacher to utilize many audio-visual aids in the classroom. Fortunately there are many valuable and inexpensive aids available for classroom instruction

1. Visual Aids and Their Value

The most notable contribution of science to the development of visual aids has been the motion picture. As a result of its spectacular characteristics and wide general acceptance, it has been considered as synonymous with visual education This, however, is an erroneous conception, as there are various types of visual aids, each possessing

its own distinctive value. Among the most readily available and usable are:

1. Projected pictures
   a. Films
   b. Film strips
   c. Opaque projections
   d. Slides
2. Unprojected pictures
   a. Photographs, prints, paintings
   b. Textbook illustrations
   c. Pictorial pamphlets
   d. Postage stamps
   e. Stereographs
3. Graphic materials
   a. Cartoons
   b. Charts
   c. Diagrams
   d. Graphs
   e. Maps and globes
   f. Posters
4. Objects, models, and specimens
   a. Biological specimens
   b. Dioramas
   c. Working models
   d. Museums

On the basis of results obtained by the use of visual aids in classrooms over a considerable number of years, sufficient evidence is available to reveal clearly their effectiveness in teaching. This conclusion is supported by the findings of educational experimentation. Among the values of visual aids revealed by educational research and actual classroom use, the following appear to be the most significant. Not all of them are equally applicable to all types of aids.

Arousing Pupil Interest.—Reference has been made in the preceding section of this chapter to the technical difficulties which students encounter in making verbal experience meaningful. Another obstacle to effective learning is the student's attitude toward certain materials of instruction. A literary classic as presented in a printed volume may be very unimpressive or even forbidding to a pupil. A good screen version of the classic is likely not only to contribute to understanding and retention but also to arouse a compelling desire to read the book.

Supplementing Knowledge Obtained from Other Sources.—Knowledge for its own sake is unimportant. As the basis of sound judgment and appreciation it is fundamental. To be well informed is to possess the first essential of effective, intelligent action. Visual aids not only enable the student to see information from books in a new light, but they also add to his fund of knowledge and thus help him to see the facts gleaned from textbooks in their proper relationships.

Enlarging the Environment of the Individual.—By the proper use of visual aids, a student may live realistically and vicariously in environments remote in time and space from his immediate surroundings. The Congo River may appear to a pupil as only a crooked line on a map. A motion picture makes him realize that it is a surging turbulent stream and thus furnishes such a background of imagery that rivers on maps are no longer mere verbal or diagrammatic abstractions. In history, films portraying the struggles of our forefathers in establishing this nation give the student a vivid understanding of early American history which cannot be gained from verbal descriptions.

Promoting of Intellectual Curiosity.—A well-chosen photograph or film of a scene of historical significance is most likely to arouse an interest in the study of the event. Pictures of places of geographical interest serve to promote the reading of books on the subject or to create a desire to visit the place. The curiosity aroused in a school boy by a photograph in a geography textbook may become the source of his interest in the people of another country. It is far from the truth that children's interests are necessarily limited to their immediate environment. While students should be interested in living conditions in their immediate neighborhoods, it is likewise important for them to have a desire to know how people live in other parts of the world.

Contributing to Greater Acquisition and Longer Retention of Learning.—The intensity and accuracy of impressions received through the eye are conducive to more lasting imagery. Basing his statement on results of an experimental investigation of the comparative effectiveness of pictorial teaching aids in safety education, Goodman makes the following generalization:[1] "The investigation

[1] David J. Goodman, "Comparative Effectiveness of Pictorial Teaching Aids," *Journal of Experimental Education*, XII, 20-25.

offers additional research [indicating] that all the pictorial media [in this investigation, the media consisted of sound film slides and silent film slides] aid materially in the learning process for both immediate and delayed recall, and for groups of both high and low I.Q." The relative effectiveness of concrete experience as compared to verbal instruction is dependent upon the nature of the instruction and the student's previous experience with the visual aids used in instruction.

Economy in Time in Instruction.—A concept of an object or a process can be established through the eye in a small fraction of the time required to read a description of it. During the second World War it was necessary to provide maximum training in minimum time for millions of members of the armed forces and workers in war industries. To achieve this objective, films were utilized on an unprecedented scale. Estimates [2] of the amount of time saved in the training of technicians for war plants and the military forces range from 25 to 75 per cent. Careful selection of visual teaching materials in terms of the desired outcomes and effective procedures in their use may make similar savings possible in classroom situations. In a summary statement of research in visual education Dale [3] states, "More than fifty such experiments (of varying scientific exactitude) offered the almost unanimous conclusion that films conveyed information in ten to twenty per cent less time than usually required by other methods."

Use in Fostering Favorable Attitudes for Learning.—Novelty and variety may be introduced into classroom situations by means of visual aids. Monotony promotes boredom, which is detrimental to the formation of favorable attitudes toward learning activities. While entertainment is seldom the main outcome to be sought in the presentation of visual aids, joyous attitudes are desirable concomitants of any educational activity. The humor of exaggeration, present in some educational films, serves a useful purpose. A recent film on safety education for schools utilized humor in an effective manner by portraying the harrowing experiences of a simpleton who disregarded traffic signals, placed ladders at improper angles from buildings, and failed to observe open manholes in sidewalks.

---

[2] See report of Commission on Motion Pictures in Education of the American Council on Education in *Motion Pictures for Postwar Education*, VIII, 3.

[3] Edgar Dale, "The Real Film Problem," Ohio State University *News Letter*, X, 1-4.

2. Determining What Aids to Use

When it appears that some type of visual aid will serve a useful purpose in a particular classroom situation, the teacher is required to make a decision in regard to what type of aid to use. The type most suitable in a given situation is dependent upon several factors. The standards for selection of a particular visual aid are more specific. They will be considered later in this chapter in the discussion of each visual aid. Among the factors which should be considered in selection of the type of visual aid are .

1. *The degree to which the type of aid is adapted to the objectives and problems of the course.* For example, if the desired outcome is the understanding of a process involving motion, the motion picture is particularly suitable; in the physical sciences demonstrations of the action of objects or materials are valuable; in biology, field trips for the purpose of observing and studying animals and plants in their natural habitat are important; maps and globes assist in the formation of accurate concepts of the relationships of places.
2. *The relative effectiveness of the available types of aids.* A considerable amount of educational research has been devoted to the relative values of different types of visual aids. The evidence is clear that different types of aids serve different purposes. In many instances the decision in regard to what aid to use is not in terms of the relative superiority of one aid over another, but rather of what combination of aids is the most desirable.
3. *Proper balance and variety of aids.* Not all types of visual aids are equally effective in different types of classroom activities. For example, stereograph views are well adapted for individual pupil study, whereas projected pictures are appropriate for group activity. The interests of an individual pupil may be more adequately served by a variety of aids than by a single one. A model may arouse the interest of one pupil, while the dramatic quality of a film may make a strong appeal to another. The selection of aids should be made on an objective basis, thereby avoiding overemphasis upon those types which may have a particular fascination for the teacher or for a small number of the members of the class.
4. *The extent to which the type of aid is adaptable to the pupil's mental abilities.* Visual aids and other teaching materials appropriate for one group of students may appear to be "kid stuff" to another group.
5. *Availability and cost of aids and time required for presentation in the classroom.*

6. *If the visual aid has been used previously by the teacher, the evaluation he and his students have made of it* In an increasing number of schools, the expert opinion of the director of visual education is available to teachers.

3. Using Projected Pictures

Selection of Films.—A considerable amount of educational research has been devoted to the relative effectiveness of the various types of films. A much-debated issue in visual education circles has been that of the value of *sound* versus *silent* film. On the basis of the results of experimentation the sound film has its adherents, while the silent film advocates are equally enthusiastic. The fact is that the evidence is inconclusive in regard to the relative effectiveness of otherwise identical sound and silent films.

The really crucial issue involved in the selection of a film for classroom use is the purpose to be served by the film. Important considerations in the selection of films include the following:

1. Availability of the film (possibility of obtaining the film when needed)
2. Mechanical and technical quality of the film
3. Possibilities of correlating film with the topic being studied
4. Appropriateness of film to mental and social maturity of the pupils
5. Distinctive contribution to be made by the use of the film, e.g., motivation, providing information, culminating activity
6. Opportunities for follow-up procedures

Use of Films.—Proper utilization of films for classroom purposes is dependent upon an understanding of their role as *supplementary* teaching aids. They are not designed to replace books or the teacher. They cannot serve all the purposes of instruction. In fact, except in cases where an understanding of processes is involved, films may be inferior to other types of visual aids, such as film strips. Good teaching techniques based upon sound educational principles are as essential in the use of films as of any other type of instructional materials.

The effective use of films requires careful planning, not only in terms of the outcomes sought but also in regard to the proper facilities. The excessive and indiscriminate use of films hinders rather than promotes the learning process.

After the film has been selected upon the basis of the foregoing criteria, the teacher should plan a definite procedure for the teaching of the film. The following steps may be suggestive:

1. The teacher should preview the film for the purpose of becoming familiar with its content and organization.
2. The teacher should prepare a brief list of the main features of the films which are emphasized in the lesson.
3. The pupils should be given an assignment which includes:
    a. Reading materials giving information in brief story form in regard to the general nature of the film.
    b. If a sound film is used, a list of the unfamiliar words to study in order to understand the sound track.
    c. A list of questions pertaining to the main points of information included in the film.
    d. A list of suggestions to pupils in regard to what to look for in the film.
4. Have the class view the entire film without interruption.
5. Follow up the showing of the film with a class discussion of the main points presented in the film.
6. Have the class read textbook and supplementary materials related to the subject of the film.
7. Have individual pupils read and give reports to the class on special problems suggested by the film.
8. Show the film, stopping at any time to clarify questions raised by the class.
9. Give a test based upon the film, related readings, and class discussion.

Developing Motion Picture Appreciation.—One of the reasons for incorporating motion pictures in the curriculum is to give pupils a basis for intelligent evaluation and appreciation of them, as was suggested earlier in this chapter. Pupils can be guided in formulating a set of criteria for judging motion pictures and also in applying the criteria to pictures they see in commercial motion picture theaters. There follows a set of criteria [4] for judging motion pictures for use in schools:

1. Entertainment value
2. Basic theme
3. Story
4. Appropriateness of title
5. Dramatic plot structure
6. Social value
7. Direction
8. Characterization (acting and speech)
9. Settings, costumes, makeup, properties
10. Sound and musical effects

Film Strips.—Film strips are also known as slide films, film rolls, stereopticon films, and film slides. They are still pictures, printed on short strips of standard width, noninflammable motion picture film

[4] These headings are based upon a *Scholastic* scorecard for rating photo plays. Reprinted from *How to Judge Motion Pictures* by Sarah McLean Mullen. Copyright, 1936, by Scholastic Corporation.

and may be used in place of glass slides. They can be projected serially or singly, and forward or backward as desired. Both silent and sound types are available. They cost only a fraction as much as regular motion pictures and are convenient to handle. Another advantage is that a picture can be held on the screen for any length of time desired and pictures previously shown can be turned to. A disadvantage is that the pictures have to be shown in a predetermined order. The silent slide films possess great flexibility in teaching in that the teacher can emphasize certain pictures by explanations as they are held on the screen The sound film strips which reproduce sound from disc records can be run without sound in the event the teacher wishes to supply the explanation or have the class discuss the picture. Since the slide films do not move, stronger impressions can be gained by closer attention to details than the moving film permits. The projection equipment is relatively simple and inexpensive.

Slides and Opaque Projections.—Glass slides of photographs and diagrams are well adapted to group instruction and small auditoriums. Both the slides and the necessary projection equipment are inexpensive. The equipment is relatively simple and easy to operate. In comparison with film strips, glass slides are more durable and less likely to be damaged by heat. Another advantage of slides is that it is not necessary to show them in any fixed sequences. The standard size (3¼″ x 4″) slide is large enough to give the picture the desired detail. However, many modern slide projectors now are made for 2″ x 2″ slides. A recent innovation is the synthetic-plastic slide. In many high school classes, students make their own slides.

Many slide projectors have an adjustment feature which makes it possible to show either slides or opaque materials. Regular opaque projectors are also available. By means of these projectors postcards, materials from the pages of a textbook, or geology specimens can be shown on a screen. A dark room and a good screen are absolutely essential. Light-projected maps are also widely used. Proponents of these maps claim they have much greater teaching force than the traditional wall map, because they can be more easily seen and are easier to handle than a series of wall maps. Map slides in color are now available. Perhaps the most satisfactory slides are those prepared by experts in photographic work; however, many teachers add to their list of slides by having students assist in making them.

Like other visual aids, slides should be selected carefully for class-

room use. Among the criteria for selection are relevancy, technical quality, maturity of pupils, and contribution to the work at hand.

4. Using Unprojected Pictures

Flat Pictures.—Unprojected pictures are often referred to as "flat" pictures or merely as "pictures." The various kinds of unprojected pictures include actual photographs, prints, paintings, murals, and illustrations in textbooks, magazines, and other publications. They can be obtained from photographers, school supply companies, and many other sources. From the standpoint of pupil interest, excellent sources are the pupil's and teacher's own collections. Flat pictures are inexpensive and abundant in variety and scope. They may be in color or black and white.

The unique value of this form of pictorial aid lies in its possibilities for detailed analysis and study. Mountains, other geographical features, and many constructed works lend themselves to more effective portrayal by still pictures than by motion pictures because of their natural immobility.

Use of Pictures in Teaching.—It is obvious that the first essential in the effective use of pictures is that each pupil be able to see the picture clearly and distinctly. Many teachers, however, fail to devise adequate methods of showing pictures. A single large picture may be utilized satisfactorily for group study. In the case of smaller pictures, it is desirable to provide a sufficient number of duplicate copies of each picture so that each pupil may have a copy for individual study. If duplicates are impossible to obtain, it will be necessary to rearrange the seating so that all may see a single picture or one of a limited number of pictures. A common error is to distribute a large number of more or less unrelated pictures to be passed along hurriedly from one pupil to another.

Better results are usually obtained if the members of a class concentrate on a few pictures during a given class period When it is necessary to "pass pictures around" in the class, the pictures should be arranged in some logical sequence. The chief value of pictures of this type depends largely upon thorough analysis and study, which require time and involve guiding pupils in observing the various features of the picture. Individual and group discussion based on the objects and their relationships in the picture are often fruitful.

Pictures can be clipped from various types of publications and can be mounted very easily. Mounted pictures can be shown to greater

advantage and retained for future reference more easily than unmounted ones. When not in use, they should be filed according to subject and topic. Proper labeling for purposes of identification is also desirable.

Textbook Illustrations.—Many textbooks and supplementary reading materials are well illustrated. These illustrations can serve a useful purpose in contributing to the pupil's understanding and appreciation of a topic. The teacher can relate them to the reading material by directing attention to the meanings they convey. Investigations have revealed that unless this is done, children often fail to understand the full significance of pictures in books.

A few well-chosen pictures of artistic merit add to the attractiveness of classroom walls. They also may become the basis of or a supplement to classroom study. Pictorial bulletins, many in color, suitable for bulletin boards are available from commercial organizations. Many current bulletins pertain to historical, scientific, or industrial themes. As is true of other bulletin board materials, only a few should be displayed at any one time, and they should be changed from time to time.

Many state libraries have a variety of pictorial materials available for use in schools, which can be obtained on a free rental basis except for transportation costs. These materials, particularly valuable for the study of state geography and history, consist of mounted pictures, books, and periodicals containing pictures, magazine and newspaper clippings, and photographs of pictorial materials too valuable to be lent.

The postage stamp collection has great educational significance in these days of increased attention to world geography and foreign countries. The stamps of many countries have considerable artistic merit, but it is in the fields of geography, history, and international relations rather than art that postage stamp collections have their greatest value. The late President Roosevelt referred to stamp-collecting as the "science of human relationships." Many issues of United States stamps have commemorated significant historical events and the achievements of leaders in art, education, music, science and government. Stamps of foreign countries depict the geographical features, products, history, and peoples of those countries. Stamp collecting in school often becomes the basis of a life-long hobby.

Stereograph.—The stereograph is a twin picture giving the illusion of three dimensions. It is produced by a bifocal camera or two cameras arranged at different angles. The lenses of the stereoscope, through

which one looks at stereographs, magnify and merge the two pictures into a single image. The sense of realism engendered by the stereograph makes it a particularly valuable visual aid in the teaching of geography and solid geometry. It is not designed for group instruction but rather for individual study. There are two types of stereoscopes. One type is the hand stereoscope, which is quite inexpensive and does not require the use of electricity. Sets of stereoscopes sufficient for many pupils may be purchased at a reasonable cost The other type is known as the telebinocular. It is electrically equipped and shows the details of the picture very clearly and vividly.

5. Using Graphic Materials

Graphic materials depict ideas by emphasizing certain elements in a situation and subordinating others. They are not designed to reveal details as other types of visual aids do. In this respect they are the most abstract of all visual materials. They arrest the attention by exaggeration or unusual arrangement of line and color. Their power lies in their ability to convey meanings dramatically and instantaneously. Their direct and forthright treatment and their simplicity of form enable them to portray an idea of light humor or one of great social significance.

Cartoons and Posters.—The degree of interest which can be developed in commonplace objects or events by graphical representation is disclosed by the popularity of the newspaper comic strips. Recently an effort has been made to capitalize for educational purposes on the appeal that comics make to children. A series of cartoon books designed to teach history, science, and religious subjects is in the process of publication. The artistic quality and potential interest value appear to be satisfactory.

The comics, however, represent only one of several forms of cartoons. Magazines, newspapers, and books contain many cartoons of considerable political and social significance. These offer many possibilities for supplementing numerous areas of the school curriculum.

The quick initial impression which a good cartoon makes may be superficial and fleeting unless it is accompanied by further reflection. Students can be guided in their study of cartoons by discussions which assist them to understand the symbolism and to interpret the meanings. A comparison of cartoons representing different points of view may serve to stimulate an interest in reading leading to the development of an unbiased interpretation of the issue or subject depicted.

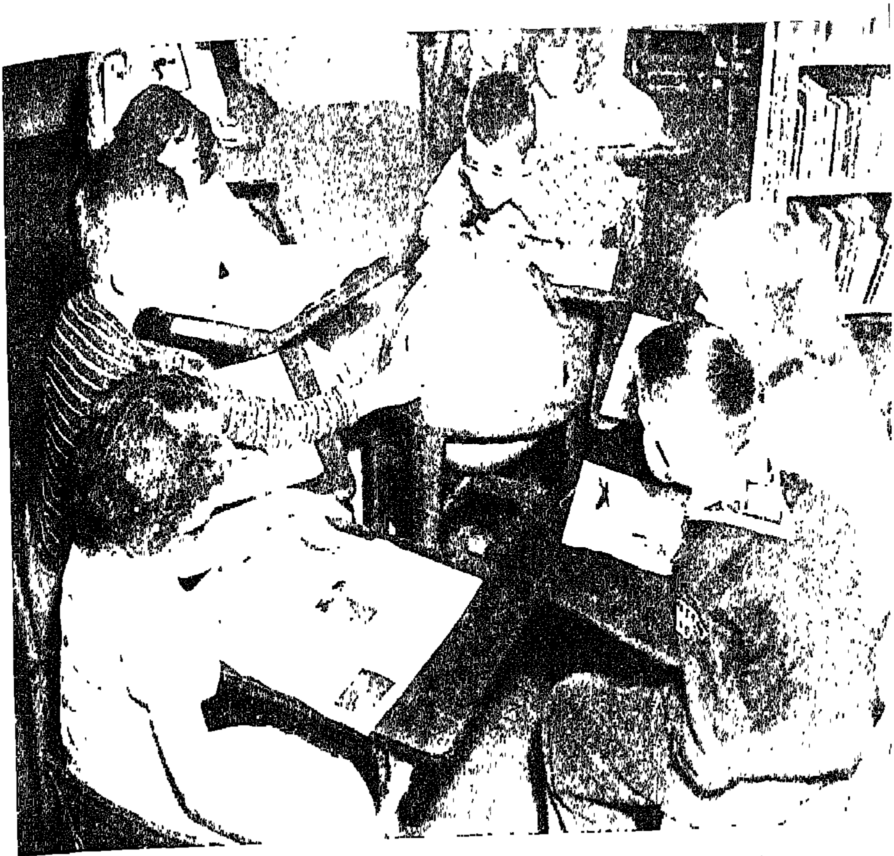
By line, composition, or color, the poster emphasizes one dominant theme. It is designed to convey one idea directly and forcefully. The strong impression it makes may be utilized to impart information, to develop attitudes, or to disseminate propaganda. An analysis of posters, such as those in the series by Rockwell Kent on the "Four Freedoms," can serve to open new vistas to the study of many economic and social problems.

As one of the culminating activities of a unit of instruction, students may summarize attitudes and knowledge they have acquired in the study of the topic by designing and making posters. Thus training in techniques of drawing and in the use of color and other materials is provided in a purposeful situation

Maps and Globes.—The function of the map is to give a graphic representation of the abstract concepts of distance, direction, location, and size. Maps were among the first types of visual aids to be used in schools. Recent developments in the preparation of maps have made them much more useful in teaching than they formerly were. In comparison with the older types, the newer maps give a far more accurate representation of the relative positions of places on the earth. For example, the new "air-age" maps with the North Pole in the center show the land masses of the Northern Hemisphere grouped about the Arctic Ocean in their proper perspective. While the land masses south of the equator are somewhat distorted, these maps enable the student to form accurate concepts of air-line distances, as well as the physical, economic, and political relationships of countries in the Northern Hemisphere which are significant in the air age.

The subject matter depicted in maps nowadays is also much wider in scope and variety than it was a generation ago. An examination of the kinds of maps available at present indicates that practically every aspect of knowledge comes within the scope of the map maker. On the basis of form, maps may be classified as globes, relief maps, and flat maps. An understanding of the wide range of topics which are encompassed by maps can be gained by attempting to classify flat maps according to content. The types of flat maps now available include air-line maps, current events maps, political maps, political-physical maps, product maps, rainfall maps, temperature maps, soil maps, vegetation maps, military maps, literary maps, population maps —some showing location by nationality, religion, or institutions, road maps, and many more.

The mechanical features of maps for school purposes have been greatly improved in the last generation. More consideration is given



A fourth grade group working with visual aids and supplementary reading materials.
(Boulder, Colorado, Public Schools)

to proper arrangement and balance of materials. Color is used more effectively, and useless detail is omitted. Maps should be selected with reference to the maturity of pupils, purposes to be served, and the type of learning activities involved. For example, in group instruction large or projected maps are necessary. If individual study of maps appears desirable, smaller maps for individual use should be available. If pupil activity in the making of maps appears feasible, desk outline maps should be obtained.

Use of Maps in Teaching.—The effective use of maps as visual aids is more dependent upon classroom arrangement and other routine matters than is true of most instructional materials. As part of the preparation for teaching a topic with the aid of maps, the teacher should examine the available maps pertinent to the topic, select the types and sizes best suited to her purposes, and arrange the maps in advance for optimum use.

One purpose of the study of maps in schools is to teach pupils to use them effectively in their own study. It is no compliment to elementary and high schools that students come to college without a knowledge of directions as indicated on maps. The following list of suggestions for utilizing maps as visual aids has been adapted from McKown and Roberts:[5]

1. Be sure that the pupil comprehends the purpose of the map—what it is for, why it is necessary, and how it is used to provide information about the activities of man, including the pupil himself.

2. Promote the development of a favorable emotional set. This can be achieved by assisting the student in finding the answers to his or the teacher's questions. Simple maps which are easy to interpret and understand should be used in the early stages of map study.

3. Allow ample time for the pupil's first "looks." Permit him to survey the whole map before he concentrates on the different elements which comprise it

4. Be sure that the pupil understands map symbolism. This involves an understanding of the conventional symbols for land, water, elevations, the equator, parallels, meridians, etc. It is equally important that he be able to visualize the meanings back of the symbols. Other visual aids, such as pictures, films, and stereographs, properly correlated with maps, help the student in visualizing the symbols.

5. Use maps at the opportune time. Maps should be used only in meaningful situations when needed to answer questions, solve problems, or supply information. Maps should not be taught apart, but rather as an integral part of the work in a subject.

[5] From *Audio-Visual Aids to Instruction* by Harry C. McKown and Alvin B. Roberts, 1940. Courtesy of McGraw-Hill Book Co., Inc., pp. 85-87

6. Using Objects, Models, and Specimens

The study of objects in their natural surroundings provides the best basis for understanding of their functions and relationships to other objects. It is obvious, however, that all objects included in the curriculum cannot be studied in their native habitat. Children can be afforded firsthand experience with many objects by bringing them into the school. When they are studied against the pupils' background of experience with similar objects, they become an important aid to learning. The dual approach to learning—by sight and by touch—which is provided by this type of visual aid adds meaning and realism to school work.

Models.—Models which are representations (not reproductions) of objects have certain distinct values. A model may represent in miniature an object which is too large for complete study. For example, more significant relationships can be revealed by studying a model of the earth than by scanning the horizon. On the other hand, a model may be made much larger than the actual object and so permit more detailed study. In using models in teaching, the teacher should be certain that students obtain a clear understanding of the relative sizes of model and object.

Working models with moving parts are of great value in developing understanding of mechanical devices. The dynamic quality which motion gives to models is well illustrated by the exhibits in the New York Museum of Science and Industry in New York City. Museums would be more interesting to adults and children alike if they contained fewer stuffed elephants and more animated objects.

Specimens.—Objects can be arranged to reveal certain relationships in an effective manner. For example, relics of the American Indian can be grouped in the chronological order of their origin and use. By combining paintings and models or objects, the diorama creates realistic impressions. The realism of a foreign coin collection arouses interest and motivates children's study far better than a series of drawings and verbal descriptions of the objects. Newspapers or reprints published on the dates of significant historical events are effective in giving children a sense of reality in regard to the events.

Use of Models and Specimens.—The construction of models by pupils presents excellent opportunities for creative, meaningful work. Specimens suitable for use in science classes can be collected, mounted, and labeled by the pupils. Many objects which enrich and vitalize

teaching in various subjects can be obtained free or borrowed from people in the local community. Commercially made models are also available at a nominal cost.

In using materials of this type as teaching aids, the teacher should be certain that the aids are relevant to the topic and that they can be closely correlated with other instructional materials. The novelty of an aid may arouse initial general interest. It should do more. The attention of the class should be focused on the aspects of the object which bear a direct relationship to the study topic. The possibilities of relating these aids to other activities in connection with a subject include further reading about the object, writing reports on it, making diagrams or drawings of it, and individual and group discussions based upon it.

Many objects, models, and specimens collected for class use have permanent values. They can be used time and again if properly preserved and stored. The objects collected by a class might well become the nucleus of a school museum.

7. Values, Types, and Use of Audio Aids

Until recently the number of practical auditory aids available for use in the classroom has been very limited. The phonograph has been the chief supplementary teaching aid which makes its appeal to the auditory sense. For many years after the invention of the radio, technical difficulties as well as teachers' lack of awareness of its instructional possibilities hindered its acceptance as a classroom teaching aid.

Recent scientific progress has eliminated many of the technical obstacles. The effectiveness of the radio in calculating ideas and developing attitudes of persons outside the school has been amply demonstrated. Still another cause of the increased interest in radio as an aid in teaching has been recognition of the fact that radio listening has become an important leisure-time activity of youth. As a result of these developments, teachers have given consideration to two questions, namely:

1. How can teachers assist pupils in making their leisure-time radio listening more beneficial?
2. How can audio aids, including the radio, serve to reinforce classroom instruction in achieving the desired outcomes of education?

Faced with the challenge inherent in these two questions, teachers have employed various forms of audio aids to supplement their classroom instruction. At present audio aids have taken their place beside

the textbook and supplementary reading materials as an integral part of the course of study. Chief among these aids are:

Public address systems and sound amplifiers
The radio
Phonographs
Sound recording equipment—play-back devices
Sound pictures

The Radio.—The only justification for using a particular teaching aid is that it possesses, singly or in combination with other aids, certain unique values. In other words, its use must contribute more effectively to a process or an outcome than does any other available medium. The potential value of radio as an instrumentality of teaching is tremendous; its actual significance is dependent upon the manner in which it is utilized in the attainment of worthy educational objectives. The chief general values of radio as a teaching medium are discussed in the following paragraphs.

Radio can motivate pupils The radio program possesses several characteristics which are significant for purposes of pupil motivation. One of the most important is *timeliness*. Radio broadcasts of important events tend to eliminate feelings of remoteness which pupils attach to many topics presented in the classroom. One of the difficulties teachers encounter in motivating pupils in their study is the haze of unreality surrounding many classroom activities. A great deal of our teaching has been in terms of "long ago and far away." Firsthand accounts of significant happenings have a touch of reality which makes a strong appeal to children. Interests aroused by the broadcasts can be used as a point of departure for further study and reading on the broadcast topic, as well as related topics. Another motivating factor is that the radio *eliminates barriers of space,* bringing the world to the classroom. Broadcasts of significant current events taking place in the United States and elsewhere help to create real, lifelike classroom situations. Great personalities from every walk of life share their knowledge and enthusiasm with pupils in the schoolroom. Descriptions of historical events, forums, and the discussions of challenging problems by authorities serve to stimulate and inspire pupils.

Radio can invigorate knowledge. The greatest contribution of radio to education lies in the inherent dramatic power of the spoken word. It can give vital meaning to instructional materials which otherwise may appear abstract and impersonal. Radio broadcasts,

therefore, may serve to provide students with vicarious experiences having much of the force of actual experience. Authentic information, presented by well-informed radio speakers, also supplements knowledge obtained by pupils from books and other sources. As an integral part of the course of study, the radio is one of the determiners of the pupils' school experiences.

Radio can establish standards in language usage. The standards of diction and pronunciation set by most radio speakers are worthy models for pupils. The extent to which faulty diction, careless pronunciation, and other errors in language hinder effective presentation of ideas on the radio becomes apparent to the children. This awareness of the significance of correct language usage becomes a motivating force for improvement of their own standards of speech.

Radio can develop and increase worthy interests. New interests in drama and music may grow out of guided radio listening in the classroom. Until the advent of radio, good musical programs and theatrical performances were not available to most of our children. If given the opportunity to hear and the ability to interpret good music, many pupils may develop noteworthy recreational or vocational interests. Dramatizations of good books may lead to more extensive reading of significant material by children. The radio may also enable pupils to pursue worth-while interests which have their origins in other situations.

Radio can create desirable attitudes. World-mindedness should characterize the good citizen of the present and the future. Basic to this attitude is an understanding of the different peoples of the earth By means of the radio, the elementary school pupil can acquire a knowledge of the characteristics, needs, and aspirations of the inhabitants of other countries. A sensitivity to the problems of human beings in our own country can be heightened by radio discussions of domestic, social, and economic issues.

Sources of Radio Programs.—There are several means by which radio programs may be made available in the classroom. In considering the advisability of utilizing one or more of the different facilities, the committee on audio aids should consider not only comparative costs but relative advantages. The chief types of facilities are commercial broadcasting stations, school-owned broadcasting stations, and rented telephone wires.

1. *Commercial Broadcasting Stations.* The use of this facility requires equipping the school with receiving sets in each classroom,

or a central receiving system with outlets in the various rooms through which regular radio programs are received. Schools with limited funds have made fairly effective use of the radio by shifting a single receiving set from one classroom to another as needed. The school may also purchase radio time for the purpose of giving broadcasts by students or school authorities. In many communities, schools have been able to obtain radio time gratis or at a nominal rate as a feature of the commercial station's public service program.

Schools have not utilized the radio as fully as have other agencies. There are several reasons why classroom teachers have failed to take full advantage of commercial radio as a supplement to their teaching.

One of the difficulties has been that of adjusting the time of the broadcast to class schedules. The differences in the standard time zones are partly responsible for this problem. Some radio programs are now being broadcast at different times for the different zones. Recording devices and equipment for playing back programs to classes whenever desired serve to overcome this obstacle. With the advent of school-owned frequency modulation broadcasting stations, teachers will be able to use programs at times when they will best serve the purposes of classroom instruction.

Another objection to the use of commercial radio programs has been the limited number designed for juvenile listeners. Formerly programs for children were characterized by a tone of excitement and a flair for the sensational. The charge was frequently made that the general quality of many children's programs was low and in some cases vulgar. Broadcasters have begun to recognize the evils inherent in this type of program, with the result that the number of them is decreasing.

The authors are of the opinion that a third limitation is the amount and degree of misleading information in the form of advertising, and of statements of news commentators on questions of public interest.

Another handicap under which teachers have worked in their efforts to use programs of commercial stations has been their inability to obtain specific, detailed information about the program in advance. Listener's guides and teacher's manuals are now being provided for several programs by the broadcasting companies or sponsors.

Finally, adequate radio reception equipment has not been available in many schools. As awareness of the educational values of radio increases, school boards will incorporate costs for equipping and maintaining radios in school budgets. Many of the items of radio reception equipment are now more moderately priced than in the past.

2. *School-owned Broadcasting Stations* Several of the larger school systems own broadcasting stations. Under this plan a school system acquires and operates its own transmitter and other necessary equipment. A license from the federal government is required to operate this type of station. It is necessary also to employ skilled and licensed operators. Programs to the schools are transmitted directly to an antenna in a school and then relayed to the classrooms, or the program may be transmitted to separate antennae for each classroom. If a radio studio is owned by the school, its equipment may be used for instructional purposes in science classes. The students install, maintain, and operate radio stations in many schools. The studio may also be useful for auditions of student announcers, vocalists, and instrumentalists.

Phonograph Records and Transcriptions.—The equipment consists of a phonograph in each room where these aids are to be used. Light portable phonographs are used in some schools. The records and transcripts may be kept as separate record libraries in each school, or a central library may be maintained for the entire school system.

The phonograph is the most adaptable of all the audio aids for classroom use. A record can be played as many times as necessary to insure proper understanding and appreciation. Records of the best in music, literature and English language are available at a nominal price. Phonographs with three speeds, operating at 33⅓, 45, or 78 revolutions per minute, can be used to play both ordinary records and radio transcriptions. Transcriptions of many programs can be obtained from local broadcasting stations.

The teacher should listen to all the records to ascertain their suitability and to discover cues for their use before they are played for the class. Records should be selected in terms of specific objectives. In one instance the purpose may be analysis of form and content In another case the record may be played for mere enjoyment or to give local color to a subject. A sense of reality is fostered by the use of recordings of the voice of a poet reading his own poetry, such as those made by Vachel Lindsay. Records made by dramatic readers of important selections from literature are also available to schools.

Many schools maintain a central record library, which has the advantage of making the records more readily available to all teachers as well as providing a safe place for filing. Unless records are stored properly, they may become warped or broken. Even the new nonbreakable plastic records are subject to warping unless they are carefully protected when not in use.

Phonograph records can be more satisfactorily stored by an experienced librarian than by classroom teachers. Separate sound-proof booths in the school library can be provided where pupils may listen to records. The booths may be fitted with glass doors, making it possible for the librarian to supervise the students' activities.

The Use of Phonograph Records.—As an integrated classroom teaching aid, the phonograph record can serve to arouse pupil interest, illuminate and interpret what is read, and stimulate good reading and speaking habits. The following suggestions for the use of phonograph records apply particularly to the teaching of English literature, in this case a play, but the same plan may be followed in using phonograph records in other subjects.

1. Preparatory work of the teacher:
   a. Listen to the record in order to familiarize yourself with its content and organization.
   b. Prepare a brief outline of the main points to be emphasized in the lesson.
2. Preparing the pupils for hearing the record:
   a. Have the pupils read the printed text of the play, with particular emphasis on the scenes included in the record.
   b. Hold a general discussion of the play in which you or one of your pupils gives an overview of the story of the play.
   c. Have pupils read aloud the parts of the play presented on the record.
   d. Suggest to the class before playing the record that they give particular attention to the inflections, pronunciation, and dramatic qualities of the voices recorded.
3. Play the record through the first time without interruption.
4. Follow-up work:
   a. Have the students discuss the main points of the recorded version of the play.
   b. Give pupils questions to answer in regard to the main characters, plot, and action of the play as revealed by the recording.
   c. Ask pupils to mention and repeat selections or sentences of outstanding beauty or importance.
   d. Have pupils dramatize some of the most important scenes in the play. In the original dramatizations encourage pupils to make an effort to rival the recorded dramatization.
   e. Have pupils prepare written character sketches of the leading roles in the play.
   f. Play the record again, stopping it at any time to clarify questions raised by the class.

Selection of Programs.—From the vast number of commercial radio programs available, a careful selection should be made of those programs which are most appropriate for classroom use. In many schools a radio committee consisting of classroom teachers obtains information in advance and recommends to the faculty the use of certain programs. If the members of the committee understand the educational possibilities of radio, and especially if they have among their members a radio enthusiast, they can render an important service to the teachers in school in advising on the selection of radio programs for classroom purposes.

In the event the teacher has the responsibility of selecting programs for her classes, she may not be able to obtain information in advance in regard to every radio broadcast. However, for many radio programs, teacher's manuals and study guides are available from the broadcasting company or the sponsor of the program. The major broadcasting companies will send schedules of programs upon request from the teacher. Information about various programs can likewise be obtained from the local broadcasting station. Radio magazines and bulletins also may be used as sources of information. The main factors which should be taken into consideration in selecting radio programs for classroom use are as follows:

1. *Are the purposes of the program in keeping with the objectives of the unit or course?* In an English class in which correct pronunciation or good diction is one of the outcomes, the ability of the speaker or actors in these matters is important. If appreciation of drama or music is one of the outcomes sought, the nature of the production and the quality of the performance are essential criteria for selection.
2. Is the program relevant to the immediate learning activities of the class? If the class is in the initial stages of the study of a topic, the chief value of the program may be that of motivation. In the study stage of the topic on which students are assembling information, a radio program which presents factual material pertaining to the topic is desirable. In the culminating stages of the study of a topic, the radio program may serve as a climax to the student's activities.
3. Are the content and the manner of presentation such as will appeal to the interests of the class? The vocabulary and style of the presentation should be adapted to the abilities of the students The character of the material should be such that it can be adapted to effective presentation on the radio. The presentation of the program should meet a high standard of excellence. The use of maps and supplementary reading materials and the study of un-

familiar words in the broadcast are effective methods of adapting the program to the abilities of students.

4. Is the length of the program appropriate? The age and maturity of pupils are important considerations in making this decision. If the broadcast is too long in terms of the attention span of the class, many of the important values of the program will be lost. The length of the program in relation to the length of the class period also should be considered. In many instances the optimum value of a radio program can be attained only when it is followed by a discussion in which the pupils and the teacher participate.
5. Is the time of the broadcast suitable? Except in the case of a spot program of considerable current significance, radio programs should be selected which will not interrupt the daily schedule too seriously. However, the value of the program, rather than its adjustment to a fixed schedule, should be the determining factor in regard to the use of a broadcast in the classroom. In this connection schools encounter one of their main difficulties in the use of commercial station broadcasts. The recording of radio programs for rebroadcast at more appropriate times is one solution to this problem. School-owned broadcasting stations can plan their programs to fit the instructional schedule of the different classes and schools, or they may repeat certain programs.

Preparation of the Class for the Broadcast.—The amount and kind of preparation depend upon the purpose and type of the broadcast. If the program is selected well in advance of the actual broadcast, the teacher may give a preview of the topic in the form of a discussion in which dramatic episodes related to the subject are included to arouse pupil interest. Sufficient information should be given in the presentation to provide pupils with enough of the background of the program to enable them to appreciate it It may be advisable for the children to engage in some prebroadcast study of the topic. If, for example, the radio program is about the people of some foreign country, an assignment might be given which would involve:

1. Preparation of a list of books on the country by a committee of the class
2. Class study of a map of the country
3. Study of the meanings of words which are peculiar to the country
4. Study of pictures of the country
5. Brief reports by individual pupils on different aspects of life in the country

Assignments for Out-of-School Broadcasts.—In the event the pupils are expected to listen to radio broadcasts during out-of-school hours, assignment should be as clear and definite as that of any other lesson. (For discussion of the characteristics of an effective assignment, see Chapter 8.)

An assignment based upon a radio program should make provision for:

1. Proper motivation through relation of the program to the pupils' past experiences, telling interesting incidents, etc.
2. Definite information in regard to the time of the broadcast and the name of the station broadcasting the program
3. Sufficient basis for understanding the program: information in regard to the characters or speakers, something about the play or musical composition, etc.
4. Clear understanding of why the pupil should listen to the program
5. A knowledge of what post-broadcast activities will be expected by the teacher, e.g., class discussion, individual reports, tests, etc.

Activities During the Broadcast.—It is essential that the physical environment be conducive to effective listening. In most instances the schoolroom is the most desirable place for pupils to hear radio programs. Assembling a large number of children in a school auditorium is not a satisfactory arrangement for hearing most radio programs. The receiving equipment should be adjusted for maximum clarity and tonal quality. Distractions of all kinds should be reduced to the minimum.

Any reference materials to be used in connection with the broadcast should be readily available. The pupils may be expected to make brief notes of items for further study or discussion, or if the teacher feels that note-taking distracts the attention of children from the program, he may wish to make brief notations, of topics for later consideration by the class. In some types of broadcasts, the use of maps and pictures during the program may be desirable. In teaching music by radio the use of the score when listening to a selection of music is often helpful. The selection may also be repeated on a phonograph record for further analysis and study.

Post-Broadcast Activities.—The maximum benefits from most radio programs can best be achieved by follow-up activities related to the broadcasts. Dependent upon the type of program and its contribution to the specific objectives of the course, the follow-up procedures may take one or more of the following forms:

1. Class discussions of challenging problems suggested by the broadcast
2. Club activities stimulated by the program
3. Experiments following up a broadcast
4. Slides or films related to the broadcast
5. Reports by individual pupils to the class on topics related to the broadcast
6. Reading of books stimulated by the program
7. Test of basic understandings, information, and terminology

Pupil Evaluation of Radio Programs.—Critical and intelligent radio listening, both in and out of school, should be one of the outcomes of the use of the radio in school. Children should be guided in formulating a set of criteria for judging radio broadcasts. Class discussions of some of the programs in terms of the criteria are held in many schools. Some of the matters which may serve as a basis of the discussion are:

1. Objectionable advertising
2. Propaganda
3. Undesirable emotional appeal
4. Aesthetic value
5. Reliable and unprejudiced source of information
6. Craftsmanship in music, acting, speech, and synchronization

Pupil Participation in Radio Broadcasts.—Participation by pupils in the production of programs for broadcasting over the local commercial or school-owned station may have several valuable results. Chief among them are that it:

1. Provides pupil motivation for creative work in preparing and presenting programs
2. Gives children a keener insight into the mechanics of writing and producing radio scripts
3. Develops functional usage in speech and writing through acquaintance with the techniques of radio writing and presentation
4. Constitutes an effective type of school publicity which affords the school an opportunity to render service to the community through the promotion of worthy community enterprises

Use of Sound Recording Equipment.—Recent technical developments have made recording devices practicable for school purposes. By means of the magnetic tape recorder, inexpensive direct recordings can be made, played back for study, and then erased, after which new recordings may be made on the same tape. Other equipment is available for recordings of a more permanent form.

Schools utilize these recordings in a variety of ways. In some schools, radio programs are recorded for later use. Teachers of music make recordings of the solo and group singing of their pupils and play them back to the children for analysis and study. Instrumental music work lends itself to similar treatment. The distorted impression which a child may get of the contribution made by his own voice or instrument in group singing or playing can be corrected by listening to the recorded version, and the class can make an objective diagnosis of their rendition of a musical composition. Teachers of speech have found recordings valuable for the diagnosis of students' speech defects. In many schools dramatic productions and programs of special local interest are recorded for their historical value.

Guiding Pupils in Out-of-School Radio Listening.—Teachers are becoming increasingly aware of the power of the radio to influence the lives of individuals. The fact is generally accepted that the radio has become a great social force. Will it become an instrument in aiding man to achieve the good life or just another device for "pushing him around" by telling him what to think and what to buy, as well as whom to follow, whom to hate, and whom to fight? The answer to this question depends to some extent upon the ability of the millions of listeners to become discriminating, intelligent listeners.

There is little gained from a teacher's merely condemning the programs to which pupils listen. She should be in a position to suggest more desirable programs. Any such recommendation, however, should be based upon an understanding of individual pupil's interests and tastes. Assignments can be made occasionally directing pupils to listen to significant radio programs at home and be prepared to discuss them in class.

Questions, Problems, and Exercises

1. How may elementary school pupils be taught to evaluate and appreciate good motion pictures?
2. Make a list of the abilities and skills elementary school pupils should acquire in the use of maps. Outline in some detail a plan of teaching designed to assist a class in the acquisition of four of the skills on your list.
3. Suggest methods of evaluating the outcomes of learning achieved by the use of a motion picture in classroom instruction.
4. Make a collection of cartoons from current magazines and newspapers for use in teaching an elementary school class.
5. List some objects, models, or specimens which might be used effec-

tively in teaching one of your classes. From what sources could each of the items on your list be obtained?

6. Using the criteria suggested in this chapter for evaluating pictures, select pictorial materials for use in teaching an elementary school class.
7. What are the chief values of and limitations on the use of radio in teaching?
8. Why is the classroom better adapted to radio listening than the school auditorium?
9. How can the teacher promote discrimination in listening to radio programs on the part of elementary school pupils?
10. List the main advantages in the use of phonograph records in comparison with radio programs.

Chapter 17

UTILIZING COMMUNITY RESOURCES FOR LEARNING

The child's school experiences and learnings constitute only a part of his total education. The significance of school experiences for the child is determined in no small degree by the teacher's ability to unify the stimuli to learning which the pupil encounters in the various areas of his social and natural environment. If properly integrated, the learnings which occur in school and life supplement and reinforce each other. If on the other hand they are permitted to remain unrelated and isolated, the learnings in the different situations may stand in opposition to the full development of the individual.

An individual's intellectual interpretation of the printed page is largely in terms of his past and present experiences with various social groups in the communities in which he has lived. The impact of environmental conditions upon his attitudes and overt behavior is clearly discernible. Likewise his physical well-being is dependent in large measure upon environmental factors. These realities of his existence cannot be ignored in any educational program designed to contribute to his full development.

An individual's school experiences have meaning and significance to the extent that they are blended and fused into a unified experience. The community provides a considerable portion of a child's firsthand experiential background and gives meaning to his vicarious experiences. It is essential to interpret a pupil's behavior and reactions against a background of community life.

The school's acceptance of greater responsibility for all aspects of a pupil's development and growth has made it imperative that the teacher understand and utilize the varied educational resources of the community in which the child lives. Never before in history has the individual been influenced as greatly by the larger state, national, and world communities as he is today. The impact of many of these conditions, however, can best be understood by relating them to conditions in one's immediate environment.

In every community, however small, numerous social processes are in operation. The community is the basic unit in the performance of many of the major social functions of life, such as making a living,

securing an education, engaging in recreational activities, and pursuing religious interests. A firsthand study of the problems arising out of these processes in the community gives the child an insight into other social needs. In seeking to achieve this social objective of the school it is imperative that our culture and its fundamental structure and problems become increasingly the integrating element of the curriculum.

1. Educational Values of Community Study

Since the community represents a significant aspect of the elementary school pupil's total environment, it appears that the appropriate point of departure for the study of our society is the significant problems of the child's immediate social environment. The values of relating the program of the school to the community may be briefly summarized as follows:

1. Reading readiness may be developed in the first grade by use of signs in and near school, e.g., "Exit," "Keep Door Closed," "Keep Away, Trucks Unloading," etc.
2. The interests of the pupil in his immediate environment can be utilized to make school learning more meaningful to him.
3. Community study serves to vitalize and enrich the child's school experiences by practical application to actual situations.
4. Community study contributes to the realization of one of the school's major responsibilities, namely, that of introducing children to the life of their communities.
5. Community study contributes to habits of observation in children
6. Community study develops pupil's appreciation and understanding of the social services of his community.
7. Community study counteracts isolation of the school from the realities of life, thereby enabling it to become a more effective agency of human welfare.
8. Study of community problems may become the antecedent for subsequent action to improve the quality of community life
9. Community study provides opportunities for children to participate in socially useful, cooperative group endeavors.
10. Community study fosters cooperation of individuals and agencies interested in making community life more wholesome.

Obviously the realization of these values is dependent upon intelligent selection and utilization of community resources. Students of curriculum construction, seeking to reduce the social lag of education, have incorporated instructional materials pertaining to the community into various courses. Some curriculum committees have accepted the

point of view that "the community is the curriculum." More conservative leaders in curriculum reconstruction, aware not only of the unique characteristics of each community but also of the *common factors of living in all communities,* have urged the adaptation of curricular materials to local community conditions. In the utilization of community resources and in student participation in community affairs it is essential that a proper balance be maintained with other educative activities.

The Community as an Educational Laboratory.—The utilization of the community as an educational laboratory is also in accord with principles of teaching which are basic to effective teaching procedures. A useful summary of the relationship between the principles of successful teaching and community-centered education is given by Olsen [1] as follows:

How Teaching Principles Are Utilized in Community-Centered Education

Basic Principles of Successful Teaching at Any Academic Level	How Community-Centered Programs Utilize These Principles
I	
Educate the whole child. The child is not just a mind to be instructed: he is a physically, socially, emotionally, ethically, and intellectually growing person. If his powers are to develop in proper harmony, he needs learning activities which challenge his emerging interests and abilities in all the areas of his growth.	*Integrated learning occurs.* Well-planned community study projects necessarily involve not only intellectual understanding but, simultaneously, social poise, emotional control, physical activity, aesthetic response, and bodily skills. Pupils who explore a tenement house or a coal mine, for instance, develop all these aspects of the personality in unconscious integration.
II	
Keep the program informal, flexible, and democratic. Children are restless and need confidence in their own powers and achievements. They therefore need every chance to ask questions freely, confer with other children informally, share in planning	*Informality, flexibility, and democracy are essentials of any program.* Interviews, excursions, surveys, service projects, camping, work experiences, and extended field studies cannot be standardized from pupil to pupil, from class to class, or from

[1] Edward G Olsen and Others, *School and Community,* New York, Prentice-Hall, Inc., 1945, pp. 32-34.

their individual and group activities, carry personal responsibility for group projects, and help to judge critically the results of their efforts. This requires that the entire classroom atmosphere be friendly and democratic as well as informal and flexible, and that children not be held in unfair competition with standards of performance beyond their possible ability to achieve

year to year. Every child who participates can discover facts and report findings valuable to the group and hence build confidence in himself as he knowingly contributes to the advancement of the project. Group planning, shared responsibility, and mutual evaluation are possible in the highest degree.

III

Capitalize upon present pupil interests It is of utmost importance that the teacher first discover what interests and purposes his students already have, and then use these drives as springboards to further desirable learning Thus, limited interests may develop into wider interests, undesirable purposes into praiseworthy purposes, and the child's educational growth be best promoted.

Every child is interested in his own community. He may not be much concerned with irregular verbs or with the life cycle of *Bacillus typhosus*, but he is considerably interested in telling friends about his next-door playmate who is ill with typhoid fever. Beginning with these immediate interests, it is not hard for the alert teacher to stimulate class concern about the fact that the city does not inspect the milk supply, and that well-written letters of protest might be sent to the health commissioner and to the editor of the local newspaper.

IV

Let motivation be intrinsic. Most learners find few desirable incentives in the traditional system of school marks, honors, and penalties. Their most moving incentives are those of real life itself: to explore the new and the interesting, to associate actively with other people, to manipulate and construct things, to compare opinions about matters which seem important, and to express one's self artistically.

The keynote is—"Let's find out!" Let's find out where that frog lives . . . what a police reporter does . . . how to interview an employer. Life-centered projects such as these, which actually develop out of students' interests, concerns, and needs, require little artificial stimulation for their initiation and development. The operating incentives are those which are natural in people's lives and fundamental in their interests; they are definitely not artificial or academic.

V

Make learning experiences vivid and direct. Generalizations will be mere verbalisms unless they are based upon meaningful personal experiences. That is why children need constant opportunity for motion pictures, radio programs, excursions, interviews, service projects, work experience, and the like. Through such media the children receive more concrete, interesting, and meaningful educational experiences than they are likely to receive through the printed page alone.

Firsthand contact is ultimate realism. "We read about slum housing in our textbook," remarked one student as she stood in the back yard of a legally condemned but still-occupied tenement, "but I never believed anything could be as bad as this! Why doesn't somebody do something about it?" Pupils who thus experience slum housing, or who watch a plasterer at work, or who visit the morgue to see what a drunken driver can do to himself are learning vivid lessons they will doubtless never forget.

VI

Stress problem solving, the basis of functional learning. Real education comes about when children intelligently attack real problems, think them through, and then do something to solve them. Every chance should therefore be given for pupils to discover, define, attack, solve, and interpret both personal and social problems within the limitations of their own present abilities, interests, and needs.

Real life abounds in problems. These problems may be vast or trivial, personal or social, intimate or remote, but all of them are important to some persons in some degree. Pupils who visit a public health clinic to learn the truth about the symptoms, detection, and treatment of tuberculosis are gaining valuable experience in problem solving; so also are those who climb to the roof to visualize better the local village's transit development.

VII

Provide for the achievement of lasting pupil satisfactions. Students who dislike their work learn little from it, and retain that little briefly. Every effort should therefore be made to maintain learning situations wherein children will achieve genuine success, find personal satisfaction therein, and thus grow intellectually, emotionally, socially.

Possible satisfactions are many and varied. Children who discover for themselves how an elevator works, who aid in constructing a health exhibit for the county fair, or who help a neighboring farmer terrace his hillside can experience deep emotional satisfaction as well as increased intellectual understanding. Such projects bring feelings of success; success is satisfying; satisfaction brings increased enthusiasm; enthusiasm leads to further activity of the similarly creative and hence basically satisfying nature.

VIII

Let the curriculum mirror the community. Learning situations must reflect life in the pupil's own community if they are to be most effective. Since little transfer of training between diverse situations can be expected, it is essential that the core of the required curriculum directly reflect the basic social processes and problems of the community, rather than the logical subject areas of the traditional school, or the socially insignificant interest-units of many activity schools. Not otherwise will the curriculum relate functionally to the personal interests, experiences, and needs of children today.

The community is used as a living laboratory. Within every community, large or small, urban or rural, go on the basic social processes of getting a living, preserving health, sharing in citizenship, rearing children, seeking amusement, expressing religious impulses, and the like. When pupils study familiar though actually unknown processes, develop intellectual perspectives, improve emotional outlooks and serviceable personal skills as they observe and participate in these processes, they are discovering for themselves not only the problems they face, but also the resources they can utilize in attacking those problems. Thus life, as well as the school, becomes truly educative in their eyes.

Types of Community Participation by Pupils.—The utilization of community resources in teaching involves more than the mere collection of the facts of community life by pupils. It includes intelligent, responsible participation in community activities. Five levels of student participation [2] may be identified, as follows:

1. Study of community conditions and problems by means of excursions, field trips, and surveys for the purpose of obtaining first-hand information.
2. Programs of community action planned by adults and carried out by pupils; many of the metal and paper salvage drives during the war were of this type.
3. Community activities in which adults and children share in planning and executing the plans, e.g., a campaign of traffic safety
4. Pupil study of community conditions resulting in identification of a problem for solution, consideration of methods of solution, and initiation action among adults; e.g., a study of zoning laws in the community, followed by recommendation to the city council for more definite housing regulations.
5. Rendering of a needed community service by students as a result of their study of community needs.

[2] *Learning the Ways of Democracy,* Educational Policies Commission, National Education Association, p. 327.

Methods of Obtaining Information about the Community.—In order to gain a better understanding of their communities, elementary school pupils have used one or a combination of the following methods:

Community surveys
School excursions and field trips
Interviews with local citizens and officials
School camps
Study of local records
Informal observations

2. Types and Techniques of Community Surveys

Types.—Upon the basis of scope, community surveys may be divided into two classes: (1) broad, general surveys of community conditions to obtain a general overview of the community; and (2) study of some specific problem of major concern to the group.

Properly planned and conducted, both types of surveys have great educational possibilities. While the main purpose of a survey is to obtain information which is relevant for community understanding, its chief educational value is dependent upon the manner in which the information is related to other significant learning activities. This demands intelligent analysis and interpretation. Merely to assemble information by means of surveys without a definite objective is educational profligacy under the guise of progressiveness.

In most cases the limited type of community survey in which data are obtained in regard to one community problem or area is the most suitable for elementary school groups. A definite problem or need which directly affects the pupils as members of a community, such as health, recreation, or traffic safety, may well serve as the basis of an investigation. The problem is even more appropriate if it is such that the pupils can take definite action resulting in discernible community improvement.

General Community Surveys.—The survey should arise out of the curriculum and return to enrich and vitalize it The purpose should be clearly understood by the teacher and the pupils. The kinds of information and the methods of obtaining it should be determined by a process of democratic group planning. The pupils may be organized into various committees, and definite responsibility for some phase of the survey may be assigned to each committee. The committee findings should be reported to the entire class for evaluation and interpre-

tation. The total results of the survey should be organized into an appropriate form for presentation to the class and interested adult groups.

To insure the maximum educational values, the actual survey should be preceded and accompanied by a study of library materials on the subject. The details of making the survey should also be carefully considered in advance. Plans should be made with due regard to the maturity of the pupils who are to participate as well as the probable reactions of the adult citizens of the community.

The information obtained by a survey of general community conditions may be used as the basis of studies of a great variety of topics. In regard to general community surveys, Kilpatrick [3] has stated the following caution:

> Community analysis must take one beneath the externals. It is not enough to know that there are farm children in the school; one must know the life of the farm. It is not enough to see the stores, factories, churches, and public buildings, the good teacher must understand what these mean for the lives of the people. To the fact that 1,000 people work in a textile mill must be added personal acquaintance with the life struggles of some of those employees. That there are ten churches in a small town is a fact without much significance, but the history of those ten cults, their leaders, achievements, internal dissensions, and competitive activities may reveal pretty clearly the strength and weakness of that community today.

Study of Single Community Resource.—Among the outcomes of the general community survey may be the development of a desire on the part of the members of a class to make an intensive analysis and study of one or more community institutions or activities. In the typical community there are several types of institutions suitable for special study by elementary school classes, for example, factories, personal and professional services, social agencies and organizations, city and county agencies, cultural, educational, and religious organizations, and homes.

The factors which determine the choice of an institution for study are the kinds of institutions represented in the community, the objectives of the curriculum or course, the adaptability of the institutional materials to the abilities of students, and the interests of pupils. The following diary of an elementary school pupil illustrates the use made by a sixth grade class of one resource in their local community.[4]

---

[3] William H. Kilpatrick, editor, *The Teacher and Society*, pp. 239-240.

[4] National Education Association. Department of Rural Education, 1939 Yearbook, *Community Resources in Rural Schools*, p. 66.

Sixth Grade—Portlock School

John reported to our class one morning that a Norwegian tramp steamer had docked at the Jones Storage Dock, and was unloading potatoes.

"Why are they unloading potatoes, do you reckon, Miss J.? Looks like we should be sending them potatoes instead," said John.

No one could answer the question. That afternoon several of the group went to the steamer and asked the captain about it.

The captain told them: "A tramp steamer picks up its cargo anywhere and goes anywhere. That is the reason it is a tramp steamer. This boat picked up these potatoes in New England. But it has no refrigeration, so they have to unload them here to keep them from spoiling."

"What will you do now?" asked Lois.

"We are exchanging these potatoes for flour, fertilizer, and some canned goods, which we will take and sell somewhere down the coast. We expect to go to South America before we are through. Then we will go back to Norway."

The boat stayed only three days. Then it chugged out of the harbor. A pilot boat carried them safely out into the ocean. Miss J. told us that nearly every foreign vessel has to have a pilot boat guide them in and out of the harbor as a safety measure.

The story about the tramp steamer was so helpful that every day or two we try to find some interesting news item or happening to share with the class. Sometimes we just tell it. Sometimes we hurry to school and write the happenings on the board so that everyone can read our stories. Our stories are much better now. So far we have found many things of interest to report, especially about the foreign vessels which come so often to our harbor.

3. The Educational Excursion

Educational Values.—The school excursion, when utilized as a learning activity, is an effective method of providing direct experiences with the realities of social living. The educational purposes which may be served by guided school trips are the development of new interests and the intensification of old ones, the observation of objects and processes in their functional relationships, the clarification of concepts, the development of keenness of observation in particular fields, the supplementing and verification of information obtained from books and other sources, the illustration of abstract ideas, the enrichment and expansion of pupils' experiential background, and the acquisition of certain social abilities such as acceptance of responsibility and willingness to cooperate in group undertakings.

Planning for Excursions.—Considerable preparatory work is essential if the time and expense involved in school trips are to be

justified in terms of desirable educative outcomes. The process of cooperative planning and preparing for a trip by pupils and teachers presents an unparalleled opportunity for democratic living.

One of the first steps to be taken in planning a program of school excursions in larger cities is to make a community-wide survey of all available places of educational interest and value in the community. A central committee of teachers in each school should prepare a list of places appropriate for visitation. Individual members or sub-committees should then visit different places on the list to ascertain their educational potentialities. The information thus obtained may be recorded on cards to be filed in the school for reference.[5] Each card should record the following information:

1. Name of person, place, or thing visited
2. Location
3. Possible value of visit
4. Transportation needed
5. Time appropriate for visit
6. Name of persons to be contacted and necessary preliminary notification

A committee of pupils and the teacher in each class should be formed to examine the information on file, select trips appropriate to their class work, and report a tentative schedule of their trips to the central committee, which in turn prepares a schedule of trips for the entire school.

Each teacher who is to serve as leader of a group has the responsibility of making pupils cognizant of the educational implications of each trip. Reading materials, films, pictures, and discussions relating to the trip assist in orientation. Extreme care is necessary in planning the routine details of the trip—transportation facilities, time schedules, food, and liability insurance.

The trip should be closely correlated with the actual flow of instruction in the classroom. Classes functioning along pupil activity principles encounter little difficulty in expanding their units of work to include school trips related to the various units. Each trip should be followed by class discussions in which questions which arise out of the trip can be cleared up and significant facts emphasized. The information obtained by pupils on a school trip should be organized, synthesized, and presented in the form of oral or written reports to other school or adult groups, thus providing experience in oral and

[5] *Expanding the Classroom*, Harrisburg: Department of Public Instruction, Commonwealth of Pennsylvania, pp 9-10.

written English composition. Trips to rural areas may be correlated with the study of the poetry and fiction of farm life. Students may be inspired to express their reactions to the places visited by drawings and sketches, thereby using them as the basis of creative exercises in art. The work in the practical arts takes on added significance when pupils observe related activities in carpentry, masonry, and machine shop work in the community.

Techniques of School Excursions.—The maximum educational benefits can be derived from a school excursion only when:

1. The pupils and teacher recognize the need for firsthand information in regard to a problem they are studying.
2. An appropriate excursion is carefully selected. The resources available for study on the trip should be closely related to the topic which the class is studying. The trip should be justified in terms of the probable contribution it will make to the pupils' understanding of the significant problem. The outcomes should be proportionate to the time required and the adjustments necessary.
3. The suitability of a proposed trip can be ascertained by a preliminary trip by the teacher and a committee of the class in which its educational possibilities are surveyed. In the event the excursion is made to commercial and industrial establishments or civic agencies, permission and cooperation must be obtained from the persons in charge.
4. On the basis of the information obtained on the preliminary trip, the details of the trip are planned by the class. In the group planning, consideration should be given to the length of the trip, the route, needed equipment, suitable clothing, the optimum number of pupils to be included, and the most appropriate time to make the trip. Different committees may be assigned definite responsibilities in regard to each of these matters.
5. The class is given full and explicit information in regard to the plans formulated.
6. By means of class discussions, pupils formulate purposes of the trip.
7. Pupil orientation and motivation are provided in advance of the trip by study of its educational significance. Pupils may be oriented by the assignment of readings and the use of films
8. Necessary arrangements are made with the proper school authorities.
9. Pupils formulate directions for observation and prepare a list of standards of pupil conduct. A group of pupils before they make a trip agree to:
   a. Observe traffic laws on the trip.

b. Obey safety precautions in order to avoid accidents during visits to the places selected.
c. Obtain enough information in advance of the trip to enable them to ask sensible questions.
d. Follow suggestions of the guide or other person in charge.
e. Observe carefully and listen attentively to explanations given by the guide.
f. Make brief notes of observations.
g. Exchange ideas with each other.

10. The trip is followed by pupil appraisals, class reports, discussions, and the relation of information obtained on the trip to the problem being studied.

4. Documentary Materials, Interviews, and Observations

Documentary Sources of Information.—Information obtained by firsthand investigation may be supplemented by consulting written materials pertaining to the community. The United States Census Reports are a reliable source of data of a general character on population, housing, agriculture, and manufacturing. The records of state and municipal agencies contain more specific information relating to past and present community conditions. Local newspaper files contain an interesting running account of community activities Social service and public health agencies may have records which are of value in the study of juvenile delinquency and health conditions in the community Aside from the value of the information obtained from documentary sources, pupils under proper guidance may receive invaluable experience in the elementary techniques of research.

Interviews with Local Citizens.—Individual members of many elementary school classes interview persons engaged in various community occupations to obtain information in regard to general working conditions, duties and training of workers, and the like. Local public officials may be interviewed to obtain information in regard to current community issues and problems. Early inhabitants of the community may provide human interest materials for a study of local history.

Informal Observations.—The development of accuracy and keenness of observation in elementary school children can be enhanced by careful firsthand studies of many features of their local community environment. It is essential that pupils be taught the importance of verifying their observations by comparing observation notes and by readings on the matters observed. Valuable insights can be acquired

by pupils into many of their classroom learning activities by informal observations of objects and processes in their homes and other community situations in the immediate vicinity of the school. The child's interest which may grow out of these observations may serve as a basis for classroom discussions and study. In this manner the child's curiosity may be aroused and directed toward desirable learning goals under the guidance of a teacher who possesses and manifests a genuine interest in the "child's world."

Working with Parents.—In many schools parents have rendered valuable assistance as resource persons in providing educative experiences for elementary school pupils. Cooperative home-school relationships have resulted in mutual benefits to teachers and parents, as well as to the pupils. A recent publication of the United States Office of Education [6] reports how parents helped in enriching the school experiences of children as follows:

A father takes the class. While Mr. M chatted with his child's teacher after a PTA meeting he asked if the class would enjoy some colored movies he had taken of a deep-sea fishing trip off the coast of Florida. A time was arranged and Mr. M. brought his films, staying to give explanations and richer meaning to the pictures.

The children valued the experience, and these movies became a "community resource" to be filed for future use The film is also listed under "available movies" in the file. The following year another teacher and group will find the same films valuable and appropriate.

Parents help with transportation Much of the work on social studies for the fifth grade is centered on a study of their State and city. Trips are made by the children to many places of historic interest. Parents assist on problems of transportation.

A father sends an invitation. A father sends a message by his child offering their darkroom to the eighth-grade photography club. The same family donates month-old photography magazines to the school.

A mother invites a visitor from China. A classroom study of China brings forth many authentic Chinese pieces from homes. They become objects of study and entertainment and things to be shared together with other groups A mother knows a lecturer on China and invites him to come to school. A child in the group remembers that her music teacher had taught in China. Both of these persons who knew China intimately come to talk to the group Thus firsthand experiences are related to the children in a way that makes China a live and real place to them.

Persons who have recently lived or been in other countries should be invited to participate in a unit of work as the one described above, in order that

[6] Federal Security Agency, Office of Education, *Working with Parents Handbook,* Bulletin, 1948, No. 7, pp. 19-20.

current information about the conditions and life of the country may be presented.

5. School Camp Experience

Significance of Camp Experiences.—In his *Émile,* Rousseau wrote "Life is the trade I teach." Effective living in the world of today requires the development of cooperative skills in living and solving problems together. One of the major difficulties encountered by teachers has been that of integrating many portions of the school curriculum with the life experiences of pupils.

In boarding schools, an adequate opportunity is afforded for training young people to live together in a community under the direction of trained leaders. For pupils who do not attend boarding schools, summer camps and school camps afford to some degree a substitute and provide opportunity for a training which is different from and superior to any community experience available within the walls of a school building. Summer camps sponsored by schools, churches, commercial camp institutions, and philanthropic and social agencies have multiplied rapidly in recent decades and now reach several million young people annually.

In a school camp, children are placed in an environment favorable for learning to live together, to assume responsibility, and to explore source materials of the curriculum.

Planning Camp Educational Experiences.—Prior to the camping trip, the teacher and pupils should make tentative plans as follows:

1. Discuss reasons for camping
2. Plan the trip to camp, exploring interesting places en route
3. Study history of the camp area
4. Compile a list of articles the pupils will need at camp
5. Work out a tentative camp program

Plans should be made to insure that the pupils may participate effectively in such camp experiences as the following:

1. Getting acquainted with the camp area and the other campers
2. Observing trees, flowers, rocks, and birds in the area
3. Making things to be used in the area
4. Sharing responsibility for camp chores
5. Preparing programs of an inspirational nature
6. Taking special exploratory trips
7. Having evening get-togethers
    - a. Campfires
    - b. Songfests
    - c. Story-telling
    - d. Games



All campers share in camp chores

A songfest around the campfire
(Both photos Long Beach, California, Public Schools)



8. Planning leisure-time activities
   a. Hobbies
   b. Crafts
   c. Swimming
   d. Reading
   e. Hiking
   f. Dramatics

Among the more important types of follow-up activities educationally valuable are these:

1. Computing camp expenses
2. Writing letters of appreciation to camp officials
3. Holding class discussions of camp experiences
4. Making plans to continue experiences begun in camp

There are many indications that camping is coming to be recognized as a vital educational experience for all children and youth. Notable among camp programs are those conducted by the schools of Atlanta, Georgia; Catskill, New York; Battle Creek, Michigan; and San Diego County, California.

The teacher has an important role in promoting the development of the school camp movement. In the activities of the camp, the teacher serves as leader of her pupils and utilizes the camp counselors as resource leaders Since the camp experience should be an integral part of the pupil's total educative experience, the teacher is responsible for assistance in planning, evaluating, and integrating the camp program along with that of the school.

The following criteria[7] are proposed for a good school camp:

School Camp Purposes and Philosophy

1. The school camp should have, as its central objective, helping young people to understand the democratic way of life and to practice it in their relationships with others.
   a. The school camp should treat each youngster as an individual. It should guide him, help him face his problems, help him develop his potentialities, and open up new interests to him.
   b. The school camp should help youngsters to live with others, giving and taking, sharing and accepting responsibilities, constantly learning to widen the area of shared interests through partaking in enterprises with others for objectives commonly agreed upon by the participants.
   c. The school camp should stress problem solving involving the process of critical thinking.
   d. The school camp should teach youngsters to be concerned for human welfare, inside and outside the camp.

[7] Adapted from *Toward a New Curriculum*, Yearbook, Department of Supervision and Curriculum Development, National Education Association, 1944, pp. 102-104

Programs to Achieve Purposes

1. The school camp should fully utilize its environment for educative ends, whether that setting be the field, forest, and stars of the organized out-of-doors summer camp, or the community setting of the work camp.
2. The school camp should teach social living and citizenship, using as the raw materials of education those situations and problems which arise in the everyday life of the camp. (Democratic values should be applied not only to the present camp problem which serves as the source but also to larger social issues related to the immediate problem.)
3. The school camp should involve camper and staff joint planning and cooperative conduct of the program.
4. The school camp should be an informal experience in which fun and joy are cherished and promoted.
5. The school camp should be a place where health and vigor are improved, where health, nutrition, and safety practices are taught by the demands of camp living, with direction by educationally alert adults.
6. The school camp should encourage and develop work experiences of a variety of kinds teaching the dignity of labor and the significance of shared responsibility in democratic living.
7. The school camp should continuously evaluate and appraise its program and periodically report its findings to interested groups.
8. While the school camp should fully utilize work experience, forest living, crafts, hikes, athletics, dramatics, and similar activities, it should not conceive its function to be that of a noneducative, nonintellectual agency devoted simply to recreation and physical culture.
9. While the school camp should fully utilize such activities as discussion, reading, forms of self-government, community visitation and study, speakers, radio and motion pictures, it should not conceive its function to be that of a nonsocial, nonemotional agency concerned with developing the mind of the child through the traditional curriculum centered on assuring college entrance for the few.

In short, the school camp may well become an integral part of the youngster's year-round educational experience, blending what is best in camping with what is best in schooling to foster democratic living

6. Using Community Resources in Teaching

The selection of community resources for use in school should be made in terms of very definite educational purposes. The value of relating the work of the school to community life as a method of enriching the curriculum and motivating pupils has been emphasized in previous sections of this chapter. The use of community resources has, however, a broader implication. If, through contact with the community, teachers are able to instill in pupils the recognition of

community problems along with a desire and a plan to improve conditions, one of the major objectives of education, namely, *social* sensitivity, will be achieved.

Ideally the information gained from various subjects and from observation of the community would be fused and utilized in the study of any problem. In schools in which the curriculum is still divided into separate subjects, however, teachers have been able, within the boundaries of each subject, to utilize various community resources in an effective manner. The first requisite for the successful utilization of community resources is for the teacher to know the interests, activities, and resource materials of the local community. The teacher can obtain information in regard to these matters through articles in the local newspapers, conversations with citizens, observation of community activities, and participation in community life.

Increasing Teacher Orientation.—In smaller villages and cities, and also in larger cities where city-wide inventories of available resources of out-of-school educational materials have not been made, the individual teacher should make such an inventory for the subjects she teaches. In doing this, it is recommended that she employ the cooperative efforts of the pupils in her classes, using as the criterion the value of the contribution to educational needs and the purposes of each subject.

While the number and type of resources available vary from one community to another, any community has numerous materials which can be used in different subjects. The amazing thing, however, is the apparent lack of consciousness on the part of many teachers that such educational opportunities exist in their immediate environments.

Many teachers are handicapped by not having readily available suggestions of resources which can be used in constructing school activities around community topics. A valuable in-service education program for teachers is one such as was carried on in Des Moines, Iowa, where interested teachers and community leaders compiled a list of resources which could be utilized in various areas of activity.

In many schools teachers have planned community excursions for the purpose of becoming better acquainted with their local environment and listing materials which might be made available for classroom use.

Variety of Approaches.—The techniques of using community resources vary considerably. Many materials gathered in the community may be brought into the classroom. Among these are exhibits and visual aids. Speakers from some community organizations may be invited to the school. Frequently it is necessary to send individuals,

committees of the group, or the whole group for interviews and observations. Such activities generally are called "excursions." Unless the entire group goes, the excursion demands the sharing of findings with all members of the class through reports and the utilization of pictures, charts, and graphs.

Another way to study community resources is to have the children draw a map of the city, using a color chart in which different colors represent such things as public parks and recreational facilities, industrial plants, schools, churches, libraries, post offices, municipal buildings, courthouses, and other points of interest.

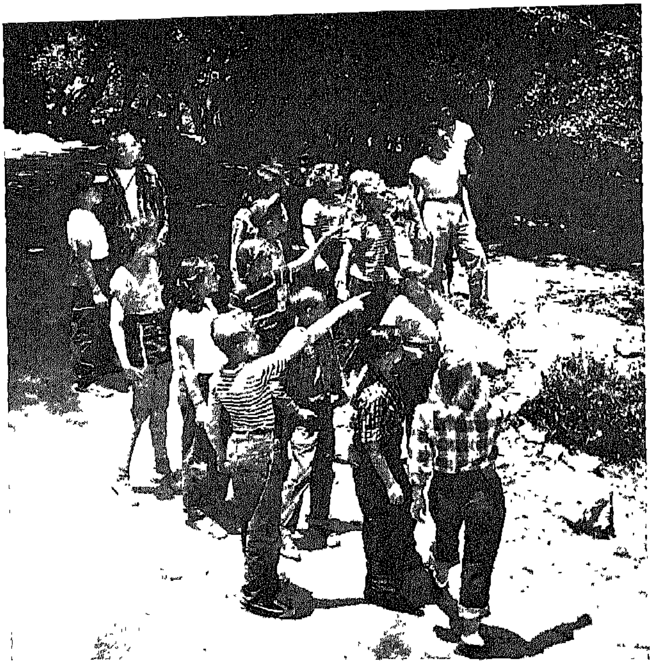
In connection with the use of community resources, care should be taken to employ only those which seem to have the greatest direct bearing on the problem in hand.

Local Community Resources Available.—Communities vary in regard to the number and variety of resources available for use by elementary school pupils. The following list illustrates the types of resources to be found in many local communities. Few communities provide all those suggested Many communities offer several of them.

1. Business
    - a. banks
    - b. business offices
    - c. food markets—retail and wholesale
    - d. hotels
    - e. local stock exchange
    - f. laundries
    - g. lumber yards
    - h. restaurants
    - i. service stations
    - j. shops
        - (1) antique
        - (2) animal-pets
        - (3) clothing
        - (4) hobbies
    - k. stores
        - (1) drug
        - (2) drygoods
        - (3) department
        - (4) jewelry
        - (5) variety
2. Civic Organizations
    - a. local chamber of commerce
    - b. P. T. A.
    - c. patriotic groups

   d. service clubs
   e. women's clubs
3. Communications
   a. radio broadcasting station
   b. telegraph office
   c. telephone office
   d. newspaper office
4. Cultural
   a. architecture
   b. churches, public buildings
   c. art gallery
   d. art studio
   e. book stores
   f. musical concerts
   g. music, literary, and other study groups
   h. private collections of art
   i. public schools
   j. schools and colleges
5. Governmental Agencies
   a. city hall
   b. county agricultural agents
   c. county court house
   d. fire department
   e. forest rangers' headquarters
   f. game warden
   g. reclamation service office
   h. police department
   i. post office
   j. school superintendent's offices
   k. traffic safety officers
   l. weather bureau
6. Health Service
   a. hospitals
   b. public health department
   c. sanitation department
   d. water department
7. Historical Resources
   a. historical museum
   b. local persons available as speakers
   c. memorial markers and buildings
   d. old landmarks
   e. printed documents and records
8. Housing
   a. private homes
   b. public housing projects

9. Industries
    a. bakeries
    b. bottling plants
    c. cheese factories
    d. coal mines
    e. cutlery
    f. dairies
    g. factories
        (1) canning
        (2) oil refining
        (3) sugar refining
        (4) textiles
        (5) metals
    h. farms
        (1) experimental
        (2) general crops
        (3) livestock
        (4) specialized
            4a. cotton
            4b. dairy
            4c. tobacco, etc.
    i. grain elevators
    j. ice plant
    k. printing plants
    l. public utilities, power and light
    m. rock quarries
10. Labor
    a. headquarters labor organization
11. Nature
    a. aquariums
    b. birds
    c. farm animals
    d. florist's shops
    e. insects
    f. plants
        (1) land
        (2) water
    g. public parks
    h. rivers, ocean front
    i. rock formation, hills, mountains, etc.
    j. soil
    k. water fowl
    l. zoo
12. Public Welfare
    a. child welfare centers



Recognizing trees and birds.

Learning about rocks.
(Both photos Long Beach, California, Public Schools)



- b. Community Chest headquarters
- c. local Red Cross offices
- d. orphanages
- e. social welfare agencies

13. Recreation
    - a. public recreational activities
    - b. motion picture theatre
    - c. private recreational facilities
    - d. public park system
14. Transportation
    - a. airport
    - b. automobile service stations
    - c. bus station
    - d. docks, ferry
    - e. garages
    - f. harbors, docks, bridges
    - g. railroad stations—passenger, freight
    - h. streets, traffic signs
    - i. tourist services, trips to places of local interest

Questions, Problems, and Exercises

1. To what factors do you attribute the increasing use of community resources in elementary schools?
2. Suggest a list of criteria which should be used in selecting community resources for study in an elementary school grade.
3. Present arguments for and against the school's assuming responsibility for improving present community life.
4. A major problem in utilizing community resources in teaching is that of coordinating them with other curricular materials. Select a community resource and describe how it can be related to the grade you teach.
5. Outline a community service project in which it might be feasible for elementary school pupils to engage.
6. How may a teacher appraise the educational value of an excursion which her class has made?
7. What contribution can educational films make to a study of local community life?
8. Describe in some detail the methods of utilizing a community resource in your teaching.
9. What factors should be considered before taking a class to observe an industrial plant, coal mine, or museum?
10. What are some of the differences to be recognized in making a general community survey in the rural area and in the urban community?

Chapter 18

EVALUATING PUPIL GROWTH

1. Evaluation Programs

As the elementary school curriculum of the Three R's has shifted to the curriculum which is designed to provide for the development of all the child, so has the program of measurement expanded to a program of evaluation in all four areas—intellectual, emotional, physical, and social. The concept of measurement is much narrower than the concept of evaluation. A program of evaluation tests not only the areas of reading, arithmetic, and writing but in addition considers growth within the areas of appreciations, work habits, physical conditions, cooperation, creativeness, and human relationships. Measurement is concerned with the present status of the child. Evaluation directs attention to the causes that affect status and progress. Measurement depends upon results of tests which are given periodically. Evaluation takes place from day to day in all situations and also utilizes results obtained from tests.

The term *evaluation* is all-inclusive: it includes the objectives in all areas of learning; it concludes data obtained from objective measurements and from subjective appraisal; results obtained from inventory tests are as important as those from final tests; and the information obtained from behavior patterns on the playground is needed as well as the information obtained from classroom observation.

Evaluation may well be a cooperative enterprise. Teachers, children, parents work together in setting up objectives which serve as aids in clarifying the goals. During cooperative discussion periods children and teachers establish their own evaluative criteria for the various learning situations and with these as bases they appraise individual and group procedures in solving problems. During conferences parents and teachers evaluate the behavior patterns of children in an attempt to locate causes and to evaluate possible remedial procedures.

Importance of Evaluation.—Evaluation is an activity which is essential in every teaching situation. The objectives which are set up

guide those who are responsible for building the curriculum in determining content, experiences, techniques, and the evaluation instruments themselves. Objective measurements and subjective appraisals make it possible for those who are concerned with the welfare of children to know how much they have learned and how much they have improved in the development and application of skills, habits, attitudes, cooperation. This information is an aid in guiding and in motivating further learning. The results of evaluation indicate what needs to be done in order to correct misunderstandings, to correct ineffective techniques of teaching, and to adjust materials to the abilities of children. Summaries and cumulative records are valuable data in interpreting to the community the accomplishments of the school, in informing the community about the needs of the school, in securing its support in school legislation, and in reducing criticism.

Characteristics of an Effective Evaluation Program.—Good teachers in the past have attempted to discover whether children had reached a specific goal in the learning process. They have been concerned specifically with the intellectual growth and as a result, tests were devised to measure growth in the acquisition of factual information. The teacher of today is concerned with the evaluation of growth of the entire child in all aspects of his personality. Since the behavior patterns are of many types, devices of evaluation also must be of different types. An effective evaluative program which purports to meet the needs of today's children must embody the following:

1. Objectives defined in operational terms or in behavior patterns.
2. Situations which will foster the evaluation of behavior patterns.
3. Techniques which will be used in evaluating behavior patterns.
4. Interpretation of data obtained about learning
5. Records which facilitate evaluation.
6. Reports which are usable by those who are interested in the progress of children.

Objectives.—In order to evaluate growth or change, it is essential to know the objectives toward which growth is directed In the school of today, the objectives are all-inclusive in terms of child growth and development and include the following factors: (1) mastery of the tools of learning; (2) acquisition of information, interest, skills, ideals, and attitude having high social value; (3) correction of physical defects and keeping well; (4) developing a sound healthy personality; (5) possessing satisfactory human qualities which make for good human relationships; (6) solving individual and group problems; (7) developing creative abilities. In order to make it possible to

use the objectives, it is imperative that they be stated in terms which are understandable and usable. The intangible factors which are involved in cooperation, critical thinking, and attitudes must be stated in operational terminology. For example, the operational terminology for critical thinking may be stated in the following terms:

1. Makes intelligent observations
2. Asks intelligent questions
3. Detects essential and nonessential elements in problems
4. Presents original ideas in planning situations
5. Summarizes materials satisfactorily

Even though the task of setting up major objectives in operational terminology is a difficult one, it is essential to effective measurement of results. It is imperative that the teacher evaluate reactions of children in terms of specific behavior patterns. Since the needs of the individuals, of society, and of our democracy are not static but are ever changing, it means that our goals must be critically scrutinized on the basis of change. Children, with the guidance of teachers year after year, will reinterpret the major objectives by setting up criteria based on their needs, capacities, and interests. Thus, the statement of behavior patterns in concrete terms will be understood by children, parents, and teachers.

Evaluative Situations.—In order to bring about desirable changes in behavior patterns, it is necessary to plan for situations which will provide the child with a desire to raise his level of accomplishment and make efforts to bring about needed improvement. No classroom can provide possibilities for the development and evaluation of all behavior patterns. Intellectual skills and abilities can best be developed and evaluated in a typical classroom. Social amenities are fostered and observed most satisfactorily on the playground, in the lunch room, on an excursion, at a birthday party. Attitudes and appreciations should be studied in situations which are characterized by an emotional tone; for example, an attitude of good sportsmanship is genuine when at a ball game the members of the losing team were "good sports." Mental and emotional disturbances may be evaluated through creative releases, such as finger painting, drawing pictures, and writing poems. Physical conditions, such as fatigue and listlessness, are observable in the classroom, on the playground, on excursions, and at home.

Techniques of evaluation are determined by the type of behavior pattern which is being evaluated. In determining growth in the tool subjects, such as reading and arithmetic, standardized achievement

tests and teacher-made tests may be used. Readiness of children in various areas of learning may be determined by means of readiness tests and diagnostic tests. Intelligence tests are means of guidance in determining the power of the children in mastery of intellectual skills. In order to measure the degree of human social relations, sociograms may be used.

In addition to "tests," teachers devise and use a great many situations in which the behavior of the learner may be observed as it brings into relief the degree of learning that has taken place in the specific areas.

Among the types of information most useful in evaluation are the following:

1. Rating of material things produced by learners, e.g., drawings, clothing, foods, objects in arts and crafts work. Development in conversation
2. Rating of skills developed by learner as observed by teachers, e.g., in getting along with others, in singing, in speech, in personality
3. Rating in observations, in socially preferred ideals and attitudes, e.g., honesty, responsibility, concern for the welfare of all, etc.
4. Anecdotal records of behavior of children based upon observation
5. Data concerning child growth gathered from
   a. Attitudes and conversation of other children
   b. Conferences with the child himself
   c. Conferences with parents
   d. Sociograms and similar devices
   e. Health records
   f. Physical examination records

Interpretation of Data.—The interpretation of data obtained by means of different evaluative aids includes the following factors:

1. Translation of test scores into meaningful terminology
2. Interpretation of the successes and failures
3. Integration of information obtained by means of different evaluative instruments and aids
4. Presentation of recommendations for remedial measures and for guidance

The information acquired should be organized and recorded in such a way as to facilitate interpretation of results and to make material available for guidance and motivating purposes The cumulative records which include all information are most desirable.

2. Characteristics of Good Evaluation

Types of Measurement—Daily Class Marks.—In schools in which the work is organized on the daily class period plan, some teachers record marks based upon pupils' achievement in each recitation. Those teachers consider a series of daily marks as one of the bases upon which a final evaluation of each pupil's work should be made. Some of the purported values of the daily class mark are:

1. The daily mark is an immediate incentive for pupil study.
2. A large number of daily marks provides a broad base upon which a final mark in the course can be determined.
3. The use of the daily mark decreases the emphasis upon final examinations.
4. Its use makes pupil evaluation a continuous process throughout the course.
5. It serves as the basis of pupil diagnosis and remedial work.
6. Its use assists in establishing pupil habits of attention during the recitation.

Many teachers are convinced that when superior teaching is being done the disadvantages of the daily marking procedure far outweigh the advantages. The teacher tends to become a bookkeeper intent upon recording a symbol opposite the name of each pupil. Elaboration and explanation by the teacher are necessarily reduced to a minimum, lest he invalidate a pupil's mark. Thus the recitation becomes only an oral testing period. The formality of the situation limits pupil discussion to the questions, whereas spontaneity and freedom of expression should be encouraged. Each pupil attempts to outwit the teacher by preparing the answers to the questions he thinks he is most likely to be asked. The inequality of the questions in respect to their difficulty and importance does not provide a common basis for evaluating responses of the different pupils. Since it is impossible to ask each pupil more than one or two questions, the sampling of his information on the lesson topic is so limited as to make it very unreliable. The forced attention of pupils is very likely to destroy genuine interest in the subject by focusing it upon the mark which is being recorded.

In the event it seems advisable to make a record of the pupils' work in the daily recitation, the teacher can make notations periodically in an informal manner. This procedure makes it possible to use the recitation as a clearinghouse for information and for exchange of ideas, rather than as a situation in which an attempt is made daily to frighten the pupils into learning.

Notebooks and Written Work.—In connection with several subjects, it seems advisable to require pupils to keep notebooks in which they record class notes and reports of outside readings. While it is feasible for the teacher to inspect notebooks at frequent intervals for diagnostic purposes, it is not necessary to record evaluation of the notebook in the form of a mark. Frequently a casual examination of the notebook material may reveal the information necessary for guiding the pupil in the subsequent work of the subject. In the case of both notebooks and written papers, notations indicating errors should be made in order to assist the pupils in revising the materials. Unless the work on notebooks and other written papers is done in the classroom under the supervision of the teacher, it is difficult to ascertain what weight should be given them in a determination of the final grade. The understandings and other learnings which the pupil acquires as a result of his notebook and other written work should be revealed, not merely on the basis of the materials themselves, but rather in connection with his performance on examinations and his other classroom activities.

Oral versus Written Tests.—Considerable thought has been given by authorities on measurements to the relative values of oral and written tests in programs of evaluation of pupil achievement. In practice, the amount of time given and significance attached to the two types of tests has varied greatly from school to school as well as from one classroom to another. While there is disagreement in regard to the comparative merits of oral and written tests, many teachers believe that both types have an important part to play in achieving the numerous purposes of measurement in teaching.

The advantages of the oral test in the classroom may be summarized as follows:

1. It gives the pupil experience in oral expression.
2. Pupils derive certain benefits from the responses of other pupils.
3. The total number of oral questions answered by a class is greater than those that pupils can write in a given class period.
4. Errors made by pupils can be discovered and corrected immediately in the class period.
5. The visual sense utilized in reading and writing about a subject is supplemented by the use of the auditory sense in an oral test on the same material.
6. The extraneous factors of handwriting and neatness of papers are absent.
7. There is less paper work for the teacher.

As an instrument of measurement, the written test is distinctly superior to the oral test in several important respects, as follows:

1. Since all the pupils of a class answer the same list of questions, the teacher has a fair basis for comparison of test results.
2. Written responses to written questions can be evaluated on a more objective basis than oral responses.
3. By the use of objective types of written tests, responses of each pupil to a large number of questions can be obtained in a class period, thus reducing the unreliability of limited sampling by means of the oral test, in which each pupil has the opportunity of answering only one or two questions.
4. The difficulty and importance of the questions answered by different pupils are equal, which validates marks given on a comparative basis.
5. The written test paper provides a record of the pupil's achievement which can be carefully analyzed for diagnostic purposes
6. The influence of extraneous factors in testing, such as pupil timidity and handicaps in oral expression, are minimized.

It appears probable that a combination of tests of considerable variety and scope is necessary in an adequate program of testing.

Score Cards or Ratings.—In some subjects it is possible to employ score cards and ratings of a finished product which may be taken as a measure of the growth of the learner—not only of his information, but of his understandings and his skills. Ratings are particularly useful in the teaching of art, industrial arts, agriculture, and household arts. Typical of such rating devices are the following for use in measuring clothing construction and in measuring social participation:

Score Card for Rating Dress Construction

I. Suitability to Individual		35
Neckline	5	
Color	5	
Trimming	5	
Design of material	5	
General line of dress	5	
Suitability to occasion	5	
Design of garment	5	
II. General Appearance		35
Fit of garment	20	
Cleanliness	5	
Pressing	5	
Originality	5	

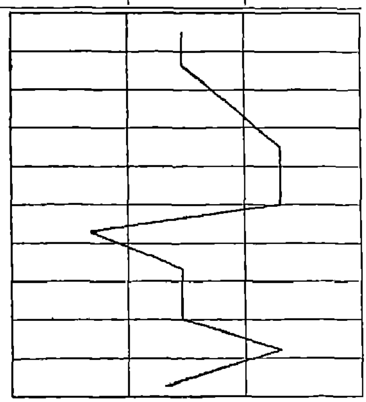
III. Workmanship 20

Seams: width, evenness, suitability 5
Stitches: length, neatness 5
Hems: evenness, stitching 5
Findings } : evenness, stitching 5
Facings }

IV. Cost 10

EVIDENCE OF RESPONSIBLE PARTICIPATION IN SOCIALLY SIGNIFICANT ACTIVITIES *

Type of Participation	Evidence		
	Weak	Average	Strong
Attends meetings			
Prompt at meetings			
Makes suggestions			
Shows interest			
Volunteers work			
Obeys club rules			
Cooperates with other members			
Follower as well as a leader			
Cheerful			
Suggests worth-while projects			



* Adapted by Evelyn M. Herrington and Maurice E Troyer, Syracuse University.

It is a valuable educational experience for members of a class to develop such a rating device and to employ it in rating their own work and that of their fellow learners.

Anecdotal Records and Informal Observations.—Teachers need not rely entirely, for data concerning learner growth or status, upon situations especially devised for measurement. The more intelligent and observant teacher will be constantly looking for evidences of growth, of maladjustments, and of failure to grow. She will constantly observe the written work of students at their desks, their participation in discussions, their questions, and their performance in situations outside the classroom, with a view to gathering data concerning the growth of the individual pupil.

Almost daily she will wish to record her observations of evidences

of growth or lack of it on the part of at least a few of her students. These may be entered in classbooks, in memo books, or in files of pupil data. These observations may occasionally take the form of brief anecdotes such as the following:

> In reading period today, Mildred did not work well even after receiving individual help in analyzing difficult words. She seems to be discouraged in learning to read and is attempting to gain admiration in her group by showing off. I think that the reading material is too difficult and that by locating her reader level, she will do satisfactory work and as a result gain the admiration of her friends because of her accomplishment.

Understanding of Evaluation.—Since instruments of evaluation may measure several different factors, it is imperative that the evaluator have in mind clearly the behavior patterns which he is evaluating. An achievement test in arithmetic will indicate whether or not the child is having difficulty with the process of long division, but it may not show diagnostically what division facts and subtraction facts have not been mastered. A child scoring high in a recognition vocabulary test cannot always be considered as having a good comprehension in reading; in fact, his comprehension may be negligible. A child possessing a wealth of information on the culture of a nation cannot be considered as having no prejudices toward its people.

Validity.—Validity means that the evaluating instrument must measure or evaluate that which it purports to measure and that it tests what the teacher desires to test or to measure. There are several ways by which one may judge the validity of a test. The simplest way is to examine the material of the test and make a common-sense evaluation of it as a measuring instrument for the subject or function which it tests. In doing this it is essential that the evaluator get in mind or on paper before him the objectives of the outcomes desired (e.g., information, understandings, ideals, attitudes, skills) and then see to what extent the test in question measures growth toward the objectives in terms of those outcomes and in proportion to their relative importance.

Another procedure is to compare the subject matter of the test with studies or discussions of the objectives and essentials of the subject and with studies of the relative social utility of the items within the course. It is frequently helpful to construct test items as learning progresses and coordinate them when a test is to be given.

The most effective method of determining the validity of a test, however, is to discover its correlation with a known valid criterion of the achievement or behavior pattern which the test is used to measure.

The results obtained are usually indicated in the instructional materials that accompany the tests.

A test that may be valid for one group of children may not be valid for another group of children. For example, a test that is given to a group of children who are bilingual, and who have difficulty in expressing themselves in the language in which the test is written, will be invalid for that particular group of children in that the scores are a measure both of language difficulty and of whatever the test was intended to measure.

Reliability.—A measuring instrument is reliable if it gives consistently the same score when repeated under similar conditions and there is no variation in the score even though different individuals may score the paper. In addition to the quality of objectivity with respect to scoring, reliable tests should not record chance fluctuation in the person being tested. Barring gross error on the part of the person doing the measuring, approximately the same result is obtained when a foot rule is employed to measure the width of a window, no matter how many individuals make the measurement or how many times it is made. This should likewise be true with school achievement tests. However, tests differ in the ability to call forth consistent responses from the student. On some tests a pupil's score will vary appreciably from one testing to another and for no apparent reason.

A Fundamental Characteristic of Validity is Objectivity.—Objectivity in tests means freedom from individual bias or idiosyncrasy in the scorer and hence implies that two or more evaluators will arrive at the same evaluation. Many tests are so devised that it makes no difference who scores the test; barring error, the score will be the same. Everything else being equal, tests which permit of no disagreement between scores are much to be preferred

The length of a test also determines its reliability. Up to the limit of fatigue or varying attention, the longer the test, the greater is the opportunity to find what the child knows or does not know. Administration procedures often affect the reliability of a test; if a child becomes disturbed and does not put forth his best effort, for him the measure is not reliable.

The coefficient of reliability of tests varies all the way from a little above zero up to .90 or .95. In the very large majority of well-made tests, the coefficient of reliability lies between .75 and .85 for a given grade, e.g., the fifth grade, and are rarely found to be more than .90. Tests having reliability coefficients of more than .80 for a single grade may be used with confidence. When the reliability is

below .65, two forms of the test should be combined in order to get reliable scores if the test is used at all. In general, tests having reliability of less than .75 for pupils in a single grade, or .90 for a range of three grades, are hardly worthy of use where exact measures of individuals are desired. For comparison of groups as large as 25 or 30, reliability of .60 or .65 is sufficient. Reliability coefficients based on the performance of children in more than one grade should be higher than those based on the performance of children of one grade only. Like measures of validity, measures of reliability should be furnished with the description of tests, and should be noted by prospective users. It should be remembered that in using diagnostic tests the reliability of an item or a section of the test is usually materially less than that indicated by the reliability coefficient for the entire test.

Practicability.—Tests should not be long enough to develop fatigue or boredom on the part of children. Instructions and directions should be as short and simple and clear as possible. The ease of administering an evaluative measure and of checking results is also important.

Various devices are employed to keep at a minimum the amount of time necessary to score the tests. One device is to use strips of paper or cardboard with correct answers so spaced as to fall beside the blanks for the answers on the test. These may be placed edge to edge with the test paper, so that the correct answer is close to the pupil's answer, and can easily be seen. Another form is the cardboard answer key with apertures which, when the key is superimposed on the test paper, fit directly over the spaces provided for the pupil's answers, thus enabling the scorer to compare the answers on the pupil's test paper with the answers printed at the edge of the openings.

Interpretation.—Instruments of evaluation which cannot be interpreted by classroom teachers with a minimum amount of effort are not practical. Data to be used effectively by teachers must be translatable into meaningful, descriptive language which makes possible an appraisal of growth that can be communicated to children and to parents.

Usable Forms.—With a few exceptions the teacher attempts to bring about as much growth as possible in view of the limitations of time available and the degree of intelligence and maturity of the learners. She is dissatisfied if nearly all pupils reach only a minimum level. Since this is so, she desires to construct or to select an evaluation device which will measure various degrees and amount of growth.

She also wishes to use a measuring device with available data and techniques which will enable the teacher and learner to evaluate growth by means of its measurements.

Most useful for this purpose are data concerning the performance of other individuals on the same measuring instruments under the same conditions. With many standard tests such data are provided in the form of percentile norms, e.g., the scores of ratings made by the pupils who rank 95th, 90th, 85th, and so on in a hundred, or proportionately in any smaller or larger group of persons. To be the most useful such norms must possess the following characteristics:

1. They should be based upon at least several hundred cases, and preferably several thousand cases, of learners of comparable age and grade placement.
2. They should have been obtained under conditions similar to those under which the test is to be given, for example:
   a. At the same time in the course, that is, at the end of the first semester, in the middle of the second semester.
   b. From a group of the same general level and distribution of ability as the one to be tested; or if not, then from a group of known general level and distribution of ability so that appropriate allowances may be made

In interpreting the test scores by means of norms, consideration should be given to such matters as:

1. The degree to which the teacher has emphasized the objectives or areas emphasized by the test
2. The amount and character of instruction the class may have received in previous years and in other areas likely to stimulate growth along the lines emphasized by the test
3. The general intelligence of the class or the particular individual
4. Any unusual distracting or motivating conditions attending the giving of the test

3. Objective Tests and Their Construction

Objective Tests.—For more than a quarter century we have been using, experimenting with, and improving what have been called "objective" tests and examinations, such as true-false and multiple-choice tests. Among the things we have learned are that objective tests are not wholly objective and that "essay" tests can be so constructed and scored as to be less subjective than they ordinarily are. It should be noted that essay tests are not practical for children in the lower elementary grades.

The construction of good objective tests requires great care and considerable time. Teachers have discovered that there may be disagreement upon whether a statement is true or false and upon which is the best answer among several choices presented. They also had difficulty in constructing objective test items which do not permit different interpretations by the pupils. The most serious of all limitations is that teachers employing objective test procedures have tended to include too many trivial items, too many isolated factual items (means and not ends of learning), to the neglect of items measuring understanding, mental skills, attitudes, interests, ideals, and habits. Only recently has anything like adequate attention been given to the matter of constructing objective test items which do measure other types of outcomes.

While particularly in the upper grades "objective" tests may be used to excellent advantage, they should always constitute only a part of the evaluation program. Among the more commonly used types of "objective" test items are those discussed in the following paragraphs.

The True-False Test.—The true-false test consists of a number of statements the truth of which the child is asked to affirm or deny. The testee is usually instructed to encircle or to check one of the two words *yes, no,* one of the two letters T, F, or one of the two words *True, False;* the test may be set up so that the testee writes in the blanks provided either True or False, Yes or No, + or 0.[1] The blanks, words, letters, or symbols should be placed in a column at the right or at the left of the respective statements. If placed at the right, the testee may write without having to place his hand over the test paper Below is a portion of such an examination

1. There is land on both sides of a strait.	Yes	No
2. An isthmus is a narrow strip of land that connects two large bodies of water.	Yes	No
3. An island is a small piece of land surrounded by water	Yes	No

In recent years the true-false test has come somewhat into disrepute, only in a small part deserved. The principal weaknesses for which the true-false test has been criticized are (1) lack of reliability, (2) lack of validity, and (3) unintelligent use by the teachers. Much of the criticism centers around the use of petty detailed facts and the failure to use statements calling for judgment and the more important facts and principles.

[1] See "The Measurement of Understanding," the *Forty-fifth Yearbook of the National Society for the Study of Education,* Part I, pp. 130, 295-297.

It is obvious that the chance of guessing the correct answer in the true-false test is greater than in other types of tests On the other hand in a given period of time a greater number of true-false items than of other types can be covered in a test and, if the number of items is great, students will tend to break even on bad and good ones. Approximately one and a half times as many true-false items can be completed as five-choice best-answer or multiple-choice items. True-false tests are about as reliable as other types of objective tests requiring the same amount of time for taking.

Multiple-Choice or Best-Answer Test.—Among the most commonly used of all types of objective tests is the multiple-choice or best-answer exercise. It has been found that this type of test is more valid and reliable than the true-false test and also checks on a large number of abilities, such as discrimination, judgment, and understanding. Teachers who construct multiple-choice tests must be aware of the fact that all responses deserve attention and require the reader to think critically as he makes his decisions. No item should contain any clues to the correct answers, nor should items be included which are obviously false. The task is to select, from three or more possible answers, (four or five are probably best), the correct one or the best answer to the question or problem stated. Children may be instructed to check the correct response in any of several ways, such as to draw a line under the correct answer, or to write the number or letter of the responses on a blank or in a parentheses placed at the beginning or end of the statement.

Multiple-choice tests take different forms as presented in the following examples:

Directions: Select the one correct spelling in each line, and underscore the correct spelling:

houce	hous	house	howse
city	sity	citi	cite
beleeve	believe	believ	beleive

Directions: Underline the correct words in the following sentences:

The wind (have, has, or had) blown.

Temperature is measured with (a barometer, an anemometer, a speedometer, a thermometer)

Directions: Draw a line under the right ending for the sentence:

Beavers build their homes near the water
near a town
near the highway
near the mountains

Directions: Place an X before the best reason why the summers of Colorado are cooler than those of Kansas:

Much of the state has an elevation of at least 5,000 feet above sea level.
The prevailing winds blow from the west.
Colorado is on the fortieth parallel.
Colorado is in the West.

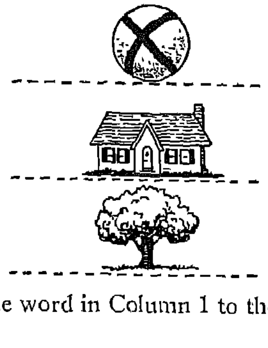
Matching Tests.—Matching tests are not difficult to construct and are used in order to measure ability to see relationships, to associate ideas, and to understand concepts of symbols, such as words, numbers, abbreviations. Items are arranged in groups of three or more and are matched with terms grouped in a second column. A form of matching test is the ranking or arrangement test in which a given number of items are ranked in the order of time of occurrence, merit, or in accordance with some other criterion. For example, the child may be instructed to: "Arrange, in the order of their happening, the following events by writing the number 1 after the one happening first, the number 2 after that happening next, and so on." Illustrations of matching tests are given below:

Directions: Draw a line from the word to the picture that matches it.

House

Tree

Ball



Directions: Draw a line from the word in Column 1 to the word having an opposite meaning in Column 2.

1	2
right	sour
black	sad
sweet	left
happy	white

Directions: Write in the blank before each inventor the number which corresponds with his invention.

1. telephone	________Edison
2. electric lamp	________Morse
3. telegraph	________Bell

Completion Items.—The completion item consists of a statement from which one or more key words have been omitted and enough data are given to designate what is wanted. The child is asked to fill in the blanks with the correct words.

The completion test exercise has one prominent advantage as compared with certain other types of objective examinations, in that it tends to keep guesswork at a minimum and that it calls for recall rather than merely for recognition of correct answers. As usually employed it may not be entirely objective, as it may call for subjective judgment relative to the correction of the answers. It is also likely to encourage learning of exact wordings of statements rather than of the content of ideas.

The completion exercise possesses the advantages common to all objective examinations. It also possesses the particular quality of the recall type of exercise, namely, the power to recall the correct response and to distinguish it from others. It possesses a peculiar shortcoming in that it places a premium upon the ability to form rote or verbal associations. Also, unless the items making up the test are chosen skilfully, they are likely to be somewhat indefinite, permit of more than one correct answer, or furnish insufficient data to stimulate the pupil to the correct response, even if he may know it. These pitfalls should be kept in mind when a completion test or check is being constructed. Some sample items follow:

1. Cirrus clouds are composed of _____ particles.
2. Clouds are formed whenever there is _____ _____ in the air

Directions · Fill in the blanks with N, NE, S, SE, SW, W, etc

1. Chicago is _____ of Detroit
2. Philadelphia is _____ of New York City
3 San Francisco is _____ of Denver

Essay Tests.—The "essay" types of test materials possess certain limitations and weaknesses as well as unique value. Only a few essay items can be included in an examination and therefore the items should be selected with very great care in order to constitute a good sample of all the growth the test is intended to measure. Essay questions are

often open to misinterpretation. Because of the small number of essay questions in any given examination, to misunderstand what is called for and write an answer to a question wrongly interpreted may result in a total test score which is a very misleading measure of the learner's status or growth.

In answering essay questions, children are likely to consume too much time in writing, wander from the main idea, and distribute their time unwisely. Marks in essay tests are quite likely to be measures of composition—of ability to interpret questions, to write concisely, and to distribute time wisely. These are outcomes other than knowledge, understanding, general habits, and other results which the instructor may have been attempting to achieve.

One of the most important ways to increase the objectivity and hence the reliability and functional validity of an essay test is to prepare for each question in advance an answer key covering all the more important points which an excellent or nearly perfect answer would include. With the key prepared carefully in advance, the teacher can then score each paper on a relatively objective basis, depending upon the number of points adequately treated in the pupil's answer. Before starting to score the paper the teacher will find it useful to prescore answers of a few papers on each question, with a view to testing out his key. Frequently the key is revised after reading a few answers. Many teachers find it useful to provide some scale of points for evaluating qualities of answers such as allowing 3 for a nearly perfect answer, 2 for fairly good answers on the more important points, 2 for nearly perfect answers on all but one or two important points, and 1 for partial answers on less important points.

Diagnostic Tests.—Diagnostic tests serve the purpose of discovering specifically those skills, facts, and knowledges in which the children are weak. This information constitutes the content of a remedial program. The numbers and variety of diagnostic tests sold by commercial concessions are large. Catalogues and sample copies may be obtained by writing to the following publishers:

California Test Bureau, Los Angeles, California.
Scott, Foresman Company, Chicago, Illinois.
Educational Test Bureau, Minneapolis, Minnesota.
Public School Publishing Company, Bloomington, Illinois.
World Book Company, Yonkers, New York.
Lyons and Carnahan, New York, N. Y.
Rand McNally & Co., Chicago, Illinois.
Teachers College, Bureau of Publications, Columbia University, New York, N. Y.
Bureau of Educational Research and Service, University of Iowa, Iowa City, Iowa.
C. A. Gregory Company, Cincinnati, Ohio.
Cooperative Test Service, New York, N. Y.

Using Standard Achievement Tests.—Teachers using standardized achievement tests should use tests having equivalent forms. One form may be used in the fall in order to establish the basal evaluation; then by giving another form later comparisons may be drawn, thus making it possible for the child to see his progress in an objective way. By translating the raw scores into meaningful terms, such as age norms, percentiles, reading age, educational age, accomplishment quotient (depending on the construction of the test, the information of which will be conveyed to the teacher by means of the instruction sheet which accompanies every test), the teacher and child will detect those areas in which the children are low and high If a child scores one or more years below grade and if his mental age is one or more years below the mental age to master the work, the work is too difficult for him. Adjustments should be made in goals to be achieved and in materials used, thus making it possible for the child to master his problems. If a child is one or two years below his normal grade and if his mental age is one or more years above the mental age to master the work, further diagnosis is needed—there may be an emotional block, a reading problem, frustration because of home conditions, physical fatigue because of malnutrition or working late at night in order to help with the family budget; it is evident that in situations of this type causes must be removed. Diagnostic tests will reveal the nature of a remedial program.

4. Devising Means of Measurements

General Principles of Constructing Pencil-and-Paper Tests.—The procedure in constructing an objective examination is summarized in the following paragraphs.

First, determine what is to be covered in the examination, and get in mind the outcomes of teaching which constitute the chief objectives of the learning activities; that is, what information, what skills or habits, what ideals or attitudes are aimed at in presenting the material to be tested, and which of these is of most worth.

Next, determine how much time is to be given to the test, and estimate how many exercises may be completed by the pupils in the time available.

Select about one and one half times as many exercises, testing the possession of information, skills, habits, ideals, or attitudes emphasized, as may be given in the time available, consciously attempting to

distribute these over the course somewhat in proportion to the importance of each outcome in the ground covered.

In formulating objective test questions or exercises, one of two plans may be employed. All the test exercises may be of one type, true-false, completion, or multiple-response; or the examination may be made up of different types. Ordinarily the latter procedure is preferable, since the most effective type of exercise for each item may be chosen on an individual basis. Items should be formulated in the types most appropriate to the achievements to be tested. Items which are not of primary importance and which are difficult to fit into any form may be tentatively set aside to be used only in case they are needed to give balance or to complete the examination. The shorter the question or exercise, the better.

Care should be taken to formulate exercises in such a way that something more than memory is tested. Some questions involving reasoning and attitudes should be provided.

Care should be taken to include some questions which all pupils are likely to answer, and some which very few are likely to answer. The other questions should range in difficulty between these extremes, with a goodly percentage of questions of average or reasonable difficulty. This precaution is desirable in any examination.

Go over the test exercises carefully, discarding those which are ambiguous or misleading, or which demand elaborate qualification. Reduce the number of test exercises to the desired number, being sure to retain such exercises as will give the test "range," as provided for in the preceding paragraph, and those testing important objectives. Discard those exercises which are least objective and which serve to test powers tested by other questions or exercises. Care should also be taken to preserve proper distribution among the different parts of the material covered.

Rearrange the remaining exercises into groups by type; that is, group all the true-false exercises together, all the multiple-choice together, and so on.

Rearrange within the groups in the apparent order of difficulty, or in some other logical order. The most difficult exercises should not be placed toward the beginning of the test.

In preparing the blank forms for the test, attempt to control the position of the answers, allowing for them preferably along one side of the page to facilitate scoring.

Finally, prepare a key of correct answers in such form that it may be laid alongside the pupil's paper and thus permit rapid scoring. A cardboard key is very convenient.

Special Suggestions on the Framing of True-False and Multiple-Choice Exercises.—A true-false examination should contain at least fifty or sixty items to be reliable, although of course a smaller number may be employed when the true-false items form part of a test consisting of several types of exercises. The number of true and the number of false statements should not be exactly equal, nor always approximately equal. It is better to vary procedure in this respect, as otherwise students will learn to adapt their answers in order to distribute them equally between true and false. However, not less than 25 or 30 per cent of the statements should be of one type. True and false statements should neither be bunched nor alternated, nor should they be arranged in any systematic order which would give any clue as to which are true and which false. Care should be exercised to select false statements which are not obviously false, and which will not permit the student to identify the correct answers by eliminating the obviously incorrect ones or by any other process of reasoning which does not involve the possession of the knowledge or skill to be tested. The false statement should in every case be one which the student would be as likely to call true as false if he did not possess the knowledge or other educational outcome which the statement is designed to test.

For example, the statement that "An ant has three legs" is not a good statement to use in a true-false exercise. Most pupils will identify it as false without any reference to how many legs an ant has, because they do not believe that any insect has an odd number of legs. Likewise the statement that "Chicago is the capital of Michigan" may be identified as false without knowing what the capital of Michigan or the capital of Illinois is, because the pupils know that Chicago is in Illinois.

When preparing multiple-choice questions, the correct answer should not always occupy the same position (for example, third in the possible choices), nor should the location of it follow any consecutive pattern, such as fifth, fourth, third, and so on

In selecting completion exercises, care must be taken to leave only key words blank, and to furnish, in the portion of statement given, enough data to constitute a fair test—that is, to designate what is wanted. If this is not done effectively, the test may degenerate into a guessing contest.

In an enumeration test one should attempt to formulate exercises which require a minimum of writing and for which there is only one correct answer, or at least exercises which will permit little difference in scoring between different teachers. Ordinarily it is better to avoid

using exercises in the scoring of which it would be necessary to give partial credit to some papers.

Suggestions for Constructing Essay Examinations.—There is a great variation in the reliability and validity of essay examinations. Their quality is dependent very largely upon the amount of attention and skill devoted to application of the following principles and suggestions:

1. Select topics which taken as a whole comprise a good sample of the more important sections of the area of the subject which the examination is intended to cover.
2. Be specific and clear in stating the topic and the instructions for dealing with it; for example, if learners are asked "to criticize" they should be told upon what basis or with respect to what. Frequently there should be subordinate or supplementing instructions, as in the following:

   > Discuss farming in the lowlands of southern California with particular reference to the farmer's dependence on irrigation, to the irrigated crops that are grown there, and to the changes brought about in farming as a result of improved farming equipment.

   Rarely if ever should pupils be asked to "Tell what you know about . . ."
3. State each question or make each statement so as to measure something besides recall of information, i.e., understanding of the information, its importance, its implications, etc.
4. Word each question or topic so that the pupil will more probably write his answers in sections or parts in response to the different points to be discussed.
5. Estimate the time required by a slow pupil to write out an excellent answer to the question and indicate that amount of time in parentheses after the question.
6. Try the questions out on some disinterested child to see if they will be clearly and accurately understood.
7. Attempt to keep at a minimum the time required for writing answers. It is of great value in essay examinations to call for short, concise answers so that more questions may be asked.
8. Prepare questions which will permit objective scoring as far as possible. This is achieved by planning questions in the manner suggested in 4 above. Questions so planned can be scored against an inventory of the parts required in a perfect answer.

For oral questions, see the discussion and suggestions in Chapter 14.

5. Evaluation in Different Areas

Tests of General Mental Ability (Intelligence).—Intelligence tests are indicative of the child's ability to succeed in the language arts and not in such areas as art, music, mechanical ability, human relationships. The individual test is the most reliable, but time-consuming in its administration. For practical purposes group tests are reasonably reliable, but it would be advisable if in doubt about a child to use the individual test. Children who are bilingual or who have a reading disability will rate higher on the nonverbal test, which is a truer measure of their mental ability.

Evaluating Aptitudes.—Aptitude tests are means by which we predict the fields in which an individual will succeed. The *Seashore Musical Talent Tests* predict degree of success in music; other tests for musical ability are found in the second series of Victor records, which may be used for untrained children from grade 5 up to about second year in High School; these tests include pitch, loudness, time, rhythm, timbre, and tonal memory. Another aptitude test for children of the same age is the *Stenquist Mechanical Aptitude Test,* published by the World Book Company. A. S. Lewerenz is the author of *Tests in Fundamental Abilities of Visual Art,* published by the California Test Bureau. Mechanical ability and motor skills (ages 4-16) may be tested by *Oseretsky Tests,* published by Educational Test Bureau.

Intelligence Tests and Aptitude Tests.—The important scores obtained from intelligence tests are the mental age, M.A., and the intelligence quotient. The latter is obtained by dividing the M.A. by the C.A. or chronological age. The M.A. indicates mental maturity and means that a child with an M.A. of seven years has the mental maturity of the average child with a chronological age of seven years; the I.Q. indicates the rate at which the child is maturing and is an indication of the speed at which a child can learn. Children with I.Q.'s of approximately 100 are average. A child with an I.Q. of 85 learns more slowly, all things being equal, than the child of the same age with an I.Q. of 100; and a child with an I.Q. of 115 learns easily and can complete his work in less time than the average child.

Results of intelligence tests and aptitude tests should be used only by individuals who understand the limitations of the predictions. The elementary teacher should give much more study and thought to intelligence and aptitude tests than can be allowed for in this volume. The information secured from these tests should supplement other data.

It is, for example, an accepted fact that a child with an M.A. of six and one half years has a mental readiness to begin to read with the type of materials which are available, but it must be remembered that this is no assurance that the child will master beginning reading. Many children with an M.A. of six have learned to read and some failures in reading are children with high I.Q.'s. Children in a given grade who are working up to capacity and whose I.Q.'s vary should not be expected to master identical elements or to be using the same materials. The I Q is a means of approximating the learner's ability to profit by the use of learning materials and activities of different levels and nature.

Other Types of Data.—Among records which furnish useful information concerning the pupil are those of his health, time spent in extracurricular activities, work at home or elsewhere in out-of-school hours, leisure pursuits and social associations, and worries. These are gathered from a variety of sources: the school records, visiting teacher, conferences with children and parents.

Evaluating Children's Interests.—Interests of children are used in motivating the work of children, in selecting units of work, in developing appreciations, and in building human relationships. Techniques which are used by teachers in ascertaining the interests of children are as follows:

1. Evaluating withdrawals of books from public library and school libraries.
2. Using questionnaire in order to detect various areas of interests, such as hobbies, favorite games, health interests.
3. Recording activities which children choose during free periods.
4. Keeping anecdotal records.

Evaluating Beginning Reading Readiness.—When the child is subjected to the complex skill of learning to read, he should meet with success, thus avoiding discouragement and failure. Means of determining this readiness are as follows:

1. Understanding home environment through home visitation and by studying records
2. Studying experiences which children have
3. Observing sentence structure and vocabulary children use on the playground, in the classroom
4. Administering reading readiness tests, several of which follow:

Name of Test	Grade	Publisher
Metropolitan Readiness	Kindergarten and I	World Book Co.
Monroe Reading Aptitude	First grade entrants	Houghton Mifflin Co.
Lee-Clark Reading Readiness	Kindergarten and I	California Test Bureau, Los Angeles

Evaluating Work-Study Skills.—Emphasis is being placed upon the development of work-study skills which include ability to read maps, graphs, charts, use of table of contents and the index in locating information, intelligent use of the library. Tests at the elementary school level are as follows:

Iowa Every-Pupil Tests of Basic Study Skills. Boston: Houghton Mifflin Co.
Barker. "Informal Testing of the Use of Books and Libraries," Elementary English Review, Vol X (June, September, October, 1933), pp 143, 274, 205.
New York Rating Scale for School Habits Yonkers, N. Y.. World Book Co.

Evaluating Critical Thinking.—Emphasis is being placed upon critical thinking whenever the child faces a problem in reading, in arithmetic, in social studies, etc. A test on critical thinking in the social studies may be secured by writing Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, New York. This test checks work-study skills, abilities to draw conclusions and to apply generalizations.

Evaluating Health.—The problems of health and physical well-being are an important phase of the evaluative program. Health is related to the physical, mental, social, and emotional life of an individual and it also is an integral part of anything that affects the child during the day. The information needed in finding the health status of the child pertains to the following:

1. Family background
2. Height, weight, age
3. Condition of teeth, eyes, ears, nose, throat, heart, chest
4. History of illness and accidents
5. Immunizations, etc.
6. Physical defects
7. Rest habits and eating habits

Techniques of securing information are as follows:

1. Physical examinations administered by the school
2. Records based on examinations and observations
3. Forms filled in by parents and children
4. Nurses and teachers interviewing children and parents

5. Home visitation
6. Understanding of health problems learned by administering test. Such a test is to be found in *Social and Related Sciences,* Part III, California Test Bureau, Los Angeles, California.

Evaluating Social Adjustment.—Every learning situation contributes to the child's personal and social adjustment. It is essential that the teacher understand the hopes, the fears, the desires, the suppressions of all the children in her class. The isolation of adjustment problems is a difficult task and teachers have used various methods. The Woodworth-Mathews Personal Data Sheet, published by C. H Stoelting Company, Chicago, is a self-descriptive scale designed for elementary school children. Improved rating scales are issued by the Winnetka Educational Press of Winnetka, Illinois. There is also the Haggerty-Olson-Wickman Behavior Rating Scale published by the World Book Company, Yonkers, New York.

It is advisable to supplement the information obtained from the scales presented in the preceding paragraph with information obtained from recorded observations and anecdotal records. Characteristics of good anecdotal records are:

1. Dating each record
2. Noting significant facts
3. Recording concrete behavior patterns
4. Noting favorable and unfavorable behavior patterns
5. Recording incident at time when incident occurred
6. Using concise statements
7. Selecting specific behavior patterns over a period of time, such as cooperation and tolerance, assuming responsibility

These records may be kept on file cards with the interpretation of the data on the back of the cards; or a loose-leaf notebook with a page for each child would be practical. Since the writing of anecdotal records consumes much time, it is suggested that notations of two or three children who are under observation and are remedial cases be made. The time and the manner in which the records are summarized are factors which will vary from one school to another.

Measure of Social Acceptance.—In recent years a simple technique has been developing for gathering very useful data relative to the number of friendships each individual has among the other members of the group *Sociograms* not only indicate the number of friendships but also furnish data relative to the friendships pupils would like to develop By the "guess who" technique the opinions of pupils relative to the social qualities and personalities of others may

be collected and summarized. A discussion of the construction and interpretation of sociograms is given in the following chapter.

Character and Personality Traits.—The practice of giving and recording a personality inventory is spreading. These inventories furnish rough measures of such qualities as relative seriousness, frankness, steadiness, extroversion, introversion, dominance-submission, sociability, neuroticism, persistence, and relative adjustment and maladjustment to home, school, and companions. Typical of instruments for this purpose are the following:

California Test of Personality. E. W. Tiegs, W. W. Clark, and L. P. Thorpe. California Test Bureau. Kindergarten through adult. Factors tested: self-reliance, sense of personal worth and personal freedom, belonging, freedom from withdrawal tendencies, freedom from nervous symptoms, social standing, social skills, freedom from antisocial tendencies, family relations, vocational relations, and community relations.

Vineland Social Maturity Scale. Training School at Vineland, New Jersey Ages 0-1 to 21 years.

The Symonds Adjustment Inventory. Teachers College, Columbia University, New York City, for use in upper grades

Ratings by former teachers are also employed, as are other records of pupil behavior, which throw light on the honesty, temperament, disposition, and other important character and personality traits of the pupil. Testimony of parents frequently reveals information in this area.

Evaluating Emotional Development.—Emotions are intrinsic factors in every experience. The understanding of the nature of each child is essential in guiding him to take his place in a social world. Ways of gaining information about the child's emotional behavior patterns are as follows:

1. Studying children's ideas through their creative work, such as paintings, drawings, stories, and poems.
2. Recording projection techniques, such as how does the child treat his pet, his toys, etc.
3. Noting on anecdotal records wishes, desires, worries, tantrum patterns, etc.
4. Using Haggerty-Olson-Wickman Behavior Rating Schedules, World Book Company, Yonkers, N. Y.

Indices of Cultural and Economic Status.—Data pertaining to the out-of-school cultural and economic environment are available from such sources as records of parental occupation, usually made in the general files of information about pupils, and records of home visitation by one or more of the regular teachers or the visiting teacher.

These data may include such items as the personal education of the parents, general tone of the home, and neighborhood and church experiences.

Educational Status and Achievement.—In the large majority of schools scores on achievement tests are available in various fields. Previous marks and scores in particular subjects throw much light on the degree of background and preparation possessed by the learner.

Many teachers give to some or all their classes at the beginning of each year an inventory or placement test which reveals the degree of possession of skills and information prerequisite to success in the work of the year. Some teachers also give a preliminary test over the field to be covered with the purpose of discovering what is known at the beginning and thus learning what part of the field needs more and what needs less emphasis. If the test is repeated at the end of the year, the teacher has a measure of the learning that has taken place in whatever the test measures Catalogues for achievement tests and diagnostic tests may be secured from the following publishing companies:

Benjamin A. Sanborn & Co., Chicago.
California Test Bureau, Los Angeles.
Educational Test Bureau, Educational Publishers, Inc., Minneapolis.
C. A. Gregory Company, Cincinnati, Ohio.
Houghton Mifflin Company, Boston.
Public School Publishing Company, Bloomington, Illinois.
World Book Company, Yonkers, New York.
Science Research Associates, Chicago, Ill
Cooperative Test Service, New York.

Interpretation of Data.—In interpreting data it must be remembered that we are thinking of the child as a "whole." Therefore, in guiding and directing the "whole child" it is essential that all data be brought together. It may be necessary to isolate factors in order to detect those which are influencing others, but each is evaluated and interpreted in terms of the whole child. Evaluative measures are of value only as they guide teachers, parents, and children in studying the behavior patterns of each individual, in finding causes for the behavior patterns, and in providing preventive measures and remedial measures. Information may be interpreted by teachers as individuals, by committees of teachers, by special teachers such as nurses, by staff, by teachers and parents, by teachers and children, by teachers, children, and parents. The type of problem, the policy of the school, the community, all are factors that function in determining the procedure to be followed in the interpretation of data.

Questions, Problems, and Exercises

1. Explain why it is desirable to change the emphasis from measurement of learning to evaluation of learning.
2. Prepare a ten-minute talk on "The place tests and measurements in an evaluation program of learning."
3. Why it is important to evaluate growth in attitudes, appreciations, and social adjustment?
4. Clarify the following terms: educational age, intelligence quotient, chronological age, grade score, norm, reading age, educational age.
5. Prepare a five-minute talk on "The weaknesses of an intelligence test."
6. Select a good standardized achievement test at the primary level or the intermediate grade level. Give the test and interpret the results.
7. Outline a thorough medical inspection program for elementary school children.
8. Examine recent newspapers and magazines to determine the emphasis given to health topics.
9. Make a survey of available health agencies in your community in order to locate particular agencies.

Chapter 19

GUIDING AND TEACHING THE INDIVIDUAL

Learning is an individual matter. Although an instructor may "teach" a class, the learning is done by the individual. Beyond the minds of the separate individuals in the group, there is no class mind capable of learning. The teacher should not make the mistake of assuming that all, or any two, individuals in the class learn alike from the same instructional materials or instructional activities. It is unfortunate that there is not a better device by means of which teachers can see in detail the variety of learnings, with respect to both nature and amount, that take place among twenty or thirty children in a class who have had practically identical stimuli.

The teacher, therefore, must focus her attention upon the learning actually taking place in the individual child rather than upon her teaching materials and activities. She must not only concentrate upon the individual, but as a means to produce the desired growth and learnings she must acquire a great deal of knowledge about each individual child, his capacities, interests, and background.

Learning activities and materials which are not organized to the needs, interests, and experiences of children will frustrate and discourage some children while other children will not work up to their capacities. A curriculum that is not flexible and that cannot be adjusted to the needs of children will cause children to be frustrated, discouraged, and uninterested in school.

1. Important Individual Differences

It is a known fact that in every age level differences within groups of children must be constantly taken into consideration in directing learning. Children differ from each other intellectually, physically, socially, and emotionally: some learn slowly, others quickly; some are of small stature, others are large for their age; some are leaders in their groups, others are lonely; some are happy and learn by failures, others are nervous and unstable whenever they face a problem. Children not only differ from each other, but they have different relative levels of aptitude and achievement. A child with a high I.Q. may

be average in reading, do superior work in social studies, do poorly in art, and produce a monotone in singing; while another child with the same I.Q. may do well in reading, do poorly in social studies, average work in music and art, and be a very superior basketball player.

Since each child is a unique individual, the needs of each must be met in a way which fits each individual case. Therefore, it is the teacher's responsibility to understand the needs, interests, and capacities of each child so that she may intelligently provide for these needs in the most economical and effective way. In the two subsequent chapters, ways of locating, recording, and reporting needs will be discussed. By reviewing, analyzing, and evaluating the information on cumulative records, anectodal records, sociograms, the teacher can discover the status of the child in each of the various areas of growth and development. Areas within which children vary will be presented in the following paragraphs.

Intelligence.—The range in mental age among children in any single elementary class is usually four or five years in the primary grades and six or seven years in grades 7 and 8 In a second grade, the mental age will vary approximately from five years to ten years. In a typical fifth-grade class the mental age of students varies from less than the average M.A. of a typical third-grade class to more than the average M.A. of a typical seventh grade.

Children with less intelligence learn more slowly, need a great amount of meaningful practice, more time in moving from one type of learning to another, and are not able to work with abstractions. Children with a large I.Q. usually have a good attention span, learn quickly, need less practice and less time to complete their work, can generalize and work with abstractions. A child with an I.Q. below 80 will find it difficult, probably impossible, to do much of the work that a child with an average I.Q. of 100 can do, while a child with an I.Q. of 125 would probably be bored with the same assignment.

Aptitudes.—It is very interesting to note the abilities by means of which children gain their status in a group. Several children are potential leaders in free play periods. Another child may add interest to group work by means of contributions in drawing. A child who is a musician is held in esteem because she can calm and quiet the room by playing on the piano or the violin. A boy of nine who had no friends, and who was so slow that the children often were irritated with him, won a place of honor by building bird houses. Recognition

of some abilities on the part of each child make for effectiveness in an educational program.

Children also vary significantly in their capacities or aptitudes for learning of various types. This is particularly true with respect to aptitudes for art, music, mechanical skills, and sports. Much of what is assumed to be a difference in specific aptitude is in large part the result of differences in attitude, interest, and previous preparation; for practical purposes of learning, the differences are very significant whatever their cause.

Physical.—It is obvious to every one that children vary in height, weight, and muscular coordination. Many physical handicaps also are very obvious, such as the child who needs braces and crutches in order to be able to walk and the child who wears heavy lenses in order to be able to see. Children with asthmatic conditions and cardiac conditions cannot play vigorously. Infections because of decayed teeth and diseased tonsils lower the child's efficiency. Some children tire easily and are not interested in activities while others are very energetic and eager to be doing something.

Social and Emotional Adjustments.—Social and emotional adjustments are closely related. Some children are reticent, and others boisterous, some timid and others bold, some responsible and others irresponsible, and some cooperative and others not so, some are dependent and others independent, some are irritable and others poised, some are cheerful and others depressed, some sensitive and others much less so, some suggestible and others negativistic.

Patterns of social and emotional behavior are not static, but may vary within an hour or two. In one situation and with a certain group of children a child will be happy and cooperative, whereas with another group the same child may be annoying and boisterous. At home some children are dependent and at school self-sufficient. As environmental conditions affect children differently at different times so will their patterns of behavior differ.

As the result of difficulty of learning in elementary grades, junior high school students may by the time they reach junior high school have developed attitudes of fear, insecurity, and dislikes for certain fields of school learning, and some have a dislike for all fields. Others, probably because of much happier experiences, have developed feelings of interest, confidence, and belief in the value of learning.

Home Background.—Children differ greatly in their cultural backgrounds and attitudes as influenced by the home. Children come

from homes which may be characterized by the following factors: poverty, with or without culture; wealth, with or without culture; estranged parents; compatible parents; one parent at home, both parents working, dull child in a family of bright children and vice versa. Some homes create fears, others aid children in facing realities of life. Because of varied home backgrounds and varied experiences in the homes children will vary in their interests, attitudes, appreciations, understandings of economic and social concepts, speaking vocabulary, and in their abilities to convey their ideas to others. They will react very differently to the same situation. They are sensitive to different things.

Homes differ greatly in their intellectual and cultural interests and tastes, in modes of thinking, in language and speech habits and standards, in patterns of cooperation and regard for others, in facilities for home study and in other ways very significant for learning and behavior at school.

Academic Achievements.—The chronological age of children enrolled in the first grade has a range of about one and a half years, growing and maturing rapidly at this age level. Every month in chronological age makes a great difference in maturity; therefore, there will be a great range in the maturity levels of the children. In the first grade curriculum emphasis is placed upon the development of reading skills. Those children who do not have a mental age of six years will constitute a group that should have a curriculum especially arranged to fit their needs; to place them with those children who are ready to read would only mean failure.

The range of pupil status in subject matter achievement in any grade is usually four or five years. For example, in arithmetic the scores in problem solving in fifth grade may range from third grade level to seventh grade level which means that some children will be doing as well with the materials as an average third grade child would do and some as well as an average seventh grade child would do. The rate of speed at which children work will also vary significantly; some children will work ten problems in thirty minutes while others will solve only four in the same time period. A reading assignment will be read and comprehended by one child in fifteen minutes while another child will devote thirty minutes to the same selection and probably not understand what has been read. One child can communicate his ideas to others by means of written themes and reports very effectively while another child finds it very difficult to use that medium of expression.

Partly as the result of differences in general capacity to learn and in specific aptitudes and attitudes in a particular field, learners have widely different backgrounds in that field. Particularly in English classes in the upper grades some children have much better than average foundation in vocabulary, grammar, and language, and much more advanced interests in literature. In ability to read, differences have become so great as to call for the establishment of special classes for those with least ability. Variability of similar importance for learning exists in all other fields, particularly mathematics.

Interests and Industry.—Not only will learning depend upon the degree of interest in learning and in learning activities, but as a matter of fact the degree to which the learner will participate in learning activities depends upon the degree of his interest in the particular area. Interests depend largely upon the extent, pattern, and character of previous experiences. They depend upon the nature and pattern of interests of parents, of other adults known to the learner, and of his companions. While it is among the most important services and responsibilities of the teacher to develop desired interests—that is, in good literature, in physical and mental health, and in other peoples of the world—she must also recognize the pattern of interests in the individual learner as it exists at the time and adapt instruction somewhat to it, harnessing those interests in order to insure wholehearted, effective participation in learning activities.

Information Concerning Learning Capacities.—In the large majority of schools tests of general mental ability are given and results are recorded for each individual. As a measure of brightness the intelligence quotient is a useful but not infallible measure. If more than one I.Q. is recorded, it is wise to rely upon a figure slightly in excess of the average of those recorded. This higher figure is more likely to represent the individual's capacity than the exact average or the score on any one test.

The mental age is a measure of general mental *ability*. It increases with age in proportion to the I.Q. The I.Q. is a measure of general mental *aptitude or capacity* of the learner, especially in subjects involving vocabulary and verbal learning. The mental age is the best single measure. It should be modified slightly up or down by taking into consideration the degree of difference between the I.Q. and 100. For example, of two learners, each with a mental age of 15.5, the one with an I.Q. of 115 may be expected to do better work, especially in dealing with abstract and verbal material, than another with an I.Q. of 95. If the test was not given recently, it should be remembered

that those with higher I.Q.'s will have increased proportionately in mental age.

In many schools tests of special aptitude are given and the scores are available. Aptitude tests in mathematics are especially useful. Care must be exercised in interpretation of these scores. The best single basis on which to forecast what a learner will actually do in a subject is his previous school marks. In addition to capacity, they measure in a rough way the factors which generally make for achievement, such as interest, industry, promptness, and cooperation.

Information Concerning Interests.—Data relative to interests may be available from a number of sources: interest inventories, records of hobbies, extracurricular activities, participation in out-of-school experiences, of statements made in class, library cards, and questionnaires prepared by teachers. In an increasing number of schools individual teachers or groups of teachers are preparing interest inventories in the form of check lists or questionnaires to be filled out by pupils in the upper grades or filled out by the teachers on the basis of showing of hands as the teacher reads each item.

Other Pupil Data.—Many other types of data are very valuable in guiding and teaching the individual—data concerning his home environment, his character and personality, his social adjustment, etc. (See Chapter 18 for discussion of means of obtaining data of these types.)

2. Adapting to the Individual

Schools are accepting the responsibility for fitting the school program to the many needs of children. Children who are challenged with a task that is neither too difficult nor too easy have good mental health and continue attacking problems which must be solved. Methods which have proved to be successful in providing for individual differences will be presented in the following paragraphs.

Physical Deviates.—Crippled children should be educated with normal children if at all possible, and should be placed in play groups where they can participate without being embarrassed. They must be guided in learning to minimize their handicaps and to put forth effort to be as independent as possible. At a time when the afflicted child is not in the classroom his handicaps should be explained to his classmates; this often changes a critical attitude to sympathetic understanding. Usually children are very sympathetic and very eager to help handicapped children. Children with certain types of serious

physical disabilities should be placed under the direction of a specially trained teacher and given special treatment, which in many cases involves appropriate types of physical and mental therapy.

Children who are hard of hearing must learn to live in a hearing world and those who can hear must learn something about the problems of handicapped individuals. Children who are hard of hearing should be seated so that they can hear what is being said and so that they can see the face of the person who is speaking. The teacher and children should pronounce and enunciate words clearly, and, if the child does not understand, the speaker should repeat in a courteous manner.

Children with poor vision should be seated where they can see what is written on the board and also all materials that are being displayed for observational purposes. Their reading materials should be printed in large type on nonglazed paper. For children with severe visual handicaps some schools have special sight-saving classes. Children with lowered visual acuity also must be guided through socializing experiences to capitalize on their potentialities and thus make a contribution to society.

Speech.—Speech is a basic tool in gaining status in a group. A child with a speech difficulty, such as stuttering, lisping, infantile speech, sound omissions and substitutions, often is silent because of the unfavorable reactions of other children. No child should ever be permitted to giggle at the handicapped child, neither should a teacher persist in asking a stutterer to keep repeating that which the teacher cannot understand. To do so only increases the child's anxiety and frustration. The child should be permitted to make his needs known without fear or embarrassment.

It is the responsibility of every teacher to understand speech difficulties of young children and to provide guidance in speech correction. In many schools a specialist in speech education is provided to whom stutterers, cleft palate cases, and others suffering from speech defects may be sent for special treatment.

Social Adjustments.—Social adjustment often implies gaining status in a group, which means that a child must make a contribution and must cooperate in a democratic way. It is very difficult to group children socially, as their needs of today may not be the needs of tomorrow. In organizing groups and committees teachers should use the information secured from sociograms, observations, and interviews For example, the child who has no friends should be placed with a group of friendly children. The child who needs recognition

and has a talent in drawing could be assigned to direct a group working on a frieze. Often a teacher can help children make adjustments by discussing with them the customs of various groups and the way in which to conduct themselves on different occasions and in strange places, such as during interviews, in public buildings, etc.

Exceptional Children.—In recent years it has been realized that bright and dull children differ not only in quantity but also in quality of ability, and that they should be taught differently.

The Bright Learner. The progress of civilization depends largely upon the contributions of genius. The work of one Edison, of one Pasteur, of one Madame Curie, of one Franklin, of one Shakespeare is of more consequence to civilization than the efforts of thousands of persons of average ability. The loss to society and to civilization because of our failure to develop fully the capacities of the ablest children is incalculable.

As the result of classroom experiences with bright children, we are able to characterize them for the purposes of teaching. The bright child possesses greater energy and more curiosity; is sociable, active, more capable of dealing with abstractions, perceives relationships more clearly and quickly, prefers to work under his own planning and initiative, likes to explore new and more advanced areas, becomes bored more quickly with simple routine tasks, learns mechanical processes much more quickly than an average child, dislikes tasks he does not understand, dislikes rote memorization though he is superior at it, has confidence in his own abilities, appears lazy if given uninteresting things to do, is likely to seek short cuts, and possesses a wide range of worthy interests.

The bright learner should not only have more work to do, but it should be of a type to challenge his superior and special abilities. He should be required to locate and to organize materials, to find and state relationships and generalizations, to read more difficult material. He should be relieved of some of the easier routine tasks which may be necessary for the average or below-average child. He should be given larger units, tasks and problems with a greater number of steps. He should be freed of some of the drill of the class and permitted to work more on his own. He should be stimulated to undertake imaginative and creative tasks. For him, frequent diagnostic testing is unnecessary; he can be trained for self-diagnosis and self-planning of remedial work. The brighter the child is, the more these suggestions should be employed and the further they should be carried. They usually apply to children with an I.Q. of more than

120 to 125. Those of definitely higher I.Q. (140 and up) should be treated as special individual cases.

The Dull Learner. Until recent years the child with an I.Q. of 90 or less rarely continued in school beyond the ninth grade, and those with an I.Q. of less than 80 rarely progressed beyond the sixth grade.

The dull child usually possesses to some degree most of the following characteristics which need to be held constantly in mind while teaching him. In comparison with the child of higher I.Q.,

1. He learns in shorter steps or units.
2. He needs more frequent checkups on his progress and more remedial work.
3. His vocabulary is more limited and less precise.
4. He needs to have many new words made very clear in meaning.
5. He does not see relative generalizations or meanings as readily.
6. He has less creative ability and less ability to plan for himself.
7. He is slightly slower in acquiring complicated mechanical and motor skills.
8. In proportion to his dullness he tires less quickly of mechanical routine tasks and he tires more quickly of difficult reading or abstract discussion.
9. He is quick to generalize crudely, is lacking in self-criticism, and is easily satisfied with superficial answers.
10. He is less envious.
11. He has had unhappy experiences with previous school work and is hence more likely to be irritable in class, lacking in self-confidence, and more interested in nonschool life.
12. He is more susceptible to the suggestions of other persons.
13. His difficulties are cumulative in learning.
14. He has a narrow range of interests.
15. He possesses a slow reaction time.
16. He tends to engage in overcompensating activities.
17. He is less able to see the end results of his actions. Remote, long-range goals are not impelling to him.
18. He fails to detect identical elements in different types of situations.
19. His attention span is short and must be reinforced by engaging appeal.
20. He especially needs evidence of his progress.

The more practical and successful methods of teaching slow or dull learners grow in large part out of the characteristics listed in the foregoing. Teaching the slow learner, like teaching the bright ones,

calls for special planning. The following suggestions are recommended:

1. Present new materials by associating them and explaining them in terms of simple familiar materials.
2. Keep the dull learner conscious of progress at all times. He must be given reason to believe he is succeeding.
3. Use real visual objects and other concrete and lifelike aids whenever practical.
4. Employ applications to life, not only to bridge the gap between school and life but also to promote understanding.
5. Make an effort to discover special interests on the part of individual learners and to utilize them if possible by applying learning activities to these interests.
6. Make daily assignments involving specific, meaningful tasks, most effective with the dull.
7. Be satisfied with attempting what is possible and take time to teach that little well.
8. Explore constantly to discover misunderstanding and relatively poor learning. Do remedial teaching on the spot, but do not be too critical.
9. Avoid an excessive vocabulary load. Use simple and familiar words and simple sentences. Use words in their exact and precise meanings.
10. Encourage dull children by letting them explain, but do not confuse others by too many poor explanations.
11. Train the dull children to read better. Take more time for oral reading in order to develop comprehension and vocabulary.
12. Make a special effort to see that the child understands adequately new concepts that are essential to meaning and that will come up later. Write them on the blackboard and give concrete examples.
13. Avoid giving the dull child, merely to keep him busy, meaningless routine tasks from which little progress in learning can be expected.
14. Avoid sarcasm or frequent criticism. Always encourage dull children who try.
15. Do not be irritated by symptoms of lack of interest, tension, discouragement, or mild disorder in the dull child. These are natural symptoms of continued unsatisfying experiences resulting from being forced to attempt more than ability justifies. They diminish as the dull children are given learning activities that are appropriate to their capacities, abilities, and interests.
16. Remember that it is very important that the dull child like and have confidence in his teacher.
17. Take care to provide reading material of easy vocabulary and with

sentence structure and content suited to the child's age level, interests, and experiences.

18. Remember that dull children often have less cultural opportunity at home, parents with less education, less reading material at home, and in general poorer background for learning.

The teacher must remember that school is particularly dull and unexciting to the dull child compared to the out-of-school activities which make up his life. To recapitulate, the teacher should observe the following principles:

1. Be content to attempt less and make sure of better learning of what is attempted.
2. Employ practical, concrete, lifelike materials and learning activities.
3. Be sure that the child understands as he goes along.
4. Be patient and encouraging in word and in manner.
5. Provide more repetition, required for the slow learner

Grouping.—Experience has shown that in providing for individual differences in learning experiences based on tool subjects and content materials there is no one way that is the best way. The remedy which will fit one school will not be practical in another community. One factor cannot be isolated from all other factors. If children are grouped according to mental age, for example, it is found that they vary in regard to experiential background, social adjustment, and in achievement; if they are grouped according to chronological age they vary in mental age, social adjustment, experiential background, and emotional maturity. In grouping children all factors must be taken into consideration and the need of the child must be the guide in determining the group into which the child should be placed.

Grouping in the Lower Grades.—In a first grade, beginning reading class, children are grouped according to their readiness for reading. Those children who are immature are placed in a group in which they will listen to stories, tell stories, talk about experiences, go on observational trips, etc. Another group that is more advanced in readiness will construct reading or experience charts (under the direction of the teacher) based on their experience or working in readiness workbooks. The third group is made up of those children who are ready to begin work in the preprimer.

In all grades children are regrouped for various learning experiences. For example, in the fourth grade a child may be working with a group that is doing remedial work in arithmetic, and in reading with a group that is reading independently. All grouping must be flexible,

thus making it possible for the children to be placed at any time with the group that is working on problems which fit their particular needs and their maturity level. Advantages that may be advanced in favor of grouping are:

1. The group plan provides better for very important educational outcomes, such as skill and habits of cooperation, skill in oral discussion, development of ideals from social situations, and other social attitudes, ideals, skills, and habits necessary as training for cooperation. These may be developed much better in class group teaching than where individual instruction is used.
2. Group contacts give mutual stimulus to activity which is not possible under the individual plan.
3. The group plan stimulates effort through discovery of problems and the development of interest in the group discussion.
4. The group plan is valuable because of the opportunity for the slow to learn from the discussions of others.
5. The group plan makes unnecessary duplicate explanations, as under the group organization plan one explanation or set of instructions serves for all.

Grouping in the Upper Grades.—In the upper grades in school, in which the upper 13 or 20 per cent of a given class (let us say English 7A) includes enough pupils to form a special section of bright and one of slow pupils, ability grouping can be used with definite success. While general agreement is lacking and it is impossible to draw precise conclusions from experiments in which learners are using different subject-matter materials, the concensus of scores of investigations is that results are improved when ability grouping is employed intelligently (as far as results that can be measured on tests are concerned), even though instruction was not adapted to the group as well as it could be in more than a few of these experiments. Unless great care and intelligence are used to adapt instruction to the differentiated group, it may not be very wise procedure.

Whenever adaptation is used, care must be taken to keep at a minimum the stigma attached to being in the slow group. When pains are taken to avoid stigmatizing the slow group, the ill effects of grouping are probably materially less than in conventional heterogeneous classes in which the slow learner cannot hope to excel and is daily faced with competition with which he can hardly fail to contrast himself even if his teachers do not do so openly.

In an increasing number of upper elementary grades, review sections are being formed in the seventh grade in arithmetic and reading, reviewing if necessary fourth-grade materials.

Even when ability grouping is employed, there is still very great opportunity for adaptation and differentiation of materials and methods with regard to individual students with the slow, the average, and the bright class.

A study by the research division of the National Education Association revealed that forming separate classes for slow-learning pupils has already become a fairly widespread practice in the upper grades, especially in English, mathematics, and the social studies. This practice is most widespread in junior high schools.

Pupils who should be placed in slow-learning classes may be best identified by means of a combination of three of or all the following criteria: (1) general intelligence test, (2) average mark in all subjects in previous year or two, (3) average mark made in previous year in subject involved, and (4) objective test covering the field concerned as taught in the previous year or two. The greatest care must always be employed to cause both bright and slow to forget that they are in special sections.

Obviously it is not practical to use the same subject matter or the same materials for all pupils regardless of interest, capacity, ability, or background. Various plans are employed for adaptation of subject matter and learning activities, and a number of these will be considered.

Independent Work Period.—Children who are working independently must be employed with carefully planned constructive activities which vary from day to day. Workbooks, worksheets, reading independently, creative work with clay, painting, etc., are used frequently in the primary grades. In the intermediate grades children may work on individual difficulties in spelling or arithmetic; prepare special reports; or work on special committees, such as arranging the bulletin board, preparing a dramatization for literature class.

Directed Individualized Period.—The directed individualized period may be a reading period in which each child is reading in a different book. Children may be doing different things in arithmetic or language, according to their individual needs. It may be a work period in social studies and each child (or probably groups of children in committees) is working on the same problem by attacking it in different ways, although they may be working on individual problems. Advantages of a directed individualized work period are .

1. The teacher has the opportunity to gather information which will furnish a basis for diagnosis and individual treatment.

2. It is possible to adapt the problem much better to the needs of the slower and the abler children alike.
3. The opportunity for personal help and conversation free from the formality of the group work period and the possibility of privacy in relationships with children may both be used to excellent advantage by a clever teacher to adapt criticism and approval, encouragement and rebuke, to the individual nature of the child without assuming before the other children the role of one who varies standards. All the special advantages that attend private talks in these connections are available to the teacher.
4. The teacher can more easily pierce the defense of sophistication and indifference assumed by many children in the presence of a group of their classmates, which weakens during personal and informal contacts.
5. An opportunity is afforded to give individual help to children on difficulties peculiar to them not only in the case of the slow but also of the average and brighter children, and also to children whose difficulties are the result of absence or the fact that they are transfers; likewise there is opportunity to give needed training in how to study.
6. The opportunity is offered to check up on the child's progress, locate weak spots, analyze difficulties, and offer individual suggestions for remedial work.
7. There is the opportunity to arouse interest by encouragement, by raising questions, and by arousing curiosity, by the sheer personality and personal influence of the teacher.

Individualized Instruction.—In the last half century various types of *individualized* instruction have been employed. In its extreme form, each individual is given his assignments, his instructions, and his evaluation as an individual. As commonly utilized there is at least some group work; either the class as a whole or a small group in it is given group instruction and assignments occasionally, and group tests are employed.

In some schools each pupil moves at his own rate over the same ground as the others, completing a year's work in a subject in six months, eight months, or a year and a half as the case may be. The more important advantages claimed for individual instruction are:

1. It allows the slow child to progress at his own rate, thus permitting thoroughness and avoiding discouragement.
2. It prevents the illusion of making progress when it is not really made, which misleads so many slow, uninterested, or indolent children under group discussion.
3. It tends to concentrate the attention of the children on their own

individual achievements, upon which their progress through the course of study depends, instead of upon the average progress of the class.

4. It tends to focus attention upon the mastery of subject matter and upon educational growth, and away from satisfying demands imposed by the teacher.
5. It permits the more able child to make progress at his optimum rate and thereby realize the possibilities of his peculiar gifts.
6. It tends to eliminate that training undesirable for the gifted child which results from his being held down to the pace of the average and which sometimes generates habits of idleness and attitudes of satisfaction with achievement that is less than capacity
7. It brings about personal contacts between child and teacher, for which the "child-tutor" situations are much more favorable than "teacher-class" situations.
8. It permits valuable exercise of individual initiative, especially on the part of the more capable child who now is supervised as closely as the slow or mediocre one.
9. It tends to reduce retardation and to prevent the elimination of the slower children.

The Activity Unit.—The program of the activity unit can be adapted very easily to individual differences. Reading materials, such as books, magazines, bulletins, folders, and the like having a unit range from very easy to difficult are made available to the children. Children report their information to committees or to the group; by asking the slow child to report first and by requesting those who add further information not to repeat what has been said, the bright child must listen to the slow child in order to know what has been said. Provision also is made for individual instruction in the development of skills in the tool subjects. If five children are ready to learn how to interpret information represented by means of a graph, those children are given information pertaining to the graph. If all the children in a group are ready to learn how to make an outline for a report, the whole class works on the problem.

In activity programs, children also have an opportunity to develop their creative ability through the media of clay, paints, drawing, and construction. In a unit on birds, for example, one child who was interested in building bird houses learned to appreciate the fact that houses differing in construction and size were needed for different birds, the result being that number concepts took on meaning and significance.

The informal discussion periods, committee work, and excursions help children in making adjustments, in understanding the worth of

an individual, in appreciating the fact that through cooperation much can be accomplished. Every child has an opportunity to have status in some group, in experiencing success, and in receiving praise. As is obvious, however, the use of very much the same educational material for all children leaves much to be desired in providing for the variations between individuals.

Cycle Plans.—A variety of plans in the organization of primary units offers many possibilities to provide for the needs of children In these plans, all grade lines are abandoned and all learning is continuous, which makes it possible for the child to move at his own speed. In one plan teachers remain with the same group of children for three years. In some schools the children remain in the same room for three years, the furniture being adjusted from time to time to fit the children as they mature; whereas, in other schools, teachers and children move into another room as the children mature. Another plan is organized in such a way that each teacher teaches at a certain level, and children move from one teacher to the next as they advance in their work.

At Oak Park, Illinois, a two-year cycle plan extending through the six elementary grades has been followed for approximately fifteen years. According to this plan, children have three teachers as they progress through six years of schooling. Advantages of the cycle plans are:

1. Children experience success as a result of progressing at their own rate.
2. All growth is continuous.
3. Time intervals of promotion are eliminated.
4. Children may be advanced from one group to another group at any time.
5. Time is gained at the beginning of each school year since the teacher knows the children and does not need to give inventory tests to find their level of accomplishment.
6. Children are grouped according to maturity and compatability.
7. Each teacher has an opportunity to learn to know each child.
8. Each teacher has time to learn to know the parents and to develop good human relationships.
9. The teacher has a better opportunity to evaluate her own techniques of teaching.
10. The plan is very adaptable for activity units, group work, and individual instruction.

Differentiated and Flexible Assignments.—In every ungrouped class of a score or more children there will be found a few who can

learn very much more difficult material and can learn much more rapidly than the remainder of the class. There also will be in a typical class some children who cannot acquire certain learnings rapidly. A great many teachers are employing differentiated and flexible assignments effectively in ungrouped classes. The major difference between the two assignments is that the differentiated assignment is modified in quantity and nature of work covered for high, average, and slow children, whereas in the flexible assignment the assignment is not divided into levels, but activities or learnings varied with respect to difficulties and amounts are provided and each child is encouraged to do as much as he can in terms of his abilities and the time available beyond a designated minimum amount of work.

No single pattern can indicate the many desirable possibilities encompassed by these assignment plans. The impetus for learning generated by various assignments may certainly be profitably used, especially under the direction of a teacher who keeps foremost in mind the real purposes of education. The following examples of differentiated and flexible assignments are given not as ideal examples but as typical ones.

Differentiated and flexible assignments are used by every teacher who is providing effectively for the needs and interests of children. A teacher who paces the teaching of information and development of skills and abilities needed in learning to the needs and interests of children uses flexible or differentiated assignments. For example, a list of fifteen words is usually the spelling assignment for a week. In a heterogeneous group, some children will be working on fifteen words, other children will be assigned ten or twelve words, and a few may be given six or seven words only. In a flexible assignment a certain number of words would be required of all children and those children who have time to learn more words would work on those which they are interested in learning to spell.

The practice writing periods usually are flexible; children work on their own difficulties, found in their written work. Assignments in work-type reading periods may be differentiated and/or flexible, the determining factor being objectives for the period, needs and interests of children, and materials used.

A Differentiated Unit in Natural Science—Three Levels

Assignment: Weather and Climate

"A" Activities: Complete activities one, two, three, four, and five.

"B" Activities: Complete activities one, two, three, and four.

"C" Activities: Complete activities, one, two, and three.

Activity One

For help in solving this problem read in *The Wonderworld of Science* by Warren Knox and others, pp. 43-47.

Activity Two

Be prepared to discuss in class the following problems:

1. The sources of warm air mass and cold air mass.
2. Characteristics of a mass of cold air and a mass of warm air at a "front."
3. How a cloud is formed; hail.
4. Causes of whirlwinds, hurricanes, dust storms.
5. The effect of the natural features of the land on the climate of different regions in our hemisphere.
6. Read the newspaper and listen to the radio in order to note the development of unusual weather conditions.

Activity Three

1. Describe the instruments which are used in measuring temperature, air pressure, moisture in the air, and speed of the wind
2. Discuss ways of forecasting weather without the use of instruments.
3. Be prepared to discuss characteristics of different kinds of clouds.
4. Keep a daily record of the weather for a week.

Activity Four

Prepare a ten-minute talk on "How animals protect themselves against weather."

Activity Five

Prepare a ten-minute talk on "Values of weather forecasting."

A Flexible Assignment for Science

Topic: The World of Sound Science.

Directions: Activities in Group *one* are to be worked by all members in the class. If you are interested and there is time available to pursue another problem, choose any problem in Group *two*. For help in solving the following problems read in *The Wonderworld of Science* by Warren Knox and others, pp. 129-156.

Group One

Be prepared to discuss in class the following problems:

1. Explain the principle of sound that is basic in the following situations:
   a. Sound following thunder.
   b. Musical tones obtained from flower pots of different sizes suspended by strings.
   c. Tones obtained by striking a triangle.
2. What causes an echo?
3. Discuss ways in which high-frequency sounds are being used.

4. Make a list of sounds which you heard on your way to school and tell what vibrated in each case.
5. Prepare a report on "How sounds travel."

Group Two

1. Tune a set of drinking glasses with water to the scale; then learn to play a tune on the glasses
2. Make a violin by using a cigar box and explain to the class what is vibrating
3. Prepare a report on topic, "How sounds are heard."

3. Diagnostic and Remedial Procedures

Brueckner and Melby, Buswell, and others have demonstrated repeatedly the effectiveness of diagnostic study of the individual's learning program and the use of individualized remedial materials and methods. In view of the common practice of promoting children a grade a year regardless of achievement or status and in view of the fact that courses of study and curriculum are based on grade standards, the necessity for diagnostic remedial procedures has become much greater.

Types of Diagnostic Procedures.—As Brueckner [1] has pointed out, the methods of diagnosis available to the teacher tend to fall into six categories:

1. Observation of the child at his daily work, noting his study habits and procedures, attitudes toward school and school work, interests, and motivations.
2. Supplementary analysis of various characteristics of the child's written work.
3. Supplementary analysis of the child's response and reactions.
4. The use of objective, analytical diagnostic devices proposed especially to bring into relief weakness in critical problems, including such devices as diagnostic charts of errors in arithmetic and spelling, language standard progress tests, study habit inventories, diagnostic inventories prepared by the teacher for specific units of study, sociograms.
5. Interviews with the child's parents.
6. Laboratory procedures, including the use of such instruments as the kymograph, tachistoscope, motion picture camera, dictaphone, and records.

It is obvious that diagnosis should be made in the light of all available child data, including I.Q., M.A., out-of-school activities, home conditions, health, and interests. In the *Thirty-fourth Yearbook of the National Society for the Study of Education,* which was devoted to the subject of educational diagnosis, several chapters were

[1] L. J. Brueckner, "Techniques of Diagnosis," *Thirty-fourth Yearbook of the National Society for the Study of Education,* Chs VII-VIII.

given to diagnosis in the subject fields of reading, English, arithmetic, social studies, science, health education, speech, art, and music. Each elementary school teacher should read at least several of the chapters.

Standardized diagnostic tests are aids in checking on common difficulties. In order to discover the specific difficulties, it is essential that the teacher construct tests based on classwork and observe the child at work. Often textbooks provide tests with the suggested remedial procedures.

Remedial Programs.—Remedial programs should be based on such principles of good teaching procedures as the following:

1. The child must be aware of the fact that improvement is needed.
2. The child must understand the need for remedial work.
3. The child must be interested in wanting to improve.
4. The child must assume the responsibility to do something about it.
5. The child must know what the correct pattern of response must be.
6. The child must know how to go about making the needed correction.
7. The child must experience improvement.

Any teacher can, by studying remedial procedures and applying these techniques intelligently, improve her techniques of remedial teaching.

The means of discovering needs, interests, and abilities of children, the records which are used to discover the status of the child, the evaluation measures used in order to discover causes, the devices used in helping the child make adjustments are only means to be used by the teacher in her program of guidance. If the teacher does not understand how to use these tools, if she is not sympathetic and understanding with the learner who needs guidance, if she is not willing to give time and effort to the cause, no program will be effective.

Reading.—The improvement of reading is a lifetime process. In the elementary grades children are introduced to the skills and abilities which they use at that level and in order to read intelligently as they advance, the same skills and abilities must be expanded in the light of the reading problems which they will meet at the next level of accomplishment. Children who are mature in reading and who have initiative to work out their own reading problems should be permitted to work independently, to do their own research, and to report their progress frequently to their teacher.

As a rule retarded readers are over age. Characteristics of reading

materials for these children are as follows: (1) material must be simple and easy; (2) vocabulary must be simple; (3) conversational style is preferred; (4) reading material must have action and suspense; (5) material must be related to their experiences, with a minimum amount of description.

Pupils in upper grades who are retarded in reading need guidance which may be provided by a special reading teacher who meets the children daily in a special room, often called the "opportunity room." Some children require three weeks of special help, others three months or more.

4. Guidance by the Elementary School Teacher

Areas of Guidance.—This volume is devoted to *teaching* in the elementary school. It is exceedingly difficult to draw a line of division, if indeed that is possible, between teaching and guidance. If children are to grow most completely, healthily, and happily, they need to have many individual conferences with their teachers and much counsel and comfort as they face problems of adjusting to their environment. On many of these problems, a great many of the pupils find the help that they receive at home is not sufficient and needs to be supplemented by school guidance and counselling.

Among the areas of such problems are the following: (1) social relations with other youngsters; (2) health habits; (3) temperament weaknesses; (4) character traits and behavior based upon them; (5) discouragement with progress in school subjects; (6) discouragement in extracurricular activities, sports, games, parties, etc.; (7) problems growing out of conflicts and worries related to sex; (8) problems growing out of conflicts and worries in the field of religion; (9) problems and worries growing out of home situations.

Fundamental Principles.—In counselling the teacher should always bear in mind certain important principles considered essential in modern guidance. For a complete discussion of them one should consult at least one of the standard general books on guidance.

Among the principles upon which there seems to be agreement among a good majority of those well informed in guidance and counselling in the schools three very important ones merit discussion here. Guidance does not mean giving pupils answers to all their questions. In some instances information is available and seems to be called for by the nature of the problem of the youngster. In many other instances there is not a ready answer, and there is not under any circumstances an answer which can be definite or have any considerable

degree of validity for the particular problem. Many problems have such a nature that it will take a great deal of time for their solution; for some, passage of time is the only solution. There are many problems for which there can be no definite answer or solution under the control of the teacher and the youngster. Such circumstances call for encouragement and development of faith that eventually things will work out all right. In many situations the great problem to be solved is not the specific problem that is bothering the youngster, but the problem of being able to meet the bad situation without too much worry and damage to his personality.

The second important principle is that in many instances the teacher will need the assistance of others. She may wish to confer with parents, or have the child carry certain of the problems back to his parents for discussion; it may be that one or both of the parents, the teacher, and the pupil may need to confer about the problem. There are, of course, some problems which the youngsters bring to teachers in great confidence and which the youngster would greatly prefer not to have the parents know about. The teacher must use the greatest discretion in such situations and be careful not to violate the confidence of the youngster. In addition, quite frequently the problem is of such a nature that the teacher knows of someone in the school or community who could make a better answer to the question than the teacher—perhaps the principal of the school, a vocational counsellor, a school psychologist, a family physician, a minister, or a priest—and in some instances it is some other person in addition to all or any one of these.

The third fundamental principle is more or less a corollary or a part of the previous two. Teachers should refrain from the very great temptation to be the source of information. It is well recognized that teachers, principals, and others today give the youngsters a great deal of misinformation, mislead them badly upon many occasions. It is difficult for the teacher to take a modest position and say, "This is a question about which I am not able to advise you or counsel you," and yet that must be done in a great many situations. Perhaps a suggestion may be taken from the practice of physicians, who are very modest and very reluctant to give answers and information, particularly if they cannot be positive about the validity of their answers.

The fourth suggestion is that in a great many situations the solution must be reached by the youngster, and the part of the counsellor is that of guidance and of training the youngster in how to approach the study of his problems. Many decisions in respect to problems

that occur over and over again are either identical or in similar form. The ultimate goal of guidance is for the counsellor to make himself relatively unnecessary by reason of having trained the students in attitudes, skills, approaches, and sources of information for the solution of their own problems.

Fifth, it is most imperative that the counsellor acquire all the data that he can about youngsters and that they learn by study and experience under guidance how to interpret various types of technical and personnel data, test results, etc. It is not good practice to attempt to solve pupil problems without pertinent data. Considerable time may be lost in procuring from pupils detailed information which the counsellor can obtain by a careful study of the personnel records.

Interrelation of Problems.—A rapidly growing concept among counsellors is that, while many problems are isolated and a great many others (far more than teachers realize at first) are complex, one has frequently to consider a number of problems which are related in some way or other before one is able to come to a good solution in respect to any one of them. For example, a pupil's behavior in school may be related to problems at home, problems of social acceptance, problems of health, problems of physical deficiencies, problems of unfortunate previous experiences in a related area, etc. There is a strong tendency to gather a great deal of data about all pupils, particularly those who seem to have unusually important problems, and to interpret all this data in a clinical, unified, integrated manner rather than to take hold of specific problems in an atomistic fashion.

Teacher Attitudes.—One of the difficulties in developing good guidance and counselling practices is the tendency of many teachers to think of things somewhat differently from the way in which other persons think of personal and human problems. It would of course be a little better if teachers had somewhat more experience in family life and in bringing up children in the home. But that is not an insuperable difficulty. Teachers do find it, however, somewhat difficult to realize that problems of human relationships are as important as or more important than subject matter, information, and skills. They also have a tendency to be somewhat pedantic and dogmatic and have difficulty in discussing things with youngsters on anything like a co-operative or ordinary social basis. It is also true that teachers, particularly in their first few years and as they become much older, have a tendency to shy away from problems that relate to sex and to various other matters that are ordinarily not discussed in groups or among strangers. Many of the child's most important problems are

of this nature and they need to be discussed confidentially and sometimes quite fully. This is particularly true where youngsters come from homes where parents likewise dodge their responsibility in connection with these problems. In fact, the teacher counsellor should be thought of as a person to whom any sort of problem which bothers the youngster a great deal might be taken.

The teacher should recognize that there are some problems, some questions, that are exceedingly delicate and that the degree and extent to which the teacher goes into those problems will not depend upon local conditions only; for example, local prejudices, local backwardness, or ultramodern ideas about general questions, and also about the particular home. Where there is doubt the elementary school teacher should consult with the principal or the parents in the home about the advisability of discussing problems with pupils which are raised by them.

The teacher must realize that her function in elementary school is to help children grow up. Contributions to this may be made through the regular subjects and through activities of an extracurricular nature, but growing up sound and sturdy in personality and in the attitude towards self and towards others involves a tremendously important factor, namely, guidance and counselling. Personal conferences are needed in regard to problems which may not be discussed in groups. Teachers who do not find a place for service in this area are educating only partially.

Questions, Problems, and Exercises

1. List those areas of learning in which children of high mental ability will be more apt to succeed.
2. Discuss the major differences in learning among superior and low average children.
3. Prepare a five-minute talk on "Classifying children on the basis of mental ability."
4. Discuss the advantages and disadvantages of children's being grouped for instructional purposes on the basis of their social ages; on the basis of accomplishments in the tool subjects.
5. List the information that a second grade teacher should have in the fall before working out her long-view plan in reading; that a sixth grade teacher should have in working out her long-view plan in arithmetic.
6. List ways of providing for individual differences in reading in primary grades; in intermediate grades; in seventh and eighth grades.
7. Prepare a ten-minute talk on "Fitting the curriculum to children's capacities, needs, and interests rather than to grade classification."

8. Plan a weekly program or schedule in which you will make provisions for superior, average, and dull children in reading.
9. Prepare a ten-minute talk on "How to provide for individual differences of children just entering the seventh grade."
10. Outline a remedial reading program for seventh grade children.
11. Prepare a program in mathematics for seventh grade which will fit the needs of those children who are retarded in mathematics; for those who are advanced.
12. How would you prepare a spelling list for poor spellers in fifth grade?

Chapter 20

RECORDING AND REPORTING PUPIL GROWTH

1. Marking Systems

Within recent years several important trends have been operative with respect to the theory and practice of measuring and recording pupil growth. In the first place, less importance is being attached to marks as a means of motivating learners. They are not so conspicuous in the life of the school. Secondly, final marks or measures of growth are based less exclusively on written tests than formerly, and more on other measures of growth, such as observations, ratings of performance, daily records of behavior, and the like. A third trend may be seen in the tendency to measure more completely learning outcomes, other than the acquisition of information, e.g., understanding, mental and social skills, attitudes, ability to apply, and ideals.

The Passing of the Percentage System.—Within recent years the percentage system, or numerical system with a range of 100 points, has ceased to be the predominant marking system in American schools. Even when the 100-point numerical plan is used in scoring objective test papers, the scores are usually transmuted into five or six categories and designated by as many letters of the alphabet. The latter is commonly referred to as the literal marking system.

The decrease in the popularity of the percentage marking system can be attributed to several fallacies in the assumptions which underlie the plan. In the first place, its use assumes that the discriminations which a teacher makes in evaluating a pupil's achievement are so fine and exact that a 100-point scale is needed to record these distinctions. With the present instruments of measurement, it is very doubtful that such fine discriminations can be made with any reasonable degree of accuracy. Even if it were possible to discriminate with such a fine degree of exactitude, it is usually unnecessary to do so.

Few schools ever actually use the entire 100 points on the percentile scale. If 70 per cent is the passing mark in the school, only the upper 40 to 50 per cent of the scale is actually used. Even that many points call for discriminations of too great exactness. In the event a teacher could determine with absolute accuracy that a test paper should receive

a mark of 85 per cent, the mark would have no meaning unless the relative difficulty of the test could be clearly established. The divisions on a percentage scale represent percentages of "something." Do they represent percentages of perfection, or the teacher's knowledge of the subject, or what? Until that question is answered, no one knows what a passing or failing mark on the percentage scale means.

The Literal System of Marking.—In an attempt to eliminate the necessity for making the impossibly fine discriminations required by the percentage system, many schools have devised a five-point marking system. The interval between each two points is designated by a letter of the alphabet, usually A, B, C, D, or F. Many literal systems are merely modifications of the percentage system (for example, systems in which A equals 90 to 100 and B is the equivalent of 80 to 89, etc.). A more satisfactory procedure is to have A represent *superior* achievement, B represent *good* work, C stand for *average* achievement, D represent *poor* work, and F represent *failure*.

A clear understanding on the part of teachers of what the different letters represent will serve to decrease the variability of teachers' marks. A mark of A given by one teacher may be in respect to the quality and quantity of work the equivalent of a mark of B given by another teacher in the same school. An examination of the marks given by one teacher revealed that over a period of several years he had never given a student a mark of A, while another teacher had given a large number of A's and very few F's. It is hardly likely that any teacher over a period of years will not encounter at least a few very superior pupils.

Marking System Based upon the Normal Distribution Curve.—As deficiencies in the conventional marking systems have become more apparent because of the application of scientific methods to school measurement, new systems of recording pupil achievement have been suggested. A system based upon the normal distribution of normal probability curve has been discussed widely, but adopted by a comparatively small number of schools.

The theory of probability is based upon the results of observations of the traits of large numbers of unselected human beings. These observations reveal that in the measurement of any trait the subjects are distributed by chance according to Figure 1.

It will be observed that a large number of cases cluster around the average and a steadily decreasing number are found as the extremes are approached. Since the results of accurate measures of the school achievement of unselected groups of children tend to be distributed

according to the normal probability curve, it seems logical to make a comparable distribution of marks.

While no mathematical formula will indicate the *exact* number of pupils who should receive A, B, C, D, or F, the normal distribution curve provides a means of ascertaining the approximate expectancies

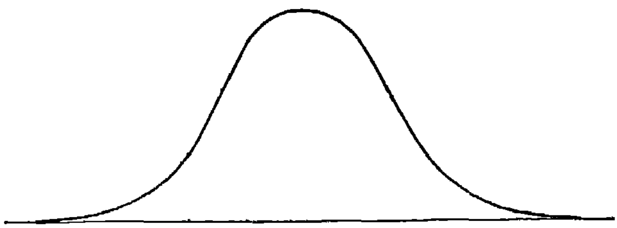


Figure 1 The Normal Probability Curve

for the occurrence of each mark. The expansion of the binomial $(a + b)^n$, in which one (1) less than the number of points on the marking scale is the exponent, will give the approximate occurrence of the marks in each category. For instance, in a five-point scale the formula is:

$$(a + b)^4 = a^4 + 4a^3b + 6a^2b^2 + 4ab^3 + b^4$$

Note that the coefficients of these successive terms in the right hand member of the equation constitute the following fractions of the sum of all of them:

$$\frac{1}{16} \quad \frac{4}{16} \quad \frac{6}{16} \quad \frac{4}{16} \quad \frac{1}{16}$$

Changing the fractions to rounded-off percentages:

Percentage	6	25	38	25	6
Marks	A	B	C	D	F

Limitations in the Use of the Normal Curve.—The normal distribution curve is mathematically true only when applied to a large number of cases. Hence the distribution of the marks of a small class into exact percentages as suggested by the curve is subject to a large error. Similar divisions of the marks of large classes are likewise liable to serious error. The fact that classes deviate from the normal injects another biasing factor into the situation. Some classes may have a large number of superior students in them, whereas another class may have a disproportionate number of poor students. In regard to the amount of deviation, the teacher can verify his own judgment by the use of standardized achievement tests. However, as

was suggested in Chapter 18, the validity of standardized achievement test scores should be verified in terms of the objectives of the course.

It is extremely important for the teacher to understand, in the use of the normal curve as a basis of marking, that it is not necessary to give the mark of failure to any student or to any exact percentage of the class. Neither is it likely, using a five-point marking system, that any exact percentages of the students, or for that matter any student, in a given class will receive a mark of A.

Allowances should and can be made for variations arising from small samplings of students. Various plans have been proposed which give a certain degree of latitude within each interval. For example, the distribution of marks might be as follows:

A	B	C	D	F
0—15%	20%—30%	30%—40%	20%—30%	0—15%

Dangers in Excessive Flexibility.—While too strict adherence to the normal probability curve is undesirable in the allocation of marks, extreme flexibility should likewise be avoided. One of the chief values of this type of marking system is that it promotes greater uniformity in the distribution of marks among teachers within a school. Preconceived ideas cause some teachers to consider all pupils in their classes as inferior or as superior. This bias is often revealed in the assignment of a large number of either high or low marks by a teacher over a period of years. Accurate evaluation of the achievement of a large number of classes, having a total enrollment of several hundred students, will very closely approach a normal distribution of marks. In most high schools, intelligence tests scores of all the pupils are available. These scores provide a sound check on the teacher's judgment in regard to the extent to which a class deviates from the normal.

Advantages of Normal Distribution System.—Despite the difficulties involved in the proper use of this type of marking system, it possesses certain distinct values. These advantages may be summarized as follows:

1. It serves to prevent misunderstandings among the teachers in regard to marks.
2. It affords a more satisfactory basis for an understanding of the meaning of school marks by pupils and their parents.
3. It provides marks of greater significance for guidance and other educational uses, since the subjective elements in marking are reduced.

In interpreting a mark, it should be related to some standard as the basis of comparison. The normal distribution provides such a standard. A mark reveals the pupil's achievement in relation to that of normal achievement of a typical class in the subject. Pupils and parents understand the meaning of a mark more readily when it is explained in terms of the achievement of the other members of the class.

Effective use of the system serves to minimize the opportunity of the teacher who wishes to establish a reputation for high standards by giving an unreasonable number of low marks. Likewise restrained is the teacher who appears oblivious of accepted standards to the extent of giving unearned high marks to students in order to win their approval. The pupils and schools deserve to be protected from teachers such as these.

Decreasing Emphasis Upon Marks.—Because of the increasing recognition of the bad effects of the use of marks upon children's attitudes toward school, learning, and teachers themselves, as well as the increasing dependence of good teachers upon other means of motivation, less and less is being said in school about marks, and parents are being encouraged to attach much less importance to marks. It is quite possible that before a great many years pass, marks will not be given to pupils or to parents, but kept for purposes of guidance and teaching.

2. Records

Fifty years ago school records represented a series of judgments of the child. Achievement was recorded on the basis of specific goals set for a grade and these goals were limited to the mastery of the school subjects. Today records are used for the purpose of guiding the child, ascertaining his status in subject matter, and as evidence of reasons for success or for failure.

The records of today do not have little squares in classbooks in which a teacher records a numerical grade, but they have larger spaces in which descriptive accounts may be written. Graphs present a picture of the child's growth. Anecdotal records reveal what the child has done or said. Cumulative folders and records show the developmental pattern of the child. These records are constructed by the teacher, parents, and children cooperating—the teacher giving information pertaining to the child's patterns of behavior in school; parents presenting information pertaining to the home life of the

child; and the children assisting in setting up goals of accomplishment against which they evaluate their behavior patterns.

The schools are concerned with the problem of devising new record forms which describe child growth and which record information obtained by means of the new evaluative techniques. The new record forms are assuming the characteristic of objectivity thus making it possible for any one who reads the record to understand the information which is recorded. The forms of the records vary but are simple. The mechanics of keeping the record should not take too much time, but must be sufficiently complete to be of practical value to the teacher.

Attendance Records.—Daily attendance records are important documents. Frequently it is necessary for courts to check the attendance of children In some states state and county school money is distributed on the basis of children enrolled or on the basis of daily attendance. In order to locate children who are of school age and who are not attending school, the teachers' daily attendance record is checked against the school census. Many children who should be attending school in the United States are not in school because communities and school administrators have not checked carefully their attendance records against the census lists. In smaller schools teachers are supplied with attendance registers, while in larger school systems, a list of absentees is sent to the principal's office soon after school is opened.

Family Background.—In order to understand children it is essential that the teacher have information pertaining to their life and environment in the home The economic and social status of the family, interests, and experiences, all affect the child's behavior. Information in regard to the home which may be obtained by means of questionnaires or interviews is as follows:

1. Family
    a. Birthplace and date of birth of child
    b. Parents
        1. Nationality
        2. Occupation
        3. Education
        4. General health
        5. Marital status
        6. Number of siblings—age, sex, education
        7. With whom does child live
2. Home
    a. Type—house, apartment, trailer, etc.

   b. Educational features in home—books, radio, etc.
   c. Regular jobs done by child
   d. Things which family does together
3. Leisure time activities
   a. Play space at home—in yard and in house
   b. Hobbies
   c. Travel
   d. Attendance at picture shows, skating rinks, etc.

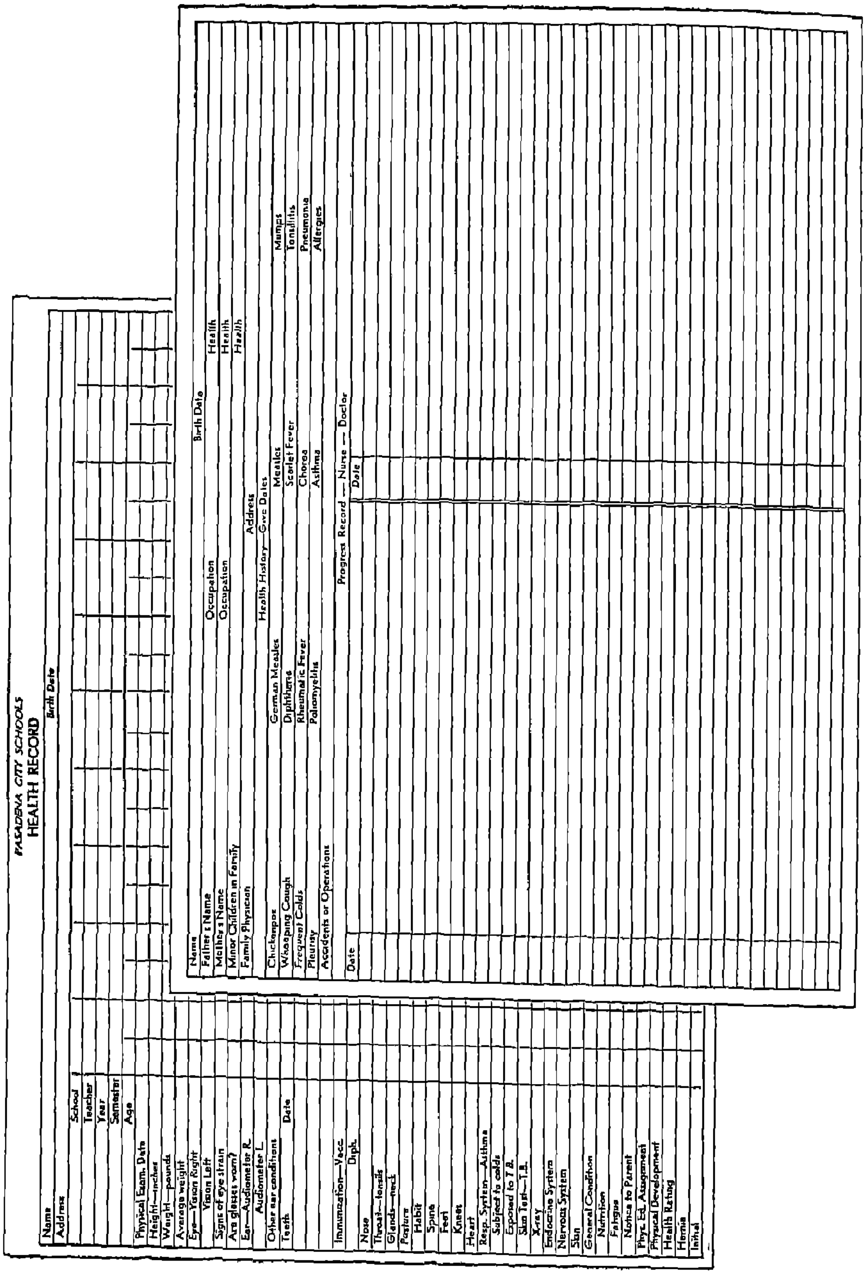
Frequently part of this information is recorded on a health record card or on permanent record cards. Often teachers use 4- x 6-inch cards and file the cards in a small filing box which may be bought at a five and ten cent store.

Health Record.—Many classroom teachers are expected to assume the major responsibility in making observations pertaining to the health of the child, in checking periodically on such factors as weight, in administering screening tests in hearing and vision, and in keeping the records up to date. Schools use various types of records, which may be a separate health card, a part of permanent record card, or an anecdotal record. One health record (Figure 2) is presented in order to show specifically the information which is generally requested.

Achievement Profile.—An achievement profile represents the status of a child in various areas of learnings. By means of an achievement profile, information that may be obtained in regard to (1) years or months retarded or accelerated and (2) growth in terms of years or months obtained by comparing profiles of two tests given several months apart. Teachers and children often construct their own profiles and fit them to their specific problems which they wish to study. Of the following profiles one is based on a standardized achievement test and the other was constructed by a teacher (Figure 3). This profile shows that in September, Mary was accelerated in three subjects and retarded a half year in arithmetic fundamentals.

The Spelling Profile (Figure 4) is taken from the records of a student teacher of the University of Colorado, Boulder, Colorado.

The spelling profile shows number of words missed on Wednesday's and Friday's tests with type of errors made on each test. By knowing the type of errors made, it was possible for the child to direct his study efforts in order to remove spelling errors. In comparing the profiles it is evident that the child improved as a result of study on Thursday and that the number of types of errors is decreasing gradually.


PASADENA CITY SCHOOLS
HEALTH RECORD
Name
Birth Date
Address
School
Teacher
Year
Semester
Age
Physical Exam. Date
Height—inches
Weight—pounds
Average weight
Eye—Vision Right
Vision Left
Signs of eye strain
Are glasses worn?
Ear—Audiometer R.
Audiometer L.
Other ear conditions
Teeth
Date
Immunization—Vacc.
Diph.
Nose
Throat—tonsils
Glands—neck
Posture
Habit
Spine
Feet
Knees
Heart
Resp. System—Asthma
Subject to colds
Exposed to T.B.
Skin Test—T.B.
X-ray
Endocrine System
Nervous System
Skin
General Condition
Nutrition
Fatigue
Notice to Parent
Phys. Ed. Assignment
Physical Development
Health Rating
Hernia
Initial
Name
Birth Date
Father's Name
Occupation
Health
Mother's Name
Occupation
Health
Minor Children in Family
Health
Family Physician
Address
Health History—Give Dates
Chickenpox
German Measles
Measles
Mumps
Whooping Cough
Diphtheria
Scarlet Fever
Tonsilitis
Frequent Colds
Rheumatic Fever
Chorea
Pneumonia
Pleurisy
Poliomyelitis
Asthma
Allergies
Accidents or Operations
Progress Record — Nurse — Doctor
Date
Date

METROPOLITAN ACHIEVEMENT TESTS

PRIMARY II BATTERY: FORM A

(*Revised*) **Prim. II**

A

(*Revised*)

By GERTRUDE H. HILDRETH, PH.D.
Teachers College, Columbia University, New York

With the coöperation of
FREDERICK B. GRAHAM, RICHARD D. ALLEN,
HAROLD H BIXLER, and WILLIAM L. CONNOR

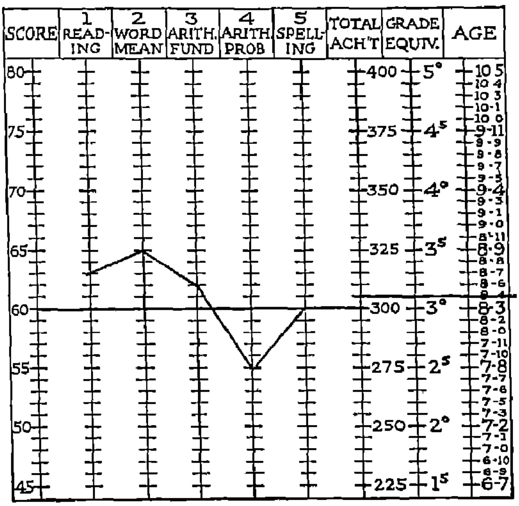
For Grades 2° to 3⁵

Name. Mary. . . . . Date. Sept. . . 19. .

Grade. . 3. . Age 8. . yrs 2. mos. Teacher . . . .

School. . . . . City. . . . . State. . . . .

TEST	SCORE	GRADE EQUIVALENT
1. READ.		
2 WORD MEAN		
AVER. READING		
3 ARITH. FUND		
4 ARITH. PROB.		
AVER ARITH		
5 SPELL		
TOTAL ACH'T		



Published 1940 by World Book Company, Yonkers-on-Hudson, New York, and Chicago, Illinois

PRINTED IN U.S.A. MAT: PRIM II · REV. . A- 10

Figure 3. Metropolitan Achievement Test

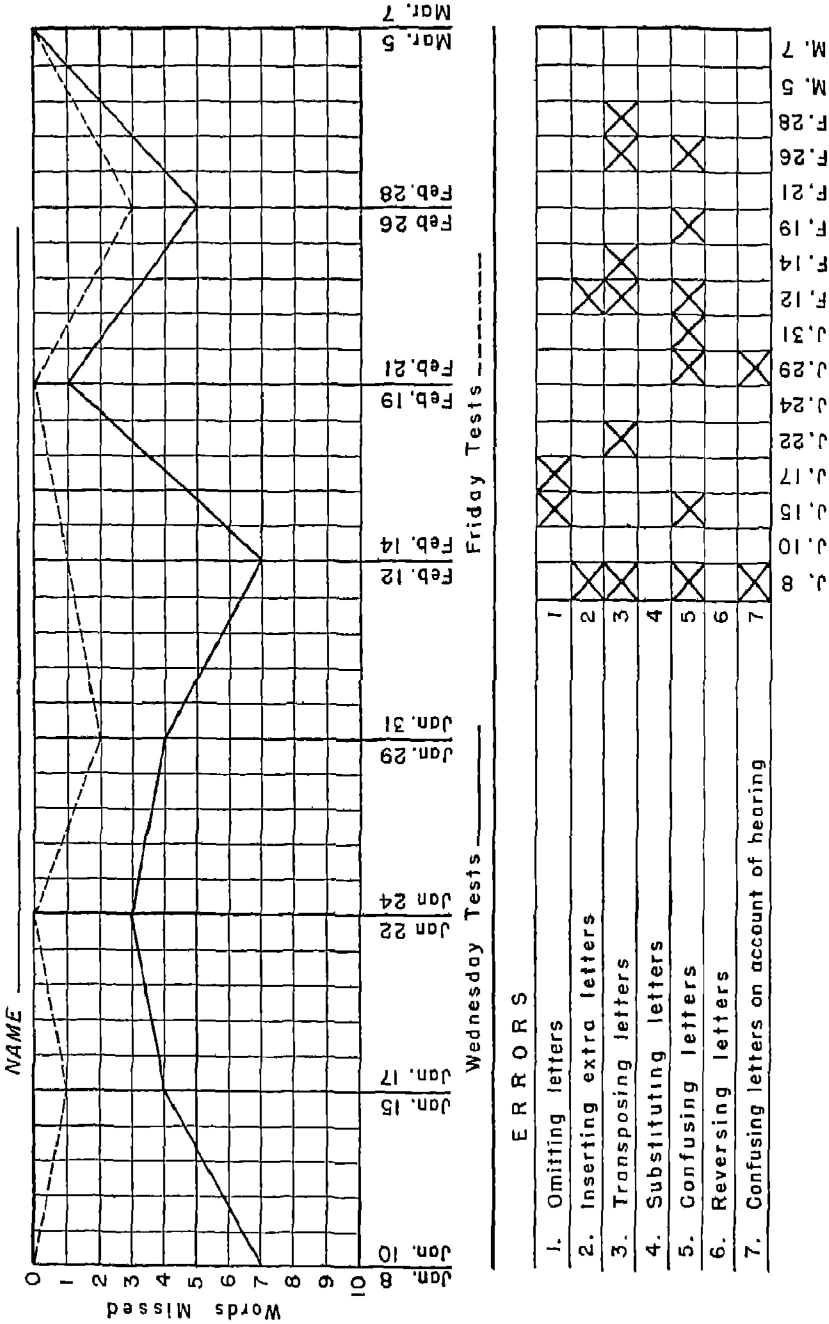


Figure 4. Evaluation of Spelling Ability

Anecdotal Record.—The anecdotal record, frequently called the journal record, is a cumulative record in which teachers record positive and negative behavior patterns of children in varying situations and in different activities over a certain period of time with the date of each incident. These records may contain information pertaining to activities in and out of school, such as observations of behavior patterns; accurate accounts of statements made by children either orally or in written work; contributions made to work or play activities; responsibilities assumed; creative accomplishments in art and music. In order to avoid self-consciousness on the part of the individual for whom a record is being kept, all recording should be done in the absence of the individual. All entries must be made as soon as possible in order to avoid omitting important items which might be forgotten. A place may be provided on the record for interpretive data and suggested recommendations. Since the characteristics of a good anecdotal record have been presented in the previous chapter, it will not be necessary to discuss them at this point. Only important information should be recorded on the cumulative record. The following record illustrates one type of incomplete anecdotal record of a child who was a reading problem.

Name of Child

Date	Activity	Accomplishment	Behavior Modified by
Jan. 27	Group Reading	Read poorly	Not interested
Jan. 28	Silent Reading	Sat and dreamed	Not interested
Jan 30	Silent Reading	Very little done	"I don't want to"
Feb. 4	Group reading	None	Inattentive
Feb. 6	Individual reading	Read well, enjoyed reading	Individual attention received
Mar. 5	Group reading	Contribution based on own efforts	Interested in sharing information

Sociograms.—For the teacher to understand the individual pupil it is necessary for her to have a knowledge of his social status in a group of his peers. Sociometry has made available an instrument usually referred to as a *sociogram* by which teachers can ascertain the degree to which the individual pupil is accepted or rejected by other members of his class. By the simple device of asking members of a class to express their preferences for those they wish as their best friend or any one of many other social relationships, it is possible to obtain information in regard to the social structure of a class or other group of children.

Data can be obtained in regard to the status of the individual in different roles in the group by constructing sociograms based upon the responses to questions pertaining to various matters. For example, an individual may be chosen as the one with whom other children may wish to work but he may be rejected as the best friend. Since social status is not fixed, sociograms based upon different questions may reveal varying types of acceptance or rejection of an individual. Various degrees of social acceptance of an individual in regard to the same matter may be ascertained by asking the members of a group to express first, second, and third choices: write the name of your *best* friend, the name of your *next best* friend, and the name of your *third best* friend.

The sociogram is constructed by writing the name of each pupil on a piece of paper. The name of each girl is usually encircled while the name of each boy is usually placed in a rectangle. The response of each pupil is indicated by an arrow drawn to the name of the classmate chosen. If more than one choice is requested, the different choices of each child may be indicated by the use of differently colored ink (or pencil) or by solid lines for first choices, broken lines for second choices, and dotted lines for third choices. Mutual choices of pupils may be indicated by lines with arrows at both ends drawn between the names of two children. Many teachers construct sociograms of their classes at the beginning of the school year. The children whom the sociogram reveals are not accepted by the class (usually designated as isolates) are assisted by the teacher in more effective participation in the activities of the class. If the presence of cliques within the class is revealed by the sociogram, wider participation by members of the clique in activities involving the whole class is encouraged. Near the end of the school year another sociogram of the class can be constructed to reveal the progress in social relationships made during the year. Figure 5 is a sociogram of a fourth grade class in Corpus Christi, Texas.[1] The sociogram was made in October upon the basis of three questions or choosing situations as follows:

1. Write the name of your best friend.
2. Write the name of your next best friend.
3. Write the name of your third best friend.

It will be observed that a clique existed within the class, that certain pupils were isolates, and that certain children outside the clique chose

[1] Used by permission of Anna Belle Donalson, Fourth Grade Teacher, Furman School, Corpus Christi, Texas.

members of the clique but were not chosen by members of the clique (usually referred to as fringers). The sociogram also reveals that at the fourth grade level girls choose girls and seldom choose boys. The sociogram for the same class indicating the choices of the boys

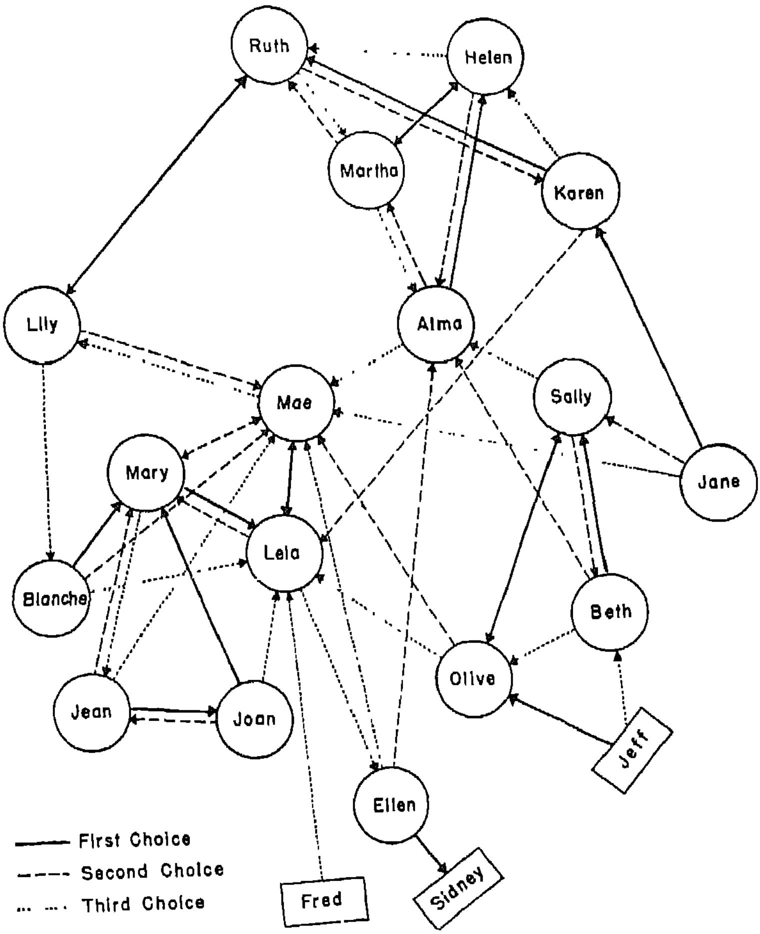


Figure 5 Sociogram of Seventeen Fourth Grade Girls

shows that in most cases they choose other boys rather than girls.

Sociograms of first, second, and third grade classes show that boys and girls choose each other.

1A	Name—(Last-First-Middle)	Birth Date

2 FAMILY RECORD (To be entered whenever change occurs)

3	Date					
4	Family Status					
5	Occupation of Father					
6	Occupation of Mother					
7	Number of Children					
8	Position of Child					
9	Comments					
10	Teacher's Signature					

SPEECH AND READING DISABILITIES

	Date	Explanation
11		
12		
13		
14		
15		
16		
17		
18		

	Date	REMARKS ON MENTAL AND PHYSICAL HEALTH	HEALTH RECORD—YEARLY RE						
19			Date						
20			Height						
21			Weight						
22			Orthopedic						
23			Posture						
24			Nutrition						
25			Anemia						
26			Uncleanliness						
27			Skin						
28			Speech						
29			Mouth Breathing						
30			Nasal						
31			Tonsils						
32			Adenoids						
33			Thyroid						

34	Mother's Health		Home Conditions		Measles		Mumps
35	Father's Health				Scarlet Fever		Smallpox
36	Child's Health				Influenza		Tonsilitis
37	Operations						
38							

39	Date—First Enrollment	School	Grade	Last School Attended (If from another system)	City
40	Father	Birthplace	Mother		
1	Name—(Last—First—Middle)	Birthdate	Sex	Race	

Figure 6a. School Record Card

	Sex	Race	Change in Name

ADDRESS—WITHDRAWALS—READMISSIONS

Date	Address or Reason for Withdrawal	School

Comments

PORT

HEALTH RECORD—YEARLY REPORT

Glands										
Teeth										
Hearing										
Ear Disease										
Vision (c)										
Vision (s)										
Eye Disease										
Headache										
Respiratory										
Cardiac										
Nervous										
T.B. Signs										
Acute Illness										
Habits										

Whooping Cough		Chicken Pox		Rheumatism	
Diphtheria		Pneumonia		Date-Vaccination	
Bronchitis		Poliomyelitis		Date-Diph Immun.	

FAMILY PHYSICIAN

State	Religion	Transcripts Mailed

Birthplace	Language Spoken—Home	Guardian—Name	Card 2 Made

Birthplace	Address (Use Pencil)
	Duluth Public Schools—Form 14A

, Used in Duluth Public Schools (*face*)

41A	Name— (Last-First-Middle) Form 14B	Father

ELEMENTARY GRADES (Kindergarten—One—Two—Three—Four)

42	Year			
43	Grade			
44	Schools			
45	Days Attended			
46	Absent—Tardy	Abs. / Tardy	Abs. / Tardy	Abs. / Tardy

		SUBJECT	S.T.	Av.	SUBJECT	S.T.	Av.	SUBJECT
47	Marks in School	Reading Readiness			Reading			Reading
48	Subjects	English			English			English
49	and				Spelling			Spelling
50	Standardized	Numbers			Arithmetic			Arithmetic
51	Achievement	Social Studies			Social Studies			Social Studies
52	Tests	Natural Science			Natural Science			Natural Science
53								
54					Penmanship			Penmanship
55		Art			Art			Art
56		Music			Music			Music
57		Rhythms			Physical Education			Physical Education

		NAME	Date	CA	MA	IQ	NAME	Date	CA	MA	IQ	NAME	Date	CA
58	School Ability													
59	Tests													

		Gr.	TEST	Date	Gr E	Gr.	TEST	Date	Gr E	Gr.	TEST
60	Educational										
61	Tests—										
62	Standardized										
63											
64											

65	SOCIAL	POSITIVE	1-Adaptable	3-Aggressive	5-Conformist	7-Cooperative	9-Courteous	11-Dependable
66	QUALITIES	NEGATIVE	2-Stubborn	4-Retiring	6-Individualist	8-Uncooperative	10-Rude	12-Erratic

67	Social Qualities Rating			
68	Individual Development			
69	Special Abilities and Interests			
70	Personality Assets			
71	Needs Help With			
72	Behavior Modified By			
73	Referred to			
74	Teacher's Signature			

41	Name	Father

Figure 6b. School Record Card Used

	Mother	Birthdate	Sex	Race

			GRADE 4 OR 8 AS NEEDED
	Abs. / Tardy	Abs. / Tardy	Abs. / Tardy

S. T.	Av	SUBJECT	S T	Av	SUBJECT	S T	Av	SUBJECT	S. T	Av.
		Reading			Reading			Reading		
		English			English			English		
		Spelling			Spelling			Spelling		
		Arithmetic			Arithmetic			Arithmetic		
		Social Studies			Social Studies			Social Studies		
		Natural Science			Natural Science			Natural Science		
		Penmanship			Penmanship			Penmanship		
		Art			Art			Art		
		Music			Music			Music		
		Physical Education			Physical Education			Physical Education		

MA	IQ	NAME	Date	CA	MA	IQ	NAME	Date	CA	MA	IQ	NAME	Date	CA	MA	IQ

Date	Gr E	Gr	TEST	Date	Gr E	Gr.	TEST	Date	Gr E	Gr.	TEST	Date	Gr E

13-Diplomatic	15-Friendly	17-Industrious	19-Leadership	21-Obedient	23-Respectful	25-Self-confident	27 Self-controlled
14-Tactless	16-Aloof	18-Lazy	20-Followership	22-Disobedient	24-Disrespectful	26-Timid	28-Uncontrolled

	Mother	Address (Use Pencil)	Phone

in Duluth Public Schools (*reverse*)

The teacher of the class included in the sociogram made an effort to assist one of the isolates in the class by

1. Encouraging her to participate in not too strenuous games
2. Making a friendly visit to her home.
3. Giving her errands and tasks to do with other children.
4. Giving her every opportunity to appear well before the group.
5. Asking her mother to let her take dancing in order that her muscular coordination will be developed.

Permanent Cumulative Records.—Permanent records are a summary of the child's growth from year to year and show the progress which he is making as he is maturing. These records usually contain the following information: health record, interests, scores made on achievement and intelligence tests, social qualities, frequently a profile. These records are usually recorded on cardboard or in booklets and are filed in the superintendent's or principal's offices. Figures 6a and 6b present a permanent cumulative record.

Cumulative Folder.—In order to discern the growth pattern of a child, it is essential that a record of his development be kept over a period of years by the teachers under whose guidance the child happens to be at a specific time Each teacher should study the previous records and add to the records. Information which is filed in cumulative folders should include the following: health record, achievement profiles and achievement test results, typical art work, records of daily work, teacher-made tests which have been taken by the child, individual sociograms, anecdotal records, questionnaires filled in by parents and children, records of conferences with children and parents.

A manila folder may be used to accumulate the information and can be filed in a wooden box made by manual training classes or in a box obtained from a merchant. Since the folders are likely to become bulky and difficult to manage, they should be "weeded out" several times during the year. At this time the teacher should summarize the information in a descriptive statement which tells about the child in various areas of learning and social activities. Cumulative records must be adjusted to fit each school system as school systems vary in regard to administrative policies, type of curriculum used, evaluative techniques used, and content that goes into the folder.

Since records include both positive and negative data, it is imperative that every teacher use the information professionally and should not permit herself to be prejudiced toward any child. In every record there also will be data which will reveal the worth of each individual.

3. Reporting to Parents

As records change and take into account the fact that "the whole child" goes to school, reports to parents should also stress the fact that the child is growing as a "whole." The traditional card with its marks of 70, 95, or A, B, C, does not give any indication of the type of behavior patterns that are being developed or whether the child is growing according to his level of ability.

Report cards have been deservedly criticized for not being accurate records of pupil growth. It has been claimed that they do not reveal general development and ignore very important areas of growth, e.g., various characteristics of personality and social behavior. It also has been pointed out that the marks do not measure progress. The marks are usually in terms of relative status of the children and do not furnish measures of individual child growth. Another weakness apparently lies in the fact that the marks are not in terms of absolute achievement. Since teachers vary so much in standards, the marks are misleading and not understood by parents. Still another objection is that teachers tend to allow good or bad behavior, personal likes and dislikes, personal appearance, "apple-polishing," and other extraneous influences to affect the marks. Some of the main limitations of the traditional report card are:

1. The temptation to use marking as a device to coerce children into doing better work
2. Probability of unsatisfactory competitive comparisons by parents and children
3. Misunderstandings of objectives of school by parents
4. Concern of children with the grade rather than with the desire to improve and to grow in the acquisition of knowledges and understanding of all types of learnings
5. Tendency to overemphasize memorization of facts
6. Effect of overt behavior upon the mark
7. Possibility of discouraging child receiving low grades to point of giving up trying
8. Probability of developing undesirable attitudes, such as superiority complexes, selfish pride, or snobbery, of children who receive high grades
9. Rewards for high grades encourage child to resort to undesirable means of securing information by cheating or lying

Trends in Reports.—Administrators and teachers are realizing the limitations of the traditional report card and are attempting to devise more accurate ways and means of reporting to parents. The

points which are being considered in devising new reports which describe the growth and development of the child as it is revealed by the new evaluative instruments are as follows:

1. Consistency with the philosophy that the "whole child" is growing
2. Accuracy, that is being reliable and valid
3. Considers strengths and weaknesses of children
4. Terminology that is understood
5. Economical in time needed to record data
6. Practicality—usable for guidance purposes
7. Form usable at any time

Transition from Traditional to Modern Reports.—Two procedures may be followed in making a change from the traditional report card to the modern report. In the evolutionary method the change was made first from the numerical to the letter system. In the second stage of development the letter system was changed to U (unsatisfactory) and S (satisfactory) according to the ability of the child. The final step involves the use of statements indicating behavior patterns. The latter system may be confusing to parents and children. With each change a program of parent education must be developed in order to obtain the approval of those who are interested in the school program. Constant changing is not conducive to satisfactory parent-teacher-pupil relationships.

Another approach is to make the change in an experimental way. In this program the traditional card is used in the majority of the grades and the new reporting system would be used in one or two grades. A good place to start the new plan is in the primary grades. In this way a smaller percentage of the parents would be affected by the immediate change to the new plan and an interested curiosity might be aroused on the part of many who are not directly affected by the change. Then as the primary children advance in the grades, the new program can expand; over a period of six or eight years, the new methods of reporting will be accepted by the public without public relations being strained. The speed with which a new reporting system is introduced into a school system must be determined by the nature of the community, the personnel of the faculty, and the status of home-school relationships.

Parent Conferences.—Modern schools are stressing parent-teacher conferences as a means of reporting the child's progress in school. These conferences may be held on a certain afternoon during the week or two entire days in each five or six-week period may be devoted to the work. In order to have a satisfactory conference with

a parent, it is essential that the teacher prepare for the meeting by becoming familiar with the child's cumulative record and by considering the following points:

1. Favorable behavior patterns which should be reported first
2. Unfavorable behavior problems
3. Attendance record
4. Special difficulties in basic tools
5. Child's ability to do school work
6. Select parts of record which will be shown to parent
7. Study those phases in which the child is apt to make most improvement
8. Recall home conditions
9. Anticipate questions which the parent may ask and prepare answers to them

During the conference the teacher should not ask too many questions, but she should be an attentive and sympathetic listener and give suggestions and advice in a kind and tactful way. It is not advisable to take extensive notes, but after the parent has gone, the teacher should make a memorandum of major issues discussed.

Written Appraisals.—Written statements should be phrased so that the parents will understand reports of the child's progress. Written appraisals should be characterized by the following topics:

1. Favorable comments should begin and close the letter.
2. Items pertaining to growth socially, physically, intellectually, and emotionally should be included.
3. Comparisons with child's own previous accomplishments should be made.
4. Make evaluations on the basis of child's ability.
5. Give causes for nonprogress.
6. Offer suggestions for home guidance—commenting that they may or may not work.

Objections to written appraisals are that they require much time to write and that it is very difficult to convey information to parents through the written word. With large classes letters may become stereotyped, which would not justify the expending of time and effort by the teacher.

Examples of New Reports.—Ways and means of reporting the progress of children to parents through reports have taken several different forms. The Progress Report forms employed in the Lincoln, Nebraska, schools and Palo Alto, California, schools are typical illustrations of the new types of forms for reporting to parents.

To Parents or Guardian:

The descriptive statements in the column below represent desired goals of pupil achievement. To the right is given the School's estimate of your child's apparent progress in achieving these goals. It is an individual report and is not intended as a comparison of your child with another, or with the class

	First Quarter			Second Quarter			Third Quarter			Fourth Quarter		
	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve
YOUR CHILD												
SOCIAL GROWTH												
1. *Is happy and friendly*												
2. Is courteous												
3. Accepts responsibility												
4. Is learning self control												
5. Shows respect for property												
6. Respects and obeys authority												
WORK HABITS												
1. Follows directions												
2 *Works well with others*												
3. Works well alone												
4. Finishes work undertaken												
5. Makes good use of time and materials												
HEALTH HABITS												
1. Attends school regularly												
2. *Observes good health practices*												
3. Has good posture												
4 Is clean and neat												
5. Participates in physical activities												

To Parents or Guardian:

A check will be placed opposite each characteristic to indicate the degree of growth your child has made each quarter Only one of the three measures of growth will be checked each quarter, and at no time will checks be placed opposite the names of the areas evaluated

	First Quarter			Second Quarter			Third Quarter			Fourth Quarter		
	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve	Satisfactory	Is Improving	Needs to Improve
GROWTH IN FUNDAMENTALS												
READING												
1 Your child is reading at this level												
Reading Readiness												
Pre-Primer												
Primer												
First Grade												
Second Grade												
Third Grade												
2. Is interested in reading												
3 Reads well aloud												
4. Understands what he reads												
LANGUAGE												
1. Listens while others talk												
2 Expresses *ideas* well in speaking and writing												
3. Writes plainly												
4. Spells correctly (2nd, 3rd Grades only)												
SOCIAL STUDIES												
1. Takes part in *group discussions and* activities												
2. Observes and enjoys nature												
NUMBER WORK												
1. Knows necessary number facts												
2 Solves *simple problems* (2nd, 3rd Grades only)												
APPRECIATIONS												
1. Enjoys and takes part in music activities												
2 Expresses ideas well in art												
3 *Has growing appreciation of beauty*												

Figure 7. The School's Report to the Parents: *Palo Alto, Calif, Grades 1 to 3*

To Parents or Guardian

The descriptive statements *in the column* below represent desired goals of pupil achievement. To the right is given the School's estimate of your child's *apparent progress* in achieving these goals. It is an individual report and is not intended as a comparison of your child with *another, or* with the class.

PROGRESS IN FUNDAMENTALS	First Quarter: Satisfactory	First Quarter: Is Improving	First Quarter: Needs to Improve	Second Quarter: Satisfactory	Second Quarter: Is Improving	Second Quarter: Needs to Improve	Third Quarter: Satisfactory	Third Quarter: Is Improving	Third Quarter: Needs to Improve	Fourth Quarter: Satisfactory	Fourth Quarter: Is Improving	Fourth Quarter: Needs to Improve
READING												
1 Understands what is read												
2 Reads well aloud												
3 Has adequate vocabulary												
ARITHMETIC												
1 Knows number facts for grade												
2 Uses *number facts* accurately												
3 Reasons well in solving problems												
SOCIAL STUDIES												
1 Shows ability to gather facts												
2 Shows ability to interpret facts												
3 Takes part in class discussions												
4. Is interested in current events												
LANGUAGE												
1 Expresses ideas well in writing												
2. Expresses ideas well orally												
SPELLING												
1 Spells required lists of words												
2 Uses correct spelling												
WRITING												
1 Writes plainly and neatly												
NATURAL SCIENCE												
1 Observes and enjoys nature												
2 Acquires nature facts												
LIBRARY												
1 Uses good library procedures												
2 Shows interest *in good books*												

To Parents or Guardian:

A check will be placed opposite each characteristic *to indicate the degree* of growth your child has made each quarter. Only one of the three measures of growth will be checked *each quarter*, and at *no* time will checks be placed opposite the names of the areas evaluated

PROGRESS IN FUNDAMENTALS	First Quarter: Satisfactory	First Quarter: Is Improving	First Quarter: Needs to Improve	Second Quarter: Satisfactory	Second Quarter: Is Improving	Second Quarter: Needs to Improve	Third Quarter: Satisfactory	Third Quarter: Is Improving	Third Quarter: Needs to Improve	Fourth Quarter: Satisfactory	Fourth Quarter: Is Improving	Fourth Quarter: Needs to Improve
PHYSICAL EDUCATION												
1 Takes part in *organized games*												
2 Makes proper use of free play												
MUSIC												
1. Participates in music activities												
2. Shows growth in music appreciation												
3. Is learning to play an instrument												
ART												
1 Participates in *art activities*												
2 Shows growth in art appreciation												
SOCIAL GROWTH												
HEALTH HABITS												
1. Attends school regularly												
2 Keeps neat and clean												
3 Seems well adjusted and happy												
4 Has good posture												
WORK HABITS												
1. Arrives on time												
2. Listens to teacher's instructions												
3 Makes satisfactory effort												
4 Finishes *work undertaken*												
5. Works well alone												
6 Uses time wisely												
SOCIAL HABITS												
1. Practices self control												
2 Observes safety rules												
3 Shows respect for authority												
4 Shows courtesy toward others												
5 Cooperates well with others												
6 Shows respect for property												

Figure 8. The School's Report to the Parents: Palo Alto, Calif., Grades 4 to 6

NAME

PERSONAL AND SOCIAL GROWTH OF THE CHILD	1st	2nd	3rd	4th
Health				
Cheerfulness, cleanliness, posture, rest habits, consideration for the health of others				
Responsibility and Self control				
Willingness to accept responsibility for own actions, self reliance, emotional control, respect for personal and public property				
Safety				
Safety within the school building, on the playground, away from school				
Getting along with others				
Consideration for others, helpful contributions to group planning, good sportsmanship, willingness to abide by group decisions				
Work and study habits				
Industry, perseverance, satisfaction in doing work well, promptness, interested attention				
Interests and appreciations				
A variety of wholesome interests, appreciation of good qualities and achievements of others.				

+ - Special commendation, S - Satisfactory, usual development for child of his age; √ - Improvement needed

PARENTS' QUESTIONS AND SUGGESTIONS

First report

Signature of parent

Second report

Signature of parent

Third report

Signature of parent

GROWTH IN SKILLS, UNDERSTANDINGS AND APPRECIATIONS	1st	2nd	3rd	4th
English—Oral and written				
Clear expression of ideas				
Good choice of ideas				
Good choice of words				
Use of correct forms of speech				
Enjoyment of stories, poems, dramatizations				
Poise in speaking before a group				
Correct spelling				
Legible handwriting				
Reading				
An active interest in reading				
An understanding of what is read				
Meaning given to others when reading orally				
Independence in getting new words and meanings				
Arithmetic				
An understanding of number relationships				
Knowledge of facts and processes				
Skill and accuracy in work				
Clear reasoning in solving problems				
Social Studies				
Growth in understanding of community life				
Knowledge of geographical and historical facts				
Interpretation of pictures, maps, globes				
Clear thinking in gaining new understandings				
An active interest in world events				
Music				
Pleasure in singing and listening to music				
A feeling for rhythm				
Skill in reading music				
Art				
Eagerness to make good use of art materials				
Expression of ideas in an interesting way				

1-Excellent, 2-Very good, 3-Good, 4-Fair, 5-Failing

Marks in the various subjects have taken into account the items listed under each subject and the general success of the child in the work set up for his grade.

Where the plus mark (+) is used, that one phase of the child's work is better than the subject mark indicates.

Where the check (√) is used, that one phase of the child's work is poorer than the subject mark indicates.

Figure 9. The School's Report to the Parents: Lincoln, Nebr.

Questions, Problems, and Exercises

1. What are the relative merits and disadvantages of (a) the percentage marking system, (b) use of letters, A, B, C, D, and F, (c) the use of Satisfactory and Unsatisfactory?
2. Select a child and develop a permanent record for him.
3. Why is it important to develop ways of measuring growth in appreciations, attitudes, work habits?
4. Develop a plan for an evaluative program at the elementary level which is based on teacher evaluation of child growth within the areas of co-operation, appreciation, industry, courtesy.
5. Interview a principal in order to learn the procedure used in requisitioning various supplies, such as paper, paints, books, etc.
6. Write a letter to parents informing them of some particular accomplishment of their child in school.
7. Make a set of notes in preparation for a conference with a parent of a "problem child."
8. Review research in regard to the effects that traditional marking systems have had upon children and report findings to the class.

Chapter 21

SPECIAL EDUCATIONAL PROBLEMS

1. Extra-Class Activities

The successful teacher of today no longer thinks of extracurricular activities as extras, frills, concessions to pupil desire for play, but as an important educational experience and an integral part of the school program. How children will think, act, and feel in the future can be influenced very materially by their experiences in extracurricular activities. From these experiences they can acquire important habits, skills, interests, tastes, information, understandings, and attitudes as illustrated below for certain of the objectives of education.

Today society is beginning to recognize its responsibility in providing situations in which children will feel more secure and in which they may assume responsibilities for furthering group participation, thus giving them a feeling of belongingness and that they are needed. Organizations in which children will receive guidance and to which many children belong are scouting clubs, the Red Cross, art clubs, and bands. In these organizations and many others, human values are preserved and a deeper appreciation of the worth of each individual is developed. Following is a description of several clubs of educational potentialities found in many schools.

Junior Red Cross.—The Junior Red Cross is the American Red Cross in the schools. The program meets the needs of the school and should serve as a factor contributing to the regular school program. The unit of enrollment is the school group, the fee being fifty cents for each elementary schoolroom. No individual fee is required, but membership will have a greater meaning for the children if they cooperate in providing the fee. Each elementary schoolroom is entitled to the American Junior Red Cross News. The success of the program requires the combined interest and effort of school authorities and the local Red Cross Chapter. When a chapter desires to develop its junior membership, it should secure the approval and cooperation of the school officials. If the school desires the Junior Red Cross it should seek the cooperation of the local Red Cross Chapter. If there is no

local chapter, school authorities should apply directly to the area office. National office, American National Red Cross, Washington, D. C.

Camp Fire Girls.—The objective of the Camp Fire Girls program is to have a club for teen-age girls in which they work and play and learn to plan, to take responsibilities, and to cooperate with others in working toward a common goal. The club is a little democracy. A Camp Fire Girl may be any girl of ten years or over. There are six to twenty girls in a group, who meet once a week in a school or church or in a member's home. Activities include home crafts, hand craft, health, nature, business, Indian lore, etc. National dues are one dollar a year. Clubs, church groups, schools may organize Camp Fire Clubs. The junior group is known as Blue Birds and any girl seven to nine years may belong. Blue Bird dues are fifty cents a year. For information write to Camp Fire Girls, Inc., New York.

Scouting Clubs.—Lord Baden-Powell was the founder of the entire Scout movement for boys and girls The relationship between the Scouts and the American schools is very close. Scouts are held in high esteem by citizens in the community, by school faculties, and by students. Girls Scout troops are small, democratic groups who respect the rights and beliefs of others and welcome any girl into the group regardless of race, color, or creed. The ideals of the group embody a practical code of conduct and a sound basis for citizenship. Girls ten through fourteen years of age may join the troop. The junior group is known as Brownie Scouts; girls seven through nine years of age are eligible. Annual national membership dues for each girl are fifty cents. The troop meets once a week. As many activities as possible are carried on out of doors. National headquarters is maintained in New York.

A boy scout prepares himself for many things, such as to rescue people, to help strangers, to gather firewood, to serve his country. Boys between the ages of nine and twelve are known as the Cub Pack. The most logical group to sponsor Cub Packs is the Parent Teacher Association. Parent participation is essential, as mothers serve as Den Mothers and fathers as Den Dads, and Den meetings take place once a week in the home and in the yard. Boys living in rural areas who go long distances by bus or car may organize a Lone Scout Tribe National Headquarters is maintained in New York.

Boys' Club.—The Boys' Club is a nonsectarian organization whose program is adapted to all boys but particularly to boys from low-income families. It includes all boys from eight to twenty years of age.

A large proportion of the members live in the poorer sections of our cities and towns and many are of foreign parentage. The Boys' Clubs offer recreational games, motion pictures, physical training, life saving, correction of body weaknesses, shower baths, library activities, summer camps, and playgrounds. Boys' Clubs must have buildings or rooms set apart exclusively for club purposes. A club usually is started by a citizen who is interested in boys, and they often are sponsored by Community Chests. Headquarters in New York.

Audubon Junior Club.—The purpose of an Audubon Club is to study and to protect birds. Ten or more children of elementary school age constitute a club and each club has an adult adviser. Club dues are ten cents per member for the school year. Clubs may enroll at any time. Every club receives the Junior Club paper, *News on the Wing*. Club advisers receive a special booklet or guide, *Audubon Teacher's Guide*. Headquarters in New York.

Science Club.—Any one who is interested in science may join. Younger members range in ages from nine to fifteen. Often clubs set up requirements for admission—for example, a certain grade average, or to have completed a certain number of units in science, or to be a certain age. Clubs range in size from three members to six hundred. Sponsors should be science teachers with the quality of leadership. There is no charge for affiliation with the Science Clubs of America. Interested persons should write to Science Clubs of America, in Washington, D. C.

4-H Clubs.—4-H Club work is designed to meet the educational needs of rural boys and girls. The age limits are set by state extension services and usually range from ten to twenty years. 4-H Clubs are organized on a voluntary basis under the supervision of county extension agents, who are employed cooperatively by the Department of Agriculture, the State colleges of Agriculture, and county governments. Local leaders may be farmers, homemakers, teachers, and men and women of other professions. Each 4-H Club member does a piece of work that teaches better ways in homemaking, in agriculture, in raising cattle or poultry, etc. Club meetings are held in the homes and the work is done in the home or on the farm. The general activities of the 4-H Clubs include demonstrations, club days and club picnics, nature hikes, tours to observe good practices, camps, exhibits, etc.

School Camping.—School camping in the elementary schools has gone through the experimental stage and has proved to be a worth-

while educational experience for boys and girls. Schools should include camp life in the curriculum. The trend is for boards of education to use state-owned camps or to rent private camps for camping experiences for the children. School camps that are operated by boards of education usually employ part of the staff during the camping period.

Camp experiences have been provided for children by various agencies, such as Boy Scouts, Girl Scouts, Camp Fire Girls, service clubs, churches, fraternal orders. Camp experiences are many and varied, depending upon the program planned by those carrying on the project. Following are only a few of the many possible experiences: sharing camp duties; studying plants; learning how to relax; studying history of the region where the camp has been pitched; life-saving. In camps children learn to share responsibility, to live with others, and to expand and to extend their interests.

So well accepted as educational experiences have pupil "activities" become that some writers have advocated dropping the word *extracurricular* and speaking of such activities as part of the curriculum or as "co-curricular" activities.

The most desirable outcomes will not automatically result from student participation in haphazard extracurricular activities. If the maximum educational benefits are to result, the activities and the student participation must be planned with definite educational objectives in view just as in the case of teaching and curricular experiences.

When a teacher is assigned the supervisorship of a student activity, he should think through carefully the more important contributions to educational objectives that may be made through the medium of that activity and read what others have said about the possible contributions. He should then think of the various mental, physical, and other activities in which students participating in the activity will engage and evaluate each of these in terms of the contributions they may make to skills, attitudes, ideals, interests, information, habits, and understandings. The results of participation should be thought of as

1. Contributing to important objectives of a nature not provided for by the curriculum; e.g., outcomes involved in cooperation, leadership, and initiative.
2. Contributing to objectives of at least moderate importance not provided for in the curriculum; e.g., accounting methods, athletic skills, and dramatic ability.
3. Reinforcing the curriculum by contributing additional experience to important objectives not adequately provided for in the cur-

riculum; e.g., those outcomes involved in oral and written expression, understanding of community life, and social competence.

4. Contributing to relatively important objectives; e.g., pride in achievement of class, feeling of oneness or unity in group endeavors, loyalty to larger group, good sportsmanship.
5. Avoiding repetition of experiences provided in the regular curriculum; e.g., practice in penmanship, typing, or music.
6. Avoiding the formation of erroneous ideas or false standards of values such as
   a. Creating wrong impressions about business and business methods.
   b. Allowing superficial or unbusinesslike methods of accounting.
   c. Developing snobbishness and conceit among cliques.
   d. Developing undemocratic or unsocial political practices.
   e. Developing an unnatural obsession to win at all costs.
   f. Developing inferior techniques in speech, writing, singing, playing an instrument, etc.
   g. Excessive participation resulting in neglect of other educational activities, overwork, loss of sleep, etc.
7. Contributing to guidance and personality development; e.g., helping socially inferior individuals to develop skills in group participation to build up self-confidence.

Good planning and supervision of extracurricular activities involves the reduction to a minimum of waste motion and wasted time in the form of repeating specific types of activities far beyond the point where diminishing returns begin. In the classroom, teachers usually avoid waste through excessive repetition (indeed they are forced to the other extreme). In extracurricular activities, it is a rather common occurrence for students to continue a type of experience long after educational returns begin to decrease.

Good planning and supervision of activities also calls for careful consideration and analysis of the types and relative importance of outcomes. The matter cannot be dismissed by thinking of the results of participation as "training." "Training" must be thought of in more specific terms, that is, as acquisition of information, understanding, interests, ideals, attitudes, habits, or skills. Careful analysis must be made for concomitant outcomes, and they too must be scrutinized, evaluated, and credited or charged to a particular activity.

The better-trained and more successful teacher today does not abandon educational statesmanship to cater to the whims, appetites, and prejudices of the untrained adults of the neighborhood or the untrained and immature young learners. Compromising when neces-

sary or feasible, he steers a firm course toward a long-range educational objective.

The teachers less well trained and those lacking in character tend either to lose sight of educational objectives or to sacrifice them in the interest of expediency or personal popularity. A great many supervisors of co-curricular activities think more of putting on a public exhibition, which is pleasing to the adults and seems to reflect credit upon the "coach," than of the training received by the student participants.

There are other important considerations which if kept in mind and observed in the management of student activities will contribute to greater educational returns. Among the more important are the following:

1. The educational value of an activity is directly proportional to the number of individuals participating.
2. Some individuals need the type of training provided by any given activity much more than others.
3. The importance and values of the activity should be recognized by students, teachers, and parents.
4. Activities must not be dominated and supervised too much in detail by the sponsor or coach.

From these considerations, many suggestions for the conduct of extra-class activities may be derived. Among them may be mentioned the following:

1. Care should be taken that enough activities are provided for all, e.g., not merely one team, or one cast for one play.
2. Participation, particularly in the roles of leadership, should be rotated not only to provide opportunities for more individuals, but to prevent participation by a few students beyond the point where diminishing educational returns result.
3. Care should be taken to encourage individuals most in need of a certain type of experience to participate in an activity likely to provide that type of experience.
4. Those already well trained along certain lines should permit others more in need of particular types of training to participate.
5. Recognition of the importance of activities should be evident in the selection, promotion, and salary of teachers, and in such matters as marks.
6. Teachers should recognize that the educational value of extra-class activities is dependent in part upon the opportunities for planning, initiative, organization, and leadership by the learner-participants. An important characteristic of activities is the

greatly diminished teacher domination and the detailing of supervision and leadership as compared to classroom learning.

The following additional suggestions apply especially to directing club activities.

1. The teacher should give careful thought to the kinds of activities the club may profitably carry on and the way in which those activities may be made most educational.
2. The teacher should meet with committees frequently, especially in the early days of the club, until sound patterns of activity are established.
3. The teacher assists the club in determining the qualifications for its officers but does not bring pressure to bear in favor of specific individuals.
4. The teacher should guide the officers of the club in their thinking but avoid attempting to shape their conclusions too aggressively.
5. The teacher should permit the club, its committees, and its officers to use their own judgment even when their decisions seem not to be the best. The good teacher realizes that such a plan is sound educationally, and should be departed from only in rare cases of fundamental principle and unusual importance.

2. Getting Ready for the Year and the First Day

To be most successful the teacher should be preparing continuously for the work of the ensuing year, gathering ideas for making her work more successful, and ordering or making preparation to order equipment, instructional materials, and books, periodicals, pamphlets, and bulletins for the library.

Ascertaining the Nature of Her Duties.—When the teacher accepts a new position, she should ascertain the nature of the work she will be expected to do, what class she will teach, and with what other aspects of the work of the schools she will be associated. She should obtain copies of local and state courses of study, if they are available. She may also obtain city courses of study published by other systems for her subjects or examine those available in the curriculum collection at some good institution. From these courses she should gather many ideas about the materials and methods she could employ to advantage. She should also examine good textbooks in the subjects she will teach, including those employed the year before in the school in which she will teach.

If she discovers that there are areas of subject matter with which she is not fully conversant, she should not only read several text-

books in these areas but also some of the supplementary references, or at least make plans for reading them during the year. If she is to teach in a grade where she has had little training, she should obtain and read at least one and preferably two or three good books on the teaching of that grade.

She should if possible visit the school building to inspect the equipment and the library and other facilities for teaching her subject. If these are deficient in important respects, she should see if they cannot be built up in time for use in the following year.

Learning about the School.—The teacher going into a school for the first time will be wise if she learns a great deal about the school before the year begins. She will wish to learn about the organization of the school, its curriculum, and its plans for management, including such things as:

1. The hours during which teachers are expected to be in the building.
2. How absences and tardiness are reported, recorded, and cleared.
3. The standards and rules for pupil conduct in the halls, in the classroom, etc.
4. The amount of home study, if any, which is expected in the grades she will teach.
5. How and when teachers may requisition equipment and supplies.
6. The rules for operating heating, ventilation, and lighting and for use of janitorial service.
7. What is expected of teachers in matters of public relations, including school publicity.
8. What the plans for fire drill in the building are.
9. The marking system used.
10. Facilities for mimeographing.
11. The provision of textbooks, workbooks, and supplies for students.
12. Special duties: lunch hour, halls, etc.
13. Library facilities and rules.
14. Attendance at school functions.
15. Health service for pupils who become ill or injured at school.
16. Plans for registration.

Among the more useful sources of information about these things are the following: the handbook for teachers, supervisory bulletins and announcements, teachers who have taught there previously, and the principal of the school. If a handbook or supervisory bulletins for teachers have been issued, these may usually be obtained from the principal or superintendent.

Learning about the Community.—The teacher new to a community should acquaint herself in advance or early in her teaching experience with various aspects of community life. She should know how the people earn their living, what the principal industries are, and what types of homes are most common in it. This information will enable her to understand better the background and interest of the pupils and the interest of the parents.

She should discover what the principal religious institutions are, and the degree of sensitiveness to religion the community possesses. She will wish to know something about community attitudes and social practices relative to card-playing, dancing, and such matters. She will want to know what nationality and racial groups are represented in material numbers. She will find it useful to know what cleavages or factional differences are prominent in the community with respect to politics, religion, economic interests, and nationality.

Knowledge of all these things will enable the teacher new to a community to avoid discussions in class or in conversations outside of school hours which are likely to generate much more heat than light and consequently to develop antagonism to the teacher which will handicap her work. It is not intended to recommend that the teacher play up to local prejudices and avoid discussion of all controversial matters, but the knowledge in advance of what matters are the center of deep-seated attitudes and emotions will enable the teacher to avoid innocent stimulation of opposition, to decide what controversial matters are worth discussing despite local differences, and to plan carefully such discussions as are likely to stir up critical reactions in and out of school.

If the teacher knows the factions exist and who the leaders are, it will enable her to avoid remarks which have no special purpose or significance, although this will be unwelcome and will be held against the teacher. Success in teaching is to some extent at least a matter of diplomacy and strategy which must be planned in the light of the local situation.

The teacher should familiarize herself with the potentialities of the community as a curriculum resource, e.g., factories, city hall, police headquarters, hospitals, newspapers, packing plants, historical sites, slums, centers of transportation, and communications activities.

Learning about Pupils.—It is certainly not time wasted for the teacher to acquire what knowledge is available concerning the pupils she will teach during the coming year. Useful knowledge of this type includes:

1. The general level of intelligence of the student population of the school, particularly as indicated by tests of intelligence and of school achievement
2. The general pattern of pupil attitudes and school traditions, which may be learned from older teachers, school publications, etc.
3. Problems that have existed with respect to the general morale in the school, which may be learned from parents, members of the board of education, and older teachers
4. The general level and the spread of pupil achievement in the previous year in the fields she will teach, which may be learned from the other teachers and the school records
5. The names of, and information concerning, pupils with unusual problems, which may be learned from other teachers and the principal
6. The names of the brightest students, as indicated by school marks and intelligence tests or as may be learned from other teachers. To them should be given educational tasks especially adapted to the bright
7. The understanding that comes from a personal acquaintance with at least a few of the youngsters in the community—an acquaintance that begins and develops on a nonschool basis before the opening of school
8. The summer activities of the children of the particular age group which he will teach

The First Day.—School boys and girls are like all other human beings in that they are inclined to make up their minds about another person upon the basis of first impressions to such an extent that it requires much acquaintance of a contrary nature to correct those first impressions. Not only the students, but in small communities parents and others, are curious about new teachers and usually eager to listen to the remarks of the students. It is therefore very important, especially in the case of new teachers, to get off to a good start the very first day.

Among the more important suggestions which are essential to making a good beginning the first day and the first week are the following:

1. Be prepared with as much knowledge of your students as possible.
2. Have the first week's work planned very carefully, but be ready to deviate from the plan as the need may arise.
3. Make definite assignments involving a reasonable amount of definite work to do.

4. Check on the previous assignment very carefully the first week or two.
5. Do not attempt anything spectacular or radical during the first day and the first few days.
6. Do not be too severe or too cordial and informal—be natural.
7. Make careful preparation in advance:
   a. To see that chalk, erasers, etc , are available if needed.
   b. To see that any equipment or materials to be used in the way of visual or auditory aids are available and in working order.
   c. To ascertain if textbooks, workbooks, or other similar needed materials will be immediately available.
   d. To provide for work to keep pupils busy, especially if textbooks, workbooks, paper, or other equipment is lacking
8. Comment only to a minimum extent about yourself, your standards of discipline, etc. Keep the discussion of both pupils and yourself on the work at hand
9. Avoid any unusual tenseness or self-consciousness. Do your best to feel at ease and confident.
10. It is very desirable to be able to call children by their names as soon as possible. For that reason new teachers and teachers in large schools should prepare in advance for each class on a piece of a cardboard or paper not less than 8½ x 11 the basis for a seating chart, perhaps in the form of intersecting lines forming rectangles, for as many rows as there are and as many seats as in each row. In these rectangles may be written the name of each student according to where he sits. Naturally, the teacher should become independent of the chart as soon as possible. Correct pronunciation of all names should be learned at the outset. If there is any doubt, ask the pupil concerned to pronounce it first.
11. In smaller schools it is well in the first few days or weeks to make a special effort to come to know the student leaders, to call them by name, and unostentatiously to establish cordial relations.
12. If textbooks or supplies are to be distributed, this should be planned and the teacher should know where and when they may be obtained, what records should be kept, and how the students are to make payments or deposits for them.
13. Without ostentation the teacher should give the impression that she knows what she is doing. Excuses and explanations of the reasons for procedure are definitely to be avoided.
14. Care should be taken in planning each day's class with a view to having the subject matter and procedure well in mind including, of course, the assignments.
15. Special attention should be given to seeing that the work of the first week is not dull, though it is not wise to attempt to make the work far more interesting than the work of later weeks will be.

16. Especially in the upper grades the teacher should avoid the extremes of aloofness and of too energetic effort to become friendly and informal at once.
17. In many classes it is useful to ascertain how well prepared the students are for the work ahead. This may be done by means of a formal placement test, by board work, by written assignments, by carefully planned class discussion, or by a combination of these. Ordinarily time should be taken to review only those things in which a considerable number of the students are weak and which are prerequisite to good work in the class. A few individuals may be asked to do a little extra remedial work.
18. The new or beginning teacher should not hesitate to consult immediately older teachers or the principal on any and all perplexing problems, rather than permit a situation to get out of hand or work at a disadvantage.
19. In matters of discipline the new teacher should act with confidence and restraint. Petty infractions should be overlooked the first day or two, but disturbing conduct must be dealt with in a firm way indicative of self-confidence.
20. All reports called for by superior officers should be handed in promptly. Promptness is unusually important at the opening of the year.
21. Be familiar at the very start with general school regulations in order to cooperate with authorities and see that regulations are observed from the start.
22. Reveal a sense of humor and a basically human disposition. (This can be overdone just as severity is so often overdone the first week.)

3. The Teacher and the Community

Learning About the Community.—In the previous chapters it was suggested that prior to beginning her work in a new community the teacher should acquire considerable information about the community in which the school is located—its industries and civic institutions, its religious attitudes, and attitudes about social practices. The gathering of information of this sort should continue throughout the teacher's experience in the community. She should always be in search of opportunities to relate her instruction to the community, using the community as a basis for making verbal instruction more concrete and more meaningful.

Establishing One's Self in the Community.—The teacher should proceed cautiously but definitely and systematically to become a part of the local community. Because of the fact that the teacher's personal

contacts are largely with the children instead of with adults, it is an easy matter to live aloof from the community life. This, together with the fact that teachers new to the community are usually young people, unmarried, and already have other home community connections, makes for the unsatisfactory and somewhat dangerous situation of the teacher living in a community, being a community servant paid with tax money, yet not being a part of the community. No other type of public official would risk such an untoward condition.

The teacher in the small community should attend some local church from the outset even if not a church member, and she should learn the names of adults in the community and form the practice of calling them by name, greeting them and "passing the time of day" with them upon every occasion. The teacher should accept all reasonable invitations to participate in the social life in the community. She should not associate exclusively with other teachers but mingle freely with other persons. Above all, the teacher should attend all meetings of the P. T. A. and should at the meeting greet those whom she has met, meet others, and learn as quickly as possible the names of as many parents of her students as possible. The importance of establishing, maintaining, and extending good public relations is far greater than many teachers realize.

Conforming to Local Standards.—The teacher, like many others in her community, particularly the other professional people, physicians, attorneys, public officials, is dependent for her professional success upon the good will and respect of the people of the community. Every community has its standards of social conduct which it expects to be met. Because of her close association with young people and the fact that high school students and the community youth in general pattern themselves after the younger teachers, the teacher is in a particularly public position. Young people in the community who oppose the wishes and restrictions of their parents by saying, "Why shouldn't I do that or go there? Mr. (or Miss) Teacher does!" are making trouble for the teacher.

The teacher, therefore, must learn what the community standards are. If they are intolerable to her, she should move to another community at the end of the year. She should observe the local standards as long as she is in the community.

With respect to many of these things, it should be noted that the first year in the community is the most critical one. After a teacher has been in a community for several years, particularly if she has made many friends and has a wide acquaintance, she may do and

say things which would be most unwise before she gained acceptance as a member of the community group.

Specific Suggestions.—Particularly in small communities the teacher should observe the following cautions.

1. Be careful not to criticize any individuals in your community. It is amazing how quickly and surely such remarks get to the individual criticized or to his friends.
2. Do not praise individuals except in the manner of seconding praise of others. Enemies of the praised individuals are prone to assume that you belong to the other crowd.
3. Patronize local stores for the very great part of your expenditures.
4. Never speak disparagingly of the community or its institutions, no matter how pitiful they are or how much you hear others criticize. Criticism from the "outsider" is rarely acceptable.
5. Be cautious in speaking your views on controversial matters—particularly if they do not concern your students and the welfare of young people. Do not attempt, particularly at first, to indoctrinate your community.
6. Discuss with your principal and superintendent school and community questions that trouble you.
7. Never criticize and rarely discuss other teachers, your administration and administrative school officials, or the board of education, with others than your very close confidants—and then most cautiously.
8. Be careful at all times to avoid being thought of as belonging to a "faction."
9. Remember at all times that you may be "provincial" and that you must learn to be tolerant and understanding.

Informing the Public.—The teacher should always be alert to the possibilities of contributing to a better understanding of the work of the school. Not only should she cooperate wholeheartedly with the program of the entire school system and that of the building or school in which she is employed, but she should (keeping the principal informed all the while) initiate and carry on public relations activities on her own or together with others of her department.

Among the public relations activities employed successfully by many school departments and teachers are exhibits of the work of the students (handwork, musical performances, student discussions, plays and playlets) before service clubs and other organizations in the community, at county fairs, or in show windows downtown, and stories in local newspapers as well as in the school paper about the work of the students and developments in the school, the new courses, new

equipment, standard test results, special "weeks," school programs, honors awarded to the school or its representatives, assembly programs, athletic interests, special honors, and unusual achievements of individual teachers.

In news stories and in the public presentation of students or of their work it is advisable to observe certain important principles:

1. School administrators should give due credit to students and teachers.
2. Teachers should give credit to students and not monopolize the spotlight.
3. Individual students should not be praised excessively or exhibited conspicuously; keep the center of interest in the group rather than in any individual.
4. Individual teachers should be careful not to overdo publicity which seems to be boastful or center too much upon themselves.
5. The teacher should learn to write for the newspapers interesting concise copy. Editors and reporters are pressed for time and cannot spare much time for writing school news.
6. The teacher should have a definite understanding with the principal and superintendent as to what kinds of copy should have their approval before sending news items to the newspaper. In some schools all copy goes through the office of the principal or of the superintendent.

4. The Teacher and Research

Not only is the physician far more completely trained than the teacher, but with few exceptions he continues when in practice to read the results of medical research and findings. There are scores of journals printed in English in which medical research is published. More than 95 per cent of the physicians and surgeons in the United States receive and most of them read fairly regularly the *Journal of the American Medical Association,* in which each week there are on the average approximately ten or a dozen articles and forty or fifty large pages of reports of medical research.

Teachers are generally not well trained in reading reports of educational research, much less in doing research. They do not possess an adequate stock of concepts and terminology in statistical and experimental methods. Many journals publishing educational research insist that the writers of the articles prepare their reports in relatively nontechnical terms. There is, therefore, very little reason for any teacher not to keep abreast of the more important educational research.

Among the more useful media of publication of educational research are the following periodicals, which are here classified on the basis of the relative technicality of the reports published:

Most Technical Journals.—

1. *Journal of Experimental Education.* All fields. Department of Education, University of Wisconsin, Madison.
2. *Journal of Educational Psychology.* Warwick & York, Inc., Baltimore.

Somewhat Technical Journals.—

1. *Journal of Educational Research.* All fields but more articles on elementary education. Department of Education, University of Wisconsin, Madison.
2. *Review of Educational Research.* Summaries of the findings of researchers. Each issue is devoted to a single field, e.g., "The Language Arts." The cycle of fields is repeated each three or four years. U. S. Office of Education, Washington
3. *Journal of Applied Psychology.* Northwestern University, Evanston, Ill.

Nontechnical or Only Slightly Technical Journals.—

1. *Understanding the Child.* A magazine for teachers. The National Committee for Mental Hygiene, New York.
2. *Elementary School Journal.* Elementary education. Department of Education Publications University of Chicago, Chicago.
3. *Educational Research Bulletin.* Ohio State University, Columbus.

Series of Monographs and Bulletins.—Many of the more complete and technical reports of research are published in the form of small books or bulletins. There are several rather important series of such publications including the following:

1. *Contributions to Education.* Principally the reports of researches conducted as doctoral studies. Teachers College, Columbia University, New York.
2. *Supplementary Educational Monographs.* University of Chicago, Chicago.

Books.—Often an investigation is of such proportions that a book of several hundred pages or even a set of several books is necessary to report it. In these categories are:

1. *Appraising and Recording Student Progress,* by Eugene R. Smith, Ralph W. Tyler, and others Adventure in American Education Series. Progressive Education Association. New York: Harper & Bros., 1942. Vol. III.
2. *Mental and Physical Traits of a Thousand Gifted Children,* by Lewis Madison Terman. Stanford University, 1925 Genetic Studies of Children, Vol. I.

Some volumes contain reviews or summaries of research in a given field. For example, William S. Gray's "Summary of Reading Investigations, July 1, 1941, to June 30, 1942," was reported periodically in the Journal of Educational Research (Vol. XXXVI, pp. 401-444).

If teachers feel that they cannot afford to purchase personal copies of these books or subscribe to research publications they should ask

the administration of their schools to buy them for the professional library which the majority of school systems now have.

Changes in Attitudes Toward Research.—Principally through the researches of Thorndike and Terman and their graduate students in the first quarter of this century many reliable and valid means of measuring intelligence and educational achievements have become available. Statistical and research methods also have become more generally understood and appreciated. As a result, not only has the amount of reliable knowledge about education procedures vastly increased, but a great body of unsound beliefs and practices based upon authoritative and dogmatic speculation has been discredited and abandoned.

Prior to these developments much research on education was of a very amateurish and unreliable nature as the result of the following types of weakness and limitations:

1. Measurements provided measures of only part of the educational results.
2. The measurements employed did not measure growth. They measured only final status and did not take into consideration status at the beginning of the experiment.
3. Nonexperimental factors, e.g., intelligence, special abilities, and learning which resulted from sources outside the experimental setup, were not adequately controlled.
4. The statistical methods employed were inadequate or inappropriate.
5. The interpretations of findings were not skilful and sound.

Those well trained in research became so busy directing the research of others—chiefly candidates for master's degrees who were not competent to do research and usually not much interested in doing it—that they did little painstaking research themselves. Promotions, particularly in college faculties, came to depend largely upon the number of research articles published. A premium was placed not upon the quality of research but upon the number of published titles. Ambitious young instructors could not wait for promotion until long-term careful research investigations could be completed.

These factors contributed to a lessening of respect for and confidence in educational research. In addition many teachers were not trained to read technical research. Many others found courses in statistical and research methods difficult and distasteful. The natural tendency was for all these groups to rationalize—to pooh-pooh research and to forget about it. In this they were aided and abetted by

college teachers of education who were themselves untrained in research and statistical methods and found their positions of leadership insecure.

Still other factors operated to cause teachers to neglect research. A considerable number of teachers colleges, established and expanded in times of a greatly increasing demand for teachers, found that, as enrollments in the schools reached the saturation point, they must make these courses easier and more interesting. Statistical methods and research are not easy and are usually of interest only to the better trained and more capable. At the same time, the Progressive Education movement in many places fell into the hands of superficialists, institute and convention entertainers, and butterfly chasers. It attracted and consoled a great many of the more emotional, less intellectual, and nonscientific-minded teachers. The loose thinking of superficialists who would substitute high-sounding phrases for painstaking thinking and hard work resulted in educational bankruptcy.

More recently a counter trend of sanity has asserted itself. It has been recognized that the educational progress of young people was suffering. The war has also counteracted to some degree the national tendency to seek the cozy and soft and to avoid the rigorous. Today there is less and better research. Today there is a definite trend to the conduct of sound research and the reading and application of its findings.

Characteristics of a Good Experimental Investigation of Learning.—Teachers who have not had courses in research methods, in measurement, and in statistical methods should at their first opportunity take such courses Until they can take courses in these fields, they should read an elementary book on each of these subjects. Three of the suitable books are mentioned :

1. Sorenson, Herbert *Statistics in Education and Psychology.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc.
2. Rugg, Harold. *Primer of Graphics and Statistics for Teachers.* Boston: Houghton Mifflin Co.
3. Garrett, Henry E. *Statistics in Psychology and Education.* New York: Longmans, Green & Co.

From training in research methods, measurement, and statistical methods the teacher will learn to recognize the characteristics of a sound experimental study of learning and of teaching procedures, including the following essentials·

1. Employment of a control group of learners comparable to the experimental group and of the same degree and pattern of dis-

tribution of ability, educational status, and ability to learn, and of equal status with respect to the things to be learned. Comparability is usually measured by

a. General intelligence test, mental age, and intelligence quotient
b. Tests of information, skills, understandings, habits, or other outcomes to the development of which the experimental learning experience should make material contribution
c. Marks and ratings by former teachers

2. Control of factors, other than the method or materials being investigated, likely to influence growth of the students in the areas of the more important outcomes, e.g.:
   a. Age
   b. Sex
   c. General home environment
   d. Relative skill of the teacher or teachers, both in general and with particular respect to the experimental and control methods and materials
   e. (Of great importance) opportunities to learn elsewhere, i.e., stimuli, outside the experimental group, to the development of the outcomes to be measured
3. Selection (or development) and use of reliable and valid measures of growth outcomes during the experimental period. (These measures should grow out of the experimental method and materials and should not be mere subject-matter information tests. Measures should be expressed in terms of units which are reasonably equal and comparable, so that growth as indicated by final and initial scores of 60 and 40 respectively will be equivalent to growth as indicated by scores of 70 and 50, or 45 and 25.)
4. Appropriate statistical treatment, for example, determination of the statistical reliability of whatever differences are found, including the extent to which they may be the result of unreliability of the measures of growth or chance errors of sampling (if coefficients of correlation are employed they should be appropriate, e.g., not linear for nonlinear data, and they should be carefully interpreted).
5. A painstaking and logical interpretation of the data and the findings, sufficient to pass the following tests:
   a. Were all the more important possible outcomes adequately measured?
   b. Were experimental and control groups approximately equivalent in ALL the important regards that would likely determine the amount of growth during the experimental period?
   c. Were all nonexperimental factors likely to influence growth during the experimental period eliminated or so controlled

as to produce equivalent effects upon the two groups, e.g., learning from outside sources or the relative lack of experience of the teacher with the experimental methods?

d. To what extent could the differences discovered or the fact that no significant differences were discovered be attributed to chance?
e. Were the general conclusions of the study applicable alike to bright, dull, and average learners? to boys and to girls? to younger and to older learners?
f. To what extent could the conclusions be applied to other classes? other subjects? learners of other ages? learners in other types of communities? learners in schools employing different methods?
g. To what extent were the experimental results affected by attitudes, which were not typical or permanent, of the learners or of the teachers?

Cooperative Research.—In many of the larger cities investigations are being carried on under the leadership, planning, and direction of competent investigators. Under their direction teachers assist by cooperating in the course of their regular duties or by serving on committees or in other capacities as their training and ability qualify them. These investigations usually deal with such subjects as (1) learning, (2) course of study development, (3) individual problem pupils, (4) construction of measuring instruments, and (5) achievement, pupil adjustment, home environment, community conditions, employment opportunities, and the like. Many of the more desirable positions in larger school systems are open only to those with training, interest, and capacity to carry on or to assist in any way in carrying on investigational or creative research.

Questions, Problems, and Exercises

1. Add one or more suggestions to those given for "Getting Ready for the Year and the First Day." Which ones of those given do you think are of greatest value?
2. Make a list of all the more important things a teacher should endeavor to learn about the community and where she could find each.
3. What, in your subject, could you exhibit or bring to the attention of the community as a means of helping the public appreciate the work of the schools?
4. Find at least one issue or copy of the periodicals and books mentioned in connection with research and select several good research reports of interest to you.

5. Make an abstract in about 500 words of a research report. Include objectives, techniques, sources and nature of data, findings, and conclusions.
6. List several important weaknesses found in research investigations.

Chapter 22

PROFESSIONAL AND BUSINESS PROBLEMS

1. Getting a Position

Teaching as a profession has among others two very attractive characteristics. Except in most unusual times it is not difficult to obtain a position, and there is more than average security in one's position. In times of economic depression there is usually a surplus of teachers. However, even in such times the possibilities of getting a position are good. There is always a demand for young, well-educated teachers with good personalities.

In prosperous times there is a scarcity of teachers. During World War II a critical shortage of teachers developed, and more than 15 per cent of all teachers in this country taught on emergency certificates issued to legally unqualified persons. Doubtless there will not be until late in the 1960's enough qualified teachers to fill the demand. As the result of the greatly increased birth rate throughout the 1940's, there will be throughout the '50's and perhaps well into the '60's a greatly increased school enrollment calling for hundreds of thousands more elementary school teachers and school administrators.

Criteria for Evaluating Positions in Education.—Hence the problem is not so much one of finding *a* position as finding the best one possible. What constitutes the best one possible for any given individual depends upon a number of factors, prominent among which are the following:

1. Amount of annual salary and the pattern and maximum of the salary schedule
2. Opportunities for, and assurance of, advancement financially and otherwise
3. Cultural advantages of the community—musical, dramatic, and social
4. Mores, customs, and conventions of the community
5. Location of the community with respect to larger cities of unusual cultural and amusement opportunities
6. Quality of places available for the teacher to live

7. Quality of professional leadership in the school and the school system
8. Nature and amount of work required of the teacher—number of classes per week, extracurricular duties, etc.
9. Physical climate of the community
10. Opportunities for a satisfying social life; and for unmarried women teachers, the relative number of desirable and eligible young men in the community
11. Proximity to large and attractive school systems in which promotion may be found
12. Degree of adaptation of the subjects taught and other responsibilities to the preparation and the interests of the individual teacher
13. Requirements for promotion, e.g., summer study or travel
14. Security in position and certainty of tenure
15. Financial considerations other than salary: retirement plan, sick leave, health and hospital insurance, etc.

In applying for and in considering offers of positions, one must investigate the school and the community with respect to most of these criteria, attaching to each item a weight proportional to its importance to the individual seeking a position. Ordinarily a teacher should visit the community and the school, particularly if it is in session, before making a final decision. She should discuss the school and community with the placement bureau if she is notified of the position by a college placement agency. She should attempt to discover what one may expect in other communities in which she is likely to be considered for a position.

Avenues for Placement.—Among the avenues through which teachers find positions, those most commonly employed are:

1. The placement bureau of college or university from which she has a degree (Such bureaus usually charge a small registration fee.)
2. Commercial teachers' agencies, which usually charge a fee of 5 per cent of the first year's salary
3. Independent application to the superintendent of schools of a city in which the applicant has no other contacts
4. Independent application to the superintendent of schools in a community in which the applicant has relatives or personal friends either in or outside the school system

No matter what the avenue of approach, if the teacher really wants the position involved, she should exercise care and judgment and cooperate closely with those seeking to help her.

It is ordinarily advisable to be registered with a college placement

bureau every year that one is not certain that she should or would like to remain in her present position. Usually one is notified of many desirable vacancies. The costs are small. It is better to have one's credentials, including copies of one's recommendations or "references," sent to an employing official by a third party than to have the employing official write to the individuals given as references. The latter tend to forget the applicant as years pass, or may be temporarily or permanently at some place other than the address given. One should keep her appointment bureau papers up to date, adding new references and additional data relating to her experience, education, and honors, and every few years supplying new pictures.

If the avenue is a placement bureau or agency, the following suggestions are valuable:

1. Furnish the bureau with accurate and complete information.
2. Supply the bureau with suitable photographs.
3. Follow faithfully the instructions given by the bureau.
4. Be prompt in making a written or personal application if instructed to do so.
5. Offer to call for a personal interview and visit to the community if the distance and expense involved are not great.
6. In furnishing references give names of educators, particularly those who have seen you teach, and only one or two names of ministers or personal friends or friends of the family.
7. Keep the placement bureau informed in regard to change of address and status.

Written Applications.—The following are suggestions for written applications:

1. Write in legible longhand. Typewritten letters are appropriate if they are done expertly.
2. Be careful of correctness in all details of form, e.g., punctuation, grammar, paragraphing, beginning and closing of letter. Avoid abbreviations.
3. Unless instructed to do so, do not write a long letter of great detail.
4. Unless instructed to the contrary, always address letters to the superintendent of schools, never to members of the board of education.
5. Do not write on the stationery of a college fraternity or sorority, or on colored or scented stationery. It is preferable to use unfolded plain sheets of large size.
6. If one is not registered with a placement agency, one must give complete pertinent information. Describe education in concise

form, in chronological order and under appropriate headings, as in following fictitious example:

Education

Graduate of Moberly, Missouri, High School, 1940
Attended Central College, Fayette, Missouri, 1940-1942
Attended University of Missouri, 1942-1944; B.S. in Education, majoring in elementary education
Attended University of Colorado, summers 1944 and 1945, ten weeks each, taking graduate courses in education, history, and psychology

Experience

Teacher of 3rd grade, Bolivar, Missouri, 1944-1946
Teacher of 4th grade, Burlington, Kansas, summers, 1946-1948
At present, principal of Woodrow Wilson Elementary School, Coffeyville, Kansas

Honors and evidences of leadership

President of student body, Moberly High School
Secretary of sophomore class, Central College
Member of Kappa Delta Pi, professional and honorary fraternity, University of Missouri
Chairman of Classroom Teachers Association, Burlington, Kansas

Extracurricular activities

Debate and glee clubs, Moberly High School
Dramatics, University of Missouri
Taught Sunday school class, Presbyterian Church, Bolivar, Missouri and Burlington, Kansas

References

Mr. Harry S. Jones, Principal, Moberly High School
Professor Edith Small, Central College, Department of English
Professor W. W. Sawyer, University of Missouri
Professor R. K Whithaus, University of Missouri
Superintendent J. K. Robinson, Bolivar, Missouri
Superintendent W. D. Costello, Burlington, Kansas
Superintendent H. S. Marigold, Coffeyville, Kansas

Age and birthplace should always be given, and usually height and weight. Religious affiliation need not be given unless requested, although it may in some instances be quite important.

In the great majority of larger school systems, blanks are available by means of which this information and other desired data may be submitted. It is usually well to write first a short explanatory letter asking for an application blank. In case no blank is available, one may choose between having a college placement bureau send one's papers or writing out the information indicated above.

The Personal Interview.—Ordinarily one's chance of obtaining a desired position is better if one has a personal interview. Most employing officials do not seriously consider any but most unusually desirable applicants without a personal interview. While a personal interview must be adapted to the particular interests, tastes, and prejudices of those concerned, there are nevertheless a few general principles which usually should be observed. Some of these are presented in the following paragraphs.

In the interview, *the applicant should permit the employing official to determine the course and scope of the interview* and to do most of the talking and questioning.

The applicant should answer fully the questions she is asked but should not consume too much time in doing so, and she should not discourse at length on matters in which the employing official has not indicated an interest for information. Excessive verbosity and aggressive salesmanship are usually detrimental.

The applicant should be at ease, pleasant, relaxed, not too forward, confident but not egotistic, and at least reasonably natural

The applicant should rarely if ever "play up" to the employing official or to what she has been told are his pet "ideas." If anything is done in this direction it should be done most skilfully and quite subtly. The applicant should not agree too enthusiastically with the employing official and certainly should not argue with him. If she feels that the employing official is taking a stand she does not believe in for the purpose of drawing out the applicant—which sometimes happens—the latter had better express a mild doubt or let it pass.

If the applicant is asked her opinion on a matter, she should be frank and honest, somewhat conservative, and not too positive in regard to matters about which she is not absolutely sure of her opinion.

The applicant should in a modest way ask for information about the position, the school, its philosophy, its organization, the community, opportunities for advancement, etc. She should have thought through in advance just what information she wants most. Her requests for information should come late in the interview. Only if the employing official is obviously attempting to persuade the applicant to accept the position can the applicant seem to be the one to be pleased. Nevertheless, not only should the applicant obtain the important matters of information from some source, but intelligent questions indicating also professional interest and orientation, if not overdone, are likely to put the applicant in a favorable light.

The applicant should study carefully what would be the most appropriate attire and toilet, realizing that while attractiveness is important,

there is great variation in the tastes of employing officers and of communities with respect to teachers.

2. Getting a Better Position

Suggestions for Getting Better Positions.—Ordinarily it is desirable and fair to the school and its students for a teacher to stay in a position at least two years and to leave only if a definitely better position is offered or if her work is not proving reasonably successful. There is much waste incident to changing positions. In the first year in a new position, the teacher is somewhat at a disadvantage by reason of her lack of knowledge of the students and of the philosophy and conventions of the school and community. She is "learning the business" to some extent. Unless an unusual opportunity presents itself, she is almost compelled by professional ethics to stay a second year, if desired.

From the point of view of the teacher's interest she should not move too often. Employing officials are usually suspicious of applications from individuals who have moved from school to school with only a year or two in each place unless there is definite evidence of a good promotion with each move. Then, too, there is always the risk that for some reason or other, or for no reason at all, the teacher may not be as successful in the new position or may not like her new community as well.

Agencies and Avenues.—When she decides it is time to seek a better position she should canvass the agencies and avenues available. Prominent among those are:

1. Her college placement bureau
2. A placement bureau operated by the state education association
3. If she desires location a considerable distance from her own state, a commercial agency in the region to which she wishes to go
4. Application to superintendents of schools in systems of a size to which she can reasonably aspire, and in regions where she wishes to live. (Directories containing the names of superintendents of schools may be obtained at low cost from the U. S. Office of Education in Washington and from the offices of state superintendents of schools.)

Her chances of success are improved if the applicant attends and takes part in county institutes, state conventions, and meetings of teachers of her field; if she belongs to her state educational association; and if she reads several professional journals, thus keeping up with

trends in educational thinking and practice. Her chances of getting a good position are also increased if she has written articles for publication in professional periodicals or if she has attended summer school at a well-recognized college or university. Naturally, her chances for promotion are increased, particularly for administrative positions, if she has a master's degree in her chosen field of work.

References.—In the case of the experienced teacher, the quality of her experience is the most important factor in her getting a better position. Obviously then she should have avoided all unnecessary conflicts with her principal and superintendent and all criticism of them and the school. She should have developed as far as possible the good will and respect of as many students and members of the community as possible. If she has a record of intelligent, effective cooperation, she is in a fortunate position.

Some of the persons by whom she must be considered for a better position will be greatly interested in her references and their statements in regard to the quality of her work. She should first inform those from whom she must get references that while she is happy in her present work she naturally would like to get a promotion from time to time and that she would be most appreciative of anything that is done for her. She should discover whether the principal or other potential reference thinks highly of her work and whether he would be willing to have his name used as reference. Perhaps too, she should ask his advice and help in getting a better position. If there is any doubt about the willingness of the person to whom she would refer to give her a very favorable recommendation, she should not list that individual's name.

Locating Lucrative Positions.—Relatively well-paid positions are to be found in large numbers in certain places by persons properly qualified. Higher salaries are usually found in the cities than in smaller places and in the wealthier states (New York, California, Pennsylvania, Connecticut, Massachusetts, Ohio, Illinois) than in the less prosperous ones. To obtain positions in these places, the teacher should make application before she is past 35 years of age. One must get "in" fairly young and be promoted within the system. That means making good in the first six or eight years of teaching and improving oneself professionally by reading, experimentation, hard work, self-analysis, and attendance at summer schools at least until the master's degree is attained.

The teacher should not forget that extra-classroom activities and contacts are very important. She should be liked and respected by

the people of the community in which she is living and she should be a valuable citizen in it.

The teacher who wishes to get ahead should think of the possibilities of a specialized service as supervisor, counselor, psychologist, or the like. Men should think of administrative positions if suited to that kind of work. Most men of good minds and fair personalities make successful administrators in spite of their original doubts about this type of position and should prepare themselves for a principalship or superintendency. There are also thousands of positions in teaching and administration with manufacturing and sales concerns of all sorts, including book companies. There are more than 100,000 positions in colleges and teachers colleges. For most of these a doctor's degree is a prerequisite.

3. Contracts and Security

Permanent Tenure.—With respect to the security one has in one's position there are three principal categories of positions: (1) those covered by permanent tenure, (2) those involving continuing contracts, and (3) those under ordinary teaching contracts. The greatest security is in those places in which what is called permanent tenure is in effect. The typical tenure law provides that after a period of three years from the time when the teacher has entered the service of the school district, she may not be discharged without cause and without a hearing or trial, if she demands it. In many districts the causes for dismissal are named. Usually they include immorality, incompetence, and insubordination.

Permanent tenure provisions were sought eagerly by teachers' organizations for the purpose of insuring teachers against fear of dismissal for political reasons or because of prejudices on the part of superior officers, or members of the board of education, or because of pressures from influential individuals or groups seeking the dismissal of teachers for reasons other than their relative professional competence. In operation, permanent tenure, together with mechanical salary scales which do not recognize merit but guarantee all teachers automatic salary increases at stated intervals, has operated in the case of too many teachers to remove incentive for growth and for rendering a high quality of professional service.

The bad effects of permanent tenure have become increasingly great in recent years. Because of the decrease in the numbers enrolled in teacher education schools and the increased tendency for teachers to remain in teaching, many schools have become saturated with older teachers who are in poor health, have suffered a weakening of mental

powers and personality, and show little interest in keeping up professionally. While it is desirable that these older persons (and not all of them are superannuated) be employed at something and enabled to earn a living, it is a tragedy that they be imposed upon youngsters in the schools with all the ill effects that are certain to result from their close association with, and domination by, relatively incompetent teachers whose personalities have deteriorated because of bad health and poor mental hygiene.

Bad Effects of Insecurity.—On the other hand, unless there is some very definite assurance of tenure, the retention of teachers will tend to be on the basis of their political affiliations and activities and their personal connections. These conditions exist today in many places where there is no permanent tenure. Likewise, in schools where there is no provision for tenure, the schools and the students are subject to pressure groups who wish to influence what is taught in the schools for their particular purposes, and to the whims and prejudices—religious, personal, and otherwise—of school board members, influential members of communities and not infrequently of school administrators. It is clear that schools, teachers, and pupils must be protected from such influences.

While only a minority of teachers are dismissed unjustly or illegally, there can be no doubt that the great majority of teachers are influenced a little, many a great deal, in deciding what and how to teach by the fear of offending ignorant or selfish individuals or groups in the community. If the schools are to render anything like their maximum service in education for intelligent democracy, these restrictions must be at least relaxed if they cannot be entirely removed.

The Continuing Contract.—In recent years the "continuing contract" has been gaining ground both in theory and in practice as a substitute for permanent tenure. The continuing contract now required by law in some states and employed voluntarily by an increasing number of districts possesses the following characteristics:

1. After a probationary period, usually two or three years, the teacher is on indefinite tenure until dismissed by a majority vote of the members of the board.
2. Official notice of dismissal in writing must be given the teacher, if she is not to be retained, not later than a specified date in the spring, usually a designated date in April.
3. The teacher is entitled to be informed of the reasons for her dismissal and, if she demands it, to a prompt hearing before the board.

The continuing contract has several very important advantages. They may be summarized as follows:

1. The teacher is not required to seek reappointment annually.
2. Dismissal requires a positive action by a majority of the members of the board—not merely a majority of those present at a meeting
3. The teacher may require a hearing and a statement of the reasons for her dismissal.
4. The teacher must be notified in time so that she may have a good chance to obtain another position.
5. The teacher must be notified before she leaves the community at the end of the school year and may confer with the administrative officers and members of the board before the end of the year and may inform members of the community, thereby preventing the board from keeping the news of the dismissal from the community to which it should be responsible.
6. It does not require the board to prove incompetence, immorality, or any other legal cause for dismissal and hence does not operate to insure permanent tenure. It does make dismissal more difficult than under the annual contract plan and guarantees better conditions of dismissal.

Many administrators object to one feature of the plan, namely that the requirement of early notice may give the dismissed teacher an opportunity to stir up in the community opposition to the board's action of dismissal and that she may from the time of the notice of dismissal be a liability rather than an asset to the school. In practice this objection has not proved in a great many cases to be a serious one. The dismissed teacher usually does not wish to advertise the reasons for her dismissal and is usually wise enough not to behave in a manner so unprofessional as to handicap herself in obtaining another position.

The Teacher's Contract.—The contract between teacher and board of education should specify clearly (1) either the annual salary to be paid or the monthly salary to be paid for a specified number of months in the year, and (2) the general nature of the duties to be discharged, e.g., as a teacher in an elementary school, as an elementary school principal. All other provisions, such as requirements to swear loyalty to the Constitution, or to refrain from teaching certain doctrines, should be looked upon with great suspicion, as should provisions relative to community duties, place of living, membership in organizations, or any restriction of any type on the full rights and privileges of a free citizen.

A teacher's contract is a legal agreement equally binding upon both parties. In recent years the practice has grown among teachers of requesting release from a contract in order to accept a better position. School boards have rather generally released teachers from their contracts under such conditions. While in many instances this has not been in the interest of the schools represented by the boards, they have felt that they do not wish to go to the expense and trouble of bringing suit for the enforcement of the contract. At best they could retain for probably not more than a year the services of an unwilling teacher.

It seems unethical for a teacher to refuse to fulfill her contract if the board is not willing to release her, particularly if it is near the beginning of the school term and the chances of employing a competent teacher are not good. The very fact that the teacher has been given the security inherent in a contract is a benefit to be taken into consideration. The employing officer who induces a teacher to break her contract with another employer not only is likely to obtain a teacher of questionable reliability, character, and sense of responsibility, but is also legally liable for inducing a breach of contract.

4. Economic Problems

Savings and Insurance.—The need of a teacher to save money will vary with the individual, as the ability to save will depend upon her income and necessary expenses. Without doubt, however, a teacher should save something from every month's salary. The beginning teacher must learn that nine months' salary will have to cover twelve months' expenses and that ordinarily at least a third of each month's salary must be saved. In addition other savings must be begun early: savings for further education, for marriage, for children to come, for insurance against illness and accident, and for retirement.

Since illness or accident may come at any time, the wise teacher will purchase health and accident insurance at the beginning of her professional career. If that type of insurance is available through the state association of teachers, it is most likely to be safe and the cheapest obtainable. If not, she should investigate the possibility of group insurance in the local school system. If neither of these is available, she should investigate other possibilities, deciding finally upon a company which is large enough to be safe and which gives low rates to teachers. A teacher is a preferred risk with respect to accident insurance.

Whether or not the teacher needs life insurance depends upon whether she has dependents for whom she wishes to provide. Despite the sales argument that anyone should take out life insurance while she is young because the rate is lowest then, there is not in the authors' opinion any need for life insurance until one has a dependent, and the amount paid for protection until that time is in large part an unnecessary expense. If life insurance is available through the state or local education association, it is most likely to be the most economical form she can buy.

Retirement.—Almost every state has some form of provision for teachers' pensions or retirement allowances. Whether or not the state or the local school district contributes to the fund, it is with rare exceptions the best plan for retirement available to the teacher. Only under unusual circumstances can a teacher afford not to participate in whatever state or local plan is available. In such plans there is no expense for advertising, salesmen's commissions, or other similar costs, and this usually effects a saving of from 10 to 15 per cent of all that is paid in in the form of premiums.

In some state teacher retirement plans, there is a provision that teachers leaving the state forfeit what has been paid in. This provision, which exists in only a few states, should deter a teacher who thinks there is considerable possibility that she may leave the state. For those who remain in the state the plan is advantageous.

The teacher may combine provisions for retirement with her life insurance by taking out the type of policy which is referred to as an endowment policy. By its terms the amount of the insurance is paid in full to the insured at the end of a given period, e.g., thirty years, if she is alive or to her beneficiaries if she dies before that time. The premiums for such endowment insurance are higher than for ordinary life insurance.

"Annuity" policies for old age should be considered carefully, especially when the teacher is able to save more than a minimum amount. The annuity agreement provides for the payment of a set sum per month from the time of arrival at an age stated in the policy, e.g., 65 years, until death. A teacher paying in ten dollars a month from the age of 25 should be able at present interest rates to receive approximately $100 a month from the age of 65 until death.

Investments.—Rarely should teachers make investments other than in real estate, insurance, annuities, or government, municipal, or other high-grade bonds. Not until the teacher is wealthy enough not to be badly hurt by material losses should she buy stocks or ordi-

nary commercial bonds. Unless she has money which she can afford to lose, she should not yield to the temptation to profit by increase in the value of stocks or by the prospect of high rates of dividends or interest. On the whole to all but those who are in a special position to know what and when to sell and buy, the losses over a period definitely exceed the gains from owning any securities except high-grade low-return bonds and the very safest of stocks. Like slot machines and all other instruments of chance, speculative stocks pay to the amateur investor much less than he pays for them.

Teachers should also be especially wary of loans to relatives, friends, or anyone else, and of acting as guarantors of notes. A high percentage of such transactions end in losses and broken friendships. A policy of no loans, established early and adhered to strictly, is not only wise but enables one to say "no" without embarrassment.

The teacher should avoid borrowing as long as possible. If absolutely compelled by unfortunate circumstances to borrow, the teacher should always calculate the rate of interest on the loan. A legitimate maximum rate of interest is 6 per cent. Loan companies usually charge 15, 20, and frequently as high as 30 per cent. The best place to borrow is a local bank where one is known. If one is unable to borrow there, it would be better usually to do the best one can without borrowing.

Other Sources of Income.—Because of the low salaries in many places and the fact that teachers are free during Saturdays, late weekday afternoons and evenings, and in the summer months, many teachers seek additional employment and some invest in business enterprises. For teachers of inadequate education or of inferior teaching ability there is no alternative. For most others, their spare time would be better spent in additional education, in reading and study, or in other preparation for the performance of better professional service from day to day, thereby building toward a better position and a larger salary. This is particularly true with respect to employment during the school year and during the summer until the master's degree is obtained.

After the master's degree is obtained, summer employment may in many cases be a professional asset, particularly in the case of teachers of business or of other vocational subjects if their employment is in the field of their teaching. Employment of many types serves to orient "ivory tower" teachers with respect to the problems of the laboring and business world, and the association with adults in industry serves to offset the teacher-pupil life in the schoolroom.

Buying.—Installment buying is in reality buying and borrowing in one and the same transaction. Usually handling charges and the rates of interest on unpaid balances are high. They must naturally be high to cover costs of collection and bookkeeping and to cover the losses on bad accounts. The smart teacher, in view of the low level of teaching salaries, makes certain that her money goes as far as possible, and this excludes installment buying.

The teacher must learn early a few simple things about the business she patronizes In all but large cities she should patronize local merchants for the great part of her purchases, just as most others in the community do and for the same reasons. The teacher's salary comes from taxes paid largely by the commercial interests of the district, and her civic spirit is judged by her community loyalty. The esteem with which she is held in villages and small cities is in some proporton to the degree to which she is a good customer. She should, therefore, distribute her patronage wisely, and principally among local merchants, for the goods and services she needs.

Questions, Problems, and Exercises

1. What are the effects of a depression upon opportunities for positions in schools?
2. Select a community in which you would like to teach and rate the community on the points usually considered in judging a community.
3. If you were to register with a teachers' employment bureau, what five persons would you give as references? Why that five?
4. Write a letter of application for a position in a nearby school system.
5. Add two suggestions to the list in this chapter for consideration by an applicant in an interview when applying for a position.
6. What are the points usually covered in a teacher's contract?
7. Compare the continuing contract with permanent tenure from the point of view of the teacher and from the point of view of the school.
8. Why should a teacher have freedom from interference in regard to what she teaches? What is the teacher's responsibility in the matter?
9. What is a loyalty oath? Why do some legislators occasionally try to get a law passed requiring a loyalty oath? Why do teachers usually resent the attempt?
10. What organizations in a community are most likely to interfere in the curriculum of the schools and why?
11. For a teacher on a salary of $2600 a year with one dependent, what would constitute a good program of insurance and saving? If she has no dependents, in what respects would the program be different?
12. What are the principal arguments for and against a teacher's taking nonschool employment in the summertime?

Chapter 23

IN-SERVICE EDUCATION OF TEACHERS

1. The Need for Continued Teacher Growth

The acquisition of knowledges, attitudes, and skills essential to effective teaching is dependent upon a suitable preservice education supplemented by continual growth throughout a person's teaching career. For many teachers the challenge to constant growth is impelling. By the nature of her work the teacher is in an advantageous position to continue her education. Therein lies one of the main attractions of the teaching profession. In-service education programs while focusing upon the problems of children are designed to facilitate teacher growth.

In subsequent sections of this chapter, a few of the reasons for in-service programs of education for elementary school teachers will be briefly discussed.

Inadequacy of Preservice Education.—In an effective preservice program of education for teachers the elements of general education and the foundations of professional orientation can be provided. The feeling of responsibility inherent in an actual teaching situation is difficult to produce at the preservice level. In an in-service education program, discussions of principles of learning and teaching can more readily be linked to the realities of a classroom environment. The need for an in-service education program would still exist even with improved programs of teacher internship. As in other professions it is too much to expect that, in one short period of training, it is possible to provide teachers with the education needed for a lifelong professional career. Education provided in the preservice period of preparation must constantly be supplemented by individual and group efforts. While more realistic education programs can contribute greatly to the teacher's preparation, many of the understandings needed can only be acquired by firsthand experiences with children and adults in school and community life.

New Developments in Teaching.—Recent studies of human relations and social progress have revealed principles which have far-

reaching implications for school practice. A significant development in social processes has been the development of the technique of democratic group discussion in which leadership is not on a *status* basis but changes from one member to another in terms of each participant's contribution to group thinking. The perfection and use of this method may easily revolutionize pupil-teacher as well as teacher-supervisor relationships.

Modern psychology has provided new insights into child development and growth. In fact, many psychologists insist that if teachers were to utilize our present knowledge of human behavior effectively our schools could produce well-adjusted individuals free from frustrations and useless fears.

Many school practices in regard to marks, examinations, and pupil discipline are far behind our present knowledge of rational human behavior, mental health, and motivation. Many of the present plans of organizing and presenting instructional materials are based upon the generally discredited stimulus-response psychology. Methods of teaching involving drill upon meaningless, isolated, and unrelated bits of subject matter are based upon the same outmoded theory of psychology. The potential value of new instructional material such as audio-visual aids has not been clearly perceived by teachers.

Recent developments in community-centered schools chart the path away from educational programs isolated from the realities of living. New instruments designed to measure the outcomes of teaching in terms of attitudes, interest, and ideals, rather than the mastery of subject matter, present a fruitful field of study for groups of teachers. Techniques of diagnosis have been devised which make it possible for the teacher to study the child against his background of home and community life. Sociometric techniques make it possible for the teacher to study child group structure, thereby providing an insight into the child as a member of a functioning social group

Changing Conditions in Society.—Much has been written in regard to the dynamic character of society and the resulting lag between education and life Change is constantly being accelerated, especially in the areas of communication, transportation, and progress in science. There is good reason to believe that once momentum is established in social affairs it can be accelerated in a manner comparable to the acceleration in natural science. New developments in human relations threaten to rival progress in the mechanical realm. The deepening sensitivity to human needs has found expression in more attention from leaders of government. The movement to estab-

lish a world government is gaining momentum among informed persons who sense the futility and dangers of national jealousies and rivalries. The ever-increasing interdependence of peoples makes new social processes compulsory. Mankind is slowly acquiring a new set of moral values. The common man is emerging to demand respect for human personalities regardless of race, creed, or color. This is the essence of democracy. Political democracy represents only one aspect of the democratic way of life. The economic and social aspects are equally important. In order for the teacher to assist pupils to experience democracy in their school relationships the teacher herself must experience it in her relationships with other teachers and school administrators.

In-service education programs can contribute to the teacher's orientation to the world scene. In some curriculum revision programs, the participants have spent the first year in an analysis and interpretation of the social forces which affect the thinking and behavior of people. A good point of departure is a study of conditions in the local community and participation in its affairs.

Changing Status of Youth.—New social and economic factors in our society have influenced the behavior of youth to an even greater degree than they have affected that of adults. The feelings of uncertainty and insecurity prevalent in the present-day world are reflected in the thinking of children and youth.

The bewilderment of youth resulting from the complexities of modern occupational and social life can be dissipated by teachers who understand the impact of the kaleidoscopic world upon youth. As stated by Biber and Snyder,[1] the role of the teacher might be stated as follows:

> In her role as a teacher, she has to maintain an intricate system of delicate balances between: giving support, sympathy, comfort, protection and nurturing reliance, independence, and growing up; clearing away confusion, being the agent of reality and remaining sensitive to the importance of phantasy in wholesome growth; allowing a full measure of freedom from restraint and prohibition and establishing clear limits and boundaries of acceptable behavior; being efficient, orderly, careful and not becoming rigid, exacting, and executive, being soft, understanding, yielding but not sentimental or sloppy.

Emerging Concept of Education.—Education has acquired different meanings from one generation to another. Today the school has undertaken the task of the all-round development of "all the children of all the people." The emphasis upon the whole child as a

[1] Barbara Biber and Agnes Snyder, *How To Know a Good Teacher.*

self-directing member of society has resulted in the introduction of new instructional materials and procedures. Both the scope and variety of teaching materials have been greatly expanded. The new emphasis upon the social aspects of education is linked with the idea that in a democratic society, civic and social education is essential for all citizens.

Despite the acceptance by many teachers of the broader concept of education, conflicting opinions exist in regard to both the responsibilities of the school and the best methods to achieve them. Group study and discussion of these matters can well be incorporated in an in-service education program for teachers. The following statement [2] prepared by a council of elementary teachers is suggestive of the attitudes of teachers which should prevail when conflicting ideas arise in group endeavors.

> Because of conflicting viewpoints which exist in the field of elementary education there is need for schoolworkers to learn to think together. It is not necessary that they think alike, nor the same things; differences are wholesome and necessary to progress. Uniformity in school programs is deadly but unity of basic ideas is most desirable. We school people need to exchange ideas, to speak freely about the things we believe without fear; to learn how to differ agreeably, objectively, impersonally; to be tolerant of the ideas of others even when we disagree; to see all sides of any question we raise; to accept or reject ideas or proposals on the basis of the best and most critical thinking we can do; to develop an *experimental* attitude toward our work. We are too often prone to hold opinions without a critical basis in thinking; our own experiences and opinions are valuable but they must be constantly validated by study and discussion Many changes in ways of working with children are coming about as the result of research. We need to keep abreast of change. We must study constantly these trends if we are to keep our thinking and our classroom practice up to date and vital.

Growth Imperative for All Living Organisms.—Stagnation is fatal to all forms of living organisms. When growth ceases deterioration begins The teacher who fails to continue her own intellectual growth soon finds it difficult to stimulate such growth in her students. Only by an extension of her own intellectual life can the teacher augment that of others.

Life soon loses its zest for the person who makes no effort to advance his own knowledge or deepen his understandings. The best insurance for mental health is the stimulus of a strong impelling interest in personal and professional improvement In the field of

[2] Association for Supervision and Curriculum Development, National Education Association · *Group Processes in Education*, Washington, 1945, p. 104.

intellectual achievement, the teacher should be a worthy representative of the culture she serves. The teacher's interests should be constantly deepening and widening. Her enthusiasm for life should be constantly revitalized by new ideas.

Need for Growth Existent in Teaching Situation.—Every social situation is novel. No two situations are composed of identical factors in the same combination or relationship. Each evolving situation makes a demand upon the individual for adjustment and orientation. The teacher carries on her work in a rapid succession of novel situations. The challenge presented by each newly developing situation requires great adaptive ability. No fixed teaching procedures or formulae will suffice. This fact makes teaching difficult but also fascinating. The alert teacher is constantly stimulated by new factors or different combinations of factors in the teaching situation. Pupils react differently in each new situation. Their behavior patterns are in process of continual modification. Teaching cannot be completely routinized. There is need for experimentation in more effective procedures, in the use of new instructional materials, and of more accurate methods of evaluation of the outcomes of instruction.

New Concepts of Child Nature and Growth.—Each child is now recognized as a unique personality, actively conditioned by his environment. He is the product of his experiences in his community, home, and school. He has been required to accept without question in the short period of his life all the taboos that civilized man has acquired through centuries of slow progress. His emancipation from complete adult domination is being consummated. His needs embrace every aspect of human existence—social, emotional, intellectual, and physical. Development in these various areas may be very uneven and slow. His efforts to maintain his personality intact are being assaulted by powerful forces from every direction. The fundamental drives to human action—desire for recognition, security, new adventure—are unrestrained. He is highly sensitive to the reactions of other children of his own age group. Frustration and emotional blocks to learning result from unsympathetic, unintelligent efforts of teachers and parents to require him to conform to adult standards of thought and behavior. Growth cannot be forced.

Clinics on child development are designed to give teachers insight into child growth. In her daily contacts in the classroom, the teacher has an excellent opportunity to observe the reactions of children to their social environment. She also is in a position to analyze the sources of children's confusions and fears. A study of the various

aspects of human behavior in an in-service education program should assist the teacher in providing the basis for interpreting her classroom observations

2. Types of In-Service Education

Teacher growth in service can be promoted by (1) participation in cooperative endeavors with other teachers and (2) individual teacher effort. An adequate in-service education program usually includes both types of activities. While many aspects of personal and professional growth can best be provided for by sharing in group undertakings, there are many phases of the program in which it is advantageous to employ procedures which are individualistic in nature. The relative value of the two elements of the program depends upon the needs of individual teachers. Those teachers who have limited experience in working with other persons may derive greater benefit from group enterprises, whereas other teachers may need the opportunity to work at some task requiring individual thought and effort. In most instances, the individual teacher who is desirous of continuing her growth in service will find it advantageous to include both cooperative and individual projects in her program.

The elementary school teacher is afforded numerous opportunities for both types of learning experiences. Among the most effective activities are:

Characteristically Cooperative Enterprises	Characteristically Individual Endeavors
Faculty and staff meetings	Authorship
Teacher councils	College work
Study groups	Reading
Workshops	Research and experimentation
Demonstration centers	Travel
Study clinics	Interschool and intraschool visitation and observation
Orientation of new teachers	Educational addresses
Group excursions in community	Membership and participation in organizations
Planned visitation and observation	Self evaluation
Teacher committee work	

Essentials of Cooperative In-Service Education.—A cooperative program of in-service education of teachers serves the purpose of vitalizing the work of the school, as well as promoting teacher growth. The two functions are interdependent. In this chapter, however, the teacher-education aspect of the program will be empha-

sized. The effectiveness of cooperative programs of in-service education is closely related to their democratic elements.

As a member of a group of teachers engaged in study of a problem vital to the school, the individual teacher is presented with an excellent opportunity for personal and professional growth. As a participating member of such a group, the teacher has the responsibility for assisting in the promotion and maintenance of conditions conducive to cooperative democratic endeavor.

In a cooperative endeavor each member of the group has the responsibility of identifying and suggesting significant problems for study by the group. These problems should have their origins in the group situation and be of such a nature as can be solved by the group. The only compulsion upon members to participate is provided by the challenge of the problem. In the work and deliberations of the group the individual teacher should exercise her influence in maintaining conditions which foster free and impartial inquiry. The individual teacher is expected to participate with the group in taking appropriate action to implement the decisions of the group

Teachers' Meetings.—The chief value of the general teachers' meeting to the individual teacher is that of providing a general orientation to the broad aspects of the educational program of the school system. This purpose is achieved by familiarizing the teacher with the general objectives and policies of the system of which she is a part. Problems which are specific in nature can best be solved in meetings of smaller groups, such as the faculty of a particular school, or in conferences with administrative and supervisory officials.

In many schools teachers are expected to serve on committees which have the responsibility for planning and conducting teachers' meetings.

The following list of topics illustrates the type of problems upon which teachers have made a cooperative attack in their faculty meetings:

Dynamics of child groups
Pupil-teacher planning
Individual differences
General scope of the curriculum
Evaluation of pupil achievement
Guidance responsibilities of teachers

Teacher Councils.—Central organizations comprised of representatives of classroom teachers, administrative and supervisory staffs, and special-service personnel have been formed in several school sys-

tems. Their general purpose is to receive suggestions and opinions of other teachers in regard to different school problems, and convey constructive proposals to the superintendent and board of education. In some instances problems are referred to the council by the superintendent for study and recommendation. The council may also serve as a coordinating and unifying agency by reviewing the reports of various committees of teachers.

From the viewpoint of in-service education, obviously the greatest values accrue to the teachers who have the opportunity to serve as members of the council. However, the opportunity provided by this type of organization for all teachers in a school system to give expression to their ideas on school policies, as well as to be the beneficiaries of any constructive action growing out of the council's recommendations, serves to create a favorable environment for teacher growth.

Study Groups.—There has been an increasing tendency for teachers within a school to form informal groups for the study of a single problem or a series of problems which appear to be pressing for solution in their school. The composition of the study group depends upon the outcomes sought. Teachers with similar professional duties may consider instructional problems within a particular area of the curriculum. For example, the teachers of the third grade pupils may wish to study curricular materials and teaching procedures suitable for use in that grade A problem common to persons in different types of schools may be the basis for membership and participation in a study group. For example, representatives of junior high schools, senior high schools, and elementary schools may come together to study the problem of articulation of the schools they represent.

Members of the school personnel charged with the responsibility of achieving a common objective in an educational program may form a study group to consider their common task. For example, physical education teachers, school health service representatives, science teachers, and school cafeteria managers may study means of coordinating and strengthening the student health program.

Study groups may be formed by teachers with similar viewpoints on a particular issue for the purpose of devising methods of arousing the interest of other teachers or persons in the matter, or a study group may seek to promote action along the lines of their interests.

A modified form of study group is the teachers' book club. Eight or twelve teachers each purchase a professional or nonprofessional book. The books are distributed to the members by a rotation system, each

member retaining a book for a period of one month and then passing it along to another member. The members of the book club may hold meetings periodically for the purpose of discussing the various books.

Aside from its possible value in improving school practice in a particular area, the study group may serve to demonstrate to teachers the democratic way of accomplishing a task. The stimulus of the group, the informality of the organization, and the flexibility of the procedures are conducive to understanding, initiative, and leadership on the part of the individual teacher. Participation in group activities on this basis also tends to promote feelings of comradeship among teachers, as well as a sense of belonging on the part of the individual teacher.

Workshops.—No recent development in the in-service education of teachers has attracted more widespread interest than the workshop. The distinctive aspect of the workshop is the opportunity afforded individual teachers and groups of teachers to study the problems which most directly concern them under the most favorable and democratic conditions without regard to conventional class organization and procedures

Workshops have been conducted under the auspices of various organizations and agencies, as follows:

1. Sponsored by colleges, usually in the summer, for individual teachers from different schools, or for groups of teachers from one school (In some instances, colleges have conducted extension classes in the form of workshops during the regular school year.)
2. Conducted by public school systems for teachers in the system (These workshops may include teachers with a special problem or interest, or they may include all the teachers in the system. These may be conducted in the summer or during the school term.)
3. Directed under the joint sponsorship of a college and a public school system
4. Co-sponsorship of a school system and a national organization interested in the education of teachers

Organization of Workshops.—A staff, consisting of a director and a group of consultants representing different fields of interest, is usually selected to direct the general activities of the workshop. The actual plans are made by a committee of teachers, staff members, and representatives of the sponsoring agencies. These plans are based upon information obtained in advance from the prospective members

of the workshop. The members organize themselves into different groups on the basis of their interests or problems. Each group elects a representative to a planning committee, whose function is to plan the program from week to week.

Procedure.—The activities of a workshop group for a typical day are as follows:

1. A general morning meeting of all members of the workshop is held. Topics of general interest are discussed by the director, consultant, visiting expert, and members of the workshop. These programs are designed to unify the workshop activities, serve as a general clearinghouse for information, and provide continuous motivation for the workshop activities.
2. At the noon hour participants have lunch together to enlarge acquaintance and to develop the spirit of good fellowship.
3. The afternoon is devoted to individual and small group activities. Conferences with consultants are held. Suitable library materials and audio-visual aids are utilized by individuals and groups. The different groups meet two or three times each week to discuss their specific problems. Provision is made in the schedule for members to work on individual problems and exchange ideas with each other. Flexibility in the organization is provided to permit individual members to withdraw from one group when his purposes have been served and become a member of another group.
4. The evening meetings are largely devoted to social activities and recreation.

Evaluations of their experiences by members provide fairly convincing evidence of the importance of workshops in an in-service education program for teachers. Workshop participation, however, represents only one significant type of educative experience. It does not contain all the desirable elements in a program of teacher education. Perhaps every teacher should have some workshop experience. Equally true is the fact that every teacher needs to engage in in-service learning exercises which are not stimulated and directed by group activity.

In respect to the relative value of local school workshops in comparison with college campus workshops, it should be observed that to relate the activities of the local workshop to the actual problems of a particular school is easier to do than in the campus workshop. On the other hand, it should be recognized that many local schools do not possess adequate financial resources or library facilities to conduct their own workshops. In the college-directed workshop, the library and other facilities are usually more satisfactory. The exchange of

ideas among teachers from different schools in a campus workshop may serve a useful purpose in broadening viewpoints in regard to many school problems.

Demonstration Centers.—In some city and county school systems, a school which possesses the necessary facilities and competent teachers is designated as a demonstration center. Teachers from other schools are given the opportunity to observe the use of new curricular materials and techniques of teaching. Recently many school systems have established centers to demonstrate the proper use of audio-visual aids. Socialized procedures such as the project method and unit methods have served as the basis of many teaching demonstrations

The value of demonstration to the individual teacher is dependent not only upon the quality of the teaching but also upon the ability of the observer to analyze, interpret, and adapt the procedures observed to her own teaching. To assist the observing teacher in this respect, predemonstration conferences are usually held between the demonstrating teacher and the observers, in which the objectives of the lesson are discussed. The demonstration is also followed by a discussion period in which the teaching procedures and outcomes are evaluated.

Study Clinics.—Representative teachers from many local school systems attend study clinics conducted at some of the larger universities for the purpose of making an intensive study of some significant problem under the guidance of experts. The list of topics ranges from improved methods of pupil evaluation to methods of understanding children. Important values can be achieved by this type of professional education, especially if the teachers attending the clinic return to their respective schools and share their learning with other members of their faculties.

Orientation of New Teachers.—A continuous educational program is essential to the progress of a school. This continuity is often jeopardized by the large turnover in teacher personnel. For example, many curriculum revision programs have failed of fruition because the new teachers did not wholeheartedly accept responsibility for carrying it forward. This difficulty can be alleviated somewhat by the early orientation of new staff members to the ideals and objectives of the program.

New teachers may also encounter difficulty in making the necessary adjustments to the community. The older members of a school faculty can be of assistance to the new teacher in becoming oriented to the new school and community situation A growing number of school facul-

ties cooperate in extending various forms of hospitality to new members. Such plans have attained excellent results in maintaining cordial teacher-teacher relationships, thus providing a sound basis for constructive, cooperative educational endeavor.

Group Excursions in the Community.—A requisite for building a sound educational program is a thorough understanding of the community of which the school is a part. The attitudes and behavior of youth can be interpreted only in terms of their community background. A knowledge of community life is likewise essential to the proper utilization of community resources as curricular material.

In an endeavor to understand the economic and social conditions of their school communities teachers have organized community-study groups. As a part of their activities in this respect, teachers make planned excursions to various places in the community for the purpose of obtaining firsthand information in regard to local housing conditions, industries, welfare, and public service agencies. In larger schools, communities interested in various phases of community life may visit different places and make reports to the entire faculty. Teachers who participate in activities of this nature are better able to assist pupils to bridge the gap between school activities and life outside the school. More effectual application also can be made of curricular materials to the problems and needs of children living in a particular community.

Planned Visitation and Observation.—Provision is made in schools for teachers to observe the work of other teachers in the same or other school systems. To insure the maximum benefits to the visiting teacher, it is necessary for the teacher and supervisor to plan the visits very carefully.

The possibilities of directed visiting in improving instruction are revealed by a consideration of their purposes as stated by Briggs.[3] He says directed visiting enables a teacher

1. To see a concrete exemplification of some theory that has previously been to him merely abstract
2. To see some special practice or skill demonstrated well
3. To observe, for comparison, practices that are similar to or diverse from his own
4. To learn the effective use of equipment, direction of auditorium programs, rehearsing and producing of plays, preparation of exhibits, direction of the school publications, and the like
5. To acquire higher standards

[3] Thomas H. Briggs, *Improving Instruction,* p. 489.

6. To become acquainted with pupils soon to be promoted to him in the course that they are following
7. To learn of the success and failures in advanced courses of pupils whom he has taught and of the requirements that they have to meet
8. To know the work of the other teachers in the same school as a contribution to the unity of the corps

Curriculum Committees.—One of the important objectives of a curriculum-revision program is the in-service education of teachers. The organization of a faculty for purposes of curriculum construction usually includes provision for various committees of teachers. In these committees the main work of revision is done. The policies which govern the work of curriculum committees are summarized in the following statement from the coordinator of instruction of the Oakland, California, schools:[4]

> Teacher education rather than curriculum materials is the concern of our instructional program. Principals, teachers, and supervisors work together cooperatively, each making the contribution of which he is most capable. Committees serve for long or short periods as the need exists. The entire program is flexible and adaptable to current demands and current conditions.

The study of the multiple problems involved in curriculum revision presents excellent opportunities for teacher growth. One of the necessary and highly important phases of a curriculum development program is that of preparing courses of study for the guidance of teachers in using the suggested curricular materials. An examination of a typical course of study will reveal the great variety of problems which a curriculum committee encounters. The problems range from that of formulating a statement of the guiding philosophy of a course to the task of making a list of suggestions for evaluating pupil achievement. Another significant outcome of active participation by the teacher in curriculum committee work is that it increases her efficiency in the use of curricular materials to promote more effective pupil learning.

Activities of Other Teacher Committees.—In addition to continuing committees which study the persistent problems of the school program, many short-term committees function in connection with special problems such as improvement of guidance, library service, and teacher welfare in times of increasing cost of living. These com-

[4] Quoted from *Leadership at Work, Fifteenth Yearbook* of the Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, p. 100.

mittees are usually terminated after their study has been completed and their report with recommendations is made to the faculty.

Numerous other school problems in addition to those described in the preceding sections of this chapter have been studied by teacher committees. Through their committees, teachers in many school systems participate in the selection of new personnel. By means of interviews, questionnaires, and visits to other schools, the committee obtains information in regard to the qualifications and viewpoints of applicants for administrative and teaching positions in their school. School board relations committees represent teachers at some of the meetings of the board in discussions of various instructional problems. Problems of teacher welfare, such as tenure and retirement, have been the subject of teacher group study. In fact many of the teacher tenure and retirement plans now in operation were initiated and sponsored by committees of teachers. Instructional practices likewise have come within the scope of special committee study.

3. Membership in Professional Organizations

The teacher who seeks to keep up in her profession and improve it should be an active member of several professional organizations. These fall into three general groups:

1. State and national general education associations
2. Organizations centering around special fields of teaching or administration
3. Organizations primarily for the improvement of working conditions, salaries, tenure, etc.

National Association.—The National Education Association, founded as the National Teachers' Association in 1857, now enrolls more than 440,000, or 48 per cent of the teachers in the United States. It publishes the *Journal of the National Education Association,* which contains short articles on teacher growth and welfare, curriculum, and methods. In the N. E. A. there are twenty-eight departments primarily concerned with the problems of classroom teaching. In addition to these departments, to which reference is made elsewhere in this chapter, the N. E. A. has six deliberative groups known as councils or commissions.

The N. E. A. and its various departments and divisions issue yearbooks and bulletins containing much useful information. While the activities of the N. E. A. are designed primarily to promote teacher growth in service, it does have a legislative program looking to better support of the schools and has been somewhat active in that field. It

has also functioned occasionally (and somewhat feebly) in matters of academic freedom and teacher tenure. The recent adoption of the Victory Action Program reveals a more aggressive and forward-looking attitude on the part of the N. E. A. The goals which the organization hopes to achieve by or before 1951 [5] are as follows:

1. Active, democratic local education associations in every community affiliated with the state and national associations
2. A strong and effective state education association in every state
3. A larger and more aggressive national education association
4. Unified dues—local, state, and national—collected by the local
5. A membership enrollment of at least 90 per cent in local, state, and national professional organizations
6. Unified committees—the chairmen of local and state committees serving as advisory members of the corresponding national committees
7. A professionally prepared and competent teacher in every classroom
8. A professionally prepared and competent principal at the head of every school
9. A professionally prepared and competent administrator at the head of each school system
10. A strong, adequately staffed state department of education in each state
11. A professional salary for all members of the profession, adjusted to the increased cost of living
12. Professional security for teachers and administrators guaranteed by effective tenure legislation
13. Retirement income for old age and disability
14. Cumulative sabbatical and sick leave
15. Reasonable class size and equitable distribution of the teaching load
16. Informed lay support of public education at local, state, and national levels
17. Units of school administration large enough to provide for efficient operation, with special attention to the needs of rural areas
18. Adequate educational opportunity for every child irrespective of race, creed, color, or residence
19. The equalization and expansion of educational opportunity, including needed state and national financing
20. A safe, healthful, and wholesome community environment for every child
21. An effective United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization

The National Catholic Education Association is a strong organization for teachers in Catholic schools. A great many Catholic teachers also belong to non-Catholic associations.

Another general national education association, the American

[5] *Victory Action Program*, adopted by National Education Association, Buffalo, New York, July 5, 1946.

Education Fellowship, formerly called the Progressive Education Association, was founded in 1924. This organization stresses a modern philosophy of education, emphasizes the child and his growth, and education for fellowship and citizenship from the community to the international level. It has influenced educational thought and practice in recent years, despite the fact that it has never enrolled more than a few thousand members. The official journal of the organization is entitled *Progressive Education.*

State Associations.—Each state and territory has its own state education or teachers' association. Like the national organization, each of the state organizations issues a journal devoted largely to professional articles, news, and state problems. Most of these journals are of rather mediocre quality as to professional content, but contain many articles of interest to teachers of the particular state The state associations have been more active than the national association in obtaining favorable legislation and school funds.

Following are typical objectives of state education associations:

1. To build an informed professional and civic intelligence among its members
2. To set every teacher at work on the problems of the profession and the community
3. To improve teaching, the curriculum, and school organization
4. To improve the selection and preparation of teachers
5. To foster a unified profession—strong on local, state, and national levels
6. To support important federal legislation
7. To improve adult and higher education
8. To build public support for our common schools
9. To foster world understanding and cooperation
10. To improve community life
11. To enhance teacher welfare, including:
    a. Statewide minimum salaries, with provision for progressively higher standards, and special recognition for added study or travel
    b. A modern salary schedule in each local community to meet its special needs
    c. Provision for teacher tenure and security
    d. Provision for sick leave and sabbatical leave on a cumulative basis
    e. Adequate provision for retirement on account of disability or age [6]

Teachers' Unions.—In 1902, the Chicago Teachers Federation affiliated with the Chicago Federation of Labor. In 1916, the American Federation of Teachers was formed as an affiliate of the American Federation of Labor. Because of the opposition of the National

[6] Joy E. Morgan, "Building an Action Program for the State Association," *Journal of the National Education Association,* XXXV, 165.

Education Association and of superintendents and boards of education who frequently intimidated teachers in their respective school districts, the membership in the American Federation of Teachers did not number more than 10,000 to 12,000 until the depression came in the 1930's. Since then, it has grown steadily until by 1949 it had spread into every section of the country and had an enrollment of more than 50,000 members. With few exceptions, the Federation is no longer opposed by school administrators. The official journal of the organization, *The American Teacher,* contains many articles of vital educational and social significance.

The Federation has two main objectives. It purposes to consolidate the teachers of the country into a strong group which would be able to protect its own interests. It aims to raise the standard of the teaching class by a direct attack on the conditions which, according to the belief of the Federation, prevent teaching from enjoying the status of a profession. These conditions are lack of academic freedom and of civil liberty and the absence of the opportunity for self-determination of policies and for democratic control.[7]

In Article II of their constitution, the objectives of the Federation of Teachers are stated as follows:

1. To bring associations of teachers into relations of mutual assistance and cooperation
2. To obtain for them all the rights to which they are entitled
3. To raise the standard of the teaching profession by securing the conditions essential to the best professional service
4. To promote such a democratization of the schools as will enable them better to equip their pupils to take their places in the industrial, social, and political life of the community
5. To promote the welfare of the childhood of the nation by providing progressively better educational opportunity for all [8]

The rapid growth in recent years of the American Federation of Teachers may be attributed largely to the academic and timid policy of the National Education Association. The relative ineffectiveness of the N. E. A. in obtaining greater financial support for schools and in preserving academic freedom has caused many teachers to seek membership in a more aggressive organization. The series of friendly meetings with the National Association of Manufacturers (a traditional and powerful force for lower taxes and opponent of measures

[7] A. W Robinson, *A Critical Evaluation of the American Federation of Teachers.* Chicago: American Federation of Teachers, p 58.

[8] Constitution of the American Federation of Teachers, as adopted at the Seventeenth Convention, and corrected as of September 1, 1945.

and movements for social progress) which were sponsored by the leaders of the N. E. A. did much to weaken the confidence of many teachers in their national organization. State organizations have been instrumental in obtaining better financial support for the schools.

The teachers' unions have been very effective in recent years in bargaining with boards of education for higher salaries and better working conditions for teachers. Unless the national and state associations develop a markedly more aggressive policy and practice in dealing with such problems as salaries, academic freedom, teaching load, and permanent tenure, it appears inevitable that some sort of teachers' union will eventually enroll a majority of the teachers in the country and become the leader of teachers and the aggressive advocate of their cause, in spite of the objection to having teachers or the schools, supposedly impartial leaders of youth, hold membership in a labor union.

In England there has been for some time a powerful teachers' union enrolling more than a majority of the teachers as members. This union is unaffiliated with any labor union

Should the Teacher Belong?—Every teacher should become an active member of at least three or four of these organizations including the following:

1. The local teachers' association
2. The state education association
3. The National Education Association
4. At least one specialized organization, e.g., Department of Classroom Teachers
5. A teachers' union, if one is accessible

It is no longer to be considered undignified or unprofessional to belong to a teachers' union. In these days of organizations of employees and employers and of pressure groups, unorganized workers are at a serious disadvantage in commanding the respect of legislators or of other groups. One should not choose between the N. E. A., a state education association, and a teachers' union. The first should be supported for its activity at the national level and its publications, the union for its practical aggressive leadership in such matters as salaries, academic freedom, tenure, and other matters pertaining to teacher welfare, and the state education association for its leadership on a state-wide basis.

The total annual dues for five organizations of the kinds named above are at the present writing less than thirty dollars. These fees

include subscriptions to valuable journals and other publications likely to contribute to the improvement of the teacher and to her professional advancement. Since most of these organizations are constantly fighting the battles for schools, for increasing teachers' salaries, and for improving working conditions for teaching, no teacher can conscientiously accept their benefits and refuse to contribute to their support. To do that is hardly good citizenship; moreover it is a demonstration of willingness to be an object of professional charity.

4. General and Professional Reading

General Reading.—As a part of her professional as well as her general cultural growth, the teacher must make definite provision for a systematic reading program In preparing young people for the world ahead, the teacher must know that world and what goes on in it. Immediately upon beginning her teaching career she must expand and maintain her knowledge and understanding of the world in which her students will find their life and problems. She must continue to learn about public affairs—local, state, national, and international—otherwise she will soon become merely a "schoolmarm."

The time has arrived when the well-read teacher, informed on problems and affairs in contemporary American life and culture, is the rule. The time is apparently not far in the future when, except in rural and village schools and among superannuated teachers, the exception will be the traditional lesson-learning "schoolmarm," the ivory-tower classroom creature who knows not the world in which she is preparing young people to live As one speaker before many state education associations has frequently stated: "There is no place in the modern school for the young thing just out of college with her head full of fraternity frivolities and notebooks full of inert book and lecture data; or any other type of schoolmarm, male or female, who takes refuge, ostrich-like, in the classroom with the children from the problems of a world in transition and thus seeks apparent freedom from responsibility for understanding the world of today, while others less well educated meet the problems of the times." Even the public has begun to lose respect for the teacher and the school that do not prepare young people to understand the new world—the "air age," the "atomic age," the new era of interdependence nationally and internationally, economically, politically, and culturally.

If the teacher has not already done so, she should learn to assimilate, discount, and interpret what she reads on current problems and affairs. In the authors' opinion, there are very few periodicals and practically no newspapers or radio commentators that can be relied upon to treat current issues impartially. Nevertheless the teacher through continual reading of biased publications grows steadily in her knowledge and understanding of such matters from reading on both sides. To read only journals with an antilabor and pro-big-business bias or those with an ultraliberal, prolabor bias will result in at least partial misunderstanding of current, controversial issues.

Teachers are genuinely interested in world peace. World peace will come only as the result of mutual understanding among peoples of all quarters of the globe. The present generation of adults is relatively ignorant and provincial. They are unsuited for living in the age of atom bombs and international interdependence. Our hope lies in a new generation better educated for the new world. Likewise, peace and prosperity at home seem out of the reach of our present adult generation, whose education has been one for vocation and academic ivory-tower culture alone. Problems in this area also await a generation appropriately trained. Because of these conditions, teachers hold the key to world peace and to the continuation of our march toward democracy and a high standard of living for all.

Many teachers take each year a current affairs test such as that published by the Cooperative Test Service of New York City and attempt the following year to improve their scores. It is encouraging and indicative of the trends of the times that the National Teachers' Examination—one of the means of selecting teachers in many cities—includes a test on contemporary affairs and culture. A program of general reading should do more than keep the teacher informed in regard to developments in the world. A well-balanced program should make provision for reading of recreational books which entertain; new and timely books which the world outside the school is reading, books which will lead to good conversation at the dinner table, books which take one far afield to China, Mexico, or Russia, books read for their excellence of style, and books and magazines read "just for fun."

The teacher who wishes to enrich her experiences by reading should follow a program such as the following:

1. Read regularly at least one good daily newspaper that has accurate national and international news coverage, even if it arrives a day late from a city some distance away

2. Read a local newspaper to keep informed in regard to community affairs.
3. Read or scan at least two weekly periodicals:
   a. A journal with a bias in favor of the conservative view, e.g., *Time* or *Newsweek.*
   b. A journal with a bias in favor of progressive and liberal ideas, e.g., *New Republic* or *The Nation.*
4. Read at least one good general monthly periodical—*Harpers Magazine* or *Atlantic Monthly.*
5. Read at least one digest or short-article periodical, e.g., *Coronet* or *Magazine Digest.*
6. Read a few good books—one a month if possible—including annually at least:
   a. Two classic books such as:

      The Bible
      Plato, *The Republic*
      Emerson, *Essays*
      Bacon, *Essays*
      Shakespeare, *Plays*
      Tolstoy, *War and Peace*
      Rousseau, *Émile*
      Hugo, *Les Misérables*
      Ibsen, *Plays*
      Shaw, *Plays*
      Franklin, *Autobiography*
      Twain, *Huckleberry Finn*
      Whitman, *Leaves of Grass*
      Darwin, *The Origin of Species*
      Dreiser, *An American Tragedy*
      Sandburg, *Abraham Lincoln; The Prairie Years*

   b. Three or four books on current problems such as:

      Peace or Pestilence, by Theodor Roseburg
      Inside U. S A., by John Gunther
      We Are All In It, by Eric Johnston
      Target: You, by Leland Stowe
      Leave It To The People, by Quentin Reynolds
      The Road We Are Traveling, by Stuart Chase
      New Worlds Emerging, by Parker Hansen
      Liberalism and the Challenge of Fascism, by J. Salwyn Schapiro

   c. Two or three novels such as:

      The Big Fisherman, by Lloyd C. Douglas
      To Be A Pilgrim, by Joyce Cary
      Prairie Avenue, by Arthur Meeker

Kinfolk, by Pearl Buck
Point of No Return, by J. P. Marquand
Nineteen Eighty-Four, by George Orwell
The Grapes of Wrath, by John Steinbeck
Barriers Between, by Marc Brandel

d. One book on a historical, scientific, or other cultural subject such as:

The Age of Jackson, by Arthur M. Schlesinger, Jr.
Nathaniel Hawthorne, by Mark Van Doren
Roosevelt and Hopkins, by Robert Sherwood
Crusade in Europe, by Dwight Eisenhower
Peace of Soul, by Fulton J. Sheen
You Cannot Escape History, by John T. Whittaker
Our Plundered Planet, by Fairfield Osborne

In the past few years more interesting and reliable small books on current subjects have been published in series than ever before. Many of these publications can be purchased at nominal prices. The names of some of the best-known series are as follows: Pocket Books, the Signet and the Mentor Books, the Penguin Books, all with offices in New York City; the books of the National Home Library, Washington, and, in addition, there are several series of excellent, inexpensive publications of pamphlet size which are widely read by educated men and women. These deal with current public questions, domestic and foreign. Some of these series are: *Headline Books,* Foreign Policy Association, New York; *Public Affairs Pamphlets,* on a wide variety of timely topics, Public Affairs Committee, Inc., New York; and *Town Hall Bulletins,* containing panel discussions of important, timely, current questions, The Town Hall, Inc., New York.

Professional Reading.—In planning a well-balanced program of reading the teacher should reserve some time for reading a few of the best current professional books and periodicals. No other single means of in-service education offers greater opportunities for the teacher to keep abreast of new developments and trends in the profession than those afforded by a carefully planned program of professional reading. Not only should the teacher keep informed in regard to developments in elementary school teaching but she should be familiar with the new and changing concepts, theories, and practices in education in general.

Professional reading presents the teacher with the opportunity to share in the experiences of other teachers who are seeking to make their teaching more effective. The challenge and the stimulation that

come from the reports of the endeavors of other teachers add zest to the efforts of the teacher who is desirous of improving her own teaching. Perhaps the greatest value which comes from reading a good professional book is that it enables a teacher to recapture waning enthusiasms and renew her faith in the power of education in human affairs.

Despite the inherent values in professional reading, there is considerable evidence to indicate that the reading materials of large numbers of teachers are very narrow both in scope and in variety. From the great mass of professional literature the teacher should carefully select materials for reading which best serve her needs. No definite prescription can be given that will meet the needs of all teachers. An adequate program of professional reading should include elements which provide information in regard to the following:

1. Significant developments and trends in public education
2. New concepts of learning and child development
3. Promising practices in curricular organization and teaching procedures
4. Newer practices and teaching materials in subjects taught

To assist teachers in selecting reading materials wisely, many educational groups and institutions periodically issue lists of selected books on education. Perhaps the best known of these is published each April in the Journal of the National Education Association, which lists the sixty best books on education published during the year. Many teachers read the summaries of articles published in the Education Digest and select those in which they are particularly interested to read in their entirety in the journal in which the articles were originally published. The Education Index contains a rather complete list of articles on education which are published in periodicals. Some of the magazines which feature articles of particular interest to the elementary school teacher are as follows:

Elementary School Journal	The American Teacher
Progressive Education	The Educational Screen
Childhood Education	Normal Instructor and Primary Plans

5. Other Means of Professional Growth

Professional Writing.—No other type of activity carries greater recognition than professional writing. The number and quality of published articles and books are among the most important criteria

in determining teacher promotion in many schools. A consideration of the significance of professional writing reveals several good reasons why teachers engage in this type of activity.

The chief value of writing an article for publication accrues to the teacher who does the writing. The actual work of writing must be preceded by a careful study and analysis of the problem The organization of the material requires the selection of the most relevant data and the rejection of those of minor importance. The necessity of writing the material in a manner to insure clarity, simplicity, and forcefulness of expression provides excellent training for a teacher in improving the quality of her classroom presentation.

Professional writing also enables the teacher to assist other teachers in the solution of some of their problems, thus extending her sphere of usefulness. A description or report of an effective classroom procedure may be instrumental in causing teachers in other schools to improve their own teaching. The classroom situation can be a learning laboratory for the teacher as well as for her pupils. The insights and understandings obtained as a result of firsthand experiences with the problems of pupils serve as a practical basis for significant educational writing.

Travel.—In Chapter 17 the suggestion was made that teachers should make visits to various places in the local community to obtain firsthand information in regard to living conditions. Valuable as these trips are, they should be supplemented by more extensive tours. Travel is an integral part of the teacher's preparation for teaching. If instructional materials are to be made meaningful to the pupil, they must first be meaningful to the teacher. The vividness and reality of verbal descriptions in books of places, persons, and events can be greatly enhanced by seeing them in their natural surroundings.

By granting salary increases comparable to those allowed for summer school attendance many school boards have recognized the importance of travel. Large numbers of teachers of modern foreign languages visit the countries where the languages are spoken. A knowledge of a people is indispensable to a genuine understanding of their language. In teaching the social studies information and inspiration may be obtained from tours of places of current economic and social significance as well as of centers of governmental activity and historical shrines. In teaching science there is much value in trips to different geographical regions to study at first hand the distinctive features of those areas. A vacation spent in one of the national parks should improve the teaching of teachers. Visits to great art galleries,

libraries, and museums can contribute to better teaching of many subjects. By travel and wide reading the teacher can enlarge her vision and discover means of making new applications of the subjects taught.

Many organizations sponsor guided tours for teachers to different parts of this and other countries. These tours have the advantages of convenience and economy. Too frequently, however, these guided trips are organized without sufficient recognition of the interests and needs of individual teachers. Perhaps it is advisable for the teacher to plan her own trip in terms of her particular purposes, interests, financial ability, and time available.

College Work.—The most convincing evidence that teachers as a group are desirous of improving their instruction is revealed by the fact that thousands of teachers take graduate college work after they begin their teaching careers Large numbers of teachers attend summer schools conducted by colleges and universities. Many teachers, also, take advantage of the opportunities presented by correspondence and other extension courses to continue their college work in addition to their regular teaching duties. A considerable number of teachers spend their sabbatical leaves in graduate study.

Many school boards recognize the values of graduate study in improving the effectiveness of teaching by increases in salaries of teachers who earn additional credit either in summer school or during the school term. A few school boards require all teachers in their schools to attend summer sessions.

The chances are very great that college courses taken after a person has begun her teaching career will have more meaning and significance to her than similar courses taken before she has had any teaching experience.

The content of the course can be related more directly to problems encountered in actual classroom situations. Courses can frequently be chosen in terms of the specific problems of the individual teachers. Some of the most important values of summer school attendance are derived from informal discussions of teaching with teachers from other schools.

The significance of postgraduate work in improving teaching efficiency is dependent upon several factors. Since the quality of instruction varies greatly in different summer schools, the teacher should exercise intelligent discrimination in the selection of the college in which she is to do her study. The institution, instructors, and courses can be chosen in the light of the teacher's individual teaching problems

and future professional plans. If good judgment is exercised in respect to these matters, the background of teaching experience and the earnestness which characterize the study of teachers combine to make summer school study an invaluable experience.

In the event that college courses taken by extension during the school term are closely related to problems being encountered by the teacher in her actual teaching, they can contribute greatly to teacher improvement in service. Properly correlated, the classroom situation can serve as a laboratory for the study of topics suggested in the course. Unless the two are supplementary, it is usually feasible to postpone the course until summer school.

Questions, Problems, and Exercises

1. Assume that you are a teacher in an elementary school in a town of 10,000 population. Outline in some detail a plan for your own professional growth
2. Under what conditions are school boards justified in requiring all teachers to attend summer school once every three years?
3. What are some of the difficulties involved in a truly democratic co-operative attack by teachers on a problem existing in their school?
4. Prepare a time budget which would enable you to devote a part of each week to general and professional reading.
5. Discuss the statement: "Teacher training institutions should fully prepare teachers in order that in-service growth will not be necessary."
6. Assume that you are chairman of a faculty committee appointed to study and report the possibilities of holding a summer workshop for teachers. Outline your procedure.
7. Make an inventory of the teacher committees in your school and list the work of each.
8. List some books in addition to those mentioned in this chapter which you would recommend for teachers to read.

Chapter 24

THE TEACHER AS A PERSON

1. Attributes of Effective Teachers

Numerous lists of qualities which characterize good teachers have been formulated by research workers and supervisors. There are certain traits which appear in all these lists. It should be kept in mind that qualities are included as separate items for purposes of analysis and study. In reality an effective teacher can be described only by configurations of many attributes. Many of the single qualities are mutually interactive in their impact upon the child For example, the question as to whether the personality of the teacher has greater significance than her technical skill is pointless, since these characteristics supplement and reinforce each other. It is difficult to conceive of a teacher with an effective teaching personality who is deficient in teaching skills.

In a recent study of the qualities and qualifications of excellent teachers, school administrators and supervisors were asked to give reasons why they thought some teachers were outstanding.[1] Without exception, the officials gave a *combination* of qualities as the reason for excellence. The majority of them agreed that an excellent teacher "is a person (1) who has those personal qualities of agreeableness, consideration for others, sincerity, and the like, which, all will agree, make one a desirable associate, (2) who also is professionally interested and competent, (3) who has, among other qualities, scholarship and culture, and (4) who, in addition, respects children and is respected by children and establishes wholesome pupil-teacher relationships."

A great many investigations have been made in an attempt to discover the major individual factors which are associated with success in teaching. Among the factors which have been studied are the following:

Intelligence test score
Marks made in college

[1] *Report of the Investigation of Educational Qualifications of Teachers in South Carolina*, Columbia: University of South Carolina, p. 30.

Age and sex
Amount of professional training
Years of experience
Amount of training in the field taught
Marks made in professional courses
Marks made in courses in field taught

In all these investigations some criterion of teaching success was employed. In most instances the measure of success was determined by the rating of supervisors. From these studies one is forced to conclude that none of the factors investigated seems to be closely associated with teaching success as measured by ratings of supervisors, although there is a positive correlation. It appears that, given a reasonable minimum of intelligence and appropriate training, it cannot be shown statistically that there is very great relationship between teaching success and measures of any of the traits thought to contribute to teaching success. Of course it is more than merely possible that the ratings of supervisors are not reliable and valid measures of teaching success. In fact, many students of the problem have arrived at the conclusion that the coefficients of correlation, which are usually between .15 and .30, would be materially higher between the respective factors and *reliable* valid measures of teaching success.

Personal Traits of Successful Teachers.—Several studies have been made of the personal traits of successful teachers and of the relative desirability of various traits for success in teaching. The traits ranking highest in these studies are the following:

Magnetism: approachability, cheerfulness, optimism, sense of humor, sociability, pleasing voice
Cooperation and helpfulness
Leadership, initiative, self-confidence
Self-control: calmness, dignity, poise, reserve
Breadth of interests
Good disposition: appreciativeness, courtesy, tact, sympathy, kindness, consideration

The next highest group are the following:

Enthusiasm: alertness, animation, inspiration
Attractiveness: personal appearance
Adaptability
Good judgment: discretion, foresight, intelligence
Honesty and impartiality
Ability to explain clearly

The third group includes:

Scholarship and knowledge of subject
Health
Forcefulness: courage, decisiveness, firmness, purposefulness
Promptness: dispatch, punctuality

Almost invariably, if asked what qualities are most essential to teaching success, school administrators and supervisors place at the top of the list what they refer to as "teaching personality." In general, personality seems to include such things as animation, personal appearance, congenial manner, effective speech, emotional stability, apparent interest in students, maturity of thought and action, sense of humor, optimism, temperament, poise, and sociability. In analyzing teacher personality, it is necessary to consider the total impact of the total pattern of these qualities upon the pupil. The individual qualities which make for excellence are not identical in all effective teachers. It would be as undesirable as it would be futile to attempt to fit all teachers into a common mold Individuality and uniqueness of teacher personality is a priceless ingredient of a teaching staff. Envisage the boredom of a pupil who sits in a classroom hour after hour with a teacher of drab, humorless personality. A distinctive set of personal qualities, geniality, good sense of humor, sparkling facial expressions, may enable a teacher to make a noteworthy contribution to the mental and social development of pupils. Moreover, personal characteristics requisite for effective teaching vary in kind and degree at different grade levels and in different types of schools and communities.

Pupils' Opinions of Characteristics of Effective Teachers.—In several investigations, students have been requested to indicate the characteristics of the teachers they liked best. Bryan [2] has given an excellent list of reasons why students' reactions should be considered in the evaluation of teachers.

In a recent study,[3] 1667 eighth grade students were requested to give reasons why they thought the teachers whom they named were the most excellent. Responses mentioned most often include the following:

She was pleasant.
She was friendly.

---

[2] Roy C Bryan, "Why Student Reactions to Teachers Should Be Evaluated," *Educational Administration and Supervision*, XXVII, 560-603

[3] J McT Daniel, *Excellent Teachers: Their Qualities and Qualifications*, p. 167.

She was kind.
She was patient.
She was willing to help you.
She made you feel at ease.
She made you feel like you had learned something.
She made interesting projects for us to work on and she was interested in our work and made us more happy.
Good looking and dressed nicely.
She treated all the pupils alike.
She gave each pupil equal rights.
She was always willing to help people.

Qualities Teachers Consider Important.—In their efforts to improve the quality of their teaching, teachers in schools have cooperated in preparing self-rating scales. In other school systems the self-rating sheets have been devised by supervisory officers to encourage teachers to think through their teaching competencies as a basis for a program of self-improvement. The faculty of the Glencoe (Illinois) schools has developed a teacher self-evaluation scale. (See pages 491-493.)

2. Acquiring and Maintaining Mental Health

Personality Adjustment.—Many of the causes of personality maladjustments have their origins in childhood experiences. A study by Symonds [4] of the needs of teachers as revealed in their autobiographies indicates that many of the feelings of inadequacy and insecurity among teachers can be traced to the overemphasis by parents and teachers of such matters as school achievement or slight deviations from the norm in personal appearance and behavior. The inner conflicts which arise as a result of the individual's inability to attain social acceptability and other desired goals represent a prolific source of personality maladjustment.

It is doubtful that a direct attack in which each undesirable personality trait is made the object of an intensive effort for improvement results in personality development. Since the traits function in combination, no one of them can be isolated for emphasis while all the others lie dormant. Likewise, resolutions by teachers not to be impatient, irritable, depressed, or dull do not always result in any material improvement.

In some teachers favorable qualities of personality seem almost to be inherited, they develop so early with so little conscious effort.

---

[4] Percival M. Symonds, "The Needs of Teachers as Shown in Autobiographies," *Journal of Educational Research*, Vol. XXXVI, 672.

A. Professional Relations	No Improvement Needed	Little Improvement Needed	Some Improvement Needed	Considerable Improvement Needed	Much Improvement Needed
1. Do I read professional literature in an attempt to increase my competence?					
2. Am I a participating, contributing member of the faculty organization?					
3. Do I assume my share of group responsibility?					
4. Do I have a genuine interest in professional organizations and utilize the opportunities afforded by them?					
5. Do I contribute to group thinking on problems of a general nature as well as those of particular interest to me?					
6. Am I genuinely tolerant of the opinions of others and open-minded on all matters under consideration?					
7. Having had an opportunity to voice my opinions, do I give wholehearted support to the decisions and accepted policies of the school without derogatory private comment?					
8. Do I inspire the confidence of the children by an understanding and friendly manner?					
9. Do I inspire the confidence of parents so that they feel free to talk frankly with me?					
10. Do I have the poise to withstand petty annoyance and maintain an emotional stability?					
11. Do I welcome opportunities to learn from and share with my fellow teachers and those in near-by schools?					
12. Have I sincere regard for and interest in the adjustment and development of beginning teachers and student teachers?					
13. Do I utilize opportunities for improving my professional competence through university study, travel, membership in study groups?					
14. Do I seek opportunities of broadening my experience and understanding through summer work of widely varied kinds quite apart from work with children?					
15. Am I as courteous to and thoughtful of children and colleagues as I expect them to be?					

B. Nonprofessional Relations	No Improvement Needed	Little Improvement Needed	Some Improvement Needed	Considerable Improvement Needed	Much Improvement Needed
1. Do I keep myself currently informed on social and political affairs?					
2. Do I read widely for my personal enrichment?					
3. Have I some intensive interest or hobbies that I follow?					
4. Have I a wide variety of other interests?					
5. Do I make it a point to be outdoors enough?					
6. Is there some form of exercise that I enjoy regularly in each season?					
7. Do I take time for rest and relaxation even when busy?					
8. Do I set aside some time for things of the spirit, church worship or quiet thought, etc.?					
9. Do I maintain active social contacts with people outside the profession as well as in it?					
10. Am I able at times to "shed my profession" completely?					
11. Do I assume some responsibilities in the larger social sense, contributing time or services or money to needy causes or people?					
C. Community Relations					
1. Am I thoroughly informed on the setup and functioning of the village government?					
2. Am I familiar with organizations in the community and do I participate in or make use of their services? Woman's Library Club Junior Auxiliary Rotary Club Chamber of Commerce Threshold Players D. A. R. Garden Club Historical Society Community Council Scouts Local churches American Legion Others					
3. Do I make use of the facilities offered by the Park Board?					
4. Do I use and encourage the use of the local library?					
5. Am I aware of civic needs within the community? If so, do I seek opportunity to offer suggestions and support measures undertaken?					
6. Do I contribute within my means to charitable and religious activities in the community?					
7. Am I familiar with and do I utilize in my work with children the many facilities which the community has to offer?					
8. Do I make use of resource studies such as Com- [illegible]					

D. TEACHER-PUPIL RELATIONSHIPS	No Improvement Needed	Little Improvement Needed	Some Improvement Needed	Considerable Improvement Needed	Much Improvement Needed
1. Do I recognize the value in group planning and provide for it?					
2. Do I guide children in their plans rather than dominate them?					
3. Do I encourage my children to do their own thinking?					
4. Do I realize the value of thinking in the learning process?					
5. Do I establish certain routine procedures and responsibilities?					
6. Are the arrangement and order of my room and materials conducive to individual and group control?					
7. Is my relationship with children one of sincerity and rapport?					
8. Do I recognize the needs of each of my children and provide for their individual difficulties?					
9. Do I take time for the problems and interests of the individuals of my group?					
10. Do the children of my group have a feeling of status and "belonging"?					
11. Do I recognize my mistakes and admit my inadequacies to children?					
12. Do my children respect me because of my contributions to the group and not because of my status as a teacher?					
13. Whenever possible, do I regard undesirable behavior as an educational opportunity and use it as such?					
14. Do I recognize and care for the fatigue element in the individual and group control?					
15. Do I encourage thoughtful evaluation and discussion on the part of my children rather than do most of the talking myself?					
16. Does my group give evidence that I strive for self-control rather than imposed control?					
17. Does our planning make provision for a definite quiet period?					
18. Do I use supervisory services effectively?					
19. Do I avoid overstimulation by careful guidance and selection when opportunities such as assemblies, movies, etc., are offered?					

In most teachers, at least a few of the traits have to be cultivated systematically over a considerable period of time. In some, practically all these traits have to be cultivated if they are to exist. Consequently, teachers vary a great deal with respect to the quality of teaching personality. Some persons of good minds and adequate or superior training are failures or at most very limited successes at teaching.

In a realistic program designed by the teacher to overcome her personality deficiencies, cognizance should be taken of the difficulty of eliminating maladjustments of long standing, especially if certain elements in the teaching situation aggravate the problems. A knowledge of some of the basic concepts of mental health should assist the teacher in meeting her own problems of personality adjustment as well as those encountered by her pupils.

Meaning and Significance of Mental Hygiene.—Mental health is an emotional and mental condition which is characterized by thought and behavior patterns which are satisfying to the individual and in reasonable harmony with the group of which she is a member. Life is a series of adjustments between the living organism and its social and physical environment. A well-adjusted individual is one who utilizes the resources available in her environment to meet her personal and social needs. Thus conceived, adjustment is the individual responsibility of each person.

Failure on the part of the individual to make adequate adjustments to her physical environment results in physical disharmony and ineffectiveness. The inability of the individual to adjust to her social environment results in the impairment of her personality. There are many degrees of mental illness, varying from the milder forms which are characterized by irritability and nervousness to the more serious types which are indicated by emotional instability, delusions, feelings of inferiority, moodiness, isolationism, imaginary persecution, and extreme melancholy. To the extent that human behavior patterns are specific, a person may be well adjusted to one situation and poorly adjusted to another. She may be well adjusted at one time in her life and not at another.

While the incidence of mental illness is high among teachers, they rank above the general population in respect to mental health. The really crucial issue involved in the mental maladjustment of teachers is its unwholesome effect upon pupils. Numerous investigations have revealed that the number of maladjusted pupils is much

greater in classes taught by poorly adjusted teachers than in the classes of well-adjusted teachers.

While the maintenance of mental health is largely an individual responsibility, there are present in many teaching situations certain factors which serve to intensify personal difficulties of long standing in the life of the teacher. In their extreme form, some of the unsatisfactory conditions under which teachers work may cause mental illness In most instances, however, the conditions merely aggravate existing difficulties.

The factors which help and handicap a teacher in maintaining good mental health vary markedly from one teaching situation to another. In most instances the unwholesome influences can be modified or minimized and the wholesome features can be capitalized by an intelligent teacher. In the event the teacher's tendencies toward maladjustment and the undesirable factors in a teaching situation combine to produce a serious form of mental illness, the teacher should consult a psychiatrist or physician. Unless the difficulty can be eliminated, the teacher owes it to herself and her pupils to withdraw from teaching.

Program for Maintaining Mental Health.—Many less serious forms of mental disturbance can be removed by a prompt, practical, common-sense program, instituted and carried out by the teacher herself. The teacher who is desirous of maintaining good mental health may find some of the following suggestions helpful.

1. *Recognize the Significance of Teaching.* A clear vision of the social significance of teaching may be gained by a consideration of the opportunities the teacher has to make desirable changes in the thinking and behavior of children under her jurisdiction. Protecting the personality of the child from the forces that constantly tend to disintegrate it presents a challenge to the highest humanitarian instincts of the teacher. It should not be difficult for the teacher of courage and intelligence to realize the possibility of helping to create a better social order by teaching the truth about social and economic injustices. Charles Dickens declared his mission in life was "to make crooked places straight." Surely the teacher of today cannot be less of a crusader.

Unless the teacher can establish a strong faith in the improvability of the individual through the process of education, she should seek employment in a vocation more suited to her interests. Only a firm conviction that teaching is important can serve as a bulwark against the petty annoyances, irritations, and stresses of professional life.

The teacher who likes people and is genuinely interested in their

welfare experiences little difficulty in developing a strong interest in teaching. Nothing short of a strong desire to help children meet their numerous complex problems can give purpose and dignity to the work of the teacher. Endeavors of teachers who seek more tangible rewards in the form of financial returns and social status are both disappointing and futile.

2. *Formulate a Sound Philosophy of Life.* Reference has been made in the preceding paragraphs to the teacher's need to accept a satisfactory philosophy of education which incorporates among other things a strong conviction in regard to the value of teaching as a form of human endeavor. This educational philosophy should be an aspect of a larger all-embracing philosophy of life. One's philosophy of life is a highly personal matter; however, sound social values should be given due recognition. A proper sense of values tends to give perspective and direction to one's life at all times, particularly in periods of extreme stress and strain. One teacher's set of values may vary considerably from that of another teacher, depending upon individual temperaments and experiences.

A teacher's mental health is highly dependent upon a guiding philosophy of life which is satisfying and gives purpose and direction to all her personal and professional activities. The details of an individual's philosophy of life are subject to constant modifications within the limits of its broader framework. A sound philosophy is ever evolving, always in the process of being acquired. It should, however, have sufficient stability to enable an individual always to relate his ideas and experiences to it; otherwise, it fails to be a guide to thought and action.

3. *Keep Physically Fit.* There is considerable evidence to indicate that a close relationship exists between physical and mental health. They are mutually dependent. An unsatisfactory condition of one contributes to the failure of the other. Adherence by the teacher to a sensible physical fitness program is therefore essential to the maintenance of mental health. In planning a physical health program consideration should be given to the simple rules of health, such as exercise, sufficient sleep, and a well-balanced diet. The indoor work of the teacher should be counterbalanced by outdoor recreational activities. Adequate provision should be made for relaxation from the work of the classroom by engaging in leisure-time activities which take one's mind away from one's work. Chronic fatigue and irritability may be symptoms of ailments which can be revealed by diagnosis and alleviated by competent medical treatment. The peri-

odic physical examination, which is recognized as essential for pupils, is likewise important for teachers. Undue worry over minor ailments is both a cause and a symptom of emotional instability.

4. *Cultivate a Sense of Humor.* It has been said facetiously that everyone needs a sense of humor to console him for what he *is* and a vivid imagination to compensate for what he *is not.* While the work of the teacher should be taken seriously, there is an ever-present danger that the teacher will take herself too seriously. In their excellent yearbook entitled *Fit to Teach,* a committee of the Department of Classroom Teachers of the N. E. A. stated that an individual should be able to laugh at other people, and with other people, and especially to laugh at himself. The position of the teacher tends to encourage pupils to accept her word as final authority. This acceptance of the teacher's ideas, without any questions asked, often causes her to overestimate the wisdom of her own words. Such an attitude may result in maladjustment of the teacher to out-of-school situations in which other persons may take issue with her.

In the classroom a sense of humor will often serve to "calm the troubled waters." The possessor of a sense of humor tends to avoid overemphasis upon minor difficulties and other trivial matters. To acquire a sense of humor, the teacher must learn to see matters in their true perspective and not to "engage in a major fight over a minor issue."

5. *Develop Strong Avocational Interests.* No one can prescribe leisure-time activities for another person. Each individual is free to "write his own ticket," to choose his activity or hobby. Aside from the practical limitations of money and time, the teacher because of her training should be able to make a wise choice of leisure-time activities. Certainly the teacher should have some strong intellectual interests beyond the requirements of her teaching. Hobbies in art, music, and books present opportunities to satisfy the creative and intellectual urge. If the need for achievement is not met by one's professional activities, gardening and use of materials may give a feeling of mastery that is conducive to mental health. Perhaps every person should engage in some activity "just for fun." The teacher who knows how to play seldom becomes blue, discouraged, or bored with life.

Beyond one's special interest in a hobby, a satisfactory leisure-time program should include a variety of activities which bring one into contact with people, music, poetry, and the beauty of nature. The sources of one's interests in activities in which she is free to engage

are numerous. A slight interest in a particular activity may grow, if properly cultivated, into an all-consuming enthusiasm which enhances and adds zest to professional activities.

The manner in which one engages in leisure-time activities also goes far to determine their value. The attainment of the objectives of carefully planned walks or tours often becomes a chore. When you take hikes or walks, do so without a definite destination. Let the caprice of the moment take you where it will. Leisure-time activities are important means of adding breadth and variety to one's vocational activities. They do not "compensate" for the drudgery of work in which a person has no real interest. If an individual likes her vocation, she will not find it necessary to think of avocational activities as merely something to counterbalance the displeasure she finds in her vocation.

6. *Know Yourself, Accept Yourself, and Be Yourself.* Objective self-analysis in which one assesses one's own strengths and weaknesses is difficult, but it is essential in overcoming deficiencies in personality development. Equally important is the discovery of the causes of one's maladjustment. An individual tends to overrate himself on those traits which appear to be important and underrate himself on those of little importance; for example, a person may underrate his handwriting ability, hence the common expression, "I cannot read my own handwriting," yet he seldom admits he is dishonest or untruthful.

The recognition of one's limitations should be accompanied by their acceptance. Attempts "to do the impossible" in terms of one's ability lead to discouragement and frustration. On the other hand, failure to utilize one's abilities fully and a shirking of responsibility tend to destroy the keen enjoyment of living.

Likewise necessary to mental health is the ability to discard all forms of pretense and be one's self. Efforts of teachers to identify themselves with persons in the self-styled socially elite class is tragic to both teacher and pupils. A well-known writer recently portrayed a teacher who was desirous of lifting herself out of her own social class by catering to all the "nice little boys and girls" from the wealthy families and ignoring and humiliating the children from the poorer homes. Teachers should recognize the dignity of a profession that serves "all the children of all the people." Indulgence in self-pity and expressions like "I am just a teacher" reveal a distressing type of vocational maladjustment with its concomitant lack of personal and social adjustment.

A study of the foregoing list of suggestions, along with others which might be added, reveals that the teacher's task of maintaining good mental health is similar to that of any other person. A useful summary of mental health precepts has been formulated by McKinney [5] as follows:

1. Keep yourself physically fit through hygienic habits of rest, exercise, diet, and cleanliness.
2. Face your troubles, worries, and fears; do what you can about them, then turn your attention to more pleasant things.
3. Have several absorbing hobbies, interests, social games, or sports in which you like to participate.
4. Guide your impulses and emotions in desirable channels rather than suppress them.
5. Strive to become a balanced personality instead of an extremist.
6. Develop a sense of humor; be willing to admit your own mistakes and laugh at yourself.
7. Have several major goals in the line of your abilities and enjoy working toward them.
8. Acquire real friends and companions who will share your fortunes and troubles.
9. Avoid strain; develop serenity, relax all muscles that are not necessary for the task at hand
10. Build the habit of enjoying the present by drinking in the beauties of the world around you.
11. Be courageous in crises; don't run from them.
12. Grow daily by creating things yourself rather than being merely a spectator, dreamer, and nonproducing consumer. There is fun in striving.
13. Don't be overconscious of your uniqueness. Realize that most of us are ordinary people.
14. Realize time heals many wounds; be patient and hopeful.
15 Seek love, adventure, safety, and success—but be sure they are the kind that you can fully enjoy.
16. Develop your philosophy; know where you stand and adjust to the conditions you must meet.

Other Characteristics of Effective Teachers.—The extent to which teachers are successful in producing desirable changes in the attitudes and behavior of pupils is the measure of teaching effectiveness. Increasing knowledge and developing skills are only the means to those ends. There are certain characteristics of teachers which appear to be closely associated with teaching effectiveness. Reference to some of the qualities of successful teachers has been made in preceding sections of this chapter. In addition to those already

[5] Reprinted by permission from *Psychology of Personal Adjustment,* 2d ed., by F. McKinney, published by John Wiley & Sons, Inc., 1949, pp 548-49.

mentioned the teacher of children in our present-day democracy should possess:

1. An understanding of children
2. An understanding of the times in which she is teaching
3. An abiding faith in education and the usefulness of teaching
4. A devotion to the ideals of democracy

1. *Understanding Children.* Understanding children involves a knowledge of human development, learning, and behavior. This information can be acquired by a study of the scientific facts which explain human growth in the terms of biology, psychology, and sociology. It is necessary, however, to supplement these facts with knowledge obtained by observation of, and association with, all types and conditions of men. Familiarity with the isolated factors in human development has little significance unless one is able to recognize their interdependence.

The prevailing idea that teachers, by the nature of their work, are necessarily isolated from life is erroneous. Every classroom is a psychological and sociological laboratory in the truest sense of the term. The teacher who is interested in people has unparalleled opportunities not only to observe at first hand the development of human beings but also to promote that growth. To the alert, intelligent teacher, the local community serves as a social laboratory to increase her understanding of human behavior. Careful study of children in school and out has given her significant insights into social living. Among the most important of these are:

1. The uniqueness of each individual child in regard to mental abilities, interests, social adaptability, and emotional drives
2. The potential contribution each individual can make to the general welfare
3. The need for a series of "common developmental tasks" in the education of all children
4. The advisability of withholding judgment of a child until all relevant facts are available
5. The necessity of recognizing that there is a *cause* underlying all forms of child behavior (An analysis of behavior usually reveals that an individual's "actions are based upon his past experiences, shaped by his present situation, and influenced by his desires and hopes for the future." [6]

2. *Understanding the Times.* Teachers who seek to assist children in making adjustments to the world in which they live must know

[6] *Helping Teachers Understand Children,* Commission on Teacher Education of the American Council on Education, p. 8.

that world. They must be aware of the economic and social forces which shape the world and influence the thoughts and actions of men. They should be well informed in regard to the economic interdependence of the various peoples of the earth. They should be cognizant of the degree to which political democracy in some sections, and economic democracy in all sections, of our country has failed of attainment. Basic to service in democracy's schools is a realization that the cornerstone of democracy is respect for human personality, regardless of race, color, or creed.

A knowledge of America, her past struggles, her present strengths and weaknesses, and her aspirations for the future, should be part of the equipment of every American teacher. Above all she should recognize the dynamic character of our democracy and be tolerant of social and economic change. Finally, the teacher should be a student of international affairs with a full knowledge of the need for political and economic cooperation among all peoples.

3. *Faith in Education.* Our system of universal education is based upon a faith in the improvability of the individual through a process of formal education. This belief in the inherent value of the individual is linked with the idea that the existence of a democratic society is dependent upon the ability and willingness of society to provide the means of guaranteeing a constant flow of intelligent, well-informed citizens into its life stream.

It is essential that the teacher be convinced of the soundness of these assumptions. Unless she firmly believes that education is a potentially great force in the lives of men, the greatness of teaching will evade her. A blind acceptance of the significance of education is equally tragic. The teacher must recognize that education is not a formula which can lift men by magic out of their ignorance and selfishness. Human progress is painfully slow. Agencies other than the school influence the actions of mankind for good or ill. At times it may appear that the efforts of the school are fruitless, thwarted as they are by other forces. Only a vital, realistic program of public education can hope to counteract these influences. Herein lies the constant challenge to the teacher to vitalize her teaching.

In spite of the disappointing outcomes of many of the efforts of teachers, there is ample evidence to demonstrate the power of education. Unless a person senses the social significance of teaching, and unless she is desirous of rendering a service which will ennoble mankind, she should not engage in teaching.

4. *Devotion to Democratic Procedures.* Democracy is not achieved by a people in a single supreme effort and enjoyed forever afterwards. To be retained, it has to be rewon daily. Eternal democratic effort is the price of democracy. The school has the responsibility of rekindling the spirit and replenishing the substance of the democratic way of life.

The individual counts for much in terms of the general welfare in a democracy. It is of the greatest importance, therefore, that he be educated in schools dedicated to the principles of human rights, individual opportunities, and social responsibilities. Dictatorial practices in the classroom subdue and frustrate the child rather than assist him in becoming a self-directing, effective member of a democratic society.

A teacher who is intelligently devoted to the democratic process will in her relationships with pupils advance the general welfare by being concerned with the welfare of each child, regardless of his intelligence, race, social status, or economic condition. She guides the child to a recognition of the fact that in a democracy the individual has responsibilities as well as rights and privileges. She assists the child in translating democratic ideals into action in her daily association with other children in the classroom, on the playground, and at school dances, as well as in out-of-school activities. She arranges situations in which all the children will have meaningful experiences in sharing responsibility in planning, managing, and evaluating their own activities.

Managerial Abilities of Effective Teachers.—In the preceding sections of this chapter, emphasis has been placed upon desirable attitudes, outlooks, and understandings of the teacher. Some reference should be made to the abilities of the teacher as a leader of pupils in classroom activities. The qualities which characterize the effective teacher can be revealed by an actual record of a classroom situation in which the teacher

. . . guided students into stimulating learning activities in terms of their present interests and future needs. She assisted pupils in developing worthy purposes and goals. She led the pupils in the adventure of selecting and planning learning activities appropriate to the goals. The study of a variety of source materials was a vigorous process in which both pupils and teacher engaged. Individual and group responsibility was fostered. The pupils were enabled to interpret their classroom experiences in terms of everyday problems. New problems growing out of the present work were suggested by pupils. Individual pupil initiative was encouraged and recognized. Provision

was made for the special abilities, interests, and needs of individual pupils by appropriate types of projects, methods of procedure, and different required standards of proficiency. Pupil records of achievement were made in the form of test scores, statements of the pupil's contribution to the thinking of the group, and anecdotal material.

3. Life in the Community

Values of Community Participation.—The superior teacher today recognizes the fact that the school is one of the more important community agencies. It is of and for the community. As a responsible leader in such an organization she cannot escape her responsibility of active participation in community life. Whether the people of the community expect it or not, the teacher should participate in all those activities of the community which have for their objectives the improvement of social and economic conditions. Her participation may not only serve to make those agencies more effective but also be of service to the school. Frequently the adverse criticism directed toward teachers is a result of a lack of acquaintance with and understanding of the teacher. If the person who hears derogatory statements in regard to the teacher's activities knows the teacher personally, he may properly discount the remarks. A teacher gains status in a community by assuming appropriate responsibilities in its affairs. Effective community participation is based upon an understanding of the resources, needs, and customs of the community.

As an adult individual, the teacher benefits immeasurably by association with mature adults. Perhaps nothing is more conducive to the impairment of the teacher's mental health than his exclusion from the normal social activities of adults. The teacher has been characterized as a "creature set apart" in the typical American community. Too often this is a self-imposed role. In most instances the apparent social ostracism can be overcome by the teacher's taking a genuine interest in the affairs of the community. The fact that the morals of the community may be different from those in other communities in which the teacher has lived should serve to stimulate rather than discourage her participation in community life.

Suggestions for Participation.—It is a truism to state that the teacher's primary responsibility is to teach the pupils enrolled in the school. This suggests that the teacher should exercise discrimination in regard to the type and number of community activities in which she participates. There is the ever-present danger that the teacher may dissipate her energies by becoming a "professional joiner" of

organizations which have little significance to her own or the community welfare. In making decisions in regard to which activities should be given priority, the teacher should give preference to those which are most closely related to the educational and social welfare of the youth of the community and to those which will give her opportunity for social relaxation. This decision is not as simple as it may appear, since the child's development is influenced by practically every aspect of his community environment. This suggests another important reason for the teacher to participate in community activities. Only as the growing youngster is considered against the background of community life is it possible to understand his attitudes, aspirations, and behavior.

Also the leadership of the teacher is needed in most communities in matters which tend to promote better racial relationships and more intelligent understanding by all the people of vital economic, political, and social issues. Effective community participation is dependent upon an understanding of the resources, needs, and customs of the community. Failure to recognize the peculiar social cleavages which exist in a community may result in the teacher's becoming identified with, if not actually embroiled in, factional rivalries, thus detracting from her usefulness as a potential leader. While the teacher has the right as a person and as a citizen to participate in those activities from which she derives the greatest satisfaction, the basic criterion is the probable effects of such participation upon her position as a responsible leader.

The Community and Teacher Behavior.—In the realm of moral values as well as in intellectual matters the teacher is expected to set an example of nobility and the "good life" Many of the important concomitants of learning, including the ideals of ethical behavior, are acquired by association with other persons. Especially during adolescence, example is stronger than precept. The parent who is not always careful about setting an example of exemplary conduct for his own children insists that the teacher do so. This responsibility of the teacher carries with it the opportunity to engage in the most effective kind of teaching. Henry Van Dyke said: "Knowledge may be gained from books, but the love of knowledge is transmitted only by personal contact."

In America, one of the main responsibilities of the teacher is to assist in making the ideals of democracy functional in the lives of children in our schools. To be effective in this respect the teacher's personal and professional conduct must personify democratic ideals.

In order that the effectiveness of the individual teacher may be increased and the welfare of the entire profession promoted, it is essential that the activities of teachers be in accord with ethical standards of conduct.

While it is not advisable for the community to restrict its teachers with minute regulations regarding the details of their personal or professional lives, the public through its school board has the right to choose whom it will employ as teachers, and it will employ those who conform to the moral and social standards of the community.

It is extremely difficult for the public to dissociate the teacher's professional activities from her personal life. Thus a teacher's effectiveness in the classroom is influenced in no small part by her reputation in the school and community. This idea of unity was expressed by Herbert Hoover in speaking at an annual convention of the Department of Superintendence when he said,

> The public school teacher cannot live apart, he cannot separate his teaching from his daily work and conversation He lives among his pupils during school hours, and among them and their parents all the time. . . . His office, like that of a minister of religion, demands of him an exceptional standard of conduct.

4. Professional Ethics

The teaching profession, like most other professions, has formulated creeds or codes of professional ethics for the guidance of its members The various state associations and the National Education Association have adopted and published statements of rules designed to govern the professional activities of teachers. The standards of conduct suggested in the codes may be classified into six areas of teacher relationships: (1) to the pupil, (2) to other teachers, (3) to the community, (4) to the profession, (5) to the administrative officers, and (6) to the board of education.

Code of the National Education Association.—While the details of content vary somewhat in the various state codes for teachers, they are all patterned largely on the Official Code of the National Education Association. The following condensed statement [7] of the code of the N. E. A. contains the main points of emphasis to be found in all the codes.

> The teacher should be courteous, just, and professional in all relationships.
>
> Desirable ethical standards require cordial relations between teacher and pupil, home and school.

[7] "Ethics for Teachers: A Condensed Statement of the Code of the National Education Association," *Journal of the National Education Association*, Vol XXXIII, 117.

The conduct of the teacher should conform to the accepted patterns of behavior of the most wholesome members of the community.

The teacher should strive to improve educational practice through study, travel, and experimentation.

Unfavorable criticism of associates should be avoided except when made to proper officials

Testimonials regarding the teacher should be truthful and confidential.

Membership and active participation in local, state, and national professional associations are expected.

The teacher should avoid indorsement of all educational materials for personal gain.

Great care should be taken by the teacher to avoid interference between other teachers and pupils.

Fair salary schedules should be sought and when established carefully upheld by all professionals.

No teacher should knowingly underbid a rival for a position.

No teacher should accept compensation for helping another teacher to get a position or a promotion

Honorable contracts when signed should be respected by both parties and dissolved only by mutual consent.

Official business should be transacted only through properly designated officials.

The responsibility for reporting all matters harmful to the welfare of the school rests upon each teacher.

Professional growth should be stimulated through suitable recognition and promotion within the ranks.

Unethical practices should be reported to local, state, or national commissions on ethics.

The term "teacher" as used here includes all persons directly engaged in educational work.

Bill of Rights for Teachers.—The value of written codes has been questioned by many persons, as being "counsels of perfection" which no mortal can hope to observe. Admitting that the codes are idealistic, no one will doubt the importance of striving to attain the suggested standards. Another limitation of teacher's codes which is often mentioned is the "Thou shalt not" spirit which seems to permeate most of the codes. It should be remembered that a code is not a *bill of rights* for teachers. Perhaps teachers in this country should formulate a bill of rights containing items in regard to academic freedom, security of position, a living wage, etc., as part of their code of ethics, or as a separate instrument. An evolving bill of rights for teachers which was suggested by Schorling [8] is as follows:

[8] Raleigh Schorling in *The School of Education Bulletin*, Vol. XXVII, University of Michigan, 122-125.

1. The right to teach classes that are not too large—in general, from ten to twenty pupils
2. The right to have time in the school day for planning
3. The right to a 45-hour week
4. The right to adequate compensation for the full year of fifty-two weeks
5. The right to an adequate amount of helpful and constructive supervision
6. The right to have good materials and enough of them
7. The right to work in a room that, with the help of the students, can be made pleasant and appropriate to the tasks to be learned
8. The right to the same personal liberties which other respectable citizens assume for themselves as a matter of course
9. The right to an internship
10. The right to a realistic program of in-service education
11. The right to participate in modifying the curriculum and methods, and in formulating school policies
12. The right to keep from being lost in the profession

Questions, Problems, and Exercises

1. Outline a program designed for the acquisition of a desirable personal trait.
2. Suggest how an individual might change or eliminate an undesired personal trait.
3. What are some of the symptoms of an inferiority complex in a teacher?
4. What are some of the factors which may influence social maladjustment among teachers?
5. Plan a schedule of your daily activities which provides time for recreational activities in addition to provision for those of a personal and professional character.
6. Prepare a paper in which you list your recreational interests, indicating the sources of these interests, and describe in some detail your favorite hobby.
7. What factors should a person take into account in considering teaching as a career?
8. Indicate how a teacher may acquire an effective teaching personality.
9. Recall the teachers you had in high school. How many of them exercised a lasting influence upon your thinking or behavior? Describe the most outstanding characteristics of those who did influence your thinking.
10. What are the chief values of self-rating devices for teachers?

SELECTED REFERENCES

* Titles marked with an asterisk are particularly useful.

CHAPTER 1

THE OPPORTUNITIES AND RESPONSIBILITIES OF THE ELEMENTARY SCHOOL TEACHER

BURNHAM, W. H. *The Normal Mind.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1924.

*BURTON, W. H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. vi, "The General Characteristics of Teaching."

CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School* New York: American Book Co., 1942. Chap. ii, "The Development and Status of the Elementary School."

FRANK, GLENN. "The Teacher's Task." *New York Times,* July 10, 1929

FRAZIER, BEN W. *Teaching as a Profession.* Washington, D.C.: U.S. Office of Education, 1944.

GOULD, GEORGE, and YOAKAM, GERALD ALAN. *The Teacher and His Work.* New York: The Ronald Press Co, 1947.

HARTMANN, G. W. "Effects of Teaching on Teachers," *Phi Delta Kappa,* XXIX (December, 1947), 178-82.

LENNIS, H J *The Teaching of Arithmetic* New York: The Macmillan Co, 1923. Chap. i, "Formal Discipline."

MEHL, MARIE ANNA. "No Age Barriers to World Understanding," *Educational Leadership,* IV (October, 1946), 18-22.

*MURSELL, JAMES L. *Education for Democracy.* New York: W. W Norton & Co, 1943. Chap. xiv, "The Role and Responsibilities of the Teacher."

MYERS, ALONZO F., and WILLIAMS, CLARENCE O. *Education in a Democracy.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1938. Unit I, "Our American School System"; Unit II, "Influences Affecting Our Schools."

*NATIONAL SOCIETY FOR THE STUDY OF EDUCATION. *American Education in the Post-War Period: Curriculum Construction Forty-Fourth Yearbook,* Part I. Chicago: University of Chicago Press, 1945. Chap. xii, "Post-War Education for International Understanding."

———. *The Measurement of Understanding. Forty-Fifth Yearbook,* Part I. Chicago: University of Chicago Press, 1946, pp. 7-9.

*OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York, Rinehart & Co., Inc., 1949. "Character," pp. 137-40.

PANTON, J. H. *Modern Teaching Practice and Technique.* New York: Longmans, Green & Co., 1945. Chap. xii, "Character Development and Discipline."

SCHNEIDEMAN, ROSE. *Democratic Education in Practice.* New York. Harper & Brothers, 1945. Chap. i, "The Philosophy of Democratic Education"

WOFFORD, KATE V. *Teaching in Small Schools.* New York: The Macmillan Co., 1947. Chap. xv, "Understanding the Community."

YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York. The Macmillan Co., 1948. Chap. i, "Fundamental Bases of Teaching and Learning."

CHAPTER 2

THE ELEMENTARY SCHOOL PUPIL

BROWN, FRANCIS. *The Sociology of Childhood.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1939 Part V, "The Child and His Leisure."

BRUCE, WILLIAM F., and FREEMAN, FRANK S. *Development and Learning.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1942. Chap. iv, "Basic Organization of Emotions and Needs in Early Childhood"; Chap. v, "Early Patterns of Social Democracy in Informed Groups Aged Five and Six Years"; chap vi, "The Mature Ten-Year-Old"; chap. vii, "The Second Decade of Life."

*BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. v, "The Nature of the Learner."

CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* Chicago: American Book Co., 1942. Chap. v, "Children of Elementary School Age."

*CHARTERS, W. W. (chairman). *Motion Pictures and Youth.* (Payne Fund Studies.) New York: The Macmillan Co., 1933.

COMMISSION ON TEACHER EDUCATION. *Teachers For Our Times.* Washington, D.C.: American Council on Education, 1944. Chap. iii, "Our Children, Our Schools."

CRESSEY, PAUL G. "The Motion Picture Experiences as Modified by Social Background and Personality," *American Sociological Review,* III (August, 1938), 516-25.

DEBOER, JOHN J. "Radio and Children's Emotions," *School and Society,* L (September 16, 1939), 369-73.

———. *Radio and English Teaching.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1941, pp. 37-38. "The Psychology of Children's Radio Listening."

*DEPARTMENT OF SUPERVISORS AND DIRECTORS OF INSTRUCTION, National Education Association. *Mental Health in the Classroom. Thirteenth Yearbook.* Washington, D.C.: Department of Supervision and Directors of Instruction, 1941.

*DEWEY, JOHN. *The School and Society.* Chicago: The University of Chicago Press, 1899.

*GESELL, ARNOLD. *The Child From Five to Ten.* New York: Harper & Bros., 1946. Part II, "The Growing Child"; Part III, "The Growth Complex."

HUGGETT, ALBERT J., and MILLARD, CECIL *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. ii, "Basic Growth Concepts."

*JERSILD, ARTHUR T. *Child Development and the Curriculum.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1946. Chap. ii, "Principles of Child Development as Applied to the Curriculum"; chap v, "The Elementary School Child."

NATIONAL SOCIETY FOR THE STUDY OF EDUCATION. *Early Childhood. Forty-Ninth Yearbook,* Part II. Bloomington, Ill.: Public School Publishing Company, 1946. Chap. ii, "Young Children at the Turn of the Era"; chap. iii, "Implications of the Social Science for the Education of Young Children."

PRESCOTT, DANIEL A. *Emotion and the Educative Process.* Washington, D.C.: American Council on Education. 1938. Chap. ii, "Basic Affective Phenomena"; chap. iii, "Psychological Basis of Affective Experience and Behavior."

PRESTON, MARY I. "Children's Reactions to Movie Horrors and Radio Crime," *Journal of Pediatrics,* XIX (August, 1941), 147-68.

THORNDIKE, T. L. "Words and Comics," *Journal of Experimental Education,* (December, 1941), 110-13.

WATTS, A. F. *The Language and Mental Development of Children.* Boston: D. C. Heath & Co., 1944. Chap. i, "Language, Thought, and Experience"; chap. ii, "Growth in Vocabulary."

WHITE HOUSE CONFERENCE ON CHILD HEALTH AND PROTECTION. Section III, *The Handicapped and Gifted.* New York Appleton-Century-Crofts, Inc., 1931.

CHAPTER 3

THE NATURE AND OBJECTIVES OF INSTRUCTION

CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* New York: The American Book Bo, 1942. Chap. iv, "Aims of Education in the Elementary School"

CHARTERS, W. W. *Methods of Teaching.* Chicago: Row, Peterson & Co., 1912. Chap i, "The Function of Teaching."

DEWEY, JOHN. *Democracy and Education.* New York: The Macmillan Co., 1939. Chap. iv, "Education as Growth."

EDUCATIONAL POLICIES COMMISSION. *The Purposes of Education in American Democracy.* Washington, D.C.: National Education Association, 1938.

HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth through Education.* New York; The Ronald Press Co, 1948. Chap. i, "Education and Life Today"

LEE, J. MURRAY, and LEE, DORRIS MAY. *The Child and His Curriculum.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1940. Part I, "Understanding the Elementary School Child."

MURSELL, JAMES L. *Developmental Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc, 1949. Chap. i, "The Concept of Developmental Teaching."

———. *Principles of Education.* New York: W. W. Norton & Co., 1934. Part I, "Foundations", Part II, "Outcomes."

OTTO, HENRY J *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Chap. iv, "The Purposes of Elementary Schools"; chap. v, "Educating for Self Realization", chap. vi, "Educating for Satisfactory Human Relations"; chap. vii, "Educating for Economic Efficiency"; chap. viii, "Educating for Civic Responsibility"

SORENSON, HERBERT. *Heredity, Environment, and Human Development.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc, 1940 Chap x, "Psychology and Education."

STRATEMEYER, FLORENCE B., FORKNER, HAMDEN, L, and MCKIM, MARGARET G. *Developing a Curriculum for Modern Living.* New York. Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1947. Chap i, "Today's Challenge to Education"

CHAPTER 4

BASIC PRINCIPLES OF LEARNING AND MOTIVATION

BAXTER, BERNICE, and BRADLEY, ANNE M. *An Overview of Elementary Education.* Boston: D. C. Heath & Co., 1945. Chap. iii, "Teaching Principles and Procedures."

BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. ii, "Certain Misconceptions Concerning Learning"; chap. iii, "The Characteristics of Educative Experience", chap. v, "The Nature of the Learner."

DEWEY, JOHN. *Interest and Effort in Education* Boston: Houghton Mifflin Co., 1913.

DOUGLASS, HARL R. "Some Dangers of the Testing Movement," *Journal of the N.E.A.*, XXIII (January, 1934), 17-18.

EDUCATIONAL POLICIES COMMISSION. *Education for all American Children.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Pp. 1-8, "Values and Practice"; chap. iii, "The Curriculum."

HILDRETH, GERTRUDE. *Learning the Three R's.* Minneapolis: Educational Publishers, Inc., 1947. Chap. i, "Changing Practices in Teaching the Three R's."

*JERSILD, ARTHUR T. *Child Development and the Curriculum.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1946. Chap. ii, "Principles of Child Development as Applied to the Curriculum."

LANE, ROBERT HILL. *The Teacher in the Modern Elementary School.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1941. Chap. iv, "A Practical Approach to a Modern Philosophy of Education."

MACOMBER, FREEMAN GLENN. *Guiding Child Development in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1941. Chap. i, "A Glimpse into the Teaching and Learning Process."

MCGAUGHY, J. R. *An Evaluation of the Elementary School.* Indianapolis: The Bobbs-Merrill Co., 1937. Chap. ii, "The Bases for Evaluation."

OLSON, WILLARD C. *Educational Diagnosis. Thirty-Fourth Yearbook of the National Society for the Study of Education.* Bloomington, Ill.: Public School Publishing Co., 1935. "Emotional and Social Factors in Learning," pp. 63-77.

SORENSON, HERBERT. *Psychology in Education.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1940. Chap. xi, "Principles of Learning", chap. xiv, "Interest, Incentives, and Motivation"; chap. xvii, "Learning Through Transfer and Mental Discipline."

*SPEARS, HAROLD. *Some Principles of Teaching.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1949.

TIEDOUT, HARRY M. "The Misnamed Lazy Student," *Educational Record,* XXIV (April, 1943), 113-29.

TUTTLE, HAROLD SAXE. "Creating Motives," *Journal of General Psychology,* XXIII (July, 1940), 17-29.

WESLEY, EDGAR BRUCE. *Teaching Social Studies in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. i, "The Status of Elementary Education."

YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. i, "Fundamental Bases of Teaching and Learning."

CHAPTER 5

TEACHING FOR DIFFERENT TYPES OF LEARNING OUTCOMES

*ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Toward Better Teaching.* Washington, D.C.: National Educational Association, 1949, pp. 1-263.

BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century Crofts, Inc., 1944, pp. 395-402.

*CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1942. Chap. vi, "Developing Social Understanding and Sensitivity"; chap. vii, "Developing Creative Interests and Abilities"; chap. viii, "Developing Command of Skills."

*DEPARTMENT OF ELEMENTARY SCHOOL PRINCIPALS. *Meeting Special Needs of the Individual Child.* Washington, D. C.: National Education Association, 1940.

KINGSLEY, HOWARD L. *The Nature and Conditions of Learning.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1946. Part IV, "Seven Forms of Learning."

*MURSELL, JAMES L. *Developmental Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1949. Chaps. v and vi, "Language Development"; chap. vii, "Development of Relational Thinking"; chap. viii, "Deelopment of Objective Thinking", chap. ix, "Development of Social Understanding"; chap. x, "Development of Aesthetic Responsiveness"; chap. xi, "Development of Motor Abilities."

———. *Successful Teaching: Its Psychological Principles.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1946. Chap. i, "Successful Teaching: Its Meaning."

SKINNER, CHARLES E. (ed). *Elementary Educational Psychology*. New York: Prentice-Hall, Inc., 1945. Part IV, "The Learning Process and Evaluation of Learning Outcomes"

SORENSON, HERBERT. *Psychology in Education.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc, 1940 Chap. vi, "Mental Health Behavior Problems and Discipline"

STRATEMEYER, FLORENCE B, FORKNER, HAMDEN L., and MCKIM, MARGARET G *Developing a Curriculum for Modern Living.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1947 Chap. vi, "Developing the Curriculum with Learners"

WITTY, PAUL (chairman). *Menal Health in the Classroom.* Washington, D.C.: Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, 1940.

CHAPTER 6

PERSONAL AND SOCIAL ADJUSTMENT OF PUPILS

*ADAMS, FAY. *Educating America's Children.* New York: The Ronald Press Co., 1946. Chap. iii, "Achieving Democracy Through Practice: Classroom Organization and Management."

BONNEY, MERLE E. *Friends and Leaders: Inter-Personal Relations in the Group* Austin, Texas: The Hogg Foundation, The University of Texas, 1949.

COHLER, MILTON J. "A New Look At the Old Problem of Discipline," *The School Review,* LVI, No. 8, (October, 1948), 468-75.

CUTTS, N. E. and MOSELY, NICHOLAS. *Practical School Discipline and Mental Hygiene.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1941.

FREEMAN, GWENDOLEN. *Children Never Tell.* New York: The Macmillan Co., 1949.

GOOD, WARREN R. "Discipline: For Subservience?" *Current Viewpoints in Education.* Ann Arbor. University of Michigan, Bureau of Educational Reference and Research, 1943.

*HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Pp. 351-60, "Adjustment Problems of School Children."

HORACE MANN-LINCOLN INSTITUTE OF SCHOOL EXPERIMENTATION. *How to Construct A Sociogram.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1947.

HUGGETT, ALBERT J., and MILLARD, CECIL V. *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Pp. 298-308, "The Journal Record"

LANE, ROBERT HALL. *The Teacher in the Modern Elementary School.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1941. Chap v, "Social Living in the Classroom and Elsewhere."

MONASH, LOUIS. "Notes On Mental Hygiene and Preventive Discipline," *Understanding the Child.* XVIII. No. 1 (January, 1949), 19-23.

NEWBURGER, MAURICE. "The School and the Maladjusted Child," *Understanding The Child.* XVII. No. 1, (January, 1948), 14-21.

OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co, Inc., 1949. Pp. 248-305, "Making Discipline Educative."

PANTON, J. H. *Modern Teaching Practice and Technique.* New York: Longmans, Green & Co., Inc., 1945. Chap. xii, "Character Development and Discipline."

PRATT, CAROLINE. *I Learn From Children.* New York: Simon & Schuster, Inc, 1948.

*SHEVIAKOV, GEORGE V., and REDL, FRITZ. *Discipline for Today's Children and Youth.* Washington, D.C.; Association for Supervision & Curriculum Development, N.E.A., 1944.

*TORGERSON, THEODORE L. *Studying Children.* New York: The Dryden Press, Inc., 1947. Chap. iii, "How to Identify Problem Behavior by Observation."

CHAPTER 7

PLANNING FOR TEACHING

ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Group Processes in Supervision.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Pp. 39-46, "Group Planning and Decision."

*———. *Toward Better Teaching,* 1949 Yearbook. Washington, D.C.: National Education Association, 1949. Pp. 61-64, "Making Plans for Individual and Group Tasks."

BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. x, "Planning and Developing Units."

DEPARTMENT OF SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Group Planning in Education.* Washington, D.C.: National Education Association, 1945. Part II, "Group Planning in Action."

*EDUCATIONAL POLICIES COMMISSION. *Education for All American Children.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Pp. 193-95, 255-56, "Joint Planning."

*GILES, H. H. *Teacher-Pupil Planning.* New York: Harper & Bros., 1941.

HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Chap. vii, "Planning and Developing Experiences for Unified Learning."

MURSELL, JAMES L. *Successful Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1946. Pp. 322-32, "Lesson Planning."

NATIONAL COUNCIL FOR THE SOCIAL STUDIES. *Democratic Human Relations.* Sixteenth Yearbook. Washington, D.C.: The Council, 1945. Chap. iii, "Planning Learning Activities."

OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Pp. 305-06, "Cooperative Teacher-Pupil Planning."

SCHORLING, RALEIGH. *Student Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1949. Chap. vi, "Teacher and Pupils Plan Together."

YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods And Techniques of Teaching* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. xi, "Lesson Planning."

CHAPTER 8

DIRECTING LEARNING AND STUDY ACTIVITIES

*BURTON, W. H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. xii, "Development of Independent Study."

CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* Chicago: American Book Company, 1942. Chap. vii, "Developing Creative Interests and Abilities."

DEWEY, JOHN *How We Think.* Boston: D. C. Heath & Co., 1910.

FREDERICK, ROBERT W., RAGSDALE, CLARENCE E., and SALISBURY, RACHEL. *Directing Learning.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1938. Chap xi, "The Assignment and the Directing of Learning."

GILES, H. H. *Teacher-Pupil Planning.* New York: Harper & Bros., 1941. Chap. iii, "On the Nature of Human Needs."

*GOULD, GEORGE, and YOAKAM, G. *The Teacher and His Work.* New York: The Ronald Press Company, 1947. Chap. v, "Instructional Activities and the Teacher."

GRAY, LILLIAN. "Direction of Study in Elementary Schools Using the Integrated Program," *Educational Method*, XVII (May, 1938) 382-86

*HILDRETH, GERTRUDE *Child Growth Through Education*. New York: The Ronald Press Company, 1948. Chap. xi, "Literature and the Arts"

*MACOMBER, FREEMAN G. *Guiding Child Development in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1941. Chap. ix, "Developing Appreciations and Self-Expression."

MERSEREAU, E. B., DAVIS, E. A., and MILLS, H. H. *Directing Observation and Supervised Study.* New York; Farrar & Rinehart, Inc., 1937. Unit VI, "Directing Study."

ROGERS, VIRGIL. "Setting the Environment for Work," *Childhood Education*, XXIII (February, 1947) 266-69.

SEYFERT, WARREN C. "Problems in Developing Children as Workers," *Childhood Education*, XXIII (February, 1947) 261-65.

WINSLOW, LEON L. *The Integrated School Art Program* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1939. Chap. iii, "Activity Experience in Art Education."

WOFFORD, KATE. *Teaching in Small Schools.* New York: The Macmillan Co., 1946, Chap. xi, "Discovering and Developing the Creative Power in Children."

*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. viii, "Creative Learning."

CHAPTER 9

DIRECTED LEARNING IN THE PRIMARY GRADES

AHRENS, MAURICE R. *Planning and Developing a Life-Experience Unit.* Denver, Colorado: Denver Public Schools, 1948.

BAXTER, BERNICE "Democratic Practices in the Language Arts," *Elementary English Review*, XX (March, 1947) 108-11.

*BETTS, EMMETT ALBERT. *Foundations of Reading Instruction.* New York: American Book Co, 1946. Part III, "The Nature of Readiness", Part IV, "Developing Readiness"; Part V, "Reading Instruction."

BOND, GUY L., and BOND, EVA. *Teaching the Child to Read.* New York; The Macmillan Co., 1947. Part II, "The Child Gets Ready to Read"; Part III, "The Child Beginning to Learn to Read."

COLE, LUELLA. *The Elementary School Subjects.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1946. Chap. v, "Sensory Equipment and Eye Movements"; chap. vi, "Reading Readiness"; chap. viii, "Manuscript Writing."

DOLCH, EDWARD W. *Better Spelling.* Champaign, Ill : The Garrard Press, 1942.

GESELL, A., and ILG, F. *Infant and Child in the Culture of Today.* New York: Harper and Bros., 1943.

GRAY, W S. *On Their Own in Reading.* Chicago: Scott, Foresman & Co., 1948.

*HUGGETT, ALBERT J., and MILLARD, CECIL V. *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Part II, "Subject Matter for Growth and Learning."

LAMOREAUX, LILLIAN A., and LEE, DORRIS M. *Learning to Read Through Experience.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1943.

*MCKEE, PAUL. *The Teaching of Reading in the Elementary School.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1948. Part II, "A Suggested Program of Instruction in Reading."

OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Chap. v, "Educating for Self-Realization."

*SAUCIER, W. A. *Theory and Practice in the Elementary School.* New York: The Macmillan Co., 1941. Chap. vii, "The Teaching of Reading"; chap. viii, "The

Teaching of Language"; chap. ix, "The Teaching of Spelling and Handwriting", chap. x, "The Teaching of Arithmetic"; chap. xi, "The Teaching of Social Studies"; chap. xii, "The Teaching of Science."

SMITH, DORA V. "Building the Lines of Communication in the Elementary School," *The Elementary English Review,* XX (March, 1943), 81-86.

*WITTY, PAUL. *Reading in Modern Education.* Boston: D. C Heath & Co., 1949. Chap. iii, "Readiness for Reading"; chap. iv, "Vocabulary Growth and Development"; chap. v, "The Role of Children's Books in a Balanced Reading Program"; chap. vi, "Learning to Read—A Developmental Process."

CHAPTER 10

DIRECTING LEARNING IN THE INTERMEDIATE AND UPPER GRADES

*ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Organizing the Elementary School for Living and Learning. 1947 Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association. 1947

BAKER, ELIZABETH W. "A Social Basis for the Teaching of Elementary English Language," *Elementary School Journal,* XXX (September, 1920), 27-33

BOND, GUY L., and BOND, EVA. *Teaching the Child to Read.* New York: The Macmillan Co., 1947. Part IV, "The Child Becomes an Independent Extensive Reader."

DOLCH, E. W. *Better Spelling.* Champaign, Ill.: Garrard Press, 1942

FARGO, LUCILE. *The Library in the School.* Chicago: American Library Association, 1947.

GARDINER, JEWEL. *Administering Library Service in the Elementary School.* Chicago: American Library Association, 1941.

GATES, ARTHUR I. *The Improvement of Reading.* New York: The Macmillan Co., 1947.

GRAY, W. S. *On Their Own in Reading.* Chicago: Scott, Foresman & Co, 1948.

HILDRETH, GERTRUDE. *Learning the Three R's.* Philadelphia: Educational Publishers, Inc., 1947. Chap. x, "Reading in the Middle and Upper Grades"; chap. xi, "Improving Reading Techniques."

*HUGGETT, ALBERT J., and MILLARD, CECIL V. *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. vi, "The Skill Subjects: Reading"; chap. ix, "The Sciences in the Curriculum: The Social Studies", chap. x, "The Sciences in the Curriculum: Natural Science."

LANE, ROBERT HILL. *The Teacher in the Modern Elementary School.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1941. Chap. iii, "Organizing the School for Effective Learning."

*MCKEE, PAUL. *The Teaching of Reading in the Elementary School* Boston: Houghton Mifflin Co., 1948. Chap. xii, "Fundamentals of Reading in the Fourth, Fifth, and Sixth Grades"; chap. xii, "Introduction to the Program in the Reading-Study Jobs"; chap xiii, "Teaching Pupils to Locate Information"; chap. xiv, "Teaching Pupils to Evaluate Material"; chap. xv, "Teaching Pupils to Organize Material Read"; chap. xvi, "Teaching Pupils to Retain Ideas Read."

NATIONAL COUNCIL OF TEACHERS OF MATHEMATICS. *Arithmetic in General Education. Sixteenth Yearbook.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, 1941.

OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Chap. v, "Education for Self-Realization"

SMITH, DORA V. "The Language Arts in the Life of the School," *Elementary English Review,* XXI (May, 1944), 161-67.

*SAUCIER, W. A. *Theory and Practice in the Elementary School.* New York: The Macmillan Co, 1941. Chap. vii, "The Teaching of Reading"; chap. viii, "The

Teaching of Language", chap. ix, "The Teaching of Spelling and Handwriting"; chap. x, "The Teaching of Arithmetic"; chap. xi, "The Teaching of Social Studies"; chap. xii, "The Teaching of Science."

WALRAVEN, MARGARET K. *Teaching Reading Through the Elementary School Library.* Chicago: American Library Association, 1948.

*WITTY, PAUL. *Reading in Modern Education* Boston: D. C. Heath & Co., 1949. Chap. iv, "Vocabulary Growth and Development"; chap. vi, "Learning to Read—A Developmental Process."

WOFFORD, KATE. *Teaching in Small Schools.* New York: The Macmillan Co., 1946. Chap. iii, "Grouping Children for Instruction."

CHAPTER 11

SOCIALIZED DISCUSSION PROCEDURE

BRIGGS, T. H. "Sarcasm," *The School Review,* XXXVI (November, 1928), 685.

*BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944 Chap. xiii, "The Improvement of the Recitation."

CHRISMAN, RICHARD G. "The Use of the Panel Discussion in the Teaching of the Social Sciences," *High School Journal,* XXIV (March, 1941), 106-10.

DRESDEN, KATHARINE F. "Model Homeroom Discussion," *School Activities,* XIII (December, 1941), 135-36.

EDGERTON, RONALD B. "Do Pupils Want Teaching of Controversial Issues?" *The Clearing House,* XVIII (February, 1944), 332-34.

*HARRIS, FRED. "Do Children Think Critically About Classroom Procedure?" *Journal of Educational Psychology,* XXXIX (January, 1948), 51-59.

HUGHES, R. O "Junior Town Meetings," *School Activities,* XVII (October, 1945), 43-44.

*ISAACS, W, and KOLODNY, J. "Dynamics of Classroom Discussion," *Clearing House,* XXI (February, 1947), 326-29.

LANE, R. H *The Teacher in the Modern Elementary School* Boston Houghton Mifflin Co., 1941. Chap. iii, "Organizing the School for Effective Learning"

RATHS, LOUIS. "Improving Classroom Discussion," *Education Research Bulletin,* XXIV (January 17, 1943), 6-12.

SIMPSON, RAY H. "The 18 Major Purposes of Classroom Discussion," *The Clearing House,* XIV (September, 1939), 25-26.

SYMONDS, CLARE. "Panel Discussions Foster Sustained Group Attention," *Journal of Geography,* XL (September, 1941), 221-25.

*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. xv, "The Socialized Classroom."

CHAPTER 12

FUNCTIONAL UNITS FOR TEACHING AND LEARNING

*ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Group Planning in Education. 1945 Yearbook.* Washington, D C.: National Education Association, 1945.

BLACK, WILLIAM A. "The Study of the Evolving Concept of the Activity Program." Unpublished PH.D. Disertation, University of Colorado, 1942.

*BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. ix, "Types of Units"; chap. x, "Planning and Developing Units."

*DEPARTMENT OF SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Group Planning in Education, 1949 Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1945.

DEPARTMENT OF SUPERVISORS AND DIRECTORS OF INSTRUCTION. *Cooperation: Principles and Practices. Eleventh Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1938.

GRINSTEAD, WREN JONES. "The Unit of Learning: Its Meaning and Principles," *Educational Outlook,* VII, 9-20.

HORACE MANN LINCOLN INSTITUTE OF SCHOOL EXPERIMENTATION, Teacher's College Columbia University *The Teacher's Role in Pupil-Teacher Planning.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1947.

JONES, A. J., GRIZZELL, E. D., and GRINSTEAD, W. J. *Principles of Unit Construction.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1939.

KEELER, KATHERINE L., and SWEET, MAYME. *Units of Work.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1931.

MCMURRY, FRANK, and MCMURRY, CHARLES *The Method of the Recitation.* Bloomington, Ill.: Public School Publishing Company, 1897.

MILLER, HARRY L. *Creative Learning and Teaching.* New York: Chas. Scribner's Sons, 1927.

MORRISON, HENRY C. *The Practice of Teaching in the Secondary Schools,* (2d ed.), Chicago: University of Chicago Press, 1931.

MURSELL, JAMES L. *Successful Teaching, Its Psychological Principles.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1946.

*OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Chap. iii, "Working with Children."

PARKHURST, HELEN. *Education on the Dalton Plan.* New York: E. P. Dutton & Co., 1922.

QUILLEN, I. JAMES, and HANNA, LAVONE A. *Education for Social Competence.* Chicago: Scott, Foresman & Co., 1948. Chap. viii, "Techniques of Teaching Unit Development."

STRICKLAND, RUTH G. *How to Build a Unit of Work.* Bulletin 1946, No. 5. Washington, D.C.: Office of Education, 1946.

*WESLEY, EDGAR BRUCE. *Teaching the Social Studies.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. v, "The Unit Method."

———, and ADAMS, MARY. *Teaching Social Studies in Elementary Schools.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. xii, "Developing and Experiencing Units."

*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. xi, "Integrated Teaching and Learning Activities."

CHAPTER 13

DRILL AND REVIEW; TELLING AND EXPLAINING

BROWNELL, WILLIAM A., and CHAZAL, CHARLOTTE. "The Effects of Premature Drill in Third Grade Arithmetic," *Journal of Educational Research,* XXIX (September, 1935), 17-28.

BURTON, W. H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944 Chap. xvi, "The Guidance of Drill and Practice."

*CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1942. Chap. viii, "Developing Command of Skills."

GATES, A. L., JERSILD, S. T., MCCONNELL, T. R., and CHALLAM, R. C. *Educational Psychology.* New York: The Macmillan Co., 1942, pp. 349-76.

MACOMBER, F. G. *Guiding Child Development in the Elementary School.* New

York. American Book Co, 1941. Chap. viii, "Developing Ability in the Three R's."

*NATIONAL COUNCIL OF TEACHERS OF MATHEMATICS. *Arithmetic in General Education. Sixteenth Yearbook.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1941. Chap. ix, by B R. Buckingham, "What Becomes of Drill?"

NATIONAL SOCIETY FOR THE STUDY OF EDUCATION *Child Development and the Curriculum. Thirty-Eighth Yearbook.* Bloomington, Ill.: Public School Publishing Co., 1939. Pp. 57-83, by Arthur Jersild, "Education in Motor Activities."

———. *The Psychology of Learning. Forty-First Yearbook.* Part II. Bloomington, Ill.: Public School Publishing Co., 1942. Pp. 353-76, by J. B Stroud, "Role of Practice in Teaching."

RUEDIGER, WILLIAM. *Teaching Procedures.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1932 Chap. xvii, "Supplementing the Textbook."

SAUCIER, W. A. *Theory and Practice in the Elementary School.* New York: The Macmillan Co., 1941. Chap. ix, "The Teaching of Spelling and Handwriting"; chap. x, "The Teaching of Arithmetic."

*SCHORLING, RALPH. *Student Teaching.* New York: McGraw-Hill Co., Inc., 1949. Pp. 234-39, "Practical Guides for Drill."

STRUCK, F. THEODORE. *Creative Teaching* New York. John Wiley & Sons, Inc, 1938. Chap. xvi, "Drills and Reviews: The Nature and Function of Each in Teaching."

WOFFORD, KATE V. *Teaching in Small Schools.* New York. The Macmillan Co., 1946. Chap. x, "Drilling for Skills."

*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The Macmillan Co., 1948. Chap. xviii, "Drill"; chap. xix, "The Review."

CHAPTER 14

USING QUESTIONS AND PROBLEMS

BARTLETT, MARY M., LEMLER, F. L., and CLARK, ELLA. *How to Read Pictures.* Grand Rapids, Mich.: Information Classroom Picture Publishers, 1943.

*BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. xiv, "Improvement in the Use of Questions."

DOUGLASS, HARL R., and MILLS, HUBERT H. *Teaching in the High School.* New York: The Ronald Press Company, 1948. Chap. xiv, "Using Questions and Problems in Teaching."

KIRKENDALL, LESTER A. "Factors Inhibiting Pupil Questioning in Class," *Educational Method,* XVI (April, 1937), 359-62.

PRIMARY COMMITTEE OF ASSOCIATION FOR CHILDHOOD EDUCATION. *A Study of Reading Workbooks.* Washington, D.C.: The Association for Childhood Education, 1939.

REAGAN, G. W. *Fundamentals of Teaching.* Chicago. Scott, Foresman & Co., 1932, pp. 313-36.

SAUCIER, W. A. *Theory and Practice in the Elementary School.* New York: The Macmillan Co., 1941, pp. 117-19, 141, 177-78, 229, 333-34, 359, 411.

*STEVENS, ROMIETT. *The Question as a Measure of Efficiency in Instruction.* New York: Teachers College, Columbia University, 1942.

STORMZAND, M. J., and LEWIS, ROBERT H. *New Methods in the Social Studies.* New York: Farrar and Rinehart, 1935, pp. 163-65.

STRAYER, GEORGE D., and NORSWORTHY, NAOMI. *How to Teach.* New York: The Macmillan Co., 1917, pp. 213-18.

*WESLEY, EDGAR BRUCE. *Teaching the Social Studies.* Boston: D C. Heath & Co., 1942. Chap xxiv, "Questions and Answers"
*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York: The MacMillan Co., 1948 Chap. xii, "Questioning"

CHAPTER 15

SELECTING AND ORGANIZING LEARNING MATERIALS

ADAMS, FAY. *Educating America's Children.* New York: The Ronald Press Co, 1946. Chap. iv, "The Child, the Teacher, and the Curriculum: The Broader View of Method."
BAKER, EMILY V. *Children's Questions and Their Implications for Planning the Curriculum.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1945.
COMMITTEE ON REPORT TO THE PUBLIC. *Textbooks in Education.* New York: The American Textbook Publishers' Institute, 1949.
DEPARTMENT OF ELEMENTARY SCHOOL PRINCIPALS. *Enriching the Curriculum for the Elementary School Child. Eighteenth Yearbook.* Washington, D.C., National Education Association, 1939.
*DEPARTMENT OF SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Toward A New Curriculum.* Washington, D.C.: National Education Association, 1944.
*HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Chap viii, "The Program for Unified Teaching."
HORRALL, ALBION H., CODONE, LYDIA E., WILLSON, MABEL S., and RHODES, LEAH SMITH. *Let's Go To School.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1938 Chap. iii, "Philosophy and Curriculum."
JERSILD, ARTHUR T., and OTHERS *Child Development and the Curriculum* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1946.
MIEL, ALICE. *Changing the Curriculum.* New York: Appleton-Century-Crofts., Inc., 1946. 242 pages.
MURSELL, JAMES L. *Developmental Teaching.* New York. McGraw-Hill Book Co., 1949. Chap. vi, "Language Development: Reading."
OLSON, WILLARD C. *Child Development.* Boston: D. C. Heath & Co, 1949. Chap. xii, "Concepts of Child Development in Curriculum and Methods."
OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Company, Inc., 1949. Chap. ix, "Organizing the School Program."
PRICE, JOHN K. "Professional Preparation for Upper Elementary Teaching," in *The Education of Teachers,* Washington, D.C.. National Education Association, 1948.
SPEARS, HAROLD. *Some Principles of Teaching.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1949. Section on "The Curriculum," pp. 119-42.
*STRATEMEYER, FLORENCE B, FORKNER, HAMDEN L., MCKIM, MARGARET G, and OTHERS. *Developing A Curriculum for Modern Living.* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1947. Chap vi, "Developing the Curriculum with Learners."
TUTTLE, EDWARD M. "What Goes Into the Making of A Textbook," *Journal of the N.E.A.* XXXVIII (April, 1949), 266-67.

CHAPTER 16

AUDIO-VISUAL AIDS TO LEARNING

*ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Toward Better Teaching. 1948 Yearbook.* Washington, D.C., National Education Association, 1949. Pp 230-31 and 248-50, "Audio-visual Aids"

COREY, STEPHEN M. "Using Instructional Materials," *Journal, National Education Association.* XXXVII, No. 2 (February, 1948), 100-01.

*DALE, EDGAR. *Audio-visual Methods in Teaching.* New York: The Dryden Press, Inc., 1946.

EDUCATIONAL POLICIES COMMISSION. *Education for All American Children.* Washington, D C.: National Education Association. 1948. Pp. 22, 232-34, "Audio-visual Aids."

HAAS, KENNETH B., and PARKER, HARRY Q. *Preparation and Use of Visual Aids* New York. Prentice-Hall, Inc., 1946. 224 pp

HOBAN, CHARLES F., JR. *Movies That Teach.* New York · The Dryden Press, Inc., 1946.

LEVENSON, WILLIAM B. *Teaching Through Radio.* New York: Farrar & Rinehart. Inc., 1945.

McKOWN, HARRY C., and ROBERTS, ALVIN B *Audio-Visual Aids to Instruction.* New York · McGraw-Hill Book Co., Inc., (2d ed). 1949

MULLEN, SARAH McLEAN. "How to Judge Motion Pictures." New York: *Scholastic Magazine,* 1934.

MURSELL, JAMES L. *Developmental Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1949. Pp. 258-59, "Maps"; p. 87, "Verbalism."

NATIONAL COUNCIL FOR THE SOCIAL STUDIES. *Geographic Approaches to Social Education. Nineteenth Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Part III, "Tools for the Achievement of Goals"

NATIONAL SOCIETY FOR THE STUDY OF EDUCATION. *The Forty-Eighth Yearbook* Part I, *Audio-Visual Materials of Instruction.* Chicago: The University of Chicago Press, 1949. Chap. ii, "School Use of Audio-Visual Instructional Materials."

*OLSEN, EDWARD G. *School and Community Programs.* New York. Prentice-Hall. Inc., 1949. Chap. iii, "Audio-Visual Materials."

OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Pp. 80-83, "Motion Pictures"; pp 84-85, "The Radio."

WESLEY, EDGAR B, and ADAMS, MARY A. *Teaching Social Studies in Elementary Schools.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap xvi, "Using Audio-Visual Materials."

WILLEY, ROY DEVERL, and YOUNG, HELEN ANN. *Radio in Elementary Education* Boston: D. C. Heath & Co., 1948. Part II, "Techniques of Teaching by Radio."

CHAPTER 17

UTILIZING COMMUNITY RESOURCES FOR LEARNING

CLARK, HAROLD F. "Food, Clothing, and Shelter: The Sloan Experiment," *Clearing House* XIX (March, 1945), 418-19.

*DEPARTMENT OF ELEMENTARY SCHOOL PRINCIPALS. *Community Living and the Elementary School Twenty-Fourth Yearbook.* Washington, D.C: National Education Association, 1945.

———. *How to Know and How to Use Your Community* Washington, D C., National Education Association, 1942.

DEPARTMENT OF RURAL EDUCATION. *Community Resources in Rural Schools. 1939 Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association. Chap. ii, "Techniques for Discovering Community Resources."

EDUCATIONAL POLICIES COMMISSION. *Learning the Ways of Democracy.* Washington, D.C.: National Education Association, 1940

GOODYKOONTZ, BESS. *Know Your Community as a Basis for Understanding the School's Problems.* U. S. Office of Education, Leaflet No. 57, 1941.

KILPATRICK, W. H. (ed.). *The Teacher and Society.* First Yearbook, John Dewey Society. New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1937.

LANE, ROBERT HILL. *The Teacher in the Modern Elementary School.* Boston Houghton Mifflin Co., 1941. Chap. ii, "The School and the Community."

NATIONAL COUNCIL FOR THE SOCIAL STUDIES. *Geographic Approaches to Social Education, Nineteenth Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Chap. xvi, "The Home Community."

OLSEN, EDWARD G. *School and Community Programs* New York. Prentice-Hall, Inc., 1949.

*———, and OTHERS. *School and Community.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1945.

PITLUGA, GEORGE. *Science Excursions in the Community* New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1943, 154 pages. (For grades four through eight.)

*WESLEY, EDGAR, and ADAMS, MARY A. *Teaching Social Studies in Elementary Schools.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946 Chap. xvii, "Utilizing the Community."

WOFFORD, KATE V. *Teaching in Small Schools.* New York: The Macmillan Co., 1946. Chap. xiv, "Taking Excursions"; chap. xv, "Understanding the Community."

ZIRBES, LAURA. "Children Need Experiences," an Editorial. *Childhood Education* XXV, No. 2 (October, 1948), p 51.

CHAPTER 18

EVALUATING PUPIL GROWTH

*ASSOCIATION FOR SUPERVISION AND CURRICULUM DEVELOPMENT. *Toward Better Teaching, 1949 Yearbook* Washington, D.C.: National Education Association, 1949. Chap. viii, "Helping Pupils Evaluate."

BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. xvii, "The Measurement and Evaluation of Learning Outcomes."

DENVER PUBLIC SCHOOLS. *Health Interests of Children.* Denver, Colo.: Denver Public Schools, 1947.

DOLL, EDGAR A. (Trans.) *Oseretsky Tests.* Chicago: Education Test Bureau, (no date).

*HUGGETT, ALBERT, and MILLARD, CECIL V. *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. xiii, "Evaluation in the Elementary School"; chap. xiv, "Evaluative Aids."

LEWERENZ, ALBERT. *Tests in Fundamental Abilities of Visual Art.* Los Angeles. California Test Bureau (no date).

MACOMBER, FREEMAN G. *Guiding Child Development in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1941. Chap. xi, "Evaluating the Educational Program."

MCDANIEL, INGA CASTER "Establishing Effective Home-School Relationships," *California Journal of Elementary Education,* XVI (February, 1948), 160-75

*NATIONAL SOCIETY FOR THE STUDY OF EDUCATION. *The Measurement of Understanding. Forty-Fifth Yearbook,* Part I. Chicago: University of Chicago Press, 1946. Chap. vii, "The Measurement of Understanding In Elementary School Mathematics"; chap. ix, "The Measurement of Understanding of Language Arts."

QUILLEN, I. JAMES, and HANNA, LAVONE A. *Education for Social Competence.* Chicago: Scott, Foresman & Co., 1948. Chap. xiii, "Evaluation Techniques."

SAUCIER, W. A. *Theory and Practice in the Elementary School.* New York: The Macmillan Co., 1941. Chap. xiv, "Evaluating the Results."

*SCHORLING, RALEIGH. *Student Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1949. Chap. xiii, "The Broader Concept of Appraisal."

SEASHORE, CARL E. *Seashore Measures of Musical Talent.* Chicago: C. H. Stoelting, 1938.

STENQUIST, JOHN L. *Stenquist Mechanical Aptitude Tests.* Yonkers, N Y. World Book Company, 1923.

TORGERSON, THEODORE L. *Studying Children* New York: The Dryden Press Co., 1947.

WESLEY, EDGAR BRUCE, and ADAMS, MARY A. *Teaching Social Studies in Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. xxi, "Principles of Evaluation"; chap. xxii, "Measuring Progress in the Social Studies."

WRIGHSTONE, J. WAYNE. "New Tests for New Objectives in the Elementary School," *National Elementary Principal,* XXV (February, 1946), 15-8.

*YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT G. *Modern Methods and Techniques of Teaching.* New York. The Macmillan Co., 1948. Chap. xx, "The Appraisal of Pupil Progress."

CHAPTER 19

GUIDING AND TEACHING THE INDIVIDUAL

BOYNTON, PAUL, and OTHERS. *Elementary Educational Psychology* New York. Prentice-Hall, Inc., 1945. Chap. vii, "Individual Differences and School Adjustment."

BRUECKNER, L. J. "Techniques of Diagnosis" *Thirty-Fourth Yearbook of the National Society for the Study of Education.* Bloomington, Ill : Public School Publishing Co., 1935.

BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap xviii, "The Diagnosis of Learning Difficulties."

CHANDLER, CONSTANCE. "The Exceptional Child," *California Journal of Elementary Education,* XVI, No. 13 (February, 1948), 150-59

*HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Chap. xxii, "Meeting the Needs of Individuals."

MINOR, RUBY. *Early Childhood Education—Its Principles and Practices.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1937. Chap. iv, "The Nature of Individual Differences"; chap. v, "Methods of Adopting to Individual Differences."

*NATIONAL ELEMENTARY PRINCIPAL. *Meeting Special Needs of the Individual Child, Nineteenth Yearbook,* Vol. XIX, No. 6. Washington, D.C.: Department of Elementary Principals, National Education Association, 1940.

*OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Company, Inc., 1949. "Meeting Individual Differences," 311-24; "Educational Diagnosis," 350-51.

PARKHURST, HELEN. *Education on the Dalton Plan.* New York: E. P. Dutton & Co , 1922.

SMALLENBURG, HARRY W. "Characteristics of a Guidance Program for the Modern Elementary School," *California Journal of Elementary Education,* XVI (February, 1948), 130-38

*TEAGARDEN, FLORENCE. *Child Psychology for Professional Workers.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1946. Chap. vii, "The Child and His Home"; chap. x, "The Child's Emotions"; chap. xii, "The Child's Intelligence"; chap. xiii, "The Child and His School"; chap. xv, "Psychology and Social Problems Incident to Certain Diseases of Children"; chap. xvi, "Child with Visual and Auditory Handicaps"; chap. xvii, "Speech—Defective and Crippled Children."

*WOFFORD, KATE V. *Teaching in Small Schools.* New York: The Macmillan Co., 1946. Chap. ii, "Studying the Children"; chap. iii, "Grouping Children for Instruction."

YOAKAM, GERALD A., and SIMPSON, ROBERT H. *Modern Methods and Techniques of Teaching* New York, The Macmillan Co., 1948. Chap. xxii, "Providing for Individual Differences"; chap. xvii, "Remedial Teaching."

CHAPTER 20

RECORDING AND REPORTING PUPIL GROWTH

BAKER, C. B. and OTHERS *Curriculum Records of the Children's School.* Evanston, Illinois: Bureau of Publications, National College of Education, 1940.

FIELSTRA, CLARENCE. "Using Cumulative Records." *Educational Leadership,* II (April, 1945), 304-12.

*HUGGETT, ALBERT, and MILLARD, CECIL V. *Growth and Learning in the Elementary School.* Boston: D. C. Heath & Co., 1946. Chap. xv, "Reporting to Parents."

KELLER, C. B. *Procedures in Large Unit Teaching* (Curriculum Bulletin No. 4). Montgomery, Ala · State Department of Education, 1940.

*McDANIEL, INGA CASTER "Establishing Effective Home School Relationships" *California Journal of Elementary Education,* XVI, No. 2 (February, 1948), 160-75.

*NATIONAL COMMITTEE ON CUMULATIVE RECORDS. Handbook on Cumulative Records: Bulletin 1944, No 5 Washington, D.C.: U.S. Office of Education, 1944.

*SMITH, E. E., and TYLER, R. W. *Appraising and Recording Student Progress.* New York: Harper & Bros., 1942.

WRINKLE, WILLIAM L. "Reporting Pupil Progress" *Educational Leadership,* II (April, 1945), 293-300.

CHAPTER 21

SPECIAL EDUCATIONAL PROBLEMS

BERRY, MARY. "Social Conduct," *The Clearing House,* XX (December, 1945), 222-24.

*BURTON, WILLIAM H. *The Guidance of Learning Activities.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc., 1944. Chap. xix, "Marking and Reporting Progress."

CASWELL, HOLLIS L. *Education in the Elementary School.* New York: The American Book Co., 1942. Chap. i, "Major Issues and Problems."

———. *Pupil Progress in the Elementary School.* New York: Farrar & Rinehart, Inc, 1939. Chap. xxi, "Social and Noncurricular Activities."

*HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Chap. xx, "Guidance in Personal Development", chap. xxi, "Parent-School Relationships"; chap. xxii, "Meeting the Needs of Individuals."

LINDAHL, HANNAH M. "Club Activities in the Intermediate Grades." *Creative Schools: Twenty-Third Yearbook: Bulletin of the Department of Elementary School Principals.* Washington, D.C.: National Education Association, 1944.

*MACOMBER, FREEMAN GLENN. *Guiding Child Development in the Elementary School.* New York: American Book Co., 1941. Chap. x, "Classroom Management and Pupil Control"; chap. xiv, "Additional Factors in Teaching Success."

NATIONAL COUNCIL FOR THE SOCIAL STUDIES. *Democratic Human Relations. Sixteenth Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1945.

*OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949 Chap. xiv, "The Teacher's Administrative Role."

———, and HAMRIN, SHIRLEY A. *Co-Curricular Activities in Elementary Schools.* New York: Appleton-Century-Crofts, Inc, 1937.

SCHORLING, RALEIGH. *Student Teaching.* New York: McGraw-Hill Book Co., Inc., 1949. Chap xiv, "Professional Growth and Personal Advancement."

*SPEARS, HAROLD (Chairman). *Leadership at Work.* Washington, D.C: The Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, 1943.

WILLIAMS, CLAUDE L., and CURTIN, GERTRUDE G. "The Development of Citizenship Through Cooperation with Community Agencies." *Elementary Schools; the Frontline of Democracy. Twenty-Second Yearbook: Bulletin of the Department of Elementary School Principals.* Washington, D.C.: National Education Association, 1943.

CHAPTER 22

THE TEACHER'S PROFESSIONAL AND BUSINESS PROBLEMS

BORGERSRODE, FRED VON. "Resignation Provisions in Teacher's Contracts" *Education Digest.* IX (December, 1943), 39-41.

COMMITTEE ON TENURE AND ACADEMIC FREEDOM. *Teacher's Contracts: Principles and Practices.* Washington, D.C.: National Education Association, 1945.

———. *Teacher Tenure: Analysis and Appraisal.* Washington, D.C.: National Education Association, 1947.

CRAWFORD, CLAUDE C *How to Teach.* Los Angeles: Southern California School Book Depository, 1938. Chap. xxvii, "Winning Professional Advancement"

*DOUGLASS, HARL R., and GRIEDER, CALVIN. *American Public Education: An Introduction.* New York: The Ronald Press Co., 1948. Chap. xiv, "Major Problems of the Teaching Profession."

*GOULD, GEORGE, and YOAKAM, GERALD ALAN. *The Teacher and His Work.* New York: The Ronald Press Co., 1947.

KAPLAN, L. "Status and Function of Men Teachers in Urban Elementary Schools," *Journal of Educational Research,* XLI (May, 1948), 703-09.

MACDOUGALL, WILLIAM A. *Techniques of Teacher Self Placement.* Grand Forks, N.D.: Holt Printing Co., 1935.

MYERS, ALONZO F., and WILLIAMS, CLARENCE O. *Education in a Democracy: An Introduction to the Study of Education.* New York: Prentice-Hall, Inc., 1938. Unit VII, "Shall I Become a Teacher?"

*NATIONAL COUNCIL ON TEACHER RETIREMENT AND THE RESEARCH DIVISION. *Analysis of Local Provisions for Teacher Retirement.* Washington, D.C.: National Education Association, 1947.

NATIONAL COMMISSION ON TEACHER EDUCATION AND PROFESSIONAL STANDARDS. *Probable Demand for Teachers in the United States for the Decade 1949-50 Through 1958-59 for the Period 1948-60 Inclusive.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948.

*REAVIS, WILLIAM C, and JUDD, CHARLES H. *The Teacher and Educational Administration.* Boston: Houghton Mifflin Co., 1942. Chap. xv, "Securing Placement"; chap. xvi, "Professional Security"; chap. xvii, "Economic Security", chap. xviii, "Social Security."

RESEARCH DIVISION AND NATIONAL COUNCIL ON TEACHER RETIREMENT. *Statutory Provisions for Statewide Retirement Systems.* Washington, D.C.: National Education Association, 1948.

"Teachers' Salaries and Economic Trends," [mimeographed] *Research Bulletin of the N E.A.,* Washington, D.C.: National Education Association, October, 1948.

WOELLNER, ROBERT CARLTON, and WOOD, M. A. "Requirements for Certification of Teachers, Councilors, and Administrators for Elementary Schools, Secondary Schools, Junior Colleges." [mimeographed] Chicago: University of Chicago Press, 1949.

CHAPTER 23

IN-SERVICE EDUCATION OF TEACHERS

*Association for Supervision and Curriculum Development. *Group Processes in Education*. Washington, D.C.: National Education Association, 1945.

Biber, Barbara, and Snyder, Agnes "How to Know a Good Teacher," *Childhood Education*. XXIV (February, 1948), 37-39.

Briggs, Thomas H. *Improving Instruction* New York: The Macmillan Co., 1939. Pp. 488-92, "Directed Visiting."

Cushman, C. L., and Tulane, John B. "Curriculum Planning is an In-Service Job," *Educational Leadership*, III (October, 1945), 13-15.

Department of Elementary School Principals *In-Service Growth of School Personnel*. Washington, D.C.: National Education Association, 1942.

Department of Supervisors and Directors of Instruction. *Leadership at Work Fifteenth Yearbook*. Washington, D.C.: National Education Association, 1943.

Dubborn, Elsie C. "When Teachers Take the Lead," *Educational Leadership*, III (January, 1945), 174-77.

*Hanna, Lavone A. (Chairman). *Group Processes in Supervision*, Washington, D.C.: Association for Supervision and Curriculum Development, National Education Association, 1948.

Heaton, Kenneth, Comp, William, and Diedrich, Paul B. *Professional Education for Experienced Teachers*. Chicago: University of Chicago Press, 1940.

Morgan, Joy E. "Building an Action Program for the State Association," *Journal of the N.E.A.*, XXXV (April, 1946), 165.

National Committee on Teacher Education and Professional Standards. *The Education of Teachers as Viewed by the Profession*. Washington, D.C.: National Education Association, 1948. Section III, "The General Education of Teachers."

*Prall, Charles E., and Cushman, Leslie C. *Teacher Education in Service*. Washington, D.C.: Commission on Teacher Education of the American Council on Education, 1944.

Reavis, William C., and Judd, Charles H. *The Teacher and Educational Administration*. Boston: Houghton Mifflin Co., 1942. Chap. xiii, "The Teacher and Teachers' Organizations"; chap. xx, "Improvement of Teachers."

Robinson, A. W. *A Critical Evaluation of the American Federation of Teachers*. Chicago: American Federation of Teachers, 1935.

Spears, Harold (Chairman). *Leadership at Work*. Washington, D.C.: The Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, 1943.

*Witty, Paul "In-Service Growth of Teachers Through Cooperative Programs." *The Forty-Eighth Yearbook of the National Society for the Study of Education* Part II, *Reading in the Elementary School* Chicago: The University of Chicago Press, 1949.

——— (Chairman). *Mental Health in the Classroom*. Washington, D.C: Department of Supervisors and Directors of Instruction, National Education Association, 1940. Section 3, "Mental Health and Teacher Growth."

CHAPTER 24

THE TEACHER AS A PERSON

Barr, A. S and Others. *The Measurement of Teaching Ability*. Madison, Wis.: Dembar Publications, Inc., 1945.

BRYAN, ROY C. "Why Student Reactions to Teachers Should be Evaluated," *Educational Administration and Supervision* XXVII (November, 1941), 560-603

COMMISSION ON TEACHER EDUCATION. *Cultural and Social Elements in the Education of Teachers.* Washington, D.C.: American Council on Education, 1940.

———. *Helping Teachers Understand Children.* Washington, D.C.: American Council on Education, 1945.

COOKE, DENNIS H. *Administering the Teaching Personnel.* Chicago: Benj. H. Sanborn & Co, 1940. Chap. I, "Considering Teachers as Human Beings."

*DANIEL, J. McT. *Excellent Teachers: Their Qualities and Qualifications.* Columbia, S.C.: The Steering Committee of the Investigation of Educational Qualifications of Teachers in South Carolina, 1944. Chap. iii, "Excellent Teacher Qualities, the Point of View of Administrators and Supervisors"; chap. v, "Excellent Teacher Qualities, the Point of View of Teachers and Patrons."

DEPARTMENT OF CLASSROOM TEACHERS. *Fit to Teach: Ninth Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1938.

*DEPARTMENT OF SUPERVISORS AND DIRECTORS OF INSTRUCTION. *Mental Health in the Classroom: Thirteenth Yearbook.* Washington, D.C.: National Education Association, 1941.

"Ethics for Teachers: a Condensed Statement of the Code of the National Education Association," *Journal of the N.E.A.*, XXXIII (May, 1944), 117.

GOTHAM, R. E. "Personality and Teaching Efficiency," *Journal of Experimental Education,* XIV (December, 1945), 157-65.

*HILDRETH, GERTRUDE. *Child Growth Through Education.* New York: The Ronald Press Co, 1948. Chap. xxiii, "The Teacher's Part in the Guidance of Learning."

LA RUE, DANIEL W. *Educational Psychology.* New York: Thomas Nelson & Sons, 1939 Chap. xx, "The Personality of the Teacher"

MCKINNEY, FRED. *Psychology of Personal Adjustment.* New York: John Wiley & Sons, Inc., 1941. Chap. xiii, "Emotional Stability"; chap. xvi, "The Adjusted Personality."

*OTTO, HENRY J. *Principles of Elementary Education.* New York: Rinehart & Co., Inc., 1949. Chap. xv, "The Teacher as Person, Citizen, and Professional Worker."

REAVIS, WILLIAM C., and COOPER, DAN H. "Evaluation of Teacher Merit in City School Systems." *Supplementary Educational Monographs,* No. 59. Chicago: University of Chicago, 1945.

SCHORLING, RALEIGH. "An Envolving Bill of Rights for Teachers." *The School of Education Bulletin: University of Michigan,* xvii (May, 1946) 122-25.

SYMONDS, P. M. "The Needs of Teachers as Shown in Autobiographies," *Journal of Educational Research,* XXXVI (May, 1943), 662-77.

THOMPSON, SCOTT. *The Teacher Centered School.* Compton, Calif.: Compton Junior College, 1943 Chap. iv, "Youth and His Teachers"; chap. vi, "The Personality of the Superior Teacher."

INDEX